Vol- XXIII, January-April 2026
Issue No. I

ISSN : 0970-1745
Regd. No. 2607/1-V8522
IIFS IMPACT FACTOR 6.75

PART-I

Shodh

A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Arts & Humanities

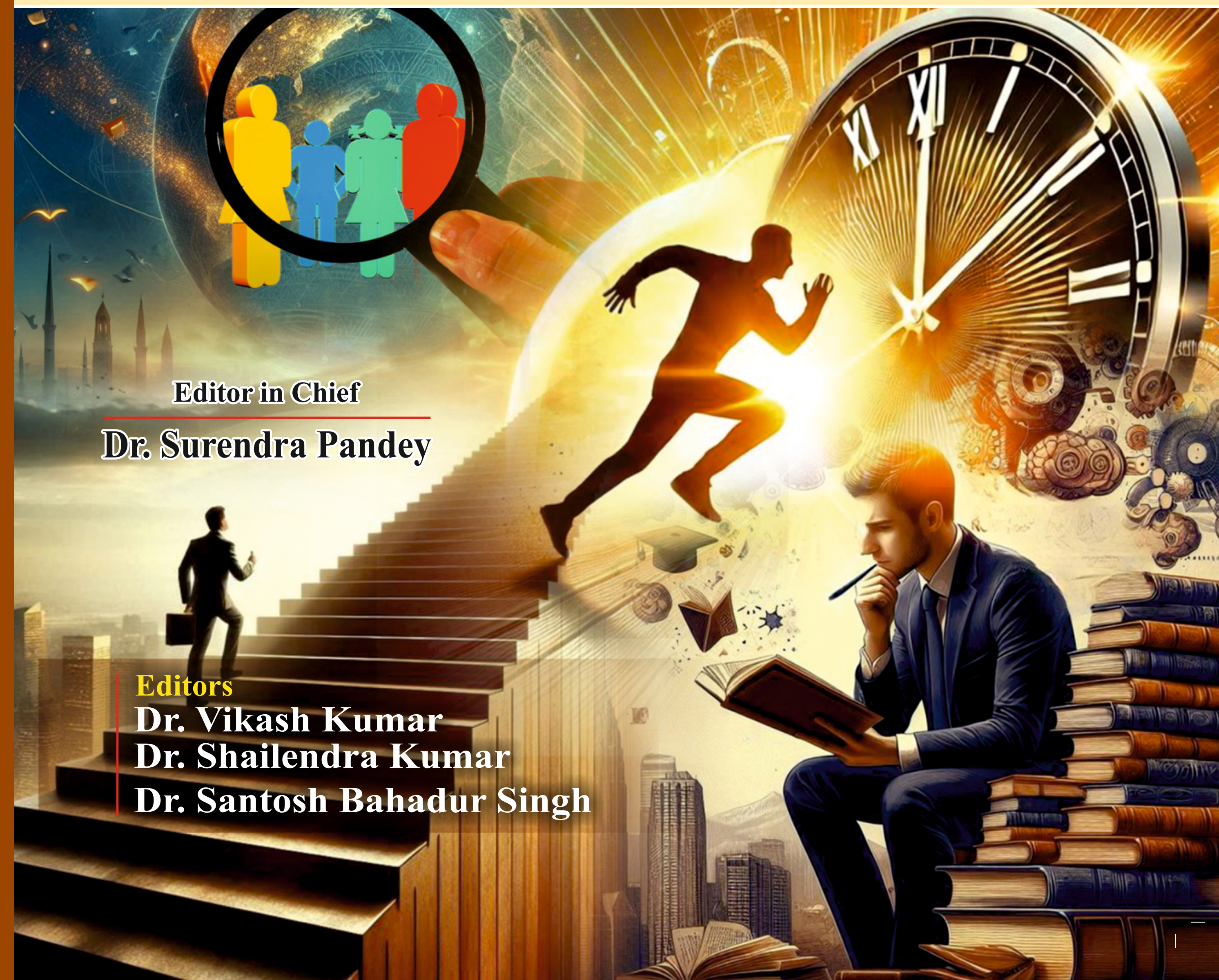

Editor in Chief
Dr. Surendra Pandey

Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar
Dr. Santosh Bahadur Singh

Shodh A Triannual Bilingual Refereed Journal of Arts & Humanities | January-April 2026, Issue No. I

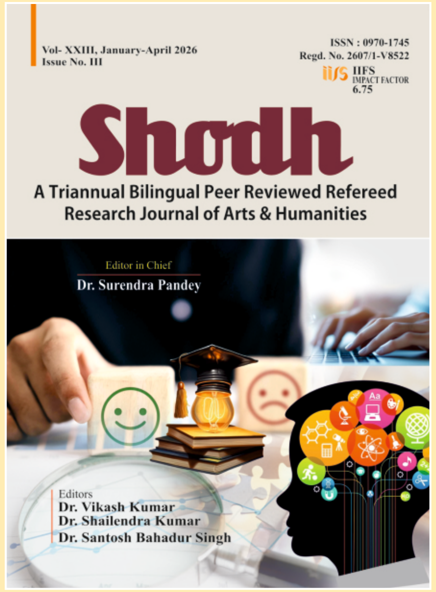

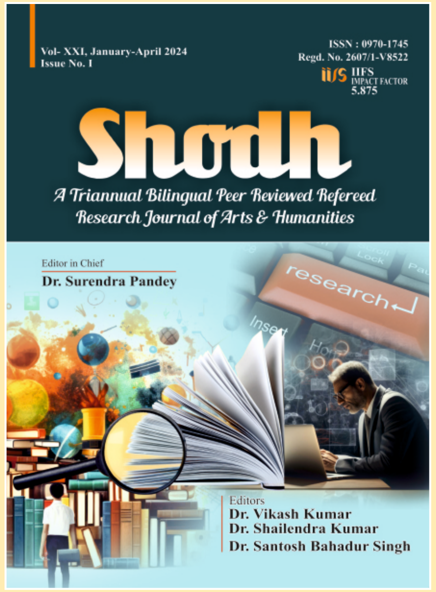

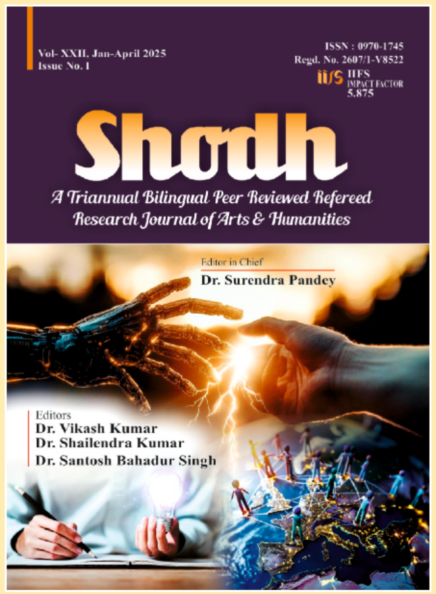

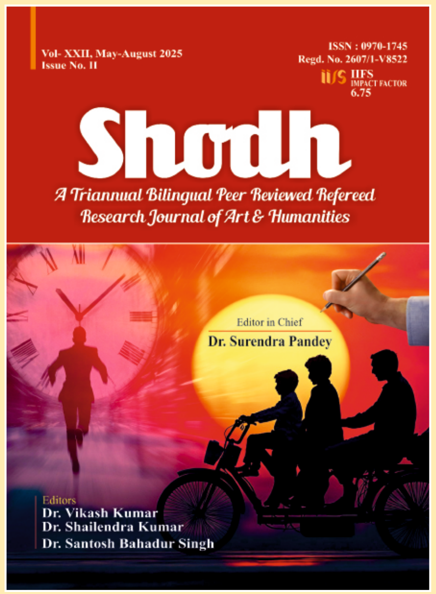

Published by
History & Historical Writing Association,
U.P., Varanasi (INDIA)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari,
Varanasi, Email: shodh1984@gmail.com

Regd. No. 2607/1-V8522 ISSN: 0970-1745

SHODH

[A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Arts & Humanities]

Chief Editor
Dr. Surendra Pandey
Editors
Dr. Vikash Kumar,
Dr. Shailendra Kumar
Dr. Santosh Bahadur Singh

Published by
History & Historical Writing Association, U.P., Varanasi (India)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari, Varanasi
Mob. 9470828492, 9451173404, 9868477818 Email: shodh1984@gmail.com

Printed by
Akhand Publishing House, Delhi (India)
L-9/A, First Floor, Street No.42, Sadatpur Extension, Delhi (INDIA)
Mob. 9968628081, 9013387535, Email: akhandpublishing@yahoo.com

Peer Reviewed Policy :

This journal follows single blind peer review policy. Each paper is evaluated by two refrees. The responsibility of the facts given and opinions expressed in articles of journal is solely that of individual author and not to the publisher.

First Issue Publication 1984, *Publication Date : 30 April 2026*

Chief Editor :

Dr. Surendra Pandey
Assistant Professor,
Kuba P.G. College,
Dariyapur, Newada, Azamgarh

Editors

Dr. Vikash Kumar
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Lajpat Rai College,
Sahibabad, Ghaziabad, UP

Dr. Shailendra Kumar
Assistant Professor,
Department of Management
Sikkim University, Sikkim

Dr. Santosh Bahadur Singh
Assistant Professor
Department of English
Lady Irwin College,
University of Delhi

Executive-Editors

Dr. Varsha Singh
Associate Professor
Department of English
Deshbandhu College,
University of Delhi

Dr. Arun Kumar Mishra
Assistant Profesar
Hindi M D PG College
Pratapgarh, UP

Dr. Dibya Ranjan Tripathy
Guest Lecturer,
PG Department of History,
Government of Autonomous
College, Angul, Odisha

Co-Editors

Dr. Rajkumar Upadhyay "Mani"
Associate Professor
Department of Hindi
University of Delhi

Dr. Sudhir Kumar Sah
Assistant Professor, University
Department of Commerce,
BNMU Madhepura

Dr. Ramesh Kumar
Guest Faculty, NCWEB &
SOL, Delhi University

Sub-Editors

Prof. Sandhya Sharma
Department of Hindi,
Lajpat Rai College,
Sahibabad, Ghaziabad, UP

Dr. Ravendra Rajput
Associate Professor,
Dept. of Teacher Education
Shri Varshney College
Aligarh

Dr. Abhay Kumar
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Munger University,
Munger, Bihar

Vol. XXIII Issue No.I, Jan.-April. 2026, (Part-I) ISSN: 0970-1745 IIFS Impact Factor 6.75

SHODH

......A Triannual Bilingual Refereed Research Journals of Arts & Humanities

Patrons

Dr Jai Ram Singh

Ex-principle Degree College, Palahipatti, Varanasi

Editorial Board

1. Prof. Hirocko, Nagasaki, Osaka University, Japan.
2. Prof. Ashok Singh, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
3. Prof. Ravindra Nath Singh, AIHC Department, Banaras Hindu University.
4. Prof. Rangnath Pathak, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
5. Prof. Chandrakala Tripathi, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
6. Prof. Anita Singh, Department of English, Banaras Hindu University.
7. Prof. Abha Singh, Pro Vice Chancellor, B.N. Mandal University, Bihar.
8. Prof. Sharvesh Pandey, Principal DCSK PG College, Mau, UP
9. Prof. Yogesh Kumar Sharma, Department of English, Swami Shraddhanand College, University of Delhi.
10. Prof. Sanghmitra, Department of Political Science, Bodoland University Assam.
11. Dr Nirmla Kumari, Professor, Hindi Department, Shri Varshney College, Aligarh.
12. Dr Anupam Kumar, Associate Professor of English, SGT University, Budhera, Badli Road, Gurugram, Haryana
13. Dr. O.P. Singh, Harishchandra P.G. College, Varanasi.
14. Santosh Patel, Assistant Registrar, Delhi Skill and Entrepreneurship University, New Delhi.
15. Dr Ratnesh Tripathi, Assistant Professor, Department of History, Satyawati College, University of Delhi.
16. Dr Vikash Kumar Singh, Assistant Professor, AIHC Department, Banaras Hindu University.

17. Satyendra Kumar, Assistant Professor, Department of English, Kirori Mal College, University of Delhi.

18. Dr. Shubhanku Kochar, Assistant Professor, Department of English, Guru Govind Singh Indraprastha University, Dwarka New Delhi.

19. Vijay kumar, Assistant Professor, Department of English, Satyawati College, University of Delhi.

20. Dr. Bhartendu Kumar Pathak, Assistant Professor, Department of Hindi, Kashmir University, Shrinagar (J&K).

21. Dr. Priyadarshini, Assistant Professor, Department of Hindi, The English Foreign Languages University, Haiderabad, Telangana.

22. Dr. Rashmika Mishra, Assistant professor department of vocal music Mmv Bhu

23. Dr. Bhupendra Kumar, Assistant Professor Department of Sanskrit Kirori Mal College, University of Delhi.

24. Dr. Abhishekh Kumar Pandey, Principal, Vidya College of Professional Studies, Patna Bihar.

विषय-सूची
Contents

PART–I

1. विभाजन विभीषिका और उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी ‘चारा काटने की मशीन’: विश्लेषणात्मक अध्ययन 3
—खुशी श्रीवास्तव

2. समकालीन कथा साहित्य से जुड़े समकालीन प्रश्नों के संदर्भ में जैनेन्द्र कुमार के ‘सुनीता’ एवं इलाचंद्र जोशी के ‘संन्यासी’ का मनोवैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन 10
—अनुष्का गुप्ता

3. चीफ़ की दावत' और 'वापसी' कहानी में वृद्धावस्था विमर्श 16
—मुस्कान

4. भारतीय सिनेमा कल आज और कल (चयनित फिल्मों के संदर्भ में) 21
—अनुष्का खेड़ा

5. अज्ञेय के यात्रा साहित्य में भारतीय संस्कृति 24
—रश्मि यादव

6. मैथिली लोकगीतो में प्रकृति चित्रण : एक सामाजिक सांस्कृतिक विश्लेषण 28
—प्रीति कुमारी

7. बहुभाषिक संदर्भ में अनुवाद का महत्व 32
—भाविका साह

8. प्रकृति और जीवों की लेखिका : महादेवी वर्मा 36
—आँचल कुमारी

9. हिंदी साहित्य में विभाजन की त्रासदी में लिखित कथा साहित्य 40
—रिक्की

10. महाभोज उपन्यास का राजनीतिक दृष्टि से मूल्यांकन 43
—अन्नु

11. निर्मल वर्मा की कहानियों में परिस्थिति और मनःस्थिति का द्वंद्व 46
—भावना गोला

12. दया प्रकाश सिन्हा के नाटक 'मेरे भाई मेरे दोस्त' में मानवीय संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन 51
—फरहीन

13. मन्नू भंडारी की कहानी "यही सच है" और "अकेली" में नारी का अंतर्द्वंद्व 54
—सुरती कुमारी

14. अनुवाद की समस्या अनुदित कृति " बातें के विशेष संदर्भ में " 56
—स्वाति कुमारी

15. उदय प्रकाश की कहानी "पीली छतरी वाली लड़की" में मध्यवर्गीय जीवन 60
—हिमांशी

16. काशी के अस्सी का सांस्कृतिक विश्लेषण 63
—गरिमा सिंह

17. गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में जीवन मूल्य चिन्तन 65
—अभय कुमार राय

18. मध्यकालीन भक्ति काव्य में ज्ञान और भक्ति 71
—अर्चना कुमारी

19. आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावः एक अनुशीलन 77
—प्रो0 (डॉ0) सिच्चदानंद सिन्हा, रंजीत कुमार

20. राजनीति ध्रुवीकरण और सोशल मीडिया 81
—जय प्रकाश मिश्रा

21. बिहार में खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ: रोजगार सृजन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की नई उम्मीद 89
—डॉ. आकाश कुमार

22. मुक्तिबोध की साहित्यिक कृतियों में रचनात्मक योगदान 95
—डॉ0 धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

23. बिहार में मिहिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं स्वास्थ्य का विश्लेषण 101
—डॉ. सरोज कुमार

24. भारतीय सामाजिक-आर्थिक विकास में ग्रामीण हाट की भूमिका 108
—डॉ. अभय कुमार

25. 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में भूमिहीनो की समस्या 112
—पुष्पा कुमारी

26. वैशाली जिला में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का भौगोलिक विश्लेषण 121
—श्वेता कुमारी

27. राहुल सांकृत्यायन का स्वाधीनता आंदोलन में योगदान 127
—विनीता कुमारी

28. स्त्री शोषण की संघर्ष गाथाओं का आख्यान 'कितने पकिस्तान' 134
—डॉ. चन्दन कुमार

29. स्वाधीनता आंदोलन में जनकिव नागार्जुन की भूमिका 139
—डॉ. सोनी

30. स्वाधीन भारत में शिक्षा नीतिः 2020 (भाग- एक) 143
—डॉ. रुचिरा वर्मा

31. स्वाधीनता संग्राम और हिन्दी कहानी 150
—डॉ. अभिशेक कुमार सिन्हा

32. "आदर्श समाज' भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के संदर्भ में" 154
—वन्दना घोष

33. दलित उत्कर्ष में रामविलास पासवान का योगदान: एक समग्र अध्ययन 161
—सुधीर कुमार

34. महाभारत में वर्णित पर्यावरणीय चेतना की प्रासंगिकता-आधुनिक संदर्भ में 167
—डॉ० अवनीश कुमार दुबे

35. अज्ञेय के उपन्यासों में आधुनिकताबोध 171
—डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय

36. नारी संघर्ष और प्रतिरोध का समाज: समकालीन उपन्यास 'अग्निलीक' और 'सेज पर संस्कृत' के संदर्भ में 176
—डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता, गौरव शर्मा

37. कामायनी में काव्य-भाषा शिल्प के नये चरण 182
—डॉ0 ज्ञान प्रकाश द्विवेदी

38. रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियों में स्त्री चेतना 186
—लाल बाबू यादव

39. वृद्धावस्था की बढ़ती समस्याएं व निराकरण 190
—राजेश कुमार यादव

40. कार्यालयीन अनुवाद: आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में भूमिका, चुनौतियाँ और भविष्य की दिशा 194
—अशोक कुमार सिंह, डॉ. पूनम शर्मा

41. संसाधन के रूप में रोहतास जिले की नदियाँ 201
—प्रशांत उज्ज्वल

42. स्वयं सहायता समूहों (SHG) के माध्यम से महिला आर्थिक सशक्तिकरण:
वैशाली जिला का एक भौगोलिक अध्ययन 207
—स्वेता कुमारी[1], *डॉ. इडा एला सीमा केरकेट्टा*[2]

43. सुमित्रा मेहरोल की आत्मकथा में पितृसत्ता ,जातिसत्ता एवं विकलांगता का अंतर्संबंध 214
—अंशु कुमारी

44. इतिहास से बहिष्कृत मुक्ति आकांक्षा की त्रासदी की अभिव्यक्ति
के समकालीन कवि दिनेश कुशवाह 219
—ज्योति सिन्हा

45. उदारीकरण के बाद आदिवासी समाज और विस्थापन 225
—डॉ. सरफ़राज़ अहमद

46. औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध बिहार में अगस्त क्रांति का ऐतिहासिक विश्लेषण 231
—श्याम किशोर ठाकुर

47. 'पुन्यपथी' महाकाव्य में धर्म की अवधारणा और श्रवण कुमार का चरित्र 236
—डॉ. आशा कुमारी

48. यशपाल की आत्मकथा ***'सिंहावलोकन'*** में चित्रित समाज पर आर्य समाज के प्रभाव का विश्लेषण 242
—रवींद्र[1], *डॉ. अमित कुमार सिंह कुशवाहा*[2]

49. रजत रानी मीनू की कविताएं: दलित 'स्व' की खोज 250
—समीर कुमार

50. स्वास्थ्य, योग व शिक्षा का एकीकरण : स्वामी रामदेव के विचारों का विश्लेषण 258
—राज कुमार

51. मानस में पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण 269
—डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता, श्रेया शर्मा

52. स्त्री-जीवन और मूल्यबोध: रूपम मिश्र की कविता के विशेष संदर्भ में 276
—दुर्गानन्द ठाकुर

53. सिन्धु-सरस्वती सभ्यता : ऐतिहासिक नदी विमर्श एवं समकालीन भारत में नदी संरक्षण की वास्तविक चुनौतियाँ 282
—डॉo चरणदास

54. हिंदी भाषा के बदलते सामाजिक संदर्भ : पहचान और सांस्कृतिक स्वरूप 289
—डॉ. ईशाकपूर

55. विश्वविद्यालय एवं शासकीय महाविद्यालयों में पुस्तकालय की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन 300
—डॉ. जूही चौहान

56. मुंशी प्रेमचंद और उनका साहित्यिक जीवन 310
—डॉ0 विकास कुमार

57. विकसित भारत 2047 के लक्ष्य प्राप्ति में कौशल शिक्षा का योगदान 316
—प्रो० (डॉ०) अनु कुमारी

PART – I

विभाजन विभीषिका और उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी 'चारा काटने की मशीन': विश्लेषणात्मक अध्ययन

खुशी श्रीवास्तव
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार:

प्रस्तुत शोध पत्र भारत के विभाजन को एक व्यापक मानवीय त्रासदी और सभ्यता पर गहरे आघात के रूप में ग्रहण करते हुए उसके साहित्यिक प्रभावों का विश्लेषण करता है। विभाजन केवल राजनैतिक या भौगोलिक घटना न होकर मानवीय संबंधों, सामाजिक संरचनाओं और नैतिक मूल्यों का भीषण पतन था जो हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में अभिव्यक्त हुआ। इसी व्यापक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कहानी का अवलोकन करते हुए यह अध्ययन उपेन्द्रनाथ अश्क की विभाजन आधारित प्रतिनिधि कहानी -'चारा काटने की मशीन' के विश्लेषण पर केंद्रित है। यह कहानी विभाजनकालीन विस्थापन, संपत्ति-लोलुपता, असुरक्षा, अराजकता और मनुष्य के भीतर घटित होते नैतिक पतन को अत्यंत मार्मिक और व्यंग्यात्मक रूप में उद्घाटित करती है। सरदार लहनासिंह के अनुभवों के माध्यम से कहानी यह संकेत करती है कि सत्ता-परिवर्तन और सामाजिक उथल-पुथल के बीच मनुष्य किस प्रकार स्वयं उसी हिंसक और अमानवीय संरचना का हिस्सा बन गया, जिससे वह स्वयं ही पीड़ित भी था। इस शोध का उद्देश्य यह स्थापित करना है की 'चारा काटने की मशीन' कहानी विभाजन की परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उन मनोवैज्ञानिक और नैतिक संकटों को उजागर करती है जिनमें मनुष्य की संवेदना और आस्तित्वगत असुरक्षा परस्पर उलझकर एक गहरी विडंबना का रूप धरण कर लेती है।

बीज शब्द : स्वतंत्रता, विभाजन, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', कहानी, चारा काटने की मशीन, सांप्रदायिकता, भारत।

मूल आलेख :

विभाजन की विभीषिका

पारिभाषिक स्तर पर विभाजन का अर्थ एक इकाई को दो या दो से अधिक अंशों में विभक्त कर देना हो सकता है, लेकिन जब इस शब्द का विस्तार किसी मानवीय समाज, संस्कृति और राष्ट्र के संदर्भों में किया जाए तो इस परिभाषा की परिधि गहरी और हृदय विदारक हो जाती है और एक बुनियादी सवाल खड़ा करती है कि जो समाज सदियों से साझा जीवन, बोल-चाल, खान-पान, संस्कृति और सह-अस्तित्व की अगणित परतों में गुथा हुआ हो वह आखिर कितना, कैसे और कहाँ तक बांटा जा सकता होगा।

भारतीय इतिहास में 14 अगस्त, सन् 1947 की रात एक ऐसी ऐतिहासिक विडंबना के रूप में अंकित है, जिसमें स्वतंत्रता और देश का विभाजन, यह दो परस्पर विरोधी अनुभव एक ही क्षण में घटित हुए। उस मध्यरात्रि के समय एक ओर भारत दमनकारी उपनिवेशिक दासता के बंधनों से मुक्ति पा रहा था, दूसरी ओर देश की जीती-जागती साँस लेती सभ्यता का हृदय छिन्न-भिन्न हो रहा था। जिसे स्वतंत्र भारत के उद्वार का क्षण कहा गया वही असंख्य मनुष्यों के लिए अपने घर, अपनी भूमि, अपने संबंधों और अपनी पहचान के अंत की घड़ी सिद्ध हुई। यह स्वतंत्रता त्रासदी की कलुषित छाया में लिपटी हुई थी।

भारतभूमि का बंटवारा, अखंड आर्यावर्त का विभाजन भारतीय इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी।[1] भारत की घायल सभ्यता अपने ही रक्त से लथपथ खड़ी थी। स्वतंत्रता और विभाजन का यह एक साथ घटित होना भारतीय चेतना पर एक स्थायी आघात के रूप में अंकित हो गया, जिसने भारतीय इतिहास और सभ्यता को कलंकित किया। यह केवल भौगोलिक विभाजन नहीं था, इसने संपूर्ण भारतीय समाज के ताने-बाने को अस्त-व्यस्त कर डाला।[2]

विभाजन जैसी घटनाएं किसी भी समय विशेष में घटकर समाप्त हो जाने वाली नहीं होतीं, अपितु उसका प्रभाव समाज और राष्ट्र पर बहुत लंबी कालावधि तक देखा जाता है।[3] इस त्रासदी ने सामूहिक स्मृति में भय, अविश्वास और अलगाव की ऐसी रेखाएँ खींच दीं जो आज भी सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवहार में दिखाई देती हैं। सांप्रदायिकता पर आधारित यह विभाजन समाज के भीतर स्थायी दरारों का कारण बना, जिनकी प्रतिध्वनि समय-समय पर हिंसा, तनाव और असहिष्णुता के रूप में सामने आती रही है।

साम्प्रदायिक वैमनस्य और घृणा की प्रज्वलित आग में विभाजन के समय मानव की क्रूरता के ऐसे अकल्पनीय दृश्य सामने आए जिनकी पूर्वकल्पना तक संभव नहीं थी। देश के विभिन्न भागों में उठी साम्प्रदायिक हिंसा और संत्रास की भयावह लपटों में लाखों भोले-भाले निरीह लोग मौत के घाट उतार दिए गए। जली हुई बस्तियाँ, उजड़े मोहल्ले, सड़कों पर पड़े शव, लावारिस बच्चों की चीखें और अपने ही नगरों में शरणार्थी बने लोग, यह सब उस समय की सामान्य दृश्यावली बन चुकी थी।

स्त्रियाँ, बच्चे और वृद्ध इस नरसंघार में सर्वाधिक असहाय सिद्ध हुए। विभाजन की सांप्रदायिक हिंसा से उपजी अराजकता में स्त्रियों को सुनियोजित ढंग से हिंसा का लक्ष्य बनाया गया। मतांधता के उस काल में मानवीय मूल्यों का इतना क्षय हुआ कि स्त्री शरीर को सामूहिक अपमान, बलप्रदर्शन और दूसरे समुदाय को नीचा दिखाने का माध्यम बना लिया गया था। इन परिस्थितियों में लाखों लोगों को अपनी जन्मभूमि छोड़कर पलायन करने के लिए विवश होना पड़ा। भय, अनिश्चितता और असहायता से भरा यह विस्थापन केवल भौतिक स्थानांतरण नहीं था, बल्कि मनुष्य के अस्तित्व, पहचान और स्मृति का भी विखंडन था।

विभाजन और हिन्दी साहित्य

यद्यपि विभाजन एक ऐतिहासिक और राजनीतिक घटना थी, परन्तु उसके प्रभाव केवल इतिहास की सीमाओं में बँधकर नहीं रहे। उसने जनमानस की चित्तवृत्तियों, संवेदनात्मक संरचनाओं और सामूहिक स्मृति को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। जब किसी समाज के अनुभव और नैतिक द्वंद्व बदलते हैं, तो उनकी प्रतिध्वनि अनिवार्यतः साहित्य में भी सुनाई देती है। इस संबंध को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता

की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है… जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है…।"[4] यह स्पष्ट करता है कि साहित्य और इतिहास का संबंध बहुत गहरा है।

राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन साहित्यिक संवेदना को भी प्रभावित करता है। विभाजन के संताप, भय, असुरक्षा मानवीय संबंधों के विघटन और नैतिक मूल्यों के पतन ने मानवीय अनुभवों को जिस गहराई तक आहत किया उसकी अभिव्यक्ति केवल ऐतिहासिक और राजनीतिक विमर्श में पूरी तरह संभव ही नहीं थी। इतिहास घटनाओं के क्रम का वर्णन कर सकता है पर उन घटनाओं के भीतर निहित यथार्थ, संवेदनाओं और मनोवैज्ञानिक पक्ष को अभिव्यक्ति देने का दायित्व स्वाभाविक रूप से साहित्य ने अपने ऊपर ले लिया।

इस दृष्टि से भारत का विभाजन, भारतीय जनमानस पर अंकित एक ऐसा व्यापक और पीड़ादायक परिवर्तन था, जिसने भाषा, भूगोल, और सांस्कृतिक विविधताओं से परे समूचे भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न रचनाकारों को उद्वेलित किया, फलस्वरूप इसकी अभिव्यक्ति हिंदी, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, बांग्ला सहित अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्य में स्वाभाविक रूप से हुई। उर्दू में सआदत हसन मंटो और राजेंद्र सिंह बेदी ने क्रमशः खोल दो, टोबाटेक सिंह और लाजवंती, पंजाबी में कुलवंत सिंह 'विर्क' की घास और लोचन बख्शी की धूल तेरे चरणों की, सिंधी भाषा में मोतीलाल जोतवाणी, गुलजार अहमद और शेख़ अयाज नेक्रमशः धरती से नाता, यादें, और पड़ोसी जैसी कहानियाँ लिखीं।[5] हिंदी कहानी में सामाजिक चेतना और अपने परिवेश से जुड़े रहने की एक स्वस्थ परंपरा रही है। इसलिए यह आश्चर्य ही होता अगर हिन्दी साहित्यकार भारत विभाजन जैसी त्रासदी के प्रति निरपेक्ष रह जाते।[6] अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उग्र, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ अश्क, कमलेश्वर, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, बदिउज्जमाँ, महीप सिंह, भीष्म साहनी प्रभृत्ति कहानिकारों की अनेकानेक कहानियों में विभाजन के विविध पक्षों का विभिन्न आयामों में चित्रण और विश्लेषण हुआ है।[7]

इस व्यापक साहित्यिक परंपरा में जहां विभाजन की ऐतिहासिक त्रासदी विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई, कुछ रचनाकार ऐसे भी हैं जिन्होंने इस घटना को प्रत्यक्ष हिंसा, रक्तपात और विस्थापन के दृश्यों के आत्मिक चित्रण के साथ-साथ, परिणाम स्वरूप परिवर्तित होते सामाजिक व्यवहार, संबंधों और मानवीय प्रवृत्तियों को जीवन की साधारण प्रतीत होने वाली परिस्थितियों में घटित होते हुए यथारूप कहानी का विषय बनाया। इस संदर्भ में उपेन्द्रनाथ अश्क का कहानी साहित्य विशेषरूप से उल्लेखनीय है। विभाजनकालीन परिस्थितियों में मनुष्य की प्रवृत्तियों और आकांक्षाओं के परिवर्तन को अश्क उनकी कहानी 'चारा काटने की मशीन' में सूक्ष्मता से उद्घाटित करते हैं।

'चारा काटने की मशीन' कहानी में अभिव्यक्त विभाजन विभीषिका

उपेंद्रनाथ अश्क की कहानी चारा काटने की मशीन, चारा काटने का काम करने वाले सरदार लहनासिंह और उनकी पत्नी सरदारनी के जीवन के उस अनुभव पर केंद्रित है जब वे विभाजन से उत्पन्न विस्थापन में पलायन कर जाने वाले लोगों की पीछे छूटी संपत्तियों में से उस समय में अनेक लोगों की भांति अपने लिए एक नए घर पर कब्जा जमाने का प्रयास करते हैं। इस प्रयास में अंततः और अधिक संघर्ष के सिवा उनके हाथ कुछ नहीं लगता।

"रेल की लाइनों के पार इस्लामाबाद की नई आबादी के मुसलमान जब सामान का मोह छोड़ जान का मोह लेकर भागने लगे तो हमारे पड़ोसी लहनासिंह की पत्नी चेती।"[8] प्रारंभ ही इस ओर संकेत करता है कि विभाजन सत्ता के राजनीतिक

विमर्शों में एक कठिन निर्णय रहा लेकिन इसकी वास्तविक कठिनाई देश में सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी एक साथ रह रही सामान्य जनता के हिस्से में जितनी आई उतनी किसी अन्य के हिस्से में कहाँ आई। सांप्रदायिकता के आधार पर बेहतर भविष्य के लिए दिखाए गए सपनों की वास्तविकता यह रही कि इस कल्पित सुनहरे भविष्य की पहली किश्त हिंदुस्तान के असंख्य परिवारों को अपनी ही ज़मीन, अपना वतन और पीढ़ियों से अर्जित संपत्तियों को छोड़कर चुकानी पड़ी। अवश्य ही इसे याद करते हुए कदाचित् स्वतंत्रता की १९वी वर्षगांठ पर 'धर्मयुग' में गुलाबदास ब्रोकर ने लिखा "हमने खुद ही जाने अपने साथ कोई क्रूर मज़ाक किया था, ऐसा लगता है जब हम अपनी उस स्वप्निल कल्पनाओं के बारे में सोचने लगते हैं, उस स्वप्न और इस यथार्थ को जब आस-पास रखकर देखते हैं तो हम कितने अंधे थे इसका होश हमें आता है, जो यथार्थ हमारे सामने है वह सचमुच ही भयावह है।"[9]

"तुम हाथ पर हाथ धरे, नामर्दों की भांति बैठे रहोगे", सरदारनी ने कहा, "और लोग एक से एक बढ़िया घर पर कब्जा कर लेंगे।" .... उन्होंने अपनी ढीली पगड़ी को उतारकर फिर से जूड़े पर लपेटा। कृपाण को मयान से निकालकर उसकी धार का निरीक्षण करके उसे फिर मयान में रखा और फिर इस्लामाबाद के किसी बढ़िया नए मकान पर अधिकार जमाने के विचार से चल पड़े।"[10]

कहानी में यह दर्शाता है कि विस्थापन के उस काल में एक ओर निरिह लोग अपनी धन-संपत्ति, अपनी जड़ों को छोड़कर जान बचाकर भागने को मजबूर हुए, भय, असुरक्षा से आतंकित लोगों के पास सब कुछ गँवाकर शिविरों में गंतव्यहीन, दिशाहीन जीवन जीने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहा, वहीं एक पक्ष और यह भी रहा, जिसने इस क्रूर विभत्सना में अपने लिए लाभ तलाशने का प्रयास किया। पलायन कर जाने वाले और न करने पर जबरन मौत के घाट उतार दिए जाने वालों की पीछे छूटी सम्पत्तियों पर इन लोगों ने अपना अधिकार करने की हर संभव कोशिश की। सम्प्रदायवाद और अलग राष्ट्र की परिकल्पना से ऐसी अमानवीय प्रवृत्तियाँ प्रकट हुईं और उन्हें सामाजिक स्वीकृति भी मिली जिनके उन्माद ने शोषण, अत्याचार, लूटपाट और निरापराधों के संहार का आह्वान किया था।

"सरदार लहनासिंह इस्लामाबाद पहुँचे तो वहाँ मारधाड़ मची हुई थी। ...सरदार लहनासिंह ने अपनी चमचमाती हुई कृपाण निकाली कि यदि किसी मुसलमान से मुठभेड़ हो जाए तो तत्काल उसे अपनी मर्दुमी का प्रमाण दे दें। परंतु इस ओर जीवित मुसलमान का निशान तक न था। हाँ गलियों में रक्तपात के चिह्न अवश्य थे और दूर लूटमार की आवाज़ें भी आ रही थीं।"[1] दंगाग्रस्त क्षेत्रों की ऐसी ही स्थितियों के विषय में नरेंद्र मोहन लिखते हैं कि -उस समय दंगों के दृश्य भयावह और अमानवीय थे। साम्प्रदायिकता और अराजकता को खुलकर खेलने का अवसर मिला। दिनदहाड़े एक धर्म के लोगों ने दूसरे धर्म के लोगों का कत्ल किया।[11] जली हुई बस्तियाँ, उजड़े मोहल्ले, सड़कों पर पड़े शव उस समय की सामान्य दृश्यावली थे। इस समय मानव के भीतर के अंधकार से उपजे स्वार्थ, लोलुपता, और प्रतिशोध के आवेग ने वह सब कुछ संभव बना दिया जो सामान्य परिस्थितियों में अकल्पनीय होता। ऐसी ही किसी स्थिति की ओर इंगित करते हुए अपनी विभाजन पर लिखी हुई कहानी पानी और पुल में महीप सिंह ने भी लिखा कि -मनुष्य के अंदर का पशु कब जागकर सभी संभावनाओं को डकार जाएगा कौन जानता है।[11]

उपेंद्रनाथ अश्क हिंदी साहित्य के एक बहुमुखी, प्रतिभा संपन्न रचनाकार हैं जिनके लेखन की यही विशेषता रही कि वह गहरा यथार्थवादी है, मध्यमवर्गीय जीवन और सामाजिक कुरीतियों के मनोवैज्ञानिक पक्षों को बारीकी से उजागर करता है। उनकी कहानी में यह कथन -"उनकी चारा काटने की मशीनें जिस प्रकार भावनारहित होकर चरी के निरीह पूले काटती

थीं, कुछ उसी प्रकार उन दिनों एक धर्म के अनुयाई दूसरे धर्म के अनुयायियों को काट रहे थे।"[12]

यह सोचने पर विवश कर देता है कि एक लेखक विभाजन पर कई कहानियाँ लिखकर भी अपने मन की वेचैनी को कम न कर सका,[13] उस मानवीय त्रासदी का स्तर आखिर कितना क्रूर और कल्पनातीत रहा होगा कि जिसके लिए लेखक ने शब्दों के स्तर पर मानव की तुलना चारा काटने वाली निष्प्राण, भावशून्य मशीन से कर दी हो। यह सोचने पर मजबूर करता है कि सदियों से एक साथ रहते आए एक सांस्कृतिक विरासत वाले लोग एक दूसरे के प्रति इतनी घृणा और नफरत प्रकट कर सकते हैं, हत्या करने के लिए इतने जघन्य और क्रूरतम तरीके व्यवहार में ला सकते हैं, ऐसा शायद किसी ने नहीं सोचा था।[14] मनुष्य की शून्य हो चुकी चेतना, भावना इस कहानी में बार-बार विभिन्न रूपों में सामने आती है फिर चाहे वह अपने प्राण बचाने के लिए घरबार छोड़ कर लोगों का शिविरों की ओर भागना हो, स्थानीय व विस्थापित हो कर आए लोगों द्वारा उनकी संपत्तियों पर कब्जा कर लेना हो या जबरन संपत्तियों को लूटना और हत्याएं करना हो, मानव का भाव पक्ष चारा काटने वाले यंत्र के समान ही निष्क्रिय दिखाई पड़ता है, जो इस बात को उचित सिद्ध करता है कि अश्क ने इस कहानी का शीर्षक ही 'चारा काटने की मशीन' रखना ठीक समझा होगा।

कहानी में लहनासिंह के दोस्त गुरदयाल सिंह के द्वारा भी अपने लिए एक 'नए' खाली मकान पर कब्जा कर उस पर ताला लगा लेना उस समय की तात्कालिक परिस्थितियों का बहुत कुछ सटीक चित्रण करता है। अनेक स्थानीय लोगों ने अपने नैतिक मूल्यों को ताक पर रखकर अनार्जित संपत्ति के लालच को अपने भीतर किस स्तर तक बढ़ जाने दिया, यह यहां स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है। लहन सिंह द्वारा चुना गया "मकान यद्यपि बहुत बड़ा न था परंतु उनकी उन कोठरियों की तुलना में तो स्वर्ग से कम न था। कदाचित किसी शौकीन क्लर्क का मकान था क्योंकि एक छोटा सा रेडियो भी वहां था और ग्रामोफोन भी। गहने-कपड़े न थे और ट्रंक खुले थे। जरूरत का काफ़ी सामान घर में पड़ा था।"[15]यह सब इस ओर संकेत करता है कि विभाजन ने असंख्य लोगों से उनके सपने, उनका भविष्य, उम्मीदें, यादें और अपनों तक को छीन लिया और उन्हें अंधकार के साए में धकेल दिया। अपना सब कुछ खोकर अनिश्चितकालीन संघर्ष और भ्रम के सिवा उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।

"सरदारनी ने साथ चलने का अनुरोध किया तब उन्होंने उस नेकबख़्त को समझाया कि वहां के दूसरे सरदार अपनी सिंहनियों को बुला लेंगे तो वह भी ले जाएंगे… 'वे लाख सिंहनियां सहीं…, सरदार लहन सिंह ने अपनी पत्नी को समझाया, 'पर हैं तो औरतें ही और दंगे - फिसाद में औरतों ही को अधिक सहना पड़ा है।"[16] कहानी में एक ओर अश्क ने स्त्री के उस पक्ष को दिखाया है जब कहानी के प्रारंभ में वह भी मानवीय नैतिक द्वंदों से पराजित होकर समाज के नैतिक पतन का हिस्सा हो जाती है। साथ ही उन्होंने विभाजन के समय कि उस भीषण विडंबना को भी रेखांकित किया है जहाँ स्त्री शरीर को सामूहिक अपमान का माध्यम बना लिया गया और उन्हें सुनियोजित ढंग से हिंसा का लक्ष्य बनाया गया था।

दुर्घटनाग्रस्त हुए इन लोगों के साथ यह कितना बड़ा क्रूर मजाक था कि स्थानांतरण की समस्या से निपटने के लिए कोई समुचित योजना और व्यवस्था न पाकिस्तान की ओर से की गई और न हिंदुस्तान की ओर से। यदि स्थानांतरण की समस्या को दोनों सरकारें योजनाबद्ध तरीकों से हल करतीं तो दंगों की प्रचंडता, भयनकरता और बीभत्सता रुक सकती थी, कम तो हो ही सकती थी।[2]

कहानी में लहनासिंह जब अपनी पत्नी और बच्चों के साथ नए मकान पर पहुंचे तो ड्योढ़ी से उनका सारा सामान गायब था। केवल चारा काटने की उनकी मशीन वहां पर थी। "ड्योढ़ी में उनके प्रवेश करते ही दो लंबे-तड़ंगे सिखों ने उनका

रास्ता रोक लिया। बैलगाड़ी पर सवार उनके बीवी-बच्चों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा कि यह मकान शरणार्थियों के लिए नहीं। इसमें थानेदार बलवंतसिंह रहते हैं। थानेदार का नाम सुनकर लहनासिंह की कृपाण म्यान में चली गई और पगड़ी कुछ और ढीली हो गई।.... दोनों ने मशीन बाहर फेंक दी।"[14]

"....दो ढाई घंटे के असफल वाबेले के बाद जब सरदार लहनासिंह, रात आ गई जानकर, वापस अपने अहाते को चले तो उनके बीवी-बच्चे पैदल जा रहे थे और बैलगाड़ी पर केवल चारा काटने की मशीन लदी हुई थी।"[3] जिस शासन-प्रशासन से संकट के समय में जन सामान्य सुरक्षा की अपेक्षा रखता है, यह विडंबना रही कि विभाजन जैसी विषम स्थिति में वह प्रशासन ही स्वयं अनैतिकता और अनुदारता में उलझा हुआ सामान्य लोगों के जीवन और जान-माल की सुरक्षा कर पाने में बहुत असमर्थ सिद्ध हुआ। पलायन करने वालों की संपत्ति पर लालच करने वाले, उसमें अपने लिए लाभ की महत्वाकांक्षा रखने वाले लहनासिंह के हाथों में अंततः कुछ नहीं आ सका। इसके विपरीत उनकी स्व अर्जित संपत्ति भी लूटपाट की भेंट चढ़ गई। उपेन्द्रनाथ अश्क की यह कहानी 'चारा काटने की मशीन' विभाजनकालीन सामाजिक यथार्थ का सूक्ष्म और मार्मिक उद्घाटन करती है, जहाँ विस्थापन, असुरक्षा और स्वामित्व की अनिश्चितता मनुष्य के व्यवहार को गहराई से रूपांतरित कर देती है। स्वयं को सुरक्षित करने और स्थिरता प्राप्त करने की प्रक्रिया में व्यक्ति उसी अराजक व्यवस्था का हिस्सा बन गया था, जिसका वह स्वयं ही पीड़ित भी था। इसी संदर्भ में यह अध्ययन इस विचार को अवलोकित करता है कि कदाचित लोग केवल त्रासदी की भीषण परिस्थितियों में अनैतिकता के जाल में फँस गए थे, या विभाजन जैसी ऐतिहासिक घटना ने मानव समाज में पहले से विद्यमान कमजोरियों और नैतिक विफलताओं को ही उजागर कर दिया, जो कहीं न कहीं स्वयं इस त्रासदी के कारणों में भी निहित थीं या यह भी कह सकते हैं कि उस समय का यथार्थ इन दोनों ही स्थितियों का सम्मिलित रूप था।

संदर्भ सूची

अग्रवाल, प्रमिला. (1992). भारत विभाजन और हिंदी कथा साहित्य. इलाहाबाद: जयभारती प्रकाशन।

मोहन, नरेन्द्र. (2008). विभाजन की त्रासदी: भारतीय कथादृष्टि. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।

मोहन, नरेन्द्र (सम्पा.). (2009). विभाजन: भारतीय भाषाओं की कहानियाँ (खंड-1). नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।

मोहन, नरेन्द्र (सम्पा.). (2009). विभाजन: भारतीय भाषाओं की कहानियाँ (खंड-2). नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।

तरुण, डॉ. (2021, 1 नवम्बर). विभाजन का संदर्भ और कृष्णा सोबती का कथा साहित्य (विशेष संदर्भ: 'सिक्का बदल गया'). अपनी माटी। https://www.apnimaati.com/2021/11/blog-post_3.html?m=1

तिवारी, प्रदीप कुमार. (2021). भारत विभाजन का ऐतिहासिक यथार्थ एवं हिंदी उपन्यास (पी-एच.डी. शोध-प्रबंध). काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। https://shodhganga.inflibnet.ac.in/simple-search?query=&sort_by=score&order=desc&rpp=10&-filter_field_1=subject&filter_type_1=equals&filter_value_1=Language&filter_field_2=subject&filter_type_2=equals&filter_value_2=Hindi+literature&filter_field_3=subject&filter_type_3=equals&filter_value_3=Hindi+novel&etal=0&filtername=sub ject&filterquery=Language+and+L inguisticsn&filtertype=equals

प्रमिला अग्रवाल (1992), भारत विभाजन और हिंदी कथा साहित्य, पृ. 11।

प्रदीप कुमार तिवारी (2021), भारत विभाजन का ऐतिहासिक यथार्थ एवं हिंदी उपन्यास (पी-एच.डी. शोध-प्रबंध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), पृ. 3।

तिवारी (2021), पृ. 36।

रामचन्द्र शुक्ल (2024), हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 15।

डॉ. तरुण (2021), "विभाजन का संदर्भ और कृष्णा सोबती का कथा साहित्य," अपनी माटी।

अग्रवाल (1992), पृ. 36।

वही, पृ. 36।

नरेन्द्र मोहन (सम्पा.) (2009), विभाजन: भारतीय भाषाओं की कहानियाँ (खंड-2), पृ. 66।

धर्मयुग (1964, 19 जनवरी), पृ. 19।

मोहन (सम्पा.) (2009), पृ. 66।

वही, पृ. 67।

नरेन्द्र मोहन (2008), विभाजन की त्रासदी: भारतीय कथादृष्टि, पृ. 22।

नरेन्द्र मोहन (सम्पा.) (2009), विभाजन: भारतीय भाषाओं की कहानियाँ (खंड-1), पृ. 284।

मोहन (सम्पा.) (2009), पृ. 67।

तरुण (2021), अपनी माटी।

अग्रवाल (1992), पृ. 11।

मोहन (सम्पा.) (2009), पृ. 68।

वही, पृ. 68।

मोहन (2008), पृ. 22।

मोहन (सम्पा.) (2009), पृ. 69।

मोहन (सम्पा.) (2009), पृ. 70।

शुक्ल, रामचन्द्र. (2024). हिंदी साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन।

धर्मयुग. (1964, 19 जनवरी). पत्रिका अंक।

समकालीन कथा साहित्य से जुड़े समकालीन प्रश्नों के संदर्भ में जैनेन्द्र कुमार के 'सुनीता' एवं इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी' का मनोवैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन

अनुष्का गुप्ता
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

समकालीन कथा साहित्य केवल वर्तमान समय का चित्रण भर नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के भीतर घटित हो रही जटिल प्रक्रियाओं का गहन विश्लेषण है, जो उसके जीवन, संबंधों और अस्तित्व को आकार देती हैं। आज का मनुष्य बाहरी रूप से जितना आधुनिक दिखाई देता है, भीतर से उतना ही अस्थिर और द्वंद्वग्रस्त है। इसी कारण समकालीन प्रश्न अब केवल सामाजिक नहीं, बल्कि गहराई से मनोवैज्ञानिक हो चुके हैं। प्रेम, संबंध, पहचान और स्वतंत्रता जैसे विषय अब जटिल मानसिक अनुभवों में बदल गए हैं। इन प्रश्नों की जड़ें केवल वर्तमान में नहीं, बल्कि पूर्ववर्ती साहित्य में भी मिलती हैं। जैनेन्द्र कुमार का 'सुनीता' और इलाचंद्र जोशी का 'संन्यासी' ऐसे उपन्यास हैं, जो आज के मनुष्य की मानसिक स्थिति को समझने का आधार प्रदान करते हैं। इन कृतियों के पात्र केवल कथा के अंग नहीं, बल्कि मानव मन के गहरे आयामों के प्रतिनिधि हैं।

'सुनीता' में सुनीता, श्रीकांत और हरिप्रसन्न के माध्यम से संबंधों का आंतरिक द्वंद्व सामने आता है। सुनीता का भावनात्मक खालीपन, हरिप्रसन्न का नैतिक संघर्ष और श्रीकांत की जटिल उदारता यह दिखाती है कि व्यक्ति अपनी इच्छाओं और सामाजिक मर्यादाओं के बीच संतुलन नहीं बना पाता। दूसरी ओर 'संन्यासी' में नंदकिशोर का संदेह, अहंकार और आत्महीनता उसके संबंधों को नष्ट कर देते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि आंतरिक असंतुलन ही संबंधों की विफलता का मूल कारण है। इन उपन्यासों से उभरता सबसे बड़ा प्रश्न है प्रेम और संबंधों का संकट। आज संबंधों में गहराई की कमी, असुरक्षा और प्रतिबद्धता का अभाव दिखाई देता है। इसके साथ ही पहचान का संकट भी महत्वपूर्ण है, जहाँ व्यक्ति स्वयं को समझ नहीं पाता। इसी से जुड़ा है मानसिक अकेलापन और अलगाव, जो आधुनिक जीवन की एक प्रमुख समस्या बन चुका है।

यदि इन निष्कर्षों को स्टर्नबर्ग के प्रेम सिद्धांत से जोड़कर देखा जाए, तो 'सुनीता' में आत्मीयता और आकर्षण तो हैं, पर प्रतिबद्धता का अभाव है, जिससे संबंध अस्थिर हो जाते हैं। वहीं 'संन्यासी' में संबंधों में संतुलन का पूर्ण अभाव दिखाई देता है, जो उन्हें खोखला बना देता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रेम के तत्वों का असंतुलन संबंधों के टूटने का कारण बनता है।

एरिक्सन के सिद्धांत के अनुसार युवावस्था में अंतरंगता और अलगाव का संघर्ष प्रमुख होता है। 'सुनीता' के पात्र इस संघर्ष में उलझे रहते हैं, जबकि नंदकिशोर इसमें असफल होकर अकेलेपन और मानसिक अलगाव का शिकार हो जाता है। उसका संन्यास वास्तव में आध्यात्मिक नहीं, बल्कि मानसिक पलायन का रूप है।

अंततः यह स्पष्ट होता है कि ये उपन्यास केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं, बल्कि आज के समाज की मनोवैज्ञानिक सच्चाइयों के दर्पण हैं। ये दिखाते हैं कि जब तक व्यक्ति अपने भीतर संतुलन स्थापित नहीं करता, तब तक उसके संबंध भी संतुलित नहीं हो सकते, और यही समकालीन जीवन का सबसे बड़ा सत्य है।

बीजशब्द

समकालीन प्रश्न, मनोवैज्ञानिक अध्ययन, जैनेंद्र कुमार, सुनीता, इलाचंद्र जोशी, संन्यासी, प्रेम सिद्धांत, स्टर्नबर्ग, एरिक्सन, संबंधों का संकट, पहचान, अकेलापन

आलेख

समकालीन कथा साहित्य केवल वर्तमान समय का चित्रण भर नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के भीतर घटित हो रही उन जटिल प्रक्रियाओं का सूक्ष्म और गहन विश्लेषण है, जो उसके जीवन, संबंधों और अस्तित्व को आकार देती हैं। आज का मनुष्य जितना बाहरी रूप से विकसित और आधुनिक दिखाई देता है, उतना ही भीतर से अस्थिर, अकेला और द्वंद्वग्रस्त है। यही कारण है कि समकालीन प्रश्न अब केवल सामाजिक या आर्थिक नहीं रह गए हैं, बल्कि वे गहराई से मनोवैज्ञानिक हो चुके हैं। प्रेम, संबंध, पहचान, स्वतंत्रता और नैतिकता जैसे विषय अब सरल नहीं रहे, बल्कि वे जटिल मानसिक अनुभवों में परिवर्तित हो गए हैं।

यदि इन समकालीन प्रश्नों की जड़ों को खोजा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि ये समस्याएँ केवल आज के समय की देन नहीं हैं। हिंदी साहित्य की पूर्ववर्ती कृतियों में भी इन प्रश्नों के बीज मौजूद हैं। विशेष रूप से जैनेंद्र कुमार का 'सुनीता' और इलाचंद्र जोशी का 'संन्यासी' ऐसे उपन्यास हैं, जो अपने समय से आगे बढ़कर आज के मनुष्य की मानसिक स्थिति को समझने का एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं। इन दोनों कृतियों में प्रस्तुत पात्र केवल कथा के माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे मानव मन के गहरे और जटिल आयामों के प्रतिनिधि हैं।

'सुनीता' उपन्यास में जैनेंद्र कुमार ने बाहरी घटनाओं की अपेक्षा आंतरिक जीवन को अधिक महत्व दिया है। यहाँ कथा का केंद्र घटनाएँ नहीं, बल्कि पात्रों के भीतर चल रहा मानसिक द्वंद्व है। सुनीता, श्रीकांत और हरिप्रसन्न तीनों पात्र एक ऐसे त्रिकोण का निर्माण करते हैं, जहाँ संबंध केवल सामाजिक संरचना तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे व्यक्ति के भीतर की इच्छाओं, दमन और आत्मबोध से जुड़ जाते हैं।

सुनीता का चरित्र इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह केवल एक पत्नी नहीं है, बल्कि एक ऐसी स्त्री है, जो अपने अस्तित्व और अपनी भावनाओं को समझने का प्रयास कर रही है। उसका जीवन बाहर से संतुलित दिखाई देता है, लेकिन भीतर वह एक गहरे भावनात्मक खालीपन का अनुभव करती है। यह स्थिति आज के समय में भी बहुत सामान्य है, जहाँ व्यक्ति के पास सब कुछ होने के बावजूद वह भीतर से संतुष्ट नहीं होता।

हरिप्रसन्न का चरित्र इस द्वंद्व को और गहरा करता है। वह अपने भीतर दबी हुई इच्छाओं, नैतिकता और आत्मसंयम के बीच फँसा हुआ है। उसका आकर्षण और उसका भय, उसका नैतिक बोध और उसकी कामनाएँ, सब एक साथ टकराते हैं। यही टकराव उसे मानसिक रूप से अस्थिर बनाता है। यह स्थिति आधुनिक मनुष्य की उस मानसिकता को दर्शाती है, जहाँ व्यक्ति अपनी इच्छाओं को स्वीकार भी नहीं कर पाता और उनसे मुक्त भी नहीं हो पाता।

श्रीकांत का चरित्र इस त्रिकोण को एक अलग आयाम देता है। उसकी तथाकथित उदारता और स्वतंत्रता का दृष्टिकोण वास्तव में एक जटिल मनोवैज्ञानिक स्थिति को प्रकट करता है। वह अपनी पत्नी को स्वतंत्रता देता है, लेकिन यह स्वतंत्रता एक प्रयोग की तरह है, जिसमें वह स्वयं भी उलझ जाता है। यह स्थिति आज के आधुनिक संबंधों की उस विडंबना को उजागर करती है, जहाँ स्वतंत्रता और असुरक्षा साथ साथ चलती हैं।

दूसरी ओर, 'संन्यासी' उपन्यास में इलाचंद्र जोशी ने एक ऐसे पुरुष की मानसिक यात्रा को प्रस्तुत किया है, जो बाहरी रूप से सामान्य और शिक्षित है, लेकिन भीतर से गहरे द्वंद्व और विकृतियों से भरा हुआ है। नंदकिशोर का चरित्र इस उपन्यास का केंद्र है, जिसके माध्यम से लेखक ने यह दिखाया है कि व्यक्ति का आंतरिक असंतुलन उसके जीवन और संबंधों को किस प्रकार प्रभावित करता है।

नंदकिशोर का अहंकार, उसका संदेह और उसकी आत्महीनता उसके संबंधों को नष्ट कर देती है। शांति के साथ उसका संबंध विश्वास के अभाव में टूट जाता है, और जयंती के साथ उसका वैवाहिक जीवन उसके संदेहपूर्ण स्वभाव के कारण विनाश की ओर बढ़ता है। जयंती की आत्महत्या केवल एक घटना नहीं है, बल्कि यह उस मानसिक वातावरण का परिणाम है, जिसमें प्रेम के स्थान पर संदेह और संवादहीनता ने जगह ले ली है।

यदि 'सुनीता' और 'संन्यासी' के पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि दोनों उपन्यासों में संबंधों की विफलता का मूल कारण व्यक्ति का आंतरिक असंतुलन है। सुनीता और नंदकिशोर दोनों ही अपने अपने स्तर पर आत्मसंघर्ष से गुजर रहे हैं, लेकिन जहाँ सुनीता अपने भीतर के सत्य को पहचानने का प्रयास करती है, वहीं नंदकिशोर उससे बचने का प्रयास करता है।

हरिप्रसन्न और नंदकिशोर के बीच भी एक रोचक तुलना देखी जा सकती है। दोनों ही पात्र अपने भीतर दबी हुई इच्छाओं और नैतिकता के बीच फँसे हुए हैं, लेकिन हरिप्रसन्न में आत्मबोध की संभावना दिखाई देती है, जबकि नंदकिशोर का चरित्र अधिक विघटनकारी और आत्मविनाशकारी हो जाता है।

इन दोनों उपन्यासों के माध्यम से जो सबसे महत्वपूर्ण समकालीन प्रश्न उभरकर सामने आता है, वह है प्रेम और संबंधों का संकट। आज के समय में संबंधों में गहराई की कमी, संवादहीनता, असुरक्षा और प्रतिबद्धता का अभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। लोग जुड़ते तो हैं, लेकिन टिक नहीं पाते। इसका कारण केवल बाहरी परिस्थितियाँ नहीं हैं, बल्कि व्यक्ति का आंतरिक असंतुलन भी है।

एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न है पहचान का संकट। आज का मनुष्य यह समझ नहीं पा रहा है कि वह वास्तव में कौन है और उसे क्या चाहिए। वह समाज की अपेक्षाओं और अपनी इच्छाओं के बीच फँसा हुआ है। यही स्थिति सुनीता और नंदकिशोर दोनों के जीवन में दिखाई देती है।

इसके साथ ही मानसिक अकेलापन और अलगाव भी एक गंभीर समस्या बन चुका है। बाहरी रूप से जुड़े होने के बावजूद व्यक्ति भीतर से अकेला महसूस करता है। यह स्थिति विशेष रूप से नंदकिशोर के चरित्र में स्पष्ट दिखाई देती है, जो अंततः संन्यास के माध्यम से अपने अकेलेपन को छिपाने का प्रयास करता है।

आज के डिजिटल युग में यह समस्या और भी बढ़ गई है। सोशल मीडिया ने संबंधों को आसान तो बनाया है, लेकिन उन्हें गहरा नहीं बना पाया है। लोग एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, लेकिन भावनात्मक रूप से दूर होते जा रहे हैं। यह स्थिति

'सुनीता' और 'संन्यासी' दोनों में प्रस्तुत संबंधों की जटिलताओं से मेल खाती है।

इन सभी प्रश्नों के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों के माध्यम से हमें केवल समस्याएँ ही नहीं मिलतीं, बल्कि उनके समाधान की दिशा भी मिलती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यक्ति को अपने भीतर के सत्य को समझना होगा। उसे अपनी भावनाओं, इच्छाओं और सीमाओं को स्वीकार करना होगा। जब तक वह स्वयं को नहीं समझेगा, तब तक वह दूसरों के साथ भी सच्चा संबंध स्थापित नहीं कर पाएगा।

अंततः यह निष्कर्ष सामने आता है कि जैनेंद्र कुमार और इलाचंद्र जोशी के ये दोनों उपन्यास समकालीन कथा साहित्य के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये कृतियाँ यह सिद्ध करती हैं कि साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के भीतर झाँकने और उसके अस्तित्व को समझने का एक सशक्त साधन है।

इस प्रकार 'सुनीता' और 'संन्यासी' के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि समकालीन प्रश्न केवल समय के साथ बदलते नहीं हैं, बल्कि वे मानव जीवन के स्थायी तत्व हैं, जो हर युग में नए रूपों में हमारे सामने आते रहते हैं।

अब यदि इन साहित्यिक निष्कर्षों को मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के साथ जोड़कर देखा जाए, तो इनकी गहराई और अधिक स्पष्ट हो जाती है। विशेष रूप से रॉबर्ट स्टर्नबर्ग के प्रेम के त्रिकोणीय सिद्धांत के आधार पर इन दोनों उपन्यासों के संबंधों का विश्लेषण अत्यंत सार्थक प्रतीत होता है।

स्टर्नबर्ग के अनुसार प्रेम तीन प्रमुख घटकों से मिलकर बना होता है, जिन्हें आत्मीयता, आकर्षण और प्रतिबद्धता कहा जाता है। आत्मीयता वह भावनात्मक निकटता है, जिसमें व्यक्ति अपने साथी को समझता है, उसके साथ जुड़ाव महसूस करता है और उसके साथ अपने जीवन को साझा करना चाहता है। आकर्षण वह तत्व है, जो व्यक्ति को दूसरे की ओर खींचता है और जिसमें भावनात्मक तथा शारीरिक दोनों प्रकार की तीव्रता शामिल होती है। प्रतिबद्धता वह निर्णय है, जिसमें व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि वह इस संबंध को बनाए रखना चाहता है और उसे दीर्घकालिक रूप देना चाहता है।

'सुनीता' उपन्यास में यदि सुनीता और हरिप्रसन्न के संबंध को देखा जाए, तो वहाँ आत्मीयता और आकर्षण तो स्पष्ट रूप से उपस्थित हैं, लेकिन प्रतिबद्धता का अभाव है। यही कारण है कि उनका संबंध स्थिर नहीं हो पाता और अंततः मानसिक द्वंद्व में परिवर्तित हो जाता है। यह स्थिति स्टर्नबर्ग के उस प्रेम के रूप से मेल खाती है, जिसे रोमांटिक प्रेम कहा जाता है, जहाँ आत्मीयता और आकर्षण तो होते हैं, परंतु प्रतिबद्धता का अभाव संबंध को अधूरा बना देता है।

इसके विपरीत, 'संन्यासी' में नंदकिशोर के संबंधों को देखा जाए, तो वहाँ न तो वास्तविक आत्मीयता है और न ही संतुलित आकर्षण। उसके संबंध संदेह, अहंकार और असुरक्षा पर आधारित हैं। शांति के साथ उसका संबंध विकसित हो सकता था, लेकिन उसकी मानसिक अपरिपक्वता के कारण वह टिक नहीं पाता। जयंती के साथ उसका वैवाहिक संबंध केवल सामाजिक प्रतिबद्धता तक सीमित रह जाता है, जिसमें भावनात्मक निकटता और सच्चा जुड़ाव नहीं है। यह स्थिति स्टर्नबर्ग के उस रूप से मेल खाती है, जिसे शून्य या खोखला प्रेम कहा जा सकता है, जहाँ केवल संबंध का बाहरी ढाँचा मौजूद होता है, लेकिन उसके भीतर कोई जीवंतता नहीं होती।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि दोनों उपन्यासों में प्रेम का असंतुलन ही संबंधों के टूटने का मुख्य कारण है। जहाँ प्रेम के तीनों तत्वों का संतुलन नहीं होता, वहाँ संबंध स्थायी नहीं रह पाते। यह निष्कर्ष आज के समकालीन समाज पर भी पूरी तरह लागू होता है, जहाँ संबंधों में अक्सर किसी एक तत्व की अधिकता और दूसरे की कमी देखने को मिलती है।

इसी प्रकार यदि एरिक एरिक्सन के मनोसामाजिक विकास सिद्धांत को इन उपन्यासों के संदर्भ में देखा जाए, तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि पात्रों की मानसिक स्थिति किस प्रकार उनके संबंधों को प्रभावित करती है। एरिक्सन के अनुसार युवावस्था का सबसे महत्वपूर्ण चरण अंतरंगता और अलगाव के बीच का संघर्ष होता है। इस चरण में व्यक्ति यह सीखता है कि वह दूसरों के साथ गहरे और सच्चे संबंध स्थापित कर सकता है या नहीं।

यदि व्यक्ति इस चरण को सफलतापूर्वक पार कर लेता है, तो वह अंतरंग और स्वस्थ संबंध स्थापित कर पाता है, लेकिन यदि वह इसमें असफल होता है, तो वह अकेलेपन और भावनात्मक अलगाव का शिकार हो जाता है।

'सुनीता' में यह संघर्ष स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सुनीता और हरिप्रसन्न दोनों ही इस द्वंद्व से गुजर रहे हैं, लेकिन वे अपने भीतर के भय और सामाजिक दबावों के कारण पूर्ण रूप से अंतरंग संबंध स्थापित नहीं कर पाते। इसके परिणामस्वरूप उनके भीतर असंतोष और मानसिक तनाव उत्पन्न होता है।

'संन्यासी' में नंदकिशोर इस चरण में पूरी तरह असफल दिखाई देता है। वह किसी भी संबंध में विश्वास और निकटता स्थापित नहीं कर पाता। उसका संदेह और अहंकार उसे दूसरों से दूर कर देता है, जिसके परिणामस्वरूप वह गहरे अकेलेपन और अलगाव की स्थिति में पहुँच जाता है। उसका संन्यास वास्तव में आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं, बल्कि मानसिक पलायन का प्रतीक बन जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों उपन्यासों के पात्र न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी गहरे अर्थ रखते हैं। इनके माध्यम से यह समझा जा सकता है कि व्यक्ति का आंतरिक संतुलन ही उसके बाहरी संबंधों की गुणवत्ता को निर्धारित करता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि जैनेंद्र कुमार का 'सुनीता' और इलाचंद्र जोशी का 'संन्यासी' केवल अपने समय की कृतियाँ नहीं हैं, बल्कि वे आज के समय के भी जीवंत दस्तावेज हैं। इनमें प्रस्तुत समस्याएँ, द्वंद्व और प्रश्न आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने अपने समय में थे।

इस प्रकार साहित्य और मनोविज्ञान के इस समन्वित अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जब तक व्यक्ति अपने भीतर संतुलन स्थापित नहीं करता, तब तक उसके संबंध भी संतुलित नहीं हो सकते, और यही समकालीन जीवन का सबसे बड़ा सत्य है। अंत में, इस शोध-पत्र का मूल उद्देश्य केवल इन दोनों उपन्यासों का विश्लेषण करना नहीं है, बल्कि समकालीन मनुष्य के भीतर चल रहे उन सूक्ष्म मानसिक द्वंद्वों को उजागर करना है, जो उसके संबंधों, निर्णयों और अस्तित्व को प्रभावित करते हैं। इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि प्रेम, संबंध और पहचान से जुड़े प्रश्न केवल बाहरी परिस्थितियों का परिणाम नहीं हैं, बल्कि वे व्यक्ति के आंतरिक मनोविज्ञान से गहराई से जुड़े हुए हैं। साथ ही, यह शोध यह भी बताने का प्रयास करता है कि जब तक व्यक्ति अपने भीतर आत्मबोध, संतुलन और भावनात्मक परिपक्वता विकसित नहीं करता, तब तक वह किसी भी संबंध को सार्थक रूप में नहीं जी सकता। इस प्रकार यह शोध-पत्र साहित्य के माध्यम से वर्तमान समाज को समझने का एक प्रयास है, जहाँ अतीत की कृतियाँ आज के जीवन की जटिलताओं को समझने में एक मार्गदर्शक के रूप में सामने आती हैं और यह स्थापित करती हैं कि साहित्य केवल कथा नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर की सच्चाई को पहचानने का एक सशक्त माध्यम है।

संदर्भ सूची

Aron, A., Fisher, H. E., & Strong, G. (2006). Romantic love. In A. L. Vangelisti & D. Perlman (Eds.), The Cambridge handbook of personal relationships. Cambridge University Press.

Sternberg, R. J. (1986). A triangular theory of love. Psychological Review, 93(2), 119–135.

Erikson, E. H. (1950). Childhood and society. W. W. Norton & Company.

Jainendra Kumar. (2009). सुनीता। भारतीय ज्ञानपीठ। Ilachandra Joshi. (2015). संन्यासी। लोकभारती प्रकाशन।

Ilachandra Joshi. (2015). संन्यासी। लोकभारती प्रकाशन।

चीफ़ की दावत' और 'वापसी' कहानी में वृद्धावस्था विमर्श

मुस्कान
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार

वृद्धावस्था पर पारंपरिक विमर्श अक्सर बुज़ुर्गों को लाचारी, उपेक्षा और बोझ के रूप में चित्रित करता है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' और भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' इन दोनों कहानियों के माध्यम से यह पेपर बुज़ुर्गों की उपेक्षा को उजागर करते हुए उन्हें सामाजिक उत्पादकता के केंद्र में रखता है। 'वापसी' में गजाधर बाबू की रिटायरमेंट के बाद घर लौटने पर उपेक्षा और अलगाव की पीड़ा दिखाई गई है, जबकि 'चीफ की दावत'में शामनाथ अपनी बूढ़ी माँ को सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए छिपाने की कोशिश करता है। ये कहानियाँ आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में संयुक्त परिवार के विघटन, पीढ़ीगत टकराव और बुज़ुर्गों की गरिमा के ह्रास को दर्शाती हैं। फिर भी, साहित्यिक विश्लेषण से पता चलता है कि बुज़ुर्ग ज्ञान, अनुभव, देखभाल और नैतिक मूल्यों के स्रोत हैं, जो समाज की उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। भारत में बढ़ती वृद्ध आबादी के संदर्भ में यह अध्ययन WHO के Active Ageing और Productive Ageing फ्रेमवर्क पर आधारित है, जिसमें बुज़ुर्गों को बोझ नहीं, बल्कि संसाधन मानकर नीतिगत सिफारिशें प्रस्तुत की गई हैं।

बीजशब्द:

उत्पादकता, सम्मान, परिवर्तन, तलाश, नियम, साहित्य, व्यवहार, वृद्धावस्था विमर्श, उपेक्षा, समाज,साकारात्मक परिवर्तन आदि .

अनुसन्धान पद्धति

यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों (कहानियों के मूल पाठ, आलोचनात्मक लेख, WHO फ्रेमवर्क) पर आधारित है। विश्लेषण गुणात्मक है—कहानियों के पात्रों, थीम्स और संवादों के माध्यम से वृद्धावस्था की व्याख्या। साहित्यिक उदाहरणों को वास्तविक जनसांख्यिकीय आंकड़ों से है।

शोध आलेख

वृद्धावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें हर मनुष्य को प्रवेश करना पड़ता है यह जीवन का कड़वा सच है जिसका सामना हर व्यक्ति को करना पड़ता है साहित्य में देखा जाए तो हम देखते हैं कि वृद्धावस्था के कई पहलुओं को दिखाया गया है जैसे बूढ़ी काकी, पिता, दादी का रिमोट, अपना घर, आदि कहानियों में जो वृद्धों की स्थिति दिखाई देती है वह

स्थितियाँ वर्तमान समय में भी देखी जा सकती है! समाज में बदलाव हो रहे हैं परंतु वृद्धावस्था की स्थितियों को बेहतर करने के लिए समाज को कुछ महत्वपूर्ण क़दमों को उठना होगा साथ ही उन पर विशेष ध्यान देना होगा।

"दादी को अब घर की बातों से ज़्यादा टीवी के चैनलों पर अधिकार महसूस होता था।"1

इन पंक्तियों के माध्यम से मन्नू भंडारी अपनी कहानी 'दादी का रिमोट' में यह बताना चाहती हैं कि कहानी में दादी घर के भीतर संबंधों और घरेलू मामलों के स्थान पर अब केवल घर के सामान पर ही अपना अधिकार शेष मानती हैं| समाज में केवल आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, ही नहीं बल्कि वृद्धावस्था विमर्श पर भी अनेक पत्र - पत्रिकाओं और साहित्य में स्थान मिला है| इस शोध पत्र का उद्देश्य भी यही है वृद्धावस्था विमर्श को समझाना और इस शोध पत्र के माध्यम से इस विषय की अकादमी ही नहीं बल्कि सामाजिक चुनौतियों से भी रूबरू होना यह समझ केवल बुजुर्गों की शारीरिक स्थिति को देखकर उनको वर्तमान और भविष्य का फैसला कर देती है जो की बहुत ही नाकारात्मक होता है जबकि हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ-साथ हमारी सामाजिक परंपराओं में बुजुर्गों को और उनके अनुभवों से जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास हमेशा से महत्वपूर्ण माना गया है इस विषय को लाने का उद्देश्य यह है कि हम इस विषय पर अध्ययन के जरिए कुछ नया और बेहतर बदलाव प्रस्तावित कर सकें| जो प्रगतिशील भी हो और समाज के नजरिए को भी बेहतर कर सकें | हम देखते हैं कि घरों में क वृद्धों की क्या स्थिति हैं क्या इन परिस्थितियां का कारण व स्वयं है यह सामाजिक नजरियों की कमियां इसके लिए जिम्मेदारी हैं जिसको बदलने की आवश्यकता हैं |हमारा उद्देश्य(Dos and don'ts) के नियम बनाना नहीं बल्कि इस शोध पत्र के माध्यम से वह सामाजिक चेतना पैदा करना चाहते हैं कि जिससे बुजुर्गों को लाचारी की निगाहों से नहीं बल्कि सामाजिक उत्पादकता बढ़ाने वाले मानव संसाधनों के रूप में दिखा जाएगा और महत्व को रेखांकित किया जाए|

1. बुजुर्गों की सामाजिक उत्पादकता बढ़ाने का मतलब है। उन्हें समाज में सक्रिय उपयोगी और सार्थक भूमिका निभाने के अवसर प्रदान करना ताकि वह भी अपने जीवन को एक खूबसूरत मोड तक ले जाने का प्रयास करें इससे न केवल उनकी शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है। यह बल्कि समाज को भी उनके अनुभव ज्ञान और कौशल का वर्ष का लाभ मिलता है!

2. सामाजिक सपंर्क और जुड़ाव बढ़ाना सामुदायिक केंद्रों और सीनियर क्लबों में भागीदारी :वहा योग, कला, कार्यशालाएं, सांस्कृतिक ,कार्यक्रम या समूह भ्रमण आयोजित हो। सामुदायिक सेवा, या स्वयंसेवक : बच्चों को पड़ना, सामुदायिक अनुभव, को साझा कर सकते है। इस सभी गीतविधियों से हम बुजुर्गों के अकेले पन को कम कर सकते है। जिससे इस अवस्था का आनंद ले।

3. आर्थिक और कौशल-आधारित उत्पादकतापुनः रोजगार के अवसर: SACRED पोर्टल (Senior Able Citizens for Re-Employment in Dignity) जैसे प्लेटफॉर्म के माध्यम से पार्ट-टाइम जॉब या मेंटरिंग। कई बुजुर्ग अपनी विशेषज्ञता (जैसे शिक्षण, सलाहकार) साझा कर सकते हैं।

स्किल डेवलपमेंटः नए कौशल सीखना या पुराने कौशल को अपडेट करना (जैसे डिजिटल साक्षरता)।

सिल्वर इकोनॉमी को बढ़ावा: SAGE (Seniorcare Ageing Growth Engine) जैसी पहल के तहत बुजुर्गों के लिए उत्पाद और सेवाएँ विकसित करना, जिसमें वे खुद योगदान दें।

4. सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों का उपयोग

5. पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारी

6. डिजिटल और तकनीकी समावेशन

World Health Organization (2002) की रिपोर्ट Active Ageing: A Policy Framework यह एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट है जो वृद्धावस्था विमर्श में विशेष रूप से उपयोगी हैं, क्योंकि ये सक्रिय वृद्धावस्था (Active Ageing) की परिभाषा, उसके स्तंभों और दर्शन को स्पष्ट करते हैं।

"Active ageing is the process of optimizing opportunities for health, participation and security in order to enhance quality of life as people age."2 (पृष्ठ 12)

वृद्धावस्था जीवन का एक स्वाभाविक चरण हैं। जिसमें शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्तर पर अनेक परिवर्तन दिखाई देते हैं। इन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए समाज में आश्रम, पार्क, वरिष्ठ नागरिक केंद्र तथा वृद्धाश्रम जैसी व्यवस्थाओं का विकास किया गया। इन संस्थाओं का मूल उद्देश्य वृद्ध व्यक्तियों को समाज से अलग करना नहीं था, बल्कि उन्हें सुरक्षित वातावरण, स्वास्थ्य सुविधाएँ, मानसिक शांति और सामाजिक संवाद के अवसर प्रदान करना था। प्रारम्भिक समय में वृद्धों को सहयोग और देखभाल के केंद्र के रूप में देखा जाता था, जहाँ समान आयु वर्ग के लोग एक-दूसरे के साथ समय बिताकर अकेलेपन को कम कर सकते थे। किन्तु धीरे-धीरे सामाजिक सोच में बदलाव आने के कारण कई स्थानों पर इन व्यवस्थाओं को परिवार से दूरी या उपेक्षा के प्रतीक के रूप में समझा जाने लगा, जिससे इनके वास्तविक उद्देश्य की गलत व्याख्या होने लगी जब किसी भी घर में छोटा शिशु जन्म लेता है तो हम उसके लिए जिस प्रकार से नियम बनाते हैं। खाना खिलाना, नहलाना, शिक्षा, नौकरी ,आदि इसी प्रकार जब घर में बुजुर्गों को देखा जाता है तो उनके लिए भी उनको अलग नहीं बल्कि घर के सदस्य के रूप में उनके लिए भी इन सभी कामों को करना यह वृद्धावस्था को विमर्श तक नहीं जाने देगा।

"माँ को सामने लाने में उसे संकोच हो रहा था जैसे वह उसकी सफलता में बाधा हो।"3

'चीफ़ की दावत' कहानी में अगर शामनाथ अपनी बुजुर्ग मां का परिचय घर आए मेहमानों से मिलने को बोलता तो वह एक अच्छा बेटा बन सकता था। परंतु हमें वर्तमान समय में यह सब चीजें काफी दिखावा लगती हैं हम यह भूल जाते हैं कि बुजुर्गों के पास शारीरिक मजबूती नहीं हो, सकती परंतु उनका अनुभव को समझना आवश्यक है वृद्धावस्था के पास लोगों का समाज को देखने का एक अलग अपना अनुभव होता है जिसके माध्यम से वह समाज को एक मजबूत कड़ी के रूप में दिखाई पढ़ते हैं।

"सेवानिवृत्ति के बाद आदमी घर लौटता है,पर घर उसके पास नहीं लौटता।"4

इसी प्रकार से 'वापसी' कहानी के अंतर्गत अगर हम देखते हैं, तो उसमें गजाधर बाबू अपना पूरा जीवन घर कि जरूरतों को पूरा करने में व्यतीत कर देते हैं।परंतु जब वह घर लौटते हैं,तो वह स्थिति उनके लिए काफी गंभीर हो जाती हैं वह देखते हैं कि घर में उनकी कोई ज़रूरत नहीं हैं जिस खुशी की वह तलाश कर रहे थे वह तो उनके बिना भी एहसास कर रहे हैं गजाधर बाबू घर लौटकर भी अपने आप को अकेला महसूस कर रहे हैं वह घर में चल रहे व्यवहार को देखकर केवल यह नहीं समझ रहे थे, कि उनकी आवश्यकता है या नहीं, बल्कि वह यह भी महसूस कर रहे थे कि उनके आने से

सभी परेशान भी हैं। वृद्धावस्था क्या केवल पीड़ा सहने को हैं यह घर का बड़ा केवल काम करें, घर बनाए, शिक्षा दें, घर खर्च करें, इन कामों के लिए ही बना हैं वृद्धावस्था विमर्श इन स्थितियों के कारण ही उत्पन्न होती हैं जिसमें केवल मतलब के लिए ही बुजुर्गों को सम्मान दिया जाता हैं, हिंदी साहित्य में केवल यह ही नहीं, बल्कि बुजुर्गों का अपमान भी बहुत देखने को मिलता है।

“If ageing is to be a positive experience, longer life must be accompanied by continuing opportunities for health, participation and security.”5

(पृष्ठ 12)

शोध पत्र में वृद्धों को समाज के साथ खड़ा करने की बात कर रहे हैं। यह बताना चाहते हैं कि जिस प्रकार से भोजन बनाने के लिए हर एक चीज की जरूरत होती है। इसी प्रकार समाज को चलाने के लिए भी बुजुर्गों का होना जरूरी है। बुजुर्गों के प्रति नम्रता के साथ व्यवहार करना और उनकी क्षमता को पहचानने उनके अकेलेपन को दूर करना। यह सभी चीजों से समाज की वृद्धावस्था के लिए तैयार करना महत्वपूर्ण है। ताकि आने वाली पीढ़ी भी अपने से बड़ों से प्रेम कर सके, उनके द्वारा छोटे-छोटे अनुभवों को ग्रहण कर सकें जिनको समाज के नजरिए में संस्कार व संस्कृति हम कह सकें हैं।

"समय बीतने के साथ मनुष्य बदलता नहीं, बल्कि अपने अनुभवों में गहराता जाता है।"5

“मोहन राकेश” इन पंक्तियों के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि अंबिका जिस प्रकार से ‘आषाढ़ के एक दिन’ में अपने अनुभवों को अपनी पुत्री के साथ साझा करती है वह अनुभव काफी गहरे होते हैं। वृद्धावस्था के अंतर्गत बहुत से विचारों को रखा जाता हैं जैसे कि उत्पीडन, अकेलापन ,त्याग, आदि परंतु हम वृद्धावस्था को सकारात्मक रूप भी प्रदान कर सकते हैं जिसमें हम उसकी क्षमता ,साहस, अनुभव, की बात कर सकते हैं। हमें वृद्धों से यह भी सिखाना चाहिए कि समाज को जोड़कर रखना चाहिए बुजुर्गों का काम केवल जरुरतों को पूरा करना ही नहीं बल्कि यह भी प्रेम करना जानते हैं वह अंदर से खामोश क्यों है हमें उसकी तलाश करना चाहिए। वृद्धावस्था विमर्श के भीतर देखा जा सकते हैं कि साहित्य में ऐसी अनेक कहानी ,नाटक, उपन्यास हैं जिसमें इस प्रकार से दिखाया गया है कि आर्थिक रूप से बुजुर्गों को कम माना जाता है यह समझ लिया जाता है कि वे अब किसी भी काम के नहीं हैं परंतु समाज को उनके कार्य निर्धारित करना चाहिए कुछ सुविधाएं उनको देनी चाहिए ताकि वह भी समाज का सूत्र से अपने आप को बांधे रखें।

आधार ग्रंथ -

1. चीफ़ की दावत (भीष्म साहनी)
2. वापसी (उषा प्रियवंदा)

संदर्भ ग्रंथ सूची:

दादी का रिमोट(मन्नू भंडारी)

चीफ़ की दावत (भीष्म साहनी)

वापसी (उषा प्रियवंदा)

world health organization (repor)

आषाढ़ का एक दिन (मोहन राकेश)

हिंदी कथा साहित्य में वृद्धावस्था विमर्श (दिलीप मेहरा)

World health organization (2002) active ageing: A policy framework

भारतीय सिनेमा कल आज और कल (चयनित फिल्मों के संदर्भ में)

अनुष्का खेड़ा
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय सिनेमा विश्व के सबसे बड़े और विविधतापूर्ण फिल्म उद्योगों में से एक है, जिसने अपने सौ से अधिक वर्षों के इतिहास में न केवल मनोरंजन के क्षेत्र में योगदान दिया है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सिनेमा को अक्सर समाज का दर्पण कहा जाता है, क्योंकि यह समाज की वास्तविकताओं, संघर्षों, आकांक्षाओं और मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है। परंतु यह केवल प्रतिबिंब तक सीमित नहीं रहता, बल्कि समाज को दिशा देने और नई सोच उत्पन्न करने का कार्य भी करता है। "भारतीय सिनेमा: कल, आज और कल" विषय के अंतर्गत आराधना, मदर इंडिया, पिंक, थप्पड़, गुंजन सक्सेना और मिसेज जैसी फिल्मों के माध्यम से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि सिनेमा ने समय के साथ किस प्रकार विकास किया है और विशेष रूप से स्त्री-प्रतिनिधित्व में किस प्रकार परिवर्तन आया है।

भारतीय सिनेमा के "कल" अर्थात प्रारंभिक और मध्यकालीन दौर की बात करें, तो इस समय की फिल्मों में आदर्शवाद, नैतिकता और पारंपरिक मूल्यों का विशेष स्थान था। यह वह समय था जब सिनेमा समाज को एक नैतिक दिशा देने का माध्यम माना जाता था। मदर इंडिया इस दौर की एक प्रतिनिधि फिल्म है, जो भारतीय नारी के त्याग, सहनशीलता और कर्तव्यपरायणता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। फिल्म की नायिका राधा केवल एक माँ नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्यों की प्रतीक बन जाती है। वह गरीबी, शोषण और कठिन परिस्थितियों के बावजूद अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं करती। यहाँ तक कि वह अपने ही पुत्र के विरुद्ध जाकर न्याय का पालन करती है, जो यह दर्शाता है कि उस समय के सिनेमा में नैतिकता को सर्वोपरि माना जाता था। इस प्रकार की फिल्मों ने समाज में आदर्श स्थापित करने का कार्य किया और दर्शकों को नैतिक मूल्यों के प्रति प्रेरित किया।

इसी क्रम में आराधना भी एक महत्वपूर्ण फिल्म है, जो प्रेम, त्याग और सामाजिक मर्यादाओं के बीच संघर्ष को दर्शाती है। इस फिल्म में नायिका का चरित्र एक ऐसी स्त्री का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपने प्रेम और अपने बच्चे के लिए समाज के कठोर नियमों का सामना करती है। अविवाहित माँ के रूप में उसका जीवन संघर्षों से भरा होता है, लेकिन वह अपने धैर्य और समर्पण के बल पर सभी कठिनाइयों को पार कर जाती है। यह फिल्म उस समय के समाज की सोच को भी उजागर करती है, जहाँ स्त्री की स्वतंत्रता सीमित थी और उसे सामाजिक मान्यताओं के भीतर रहकर ही अपनी पहचान बनानी पड़ती थी। इस दौर की फिल्मों में स्त्री को सशक्त तो दिखाया गया, लेकिन उसका सशक्तिकरण त्याग, सहनशीलता और परिवार के प्रति समर्पण के माध्यम से ही संभव होता था।

समय के साथ समाज में परिवर्तन आया और इसके साथ ही सिनेमा की विषयवस्तु और दृष्टिकोण में भी बदलाव देखने को मिला। "आज" के सिनेमा में यथार्थवाद, सामाजिक समस्याओं और व्यक्तिगत अधिकारों को प्रमुखता दी जाने

लगी। अब सिनेमा केवल आदर्श प्रस्तुत करने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह समाज की विसंगतियों को उजागर करने और उन पर प्रश्न उठाने का माध्यम बन गया है। पिंक इस परिवर्तन का एक सशक्त उदाहरण है, जो महिलाओं के अधिकारों और उनकी सहमति के महत्व को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है। फिल्म का मुख्य संदेश "ना का मतलब ना होता है" भारतीय समाज में व्याप्त उस सोच को चुनौती देता है, जहाँ महिलाओं की इच्छाओं और निर्णयों को अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। यह फिल्म न्याय व्यवस्था, सामाजिक पूर्वाग्रहों और लैंगिक असमानता जैसे मुद्दों को उजागर करती है और दर्शकों को सोचने के लिए मजबूर करती है।

इसी प्रकार थप्पड़ एक अत्यंत संवेदनशील और यथार्थवादी फिल्म है, जो घरेलू हिंसा के एक सूक्ष्म लेकिन महत्वपूर्ण पहलू को सामने लाती है। एक साधारण-सा थप्पड़, जो अक्सर समाज में सामान्य मान लिया जाता है, फिल्म में एक बड़े प्रश्न का रूप ले लेता है। नायिका का यह निर्णय कि वह इस एक घटना को स्वीकार नहीं करेगी, यह दर्शाता है कि आधुनिक स्त्री अपने आत्मसम्मान के प्रति कितनी सजग हो गई है। यह फिल्म यह संदेश देती है कि किसी भी प्रकार की हिंसा, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, स्वीकार्य नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार की फिल्में समाज में जागरूकता फैलाने और लोगों के दृष्टिकोण को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

आधुनिक भारतीय सिनेमा में स्त्री के नए और सशक्त रूप को प्रस्तुत करने में गुंजन सक्सेना जैसी फिल्में भी उल्लेखनीय हैं। यह फिल्म एक वास्तविक जीवन की कहानी पर आधारित है, जिसमें एक महिला अपने सपनों को पूरा करने के लिए अनेक सामाजिक और व्यावसायिक बाधाओं का सामना करती है। भारतीय वायुसेना जैसे पुरुष-प्रधान क्षेत्र में अपनी पहचान बनाना आसान नहीं होता, लेकिन नायिका अपने आत्मविश्वास, साहस और दृढ़ निश्चय के बल पर सफलता प्राप्त करती है। यह फिल्म यह दर्शाती है कि आधुनिक भारत में महिलाएँ केवल घरेलू भूमिकाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे हर क्षेत्र में अपनी क्षमता का परिचय दे रही हैं और समाज में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

भविष्य के सिनेमा, अर्थात "कल" की दिशा को समझने के लिए मिसेज जैसी फिल्मों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह फिल्म स्त्री की व्यक्तिगत पहचान, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के प्रश्न को केंद्र में रखती है। इसमें यह दिखाया गया है कि आधुनिक स्त्री अब केवल पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित नहीं रहना चाहती, बल्कि वह अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेना चाहती है और अपनी पहचान को स्थापित करना चाहती है। इस प्रकार की फिल्में यह संकेत देती हैं कि भविष्य का सिनेमा और अधिक प्रगतिशील, संवेदनशील और समावेशी होगा, जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता को प्रमुखता दी जाएगी।

इन सभी फिल्मों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय सिनेमा में स्त्री-प्रतिनिधित्व समय के साथ निरंतर विकसित हुआ है। प्रारंभिक दौर में स्त्री को त्यागमयी, सहनशील और परिवार के प्रति समर्पित रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि वर्तमान में वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक, आत्मनिर्भर और आत्मसम्मान को प्राथमिकता देने वाली बन गई है। भविष्य में यह छवि और अधिक स्वतंत्र, सशक्त और निर्णय लेने में सक्षम होगी। यह परिवर्तन केवल सिनेमा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज में हो रहे व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तनों का भी प्रतिबिंब है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय सिनेमा "कल" से "आज" और "कल" तक एक सतत विकास की यात्रा है, जिसमें समय के साथ विषयवस्तु, दृष्टिकोण और प्रस्तुति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। यह न केवल समाज का दर्पण है, बल्कि समाज को दिशा देने वाला एक सशक्त माध्यम भी है। चयनित फिल्मों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि

सिनेमा ने न केवल मनोरंजन प्रदान किया है, बल्कि सामाजिक जागरूकता, लैंगिक समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों को भी प्रभावी ढंग से उठाया है। भविष्य में भारतीय सिनेमा से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह और अधिक प्रगतिशील, संवेदनशील और समावेशी दृष्टिकोण के साथ समाज के सामने नई संभावनाओं को प्रस्तुत करेगा और एक सकारात्मक परिवर्तन का माध्यम बनेगा।

Vol. XXIII Issue No.I, Jan.-April. 2026, (Part-I) ISSN: 0970-1745 IIFS Impact Factor 6.75

अज्ञेय के यात्रा साहित्य में भारतीय संस्कृति।

रश्मि यादव
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारः-

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय' हिंदी साहित्य के प्रमुख आधुनिक साहित्यकार हैं। उन्होंने साहित्य की जिस भी विधा को स्पर्श किया, उस में ही उत्कृष्ट रचना की। उन्होंने 'तारसप्तक ’तथा ‘शेखर : एक जीवनी' जैसी रचना कर हिंदी साहित्य को अपना अमूल्य योगदान दिया। यात्रा - साहित्य के क्षेत्र में 'अरे यायावर रहेगा याद' जैसे यात्रा वृतांत के माध्यम से यात्रा-साहित्य को एक 'क्लासिकल' यात्रा संस्माण प्रदान किया।

यात्रा– साहित्य के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन के बाद आपका नाम बड़े ही गर्व के साथ लिया जाता है। हिंदी साहित्य मे सर्वाधिक घुमक्कड़ी करने वाले साहित्यकारों में आपका नाम अग्रिम है। अज्ञेय ने अपने जीवन में देश-विदेश की अनेक यात्राएं की, चाहे तो सैनिक के रूप में या स्वतंत्र रूप से अज्ञेय ने 'अरे यायावर रहेगा याद' यात्रावृतांत के एक वृतांत ‘बहता पानी निर्मला ' शीर्षक में लिखते हैं - “ यों तो वास्तविक जीवन में भी काफी घूमा- भटका है पर उस से कभी तृप्ति नहीं हुई, हमेशा मन में यहीं रहा कि कहीं और चलें, कोई नयी जगह देखें और इस लालसा ने अभी भी पीछा नहीं छोडा है।" 1

अज्ञेय स्वयं के लिए 'अटवी ’शब्द का प्रयोग करते हैं ,वे स्वयं को न तो नगर का मानते हैं, न ग्राम का बल्कि अटवी कहते हैं अर्थात जो जंगल के प्राणी की तरह स्वच्छंद आकाश में विचरण करता हो। अज्ञेय ने इस यात्रावृतांत में भारत के विविध प्रांतों की यात्राएं की, यह यात्राएं भौतिक रूप से तो थी हीं, बल्कि ‘ मानसिक ’और 'आंतरिक यात्राएं भी हैं।

अज्ञेय लिखते भी है कि "वास्तव में जितनी यात्राएं स्थूल पैरों से करता हूँ उस से ज्यादा कल्पना के चरणों से करता हूँ।” अज्ञेय कहते हैं कि मनुष्य की प्रवृत्ति भ्रमण की होनी चाहिए। उसे हमेशा एक स्थान पर टिककर नहीं रहना चाहिए बल्कि हमेशा चलते रहना चाहिए “देवता भी जहां रुके कि शिला हो गए, और प्राण संचार के लिए पहली शर्त है गति,गति, गति।”

बीज शब्दः

यात्रा-साहित्य, अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद,एक बंद सहसा उछली , प्रकृति, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, भारतीय जनजीवन।

मूल विश्लेषण :- सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के यात्रा साहित्य में भारत बोध केवल बाहरी भूगोल दृश्य का अनुभव नहीं है, बल्कि उन्होंने भौतिक यात्राओं के साथ– साथ मानसिक यात्राएं भी की हैं। अज्ञेय की दृष्टि में में यात्राएं केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना नहीं है , बल्कि स्वयं को जानना , आत्म की खोज और संवेदनशील बनने की

प्रक्रिया है।

'अरे यायावर रहेगा याद' में अज्ञेय का दृष्टिकोण यायावर का है, जो कि भारत को उसकी भौगोलिक विविधता, लोकजीवन वहां की परंपराओ, संस्कृति, सभ्यता, दर्शन एवं इतिहास के माध्यम से समझता है। यहाँ इसमें वह भारत को भारत के नजरिए से देखते हैं तथा उसका अनुशीलन करते हैं। प्रकृति और जनजीवन के सीधे संपर्क से भारत बोध को समझते हैं विभिन्न प्रांतों के लोगों और उनकी संस्कृतियों को देखकर भारत की विविधता में एकता को समझते हैं ।

अज्ञेय के यात्रा-वृत्तों में संस्कृति, सभ्यता, दर्शन एवं इतिहास की विस्तृत जानकारी मिलती है इसी संदर्भ में रामविलास शर्मा ने लिखा है– " जो काम उनके पिता ने पुरातत्व क्षेत्र में किया - जमीन से शिलालेख, मूर्तियों के निकालने का कार्य - वही काम अज्ञेय अंतिम वर्षों में अपने भारतीय अतीत के विशाल स्मृति - प्रदेश में करना चाहते थे, इतिहास की राख-मिट्टी में दबे उन सब मील के पत्थरों को खोदकर निकालना, जिन पर भारतीय संस्कृति के पड़ाव चिन्ह अंकित थे ।"

अज्ञेय ने अपने यात्रा वृतांतों में मिथकों, पौराणिक कथाओं एवं उस क्षेत्र विशेष से जुड़ी लोककथाओं किंवदंतियों से पाठक को परिचित कराने का प्रयास किया है। अज्ञेय इस यात्रा वृतांत में भारत के सांस्कृतिक स्थलों की विशेषताओं के बारे में बताते हैं तथा उनके भारतीय संस्कृति के संरक्षण को लेकर उनके विचारों का पता चलता है उन सब को देखकर उनके जो भी विचार उनके मन में आए उनकी पाठक को जानकारी मिलती है।

दक्षिण भारत की धार्मिक जगहों के बारे में 'सागर सेवित, मेघ– मेघलित'(कन्याकुमारी से नंदा देवी)में बताया है । अज्ञेय ने दक्षिण के मंदिर के सांस्कृतिक महत्व की चर्चा की है , स्थापत्य कला की दृष्टि से यह स्थल कितने महत्वपूर्ण हैं ।इस पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में अज्ञेय के एक अलग व्यक्तित्व परिचय और मिलता है , तथा आधुनिक भारत की जनता के सांस्कृतिक पक्ष को समझने की दृष्टि का परिचय भी मिलता है।अज्ञेय कहते हैं कि एक सचेत एवं अच्छे यायावर का उद्देश्य केवल भ्रमण या मनोरंजन नहीं होता कोई भी यात्रा तभी सार्थक होती है जब वह मनुष्य की सांस्कृतिक दृष्टि का भी विकास करे। अज्ञेय एक ऐसे साहित्यकार हैं जो भारतीय संस्कृति के संवाहक और संरक्षक हैं और जब ऐसे व्यक्ति को अपने ही देश के सांस्कृतिक स्थलों की यात्रा के लिए फिरंगियों से अनुमति लेनी पड़े तो यह उनके स्वाभिमान को ठेस पहुंचाएगा ही। उन्होंने लिखा है –" देश की प्रत्येक सीमा तीर्थ होती है, नहीं तो देश पुण्यभूमि कैसे होता है? पर अपने ही तीर्थ तक जाने के लिए परदेशीय सत्ता के अहंमन्य प्रतिनिधि का मुंह जोहना जैसे चुभता है, उसे भुक्त भोगी जानते हैं। "5

अज्ञेप को तब और कष्ट होता है जब वह भारत देश की संस्कृति के संवाहक स्थलों को अंग्रेजी नाम से संबोधित किया जाता है। " वे लिखते हैं –"यायावर प्रायः कहा करता है कि देश की पराधीनता सब से अधिक जब अखरती है एक अपने हिमालय के अंग, संसार के सबसे ऊँचे शिखर का नाम एवरेस्ट सुन कर और एक सीमा - प्रदेशों में जाने के परमिट के लिए फिरंगी पोलिटिकल एजेंट के दफ्तर में जा कर।" 6

'संस्कृति'शब्द का अर्थ होता है 'अच्छा बनना?, या अच्छा व्यवहार करना' और 'अच्छे विचारो का प्रादुर्भाव होना' । 'संस्कृति' शब्द की व्याख्या करते हुए अज्ञेय लिखते हैं कि –"सस्कृति मूलतः एक मूल्य दृष्टि और उससे निर्दिष्ट होने वाले निर्माता प्रभावों का नाम है उन सभी निर्माता प्रभावों का जो समाज को, व्यक्ति को, परिवार को, आपसी संबंधों को, श्रम और संपत्ति के विभाजन और उपयोग की, प्राणिमात्र से ही नहीं वस्तु मात्र से हमारे संबंधों को, निरूपित और निर्धारित करते हैं। 9

संस्कृति के अंतर्गत समाज, 'सभ्यता, ज्ञान, धर्म, कला, विज्ञान , स्थापत्य, वस्तुकला, दर्शन हमारी आदतें व्यवहार

हमारे त्यौहार इत्यादि चीजे आती हैं।

अज्ञेय कहते हैं कि मेरे हृदय में गांधी जी के प्रति अत्यधिक-सम्मान का भाव है लेकिन कन्याकुमारी में निर्मित प्राचीन मूर्तिकला के वैशिष्ट्य को का प्रसार करते कन्याकुमारी मंदिर के सामने गांधी जी की समाधि को के होने पर आलोचना करते है क्योंकि उन्हें यह मंदिर वास्तुकला की दृष्टि से बेमेल लगा तथा उन्हें देवी-देवताओं की के मंदिरों से इसके सौंदर्य में कमी होने लगी है। " यह स्वीकार करने में मुझे हिचक नहीं है कि महात्मा गाँधी के प्रति मेरा जो सम्मान भाव है, मैं को कारण नहीं देखता कि वहीं भाव उनके शव अथवा उनकी राख अथवा उस स्थल के प्रति भी रखूँ जहाँ पर वह राख समुद्र में बहायी गयी। पर अस्थिपूजा के प्रति मेरी इस विरसता को छोड़ भी दिया जाये तो भी गाँधी स्मरण का न बेमेत कम होता है "14

निष्कर्ष :-

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के यात्रा साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने भारत के विभिन्न प्रांतों की यात्रा कर भारतीय संस्कृति के संवाहक स्थल, मंदिरों, महल, गुफाओं एवं मूर्तियो के महत्व की चर्चा की है तथा उनकी सुरक्षा एवं उनके प्रति सम्मान का का भाव व्यक्त किया है। अज्ञेय सच्चे अर्थों भारतीय संस्कृति, सभ्यता, इतिहास एवं प्रकृति के संरक्षक है। वे स्थापत्य कला,शिल्प कला, भास्कर्य कला की चर्चा करते हुए आधुनिक भारतीय संस्कृति किस ओर जा रही ? इसकी ओर पाठक का ध्यान केन्द्रित करते हैं।

अज्ञेय जी को इस बात की भी चिंता है कि भारत में आधुनिकता के नाम पर हम पश्चिम का अंधानुकरण करने में लगे हैं। जिससे भारत की विविध कलाओं के विकास की अधिक संभावना दिखाई नहीं देती। भारती घरों में भी हम देखते हैं कि हम पश्चिम की ही नकल करने में लगे हैं वहीं ढांचा वहीं बनावट।

'अज्ञेय ठीक कहते हैं- "सब कुछ बदलता जाएगा और परंपरा अटूट भी बनी रहती चली जाएगी; क्योंकि विकास भी एक सांस्कृतिक मूल्य है और ऐतिहासिक क्रम बोध एक ऐतिहासिक मूल्य है। "17.

संदर्भ सूची:-

1. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद ? द्वितीय संस्करण दिल्ली 1975, नेशनल पालिशिंग हाउस,

2 अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद? पृ० 131.

3. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद?, पांचवे संस्करण की भूमिका

4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप गद्य की सत्ता, प्रथम संस्करण 1977, पि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि.

5. अज्ञेय, केंद्र और परिधि, पृष्ठ 284

6. सांकृत्यायन, राहुल, घुमक्कड शास्त्र, द्वितीय संस्करण - किताब महल इलाहाबाद।

7. डॉ नगेंद्र, हिंदी वाङ्मय; बीसवीं शती, प्रथम संरकरण, 1972, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा

8. अरे यायावर रहेगा याद', अज्ञेय, पृ. 131

9. अज्ञेय,अरे यायावर रहेगा याद'?, पृ. 2

10. गोदारण, अंक 11, पृ. 81

11. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद?, पांचवें संस्करण की भूमिका

12. अज्ञेय,अरे यायावर रहेगा याद, पृष्ठ 5

13. अज्ञेय,अरे यायावर रहेगा याद, पृ. 4

14. समाजशास्त्र : अवधारनाएँ एवं सिद्धांत, डॉ. जे.पी. सिंह, पृ. 347

15. अपनी संस्कृति, महादेव गोविंद वैद्य, पृ. 11

16. केन्द्र और परिधि, अज्ञेय, 273

17. अज्ञेय, केन्द्र और परिधि, पृ. 27

19. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद?, पृ. 111

20. केन्द्र और परिधि, अज्ञेय, पृ. 2

Vol. XXIII Issue No.I, Jan.-April. 2026, (Part-I) ISSN: 0970-1745 IIFS Impact Factor 6.75

मैथिली लोकगीतो में प्रकृति चित्रण : एक सामाजिक सांस्कृतिक विश्लेषण

प्रीति कुमारी

छात्रा

इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना :

भारत जो स्वयं एक बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक विरासत से परिपूर्ण देश है उसमें मिथिला क्षेत्र का स्थान विशेष रूप से गौरवपूर्ण है मिथिला जहाँ की लोगभाषा मैथिली है यह मैथिली केवल भाषा नहीं बल्कि सम्पूर्ण मिथिला के सांस्कृतिक, सामाजिक जीवन और उनकी आध्यात्मिकता के धरकड़ के रूप में हैं मैथिली लोकगीतों में मैथिली एक प्राचीन, समृद्ध और मधुर भाषा है।

मिथिला की सांस्कृतिक विरासत का सबसे सशक्त आधार उसके लोकगीत हैं, जिनमें मैथिली लोकगीतों का विशेष स्थान है। मैथिली लोकगीत वे गीत हैं, जो सामान्य जनमानस द्वारा रचे गए हैं और जो पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपरा के माध्यम से प्रसारित होते आए हैं। ये गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि मिथिला क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक जीवन का जीवंत दस्तावेज हैं। मैथिली लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह क्षेत्रीय परिवेश, जीवनशैली और लोकमानस की गहरी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करता है। इन गीतों में प्रकृति के विविध रूप—जैसे ऋतुएँ, वनस्पतियाँ, नदियाँ, पशु-पक्षी आदि—का अत्यंत सहज और मार्मिक वर्णन मिलता है। यह चित्रण न केवल मिथिला के भौगोलिक स्वरूप को उजागर करता है, बल्कि वहाँ के लोगों की मान्यताओं, परंपराओं और प्रकृति के साथ उनके घनिष्ठ संबंध को भी दर्शाता है।

प्रस्तुत लेख में मैथिली लोकगीतों में प्रकृति के विभिन्न रूपों का विश्लेषण किया जाएगा तथा उनके साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व को उजागर करने का प्रयास किया जाएगा।

मुख्य शब्द:-

मैथिली लोकगीत, प्रकृति चित्रण, सांस्कृतिक विश्लेषण ,पारंपरिक जीवनशैली, धार्मिक विश्वास , भावनात्मक जुड़ाव, सामाजिक संरचना, गौरवपूर्ण,लोकजीवन।

सार:- मैथिली लोकगीत मिथिला की एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर हैं। ये गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि लोकजीवन, परंपराओं और भावनाओं के बीच एक जीवंत दस्तावेज के रूप में कार्य करते हैं, जो समाज के वास्तविक स्वरूप को प्रतिबिंबित करते हैं। इन लोकगीतों में प्रकृति का अत्यंत सुंदर और गहरा चित्रण मिलता है, जो मनुष्य के जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

यदि हम प्रकृति के सौंदर्य और उसके भावनात्मक पक्ष की बात करें, तो मैथिली लोकगीतों में प्रकृति को मानवीय भावनाओं से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पेड़-पौधे, नदियाँ, वर्षा, चाँद-सूरज और ऋतुएँ केवल प्राकृतिक तत्व नहीं रह जाते, बल्कि वे मानव के सुख-दुःख, प्रेम-विरह और आशा-निराशा के संवाहक बन जाते हैं। उदाहरण के रूप में, चाँद को प्रियतम का प्रतीक, वर्षा को मिलन और विरह दोनों की अनुभूति, तथा बसंत को नवजीवन और उत्साह के रूप में चित्रित किया जाता है।

इस प्रकार, मैथिली लोकगीतों में प्रकृति केवल बाह्य सौंदर्य का माध्यम नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं और सांस्कृतिक जीवन की गहराइयों को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है, जो इन्हें विशिष्ट और कालजयी बनाता है।

उदाहरण के तौर पर मैथिली गीत है-

“सावन मास बरसे बदरिया,

हरियर भ’ गेल अंगना,

नाचय मोर पपीहा बोले,

भीजल सगरा जगना।”

इन पंक्तियों में बादलों की वर्षा, आँगन की हरियाली, मोर का नृत्य और पपीहे की पुकार—ये सभी मिलकर प्रकृति की जीवंत तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। यहाँ प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि मानव जीवन की भावनाओं के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। वर्षा का आगमन जहाँ किसानों के लिए समृद्धि और आशा का संकेत है, वहीं यह विरहिणी नायिका के मन में प्रिय के स्मरण को और भी तीव्र कर देता है।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो मैथिली लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण समाज की जीवन-शैली और आजीविका से जुड़ा हुआ है। कृषि-प्रधान समाज होने के कारण यहाँ के लोकगीतों में खेती, फसल, वर्षा और मौसम का विशेष महत्व है। बोआई और कटाई के समय गाए जाने वाले गीतों में प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और आशा का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है—

"धान रोपै खेतवा में, गावे सबे संग, बरखा दै दे हे इंद्रदेव, भरि दे अन्न के भंडार।"

अर्थ: किसान धान रोपते समय वर्षा की प्रार्थना करते हैं ताकि फसल अच्छी हो और अन्न के भंडार भर सकें।

यह दर्शाता है कि प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवनदाता के रूप में पूजनीय है।

सांस्कृतिक दृष्टि से मैथिली लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण धार्मिक और पारंपरिक मान्यताओं से भी जुड़ा हुआ है। अनेक लोकगीतों में नदियों, पेड़ों और पर्वतों को देवताओं के रूप में देखा जाता है। छठ पर्व के गीतों में सूर्य और जल का विशेष महत्व होता है

"कांच ही बांस के बहंगिया, बहंगी लचकत जाए, छठी मइया के घाट पर, अरघ दिहे जाए।"

अर्थ: छठ पर्व में भक्तजन बांस की बहंगी लेकर नदी के घाट पर सूर्य को अर्घ्य देने जाते हैं, जो प्रकृति और आस्था

के गहरे संबंध को दर्शाता है।

यह प्रकृति के प्रति आस्था और श्रद्धा को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त, मैथिली लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण पर्यावरणीय चेतना का भी संकेत देता है। इन गीतों के माध्यम से प्रकृति के संरक्षण और उसके संतुलन को बनाए रखने का संदेश भी मिलता है। पारंपरिक समाज में प्रकृति के प्रति जो सम्मान और संतुलन की भावना थी, वह आज के समय में भी अत्यंत प्रासंगिक है।

अत: लोकगीतों के माध्यम से समाज की मान्यताएँ, परंपराएँ और सांस्कृतिक मूल्य सजीव रूप में अभिव्यक्त होते हैं। विशेषकर प्राकृतिक परिवेश से जुड़े लोकगीतों में प्रकृति और मानव जीवन के गहरे संबंध का चित्रण मिलता है, जहाँ ऋतु-परिवर्तन, खेती-बाड़ी, पर्व-त्योहार और पारिवारिक संस्कारों के माध्यम से समाज की सामूहिक चेतना प्रकट होती है।

अंत में, पर्यावरणीय चेतना की बात करें तो मैथिली लोकगीत हमें प्रकृति के प्रति सम्मान और संरक्षण का संदेश भी देते हैं।

ये गीत सिखाते हैं कि मनुष्य और प्रकृति का संबंध संतुलित होना चाहिए।

निष्कर्ष :-

मैथिली लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण केवल सौंदर्य-बोध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मान्यताओं और मानवीय संवेदनाओं का दर्पण है। ये गीत हमें यह सिखाते हैं कि मनुष्य और प्रकृति का संबंध परस्पर निर्भरता और सम्मान पर आधारित होना चाहिए। तथा प्रकृति और मनुष्य का संबंध कितना गहरा और आवश्यक है।

इस प्रकार मैथिली लोकगीत न केवल हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, बल्कि वे हमें प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा भी देते हैं।इस लेख के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि मिथिला समाज में मैथिली लोकगीतों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये न केवल सामाजिक ढाँचे को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि सांस्कृतिक मूल्य-प्रणाली को भी सुदृढ़ करते हैं। विभिन्न कालखंडों में रचित मैथिली लोकगीत मिथिला की संस्कृति का यथार्थ और जीवंत प्रतिबिंब प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ सूची:-

1. मेरे द्वारा चयनित लोकगीत -मौखिक परंपरा से प्राप्त गीत (ग्राम से) - "आधार ग्रंथ"

2 .अनिमा सिंह - "मैथिली लोकगीत"

3. अखिलेश झा - "मिथिला: लोक संस्कृति एवं लोककथाएँ"

4. पूर्ववर्ती शोध एवं सामाजिक अध्ययन

5. स्थानीय महिलाओं से साक्षात्कार

6. रामनरेश त्रिपाठी - "ग्राम गीत"

7. डॉ त्रिलोचन पाण्डे - "लोकसाहित्य अध्ययन"

8. कैलाश मिश्रा -"Classification of maithili songs"

9. ब्रिज मोहन गुप्ता

"Science and folk music"

(पृष्ठ संख्या -23-130) folk

10. डॉ. रामदेव झा -"मैथिली लोक साहित्य : स्वरूप हे सौंदर्य " और मैथिली लोकगीत (संपादिका द्वारा, Pothi Ghar पर उपलब्ध)

11. डॉ. चंद्रमणि झा- "मैथिली गीत : परंपरासँ ऐधारि "

12. "मैथिली लोकगीतों का अध्ययन" - पी. एच. डी. शोध - नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा

13 Online - कविता कोश - शोध गंगा kavitakosh.org

14. लोकगीत - hindikavi. in

अधिकतर मैथिली लोकगीत

15. डॉ. रामईकबाल सिंह 'राकेश' "मैचिली लोकगीत" (संग्रहकर्ता तथा संपादक)

-पंडित अमरनाथ झा भूमिका लेखक

16. A Survey of Maithili literature- Radhakrishna Chaudhary

बहुभाषिक संदर्भ में अनुवाद का महत्व

भाविका साह
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में बहुभाषिकता एक सामान्य सामाजिक यथार्थ बन चुकी है। ऐसे परिवेश में विभिन्न भाषाओं के बीच संवाद स्थापित करने के लिए अनुवाद एक अनिवार्य साधन के रूप में उभरता है। प्रस्तुत शोध लेख में बहुभाषिक संदर्भ में अनुवाद के महत्व का विश्लेषण किया गया है, विशेष रूप से "Batem: Hindi Grammar Communicative" पुस्तक के आधार पर। यह पुस्तक अंग्रेज़ी भाषी विद्यार्थियों को हिंदी सिखाने के लिए एक संप्रेषणात्मक और व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। लेख में यह स्पष्ट किया गया है कि अनुवाद न केवल भाषा सीखने की प्रक्रिया को सरल बनाता है, बल्कि यह सांस्कृतिक समझ और भाषाई कुशलता को भी करता है।

बीज शब्द - बहुभाषिकता, अनुवाद, भाषा शिक्षण, संप्रेषणात्मक पद्धति, हिंदी शिक्षण, द्विभाषिकता

भूमिका

आज के समय में दुनिया एक "वैश्विक गाँव" में परिवर्तित हो चुकी है, जहाँ विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के लोग एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं। इस बदलते परिदृश्य में भाषा का महत्व और भी बढ़ गया है।

भारत जैसे देश में, जहाँ सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं, बहुभाषिकता जीवन का एक अभिन्न अंग है। यहाँ एक व्यक्ति प्रायः दो या अधिक भाषाओं का प्रयोग करता है। ऐसे में, एक भाषा से दूसरी भाषा में विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए अनुवाद की आवश्यकता स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है।

विशेष रूप से जब विदेशी विद्यार्थी हिंदी सीखना चाहते हैं, तब अनुवाद एक महत्वपूर्ण उपकरण बन जाता है। "Batem: Hindi Grammar Communicative" जैसी पुस्तकें इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, क्योंकि वे भाषा को केवल व्याकरणिक दृष्टि से नहीं, बल्कि व्यावहारिक और संप्रेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करती हैं।

बहुभाषिकता का स्वरूप और सामाजिक महत्व

बहुभाषिकता की परिभाषा- बहुभाषिकता वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति या समाज एक से अधिक भाषाओं का उपयोग करता है। यह व्यक्तिगत, सामाजिक और वैश्विक स्तर पर देखी जा सकती है।

भारतीय संदर्भ में बहुभाषिकता- भारत में बहुभाषिकता केवल भाषाई विविधता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विविधता का भी प्रतीक है। यहाँ हिंदी, अंग्रेज़ी, तमिल, बंगाली, मराठी, उर्दू आदि अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं।

बहुभाषिकता के लाभ

- संज्ञानात्मक (Cognitive) विकास में वृद्धि
- सांस्कृतिक समझ का विस्तार
- संप्रेषण कौशल में सुधार
- वैश्विक अवसरों में वृद्धि

इस प्रकार, बहुभाषिकता व्यक्ति और समाज दोनों के लिए लाभकारी है, और इसमें अनुवाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

अनुवाद: अवधारणा, प्रकृति और प्रकार

अनुवाद की परिभाषा- अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसमें एक भाषा के संदेश को दूसरी भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि उसका मूल अर्थ, भाव और उद्देश्य सुरक्षित रहे।

अनुवाद की प्रकृति- अनुवाद केवल भाषिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक रचनात्मक और सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है। इसमें अनुवादक को दोनों भाषाओं और संस्कृतियों की गहरी समझ होनी चाहिए।

अनुवाद के प्रकार- शाब्दिक अनुवाद (Literal Translation), भावानुवाद (Free Translation), सांस्कृतिक अनुवाद (Cultural Translation), संप्रेषणात्मक अनुवाद (Communicative Translation)

"Batem" पुस्तक में मुख्यतः संप्रेषणात्मक अनुवाद का प्रयोग किया गया है।

बहुभाषिक संदर्भ में अनुवाद का महत्व

भाषाओं के बीच सेतु निर्माण- अनुवाद विभिन्न भाषाओं के बीच एक पुल का कार्य करता है, जिससे विचारों का आदान-प्रदान संभव होता है।

भाषा शिक्षण में उपयोगिता- अनुवाद विद्यार्थियों को नई भाषा को उनकी ज्ञात भाषा से जोड़ने में सहायता करता है, जिससे सीखने की प्रक्रिया सरल हो जाती है।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान- अनुवाद के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों के विचार, परंपराएँ और मान्यताएँ एक-दूसरे तक पहुँचती हैं।

व्यावसायिक और शैक्षिक महत्व- आज के समय में अनुवाद का उपयोग शिक्षा, मीडिया, व्यवसाय, कूटनीति आदि अनेक क्षेत्रों में किया जा रहा है।

"Batem: Hindi Grammar Communicative" का विश्लेषण- यह पुस्तक विशेष रूप से विदेशी विद्यार्थियों के लिए तैयार की गई है, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है।

पुस्तक की विशेषताएँ

- सरल और स्पष्ट भाषा
- संवाद आधारित पाठ
- अनुवाद आधारित अभ्यास
- व्यावहारिक उदाहरण
- सांस्कृतिक संदर्भों का समावेश

शिक्षण पद्धति

यह पुस्तक पारंपरिक "Grammar Translation Method" से आगे बढ़कर "Communicative Approach" को अपनाती है, जिसमें भाषा का प्रयोग वास्तविक जीवन की स्थितियों में सिखाया जाता है।

अंग्रेज़ी भाषी विद्यार्थियों को हिंदी सिखाने की रणनीतियाँ

अनुवाद आधारित अभ्यास- विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी से हिंदी और हिंदी से अंग्रेज़ी में वाक्यों का अनुवाद करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

संवाद अभ्यास- वास्तविक जीवन की परिस्थितियों पर आधारित संवादों के माध्यम से भाषा सिखाई जाती है।

शब्दावली निर्माण- नए शब्दों को संदर्भ के साथ सिखाया जाता है, जिससे उनका प्रयोग स्पष्ट हो सके।

सांस्कृतिक संदर्भ- विद्यार्थियों को हिंदी भाषा के साथ भारतीय संस्कृति से भी परिचित कराया जाता है।

7. निष्कर्ष

बहुभाषिक संदर्भ में अनुवाद का महत्व अत्यंत व्यापक और गहन है। यह न केवल भाषाओं के बीच संवाद स्थापित करता है, बल्कि भाषा शिक्षण को भी अधिक प्रभावी बनाता है।

"Batem: Hindi Grammar Communicative" यह सिद्ध करती है कि यदि अनुवाद को सही तरीके से प्रयोग किया जाए, तो यह विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी सीखने का एक प्रभावी माध्यम बन सकता है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनुवाद बहुभाषिक समाज में केवल एक उपकरण नहीं, बल्कि एक आवश्यक प्रक्रिया है, जो भाषा और संस्कृति दोनों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संदर्भ

1. डॉ. नागेंद्र – अनुवाद सिद्धांत और व्यवहार
2. डॉ. राजमल बोरा एवं डॉ. भ. ह. राजूरकर
3. पुष्पा शर्मा 'विशेष' — हिंदी अनुवाद

प्रकृति और जीवों की लेखिका : महादेवी वर्मा

आँचल कुमारी
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना :

महादेवी वर्मा का साहित्य हिंदी काव्य-जगत में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। उनकी रचनाओं में जीवन की वास्तविकताओं, अनुभूतियों और संबंधों को अत्यंत सरल, प्रभावशाली और संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उनके साहित्य में पशु और पक्षी केवल प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे मानवीय भावनाओं, करुणा और नैतिक मूल्यों की सजीव अभिव्यक्ति बनकर सामने आते हैं।

महादेवी वर्मा ने अपने काव्य में केवल मानव जीवन की पीड़ा और संवेदना को ही नहीं उकेरा, बल्कि प्रकृति और उसके जीवों के साथ एक गहरा भावनात्मक संबंध भी स्थापित किया है। पशु-पक्षियों के प्रति उनका प्रेम मात्र प्रतीकात्मक नहीं है, बल्कि वह भावनात्मक और संवेदनशील स्तर पर भी पूरी तरह व्यक्त होता है।

महादेवी वर्मा और पशु-पक्षी प्रेम

महादेवी वर्मा की रचना में पशु और पक्षी केवल प्रकृति के अंग नहीं हैं, बल्कि वे जीवन की गहन संवेदनाओं के सजीव प्रतीक के रूप में उपस्थित होते हैं। उनके रचना में प्रकट यह प्रेम और सहानुभूति उनके आत्मिक अनुभवों और मानवीय संवेदनशीलता से उत्पन्न होती है। वे प्रकृति को किसी बाहरी या निर्जीव सत्ता के रूप में नहीं देखतीं, बल्कि उसे एक सक्रिय और जीवंत शक्ति मानती हैं, जहाँ प्रत्येक प्राणी का अस्तित्व सार्थक और महत्त्वपूर्ण है।

महादेवी वर्मा का यह विश्वास था कि हर जीव अपने भीतर भावनाएँ और अनुभूतियाँ समेटे होता है, जिनका सम्मान किया जाना चाहिए। इसी दृष्टि के कारण उनके साहित्य में पशु-पक्षी मानवीय संवेदनाओं के निकट दिखाई देते हैं। विशेष रूप से पक्षियों का चित्रण उनके काव्य में स्वतंत्रता, उल्लास और जीवन की निरंतर गतिशीलता का प्रतीक बनकर उभरता है।

महादेवी वर्मा की कविताओं में पक्षियों की उड़ान केवल सौंदर्य का दृश्य नहीं रचती, बल्कि वह जीवन की अनिश्चितताओं और संघर्षों की ओर भी संकेत करती है। पक्षियों के जीवन में दिखाई देने वाला उत्साह, स्वतंत्रता की चाह और कभी-कभी उत्पन्न होने वाला दुख मानव जीवन के यथार्थ से गहराई से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। इस माध्यम से लेखिका जीवन की जटिलताओं और आंतरिक संघर्षों को समझने और व्यक्त करने का प्रयास करती हैं।

मेरा परिवार संस्मरण में पशुओं का चित्रण

महादेवी वर्मा का संस्मरण "मेरा परिवार" हिन्दी साहित्य में एक अत्यंत संवेदनशील और भावपूर्ण रचना है, जिसमें लेखिका ने पशु-पक्षियों को केवल पालतू जीव नहीं बल्कि अपने परिवार के सदस्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इस रचना में परिवार की परिभाषा रक्त-सम्बन्धों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि प्रेम, विश्वास, करुणा और सह-अस्तित्व पर आधारित होती है।

इस संस्मरण में महादेवी वर्मा ने विभिन्न पशु-पक्षियों जैसे नीलकंठ, गिल्लू, सोना हरिणी, दुमुख खरगोश, गौरा गाय, नीलू कुत्ता, रोजी, रानी आदि को अपने परिवार का सदस्य मानकर उनके साथ अपने भावनात्मक संबंधों का चित्रण किया है। लेखिका इन सभी जीवों को नाम देकर, उनके स्वभाव को समझकर और उनके सुख-दुख में सहभागी बनकर उन्हें मानवीय संवेदना प्रदान करती हैं।

1. परिवार की नई परिभाषा -महादेवी वर्मा ने परिवार को केवल मानव-सम्बन्धों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि पशु-पक्षियों को भी परिवार का अभिन्न अंग माना। उनके अनुसार परिवार प्रेम, विश्वास और सह-अस्तित्व से बनता है, न कि केवल रक्त-सम्बन्धों से।
2. पशुओं का मानवीकरण-लेखिका ने पशु-पक्षियों के व्यवहार, भावनाओं और व्यक्तित्व को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे जीवंत पात्र बन जाते हैं। वे उन्हें नाम देती हैं, उनके स्वभाव का वर्णन करती हैं और उनके साथ संवाद स्थापित करती हैं।
3. संवेदनशीलता और करुणा का चित्रण-रचना में पशु-पक्षियों के प्रति करुणा, प्रेम और दायित्व की भावना प्रमुख रूप से दिखाई देती है। लेखिका घायल या असहाय पशुओं की देखभाल करती हैं और उन्हें परिवार का सदस्य बना लेती हैं।
4. विश्वास और आत्मीयता का संबंध-इस संस्मरण में पशु-पक्षियों और लेखिका के बीच गहरा विश्वास दिखाई देता है। ये संबंध भय पर नहीं बल्कि स्नेह और आत्मीयता पर आधारित हैं।
5. पशु-पात्रों के माध्यम से मानव समाज पर व्यंग्य-महादेवी वर्मा ने पशुओं की संवेदनशीलता और निष्ठा को दिखाकर मानव समाज की स्वार्थपरता और कठोरता पर अप्रत्यक्ष व्यंग्य किया है।

नीहार' कविता में पक्षियों का चित्रण

महादेवी वर्मा की प्रसिद्ध कविता 'नीहार' में पक्षियों का चित्रण अत्यंत अर्थपूर्ण रूप में सामने आता है। इस रचना में पक्षियों की आकाश में निर्बाध उड़ान केवल प्राकृतिक दृश्य नहीं रह जाती, बल्कि वह स्वतंत्र चेतना और आत्मनिर्भर अस्तित्व की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति बन जाती है। कवयित्री के दृष्टिकोण में पक्षी अपने खुले आकाश में विचरण करते हुए केवल स्वाभाविक स्वतंत्रता का अनुभव ही नहीं करते, बल्कि वे अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को भी स्वर प्रदान करते हैं।

कविता में पक्षियों का यह मुक्त जीवन मानवीय मन की उन कामनाओं से जुड़ जाता है, जो बंधनों से परे जाकर आत्म-साक्षात्कार की चाह रखती हैं। महादेवी वर्मा पक्षियों के स्वच्छंद उड़ान के माध्यम से मानव जीवन में निहित स्वतंत्रता की

आकांक्षा को सूक्ष्म और संवेदनशील ढंग से व्यक्त करती हैं। इस प्रकार, 'नीहार' कविता में पक्षियों का चित्रण भावात्मक और प्रतीकात्मक दोनों स्तरों पर प्रभावशाली रूप में उभरता है।

महादेवी वर्मा की काव्य-रचनाओं में पशुओं के प्रति गहरी करुणा और संवेदनशील दृष्टि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनके लिए पशु केवल साधारण जीव नहीं हैं, बल्कि वे अनुभूतियों से युक्त ऐसे प्राणी हैं, जो अपने अस्तित्व और जीवन की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करते रहते हैं। उनकी कविताओं में गाय, कुत्ता, बकरी और हाथी जैसे पशुओं का चित्रण उनके जीवन की पीड़ा, असहायता और संघर्ष को उजागर करता है।

विशेष रूप से 'गाय' कविता में यह संवेदनशील दृष्टिकोण अत्यंत प्रभावशाली रूप में सामने आता है। इस कविता के माध्यम से महादेवी वर्मा ने पशु जीवन की निरीह अवस्था को प्रस्तुत करते हुए मानव जीवन की विवशताओं और संघर्षपूर्ण परिस्थितियों की ओर संकेत किया है। इस प्रकार, पशुओं का चित्रण उनके काव्य में केवल सहानुभूति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह मानवीय करुणा और जीवन-बोध की गहरी अभिव्यक्ति बन जाता है।

प्रकृति के प्रति लेखिका का प्रेम

महादेवी वर्मा की रचना में प्रकृति के प्रति गहन प्रेम, श्रद्धा और सम्मान से अनुप्राणित है। उनके साहित्य में प्रकृति केवल बाह्य दृश्य या परिवेश तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह एक सजीव, संवेदनशील और चेतन सत्ता के रूप में उपस्थित होती है। वह प्रकृति को जीवन के प्रत्येक रूप में व्याप्त एक शाश्वत शक्ति के रूप में अनुभव करती हैं, जो मानव और अन्य जीवों के अस्तित्व को समान रूप से प्रभावित करती है।उनकी रचनाओं में प्रकृति का चित्रण केवल सौंदर्यात्मक नहीं है, बल्कि उसमें गहरी जीवन-दृष्टि निहित है। आकाश, पर्वत, समुद्र, वृक्ष-वनस्पति, पशु और पक्षी—प्रकृति के ये सभी तत्व उनके काव्य में किसी न किसी भावात्मक अर्थ और संकेत के साथ उपस्थित होते हैं। महादेवी वर्मा का विश्वास था कि प्रकृति का प्रत्येक घटक अपने भीतर एक विशेष अनुभूति और संदेश समेटे हुए है।

लेखिका के अनुसार मनुष्य, पशु और पक्षी के बीच कोई मूलभूत विभाजन नहीं है; सभी प्रकृति के समान अंग हैं और सभी की अनुभूतियाँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इस दृष्टिकोण के कारण उनके साहित्य में पशु-पक्षी केवल सहचर नहीं, बल्कि संवेदनशील अस्तित्व वाले ऐसे प्राणी बन जाते हैं, जिनकी इच्छाएँ, पीड़ाएँ और भावनाएँ मानवीय अनुभूतियों के समकक्ष प्रतीत होती हैं। यही भाव उनकी रचनाओं में आत्मिक गहराई और भावनात्मक ऊँचाई प्रदान करता है।

महादेवी वर्मा के रचना में पशु-पक्षियों के माध्यम से जीवन के संघर्ष, सुख-दुःख और आशा-निराशा के भाव सहज रूप से अभिव्यक्त होते हैं। वे इन जीवों के चित्रण के द्वारा मानव और प्रकृति के बीच के गहरे संबंधों को रेखांकित करती हैं तथा यह संकेत देती हैं कि सच्ची मानवता संवेदनशीलता और सहानुभूति से ही विकसित होती है। इस प्रकार, उनका काव्य प्रकृति के प्रत्येक रूप और उसकी चेतन शक्ति के प्रति गहरे प्रेम और सम्मान का सशक्त प्रतीक बन जाता है।

निष्कर्ष

महादेवी वर्मा के साहित्य में पशु और पक्षी केवल वर्णनात्मक तत्व नहीं हैं, बल्कि वे उनकी गहरी आत्मिक अनुभूतियों और भावनात्मक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति बनकर सामने आते हैं। अपनी रचनाओं में इन जीवों के माध्यम से उन्होंने

मानव जीवन की जटिल परिस्थितियों, संघर्षों और सूक्ष्म संवेदनाओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में पशु-पक्षियों के प्रति व्यक्त करुणा और स्नेह केवल साहित्यिक सौंदर्य तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह मनुष्य और प्रकृति के बीच स्थापित संबंधों को नए दृष्टिकोण से समझने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार, महादेवी वर्मा का साहित्य प्राकृतिक सौंदर्य और जीव-जगत के प्रति संवेदनशीलता को विकसित करने वाला एक मानवीय और सार्थक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची

मेरा परिवार संस्मरण – महादेवी वर्मा

नीहार कविता – महादेवी वर्मा

सिंह, रामकृष्ण, महादेवी वर्मा के काव्य में पशु पक्षी प्रेम. हिंदी आलोचना

https://share.google/dccGoS2tPDZXk5cCb

बौधरी, सुरेंद्र महादेवी वर्मा की कविता में प्रकृति का चित्रण साहित्य विमर्श

हिंदी साहित्य में विभाजन की त्रासदी में लिखित कथा साहित्य

रिक्की
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास की सबसे भीषण और हृदयविदारक घटनाओं में से एक 1947 का भारत-विभाजन है। यह केवल भौगोलिक बँटवारा नहीं था, बल्कि यह मनुष्यता, विश्वास, संस्कृति और साझा जीवन का भी विखंडन था। इस त्रासदी ने लाखों लोगों को बेघर किया तथा असंख्य लोगों की जान ली और इसी के साथ समाज में स्थायी घाव छोड़ दिए।

लाखों लोगों का विस्थापन, साम्प्रदायिक हिंसा, स्त्रियों पर अत्याचार और सामाजिक संरचना का विघटन - ये सभी इस त्रासदी के अंग थे। हिंदी तथा भारतीय कथा-साहित्य ने इस विभाजन को केवल घटनाओं के रूप में नहीं, बल्कि गहन मानवीय अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया है।खुशवंत सिंह का 'Train to Pakistan', भीष्म साहनी का 'तमस', यशपाल का 'झूठा सच' और मुआज़वे नाटक - ये सभी कृतियां विभाजन की त्रासदी के विभिन्न पक्षों को उजागर करती हैं। इन रचनाओं में शोधपरकता (नवीन दृष्टिकोण), दुर्गम परिणाम, आपसी द्वन्द तथा सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक प्रभावों का गहन विश्लेषण मिलता है।

विभाजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हिंदू और मुसलमान, जो सदियों से एक-दूसरे के साथ रहते आए, अचानक से एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए।

इस त्रासदी ने लाखों लोगों को विस्थापित किया, व हजारों महिलाओं की अस्मिता को चोट पहुँचाई।

Train to Pakistan: मानवीय संवेदना का चित्रण

खुशवंत सिंह का उपन्यास 'Train to Pakistan' विभाजन की त्रासदी।को एक छोटे से गाँव से 'मनो माजरा' के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

शुरुआत में यह गाँव हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक होता है, लेकिन जैसे ही विभाजन की खबरें और हिंसा की घटनाएं वहां पहुंचती हैं, सब कुछ बदल जाता है। क्योंकि पाकिस्तान से आने वाली ट्रेनों में लाशों का आना लोगों के भीतर भय और प्रतिशोध की भावना पैदा करता है।

इसी के साथ इस उपन्यास का मुख्य संदेश यह है कि हिंसा के बीच भी मानवता जीवित रहती है।

दुर्गम परिणाम

विभाजन के परिणाम अत्यंत भयावह और दूरगामी थे।

1. जनसंहार और हिंसा

लाखों लोगों की हत्या हुई। 'Train to Pakistan' में लाशों से भरी ट्रेनों का वर्णन इस भयावहता को स्पष्ट करता है।

2. विस्थापन और बेघरपन

'झूठा सच' में शरणार्थियों की पीड़ा और संघर्ष का अत्यंत मार्मिक चित्रण है।

3. सांस्कृतिक विघटन

सदियों से चली आ रही सांस्कृतिक एकता टूट गई। 'तमस' में यह विघटन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

4. नैतिक पतन

'मुआवजे' में यह दिखाया गया है कि मानवीय संवेदनाएं भी स्वार्थ और लालच के आगे कमजोर पड़ जाती हैं।

इसी प्रकार 'ट्रेन टू पाकिस्तान' में जो लोग पहले साथ रहते थे, वही एक-दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं।

साथ ही 'Train to Pakistan' में पहले जो लोग एक साथ रहते थे, वही एक-दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं। और वही 'तमस' में यह बैर धीरे-धीरे बढ़ता हुआ दिखाया गया है।

सामाजिक प्रभाव- परिवारों का विघटन में लोग अपने परिवारों से बिछड़ गए।

स्त्रियों की स्थितियों में, महिलाओं पर अत्याचार, अपहरण और बलात्कार जैसी घटनाएं बढ़ी। 'झूठा सच' में इसका विस्तृत चित्रण है।

इसी प्रकार सामाजिक स्तर पर यह एक गहरा आघात था, जिसने समाज की जड़ों को हिला दिया।

आर्थिक प्रभाव- विभाजन का आर्थिक प्रभाव भी अत्यंत गंभीर था।

लोगों की संपत्ति छीन गई।

जिससे व्यापार और उद्योग बाधित हो गए।

'मुआवजे' नाटक में यह दिखाया गया है कि सरकार द्वारा दिए गए मुआवजे भी लोगों की वास्तविक क्षति की भरपाई नहीं कर सकते।

इसी प्रकार 'झूठा सच' में यशपाल ने इन राजनीतिक चालों और उनके प्रभावों का गहन विश्लेषण किया है।

निष्कर्ष

विभाजन की त्रासदी में हिंदी कथा साहित्य एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरती है। इन रचनाओं के माध्यम से हमें यह समझने का अवसर मिलता है कि कैसे राजनीतिक निर्णय ने समाज, अर्थव्यवस्था, मनोविज्ञान और मानवीय संबंधों को गहराई से प्रभावित किया।

यह साहित्य हमें केवल अतीत की याद नहीं दिलाता, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक चेतावनी देता है कि हमें सांप्रदायिकता और घृणा से दूर रहना चाहिए। मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है।

महाभोज उपन्यास का राजनीतिक दृष्टि से मूल्यांकन

अन्नु
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मन्नू भंडारी का 1979 में प्रकाशित 183 पृष्ठों वाला महत्वपूर्ण राजनीतिक उपन्यास 'महाभोज' है। राजनीतिक परिवेश को आधार बनाकर 'महाभोज' का सृजन मन्नू भंडारी ने किया है। वास्तव में यह उनकी कहानी अलगाव का विस्तृत रूप से वर्णन है।

प्रस्तुत उपन्यास में आपातकालीन स्थिति के बाद देश की बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों और तत्कालीन शासकों का चित्रण लेखिका मन्नू ने किया है। ऐसा माना जाता है कि यह उपन्यास हिंदी उपन्यास धारा में एक नए मोड़ की तरह है — हिंदी में आमतौर पर लिखे जाने वाले उपन्यासों में इसका विशिष्ट स्थान है।

प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से चुनाव के बीच मानवीय त्रासदी, करुणा और पीड़ित की नियति की सच्चाई को अभिव्यक्त करने का सशक्त प्रयास लेखिका ने किया है। राजनीतिज्ञों की झूठी महानता, अवसरवाद तथा जघन्यता भरे खेल के अंदर से उनकी जो वास्तविक तस्वीर उभरती है, वह छोटे से छोटे व्यक्ति के माध्यम से उजागर होती है।

'महाभोज' का परिवेश हमारा आधुनिक राजनीतिक जीवन है। वर्तमान में व्याप्त राजनीति को लेखिका ने इस उपन्यास में खुली से बाँधा है। इस कृति का राजनीतिक परिवेश अत्यन्त भ्रष्ट घिनौना और लज्जित करनेवाला है। महाभोज एक वातावरण प्रधान उपन्यास है। 'महाभोज' अकेलापन और यातना की भी कथा है जो बेहद विक्षुब्ध असन्तुष्टी और संघर्ष व अनिवार्य सर्जनात्मक क्रिया के रूप में प्रस्तावित करता है। इस उपन्यास में कथावस्तु के नाम पर बहुत उलझावदार नहीं है। स्वाधीनता के बाद भारत का एक देहात उस देहाती तक पहुँची हुई दलगत राजनीति, चुनावों के लिए अपनाये जाने वाले हथकंडे, अपराधी तत्वों का राजनीति में दखल, पुलिस की अपने ही लाभ पर केंद्रित दृष्टि, बुद्धिजीवियों की तटस्थता और पत्रकारों की अवसरवादिता- "यह सारे तत्व इस उपन्यास की कथावस्तु में मुखर होकर उभरे हैं; दा साहब मुख्यमंत्री हैं और सुकुल बाबू विरोधी पक्ष के नेता, जोरावर राजनीतिक सुरक्षा में पलनेवाला गुंडा और हत्यारा है। सक्सेना और सिन्हा पुलिस अधिकारी हैं। दयाबाबू संपादक, महेश वर्मा बुद्धिजीवी हैं जो इस बात की खोज करने गाँव पहुँचते हैं कि, 'क्लास स्ट्रगल और कास्ट स्ट्रगल' क्या होता है। आम चुनाव से कुछ ही दिन पहले एक देहात में बिसेसर नामक युवक की हत्या हो जाती है और उस हत्या के बाद से लेकर उस हत्या को आत्महत्या घोषित होने तक इतना गुजर जाता है कि जिसे पाठक पढ़कर दंग रह गया। एक हत्या का आत्महत्या के रूप में घोषित होना जिसे सफेद झूठ का प्रमाण है उस सफेद झूठ को सत्य सिद्ध करके काली-कलुटी राजनीति के अत्यन्त भ्रष्ट घिनौना और लज्जित करनेवाला है। महाभोज एक वातावरण प्रधान उपन्यास है। 'महाभोज' अकेलापन और यातना की भी कथा है जो बेहद विक्षुब्ध असन्तुष्टी और संघर्ष व अनिवार्य सर्जनात्मक क्रिया के रूप में प्रस्तावित करता है। इस उपन्यास में कथावस्तु के नाम पर बहुत उलझावदार नहीं है।

स्वाधीनता के बाद भारत का एक देहात उस देहाती तक पहुँची हुई दलगत राजनीति, चुनावों के लिए अपनाये जाने वाले हथकंडे, अपराधी तत्वों का राजनीति में दखल, पुलिस की अपने ही लाभ पर केंद्रित दृष्टि, बुद्धिजीवियों की तटस्थता और पत्रकारों की अवसरवादिता- "यह सारे तत्व इस उपन्यास की कथावस्तु में मुखर होकर उभरे हैं; दा साहब मुख्यमंत्री हैं और सुकुल बाबू विरोधी पक्ष के नेता, जोरावर राजनीतिक सुरक्षा में पलनेवाला गुंडा और हत्यारा है। सक्सेना और सिन्हा पुलिस अधिकारी हैं। दयाबाबू संपादक, महेश वर्मा बुद्धिजीवी हैं जो इस बात की खोज करने गाँव पहुँचते हैं कि, 'क्लास स्ट्रगल और कास्ट स्ट्रगल' क्या होता है। आम चुनाव से कुछ ही दिन पहले एक देहात में बिसेसर नामक युवक की हत्या हो जाती है और उस हत्या के बाद से लेकर उस हत्या को आत्महत्या घोषित होने तक इतना गुजर जाता है कि जिसे पाठक पढ़कर दंग रह गया। एक हत्या का आत्महत्या के रूप में घोषित होना जिसे सफेद झूठ का प्रमाण है उस सफेद झूठ को सत्य सिद्ध करके काली-कलूरी राजनीति की घिनौनी वास्तविकता इस उपन्यास में विख्यात है। महाभोज उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि हमारे अभागे देश का वर्तमान राजनैतिक वातावरण कितना दुविधा ग्रस्त है। निर्धन, मजदूर तथा अधिकांश ग्रामीण जनता के शोषण पर तुले हुए राजनीति के कर्णधारों का यथावत् चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। उपन्यास में समझ सकते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र की अनुशासन-हीनता से सरोहा गाँव के बेचारे लोग पीड़ित एवं शंकालू बन गये हैं। मन्नू भंडारी ने दर्शाया है कि किस प्रकार नेतागण अपने विरोधियों तथा विरुद्ध परिस्थितियों को अपने अनुरूप बना लेते हैं किस प्रकार मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालकर चुनाव जीतने में सफल हो जाते हैं, सीधे-सादे युवक को हत्यारा सिद्ध करते हैं तथा ईमानदार कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अफसर को निकम्मा सिद्ध करके निलंबित करते हैं- इन सबका बड़ा ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण संपूर्ण उपन्यास में उकेरा गया है। उपन्यास में राजनैतिक समस्याएँ अपने कराल रूप धारण करते दिखाई देती हैं। राजनीति में निहित सच्चाई की ओर जननेता एवं सत्ताधारी आँखें मूंद लेते हैं। वर्तमान भारत के अधिकांश राजनीतिज्ञों में सत्ता प्राप्त करने की अदम्य लालसा है

अत्यन्त भ्रष्ट घिनौना और लज्जित करनेवाला है। महाभोज एक वातावरण प्रधान उपन्यास है। 'महाभोज' अकेलापन और यातना की भी कथा है जो बेहद विक्षुब्ध असन्तुष्टी और संघर्ष व अनिवार्य सर्जनात्मक क्रिया के रूप में प्रस्तावित करता है। इस उपन्यास में कथावस्तु के नाम पर बहुत उलझावदार नहीं है। स्वाधीनता के बाद भारत का एक देहात उस देहाती तक पहुँची हुई दलगत राजनीति, चुनावों के लिए अपनाये जाने वाले हथकंडे, अपराधी तत्वों का राजनीति में दखल, पुलिस की अपने ही लाभ पर केंद्रित दृष्टि, बुद्धिजीवियों की तटस्थता और पत्रकारों की अवसरवादिता- "यह सारे तत्व इस उपन्यास की कथावस्तु में मुखर होकर उभरे हैं; दा साहब मुख्यमंत्री हैं और सुकुल बाबू विरोधी पक्ष के नेता, जोरावर राजनीतिक सुरक्षा में पलनेवाला गुंडा और हत्यारा है। सक्सेना और सिन्हा पुलिस अधिकारी हैं। दयाबाबू संपादक, महेश वर्मा बुद्धिजीवी हैं जो इस बात की खोज करने गाँव पहुँचते हैं कि, 'क्लास स्ट्रगल और कास्ट स्ट्रगल' क्या होता है। आम चुनाव से कुछ ही दिन पहले एक देहात में बिसेसर नामक युवक की हत्या हो जाती है और उस हत्या के बाद से लेकर उस हत्या को आत्महत्या घोषित होने तक इतना गुजर जाता है कि जिसे पाठक पढ़कर दंग रह गया। एक हत्या का आत्महत्या के रूप में घोषित होना जिसे सफेद झूठ का प्रमाण है उस सफेद झूठ को सत्य सिद्ध करके काली-कलूरी राजनीति के

घिनौनी वास्तविकता इस उपन्यास में विख्यात है। महाभोज उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि हमारे अभागे देश का वर्तमान राजनैतिक वातावरण कितना दुविधा ग्रस्त है। निर्धन, मजदूर तथा अधिकांश ग्रामीण जनता के शोषण पर तुले हुए राजनीति के कर्णधारों का यथावत् चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। उपन्यास में समझ सकते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र की अनुशासन-हीनता से सरोहा गाँव के बेचारे लोग पीड़ित एवं शंकालू बन गये हैं। मन्नू भंडारी ने दर्शाया है कि किस प्रकार नेतागण अपने विरोधियों तथा विरुद्ध परिस्थितियों को अपने अनुरूप बना लेते हैं किस प्रकार मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालकर

चुनाव जीतने में सफल हो जाते हैं, सीधे-सादे युवक को हत्यारा सिद्ध करते हैं तथा ईमानदार कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अफसर को निकम्मा सिद्ध करके निलंबित करते हैं- इन सबका बड़ा ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण संपूर्ण उपन्यास में उकेरा गया है। उपन्यास में राजनैतिक समस्याएँ अपने कराल रूप धारण करते दिखाई देती हैं। राजनीति में निहित सच्चाई की ओर जननेता एवं सत्ताधारी आँखें मूंद लेते हैं। वर्तमान भारत के अधिकांश राजनीतिज्ञों में सत्ता प्राप्त करने की अदम्य लालसा है।

सन् 1982 में मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास का नाट्य रूपान्तर भी किया। श्रीमती अमाल अलना, उषा गांगोली, प्रेम भाटियानी आदि के निर्देशन में उसे 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' ने बड़े उत्साह के साथ दिल्ली के मंच पर प्रस्तुत किया। स्वयं मन्नू भंडारी ने साक्षात्कार में बताया है-

उपसंहार

महाभोज उपन्यास में लेखिका ने अपने व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन को त्यागकर वृहत् समाज और देश की ओर ध्यान दिया है और समाज का वास्तविक चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है और यह भी स्पष्ट किया है कि राजनीति का स्वरूप कितना घृणित हो गया है। आज कहीं भी मानव मूल्यों और मानव जीवन के लिए महत्त्व नहीं रहा।

संदर्भ सूची

सम्पूर्ण कहानियाँ मन्नू भंडारी जो राजकमल में प्रकाशित हुई।

महाभोज उपन्यास (मन्नू भंडारी)

एक दुनिया: समानान्तर (राजेंद्र यादव)

निर्मल वर्मा की कहानियों में परिस्थिति और मनःस्थिति का द्वंद्व

भावना गोला

छात्रा

इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

निर्मल वर्मा हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के एक प्रमुख और प्रभावशाली कथाकार थे। उन्होंने "नई कहानी आंदोलन" को एक नई दिशा दी और हिंदी कथा-साहित्य को आंतरिक संवेदनाओं, मनोवैज्ञानिक गहराई तथा अस्तित्ववादी दृष्टि से समृद्ध किया। उनका व्यक्तित्व जितना संवेदनशील और अंतर्मुखी था, उतना ही उनका कृतित्व गहन और बहुआयामी है।

व्यक्तित्व

निर्मल वर्मा का जन्म 3 अप्रैल 1929 को शिमला में हुआ। पहाड़ी परिवेश, प्रकृति की नीरवता और शांति ने उनके व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे बचपन से ही चिंतनशील और संवेदनशील स्वभाव के थे। उनके भीतर जीवन को गहराई से समझने और महसूस करने की प्रवृत्ति थी, जो आगे चलकर उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

उनका व्यक्तित्व अंतर्मुखी था। वे बाहरी चकाचौंध से दूर रहकर अपने भीतर की दुनिया में अधिक जीते थे। यही कारण है कि उनकी कहानियों में बाहरी घटनाओं की अपेक्षा आंतरिक अनुभवों का अधिक महत्व है। वे मानवीय संबंधों की जटिलता, अकेलेपन की अनुभूति, और जीवन के सूक्ष्म पहलुओं को बड़ी गहराई से समझते थे।

निर्मल वर्मा के जीवन पर यूरोपीय संस्कृति का भी गहरा प्रभाव पड़ा। वे लंबे समय तक चेकोस्लोवाकिया (अब चेक गणराज्य) में रहे, जहाँ उन्होंने भारतीय और पश्चिमी साहित्य के बीच एक सेतु का कार्य किया। वहाँ के अनुभवों ने उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाया और उनकी रचनाओं में अंतरराष्ट्रीय संवेदनशीलता को जन्म दिया।

उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र विचारों वाला था। वे किसी एक विचारधारा से बंधे नहीं रहे, बल्कि उन्होंने अपने अनुभवों और संवेदनाओं के आधार पर जीवन को समझने का प्रयास किया। वे मानते थे कि साहित्य का उद्देश्य केवल सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर के सत्य को उजागर करना भी है।

कृतित्व- निर्मल वर्मा का साहित्यिक योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे "नई कहानी आंदोलन" के अग्रणी रचनाकारों में से एक थे। उनकी रचनाएँ परंपरागत कथानक से हटकर व्यक्ति के आंतरिक संसार को केंद्र में रखती हैं।

उनकी प्रमुख रचनाओं में कहानी संग्रह, उपन्यास, निबंध और यात्रा-वृत्तांत शामिल हैं। उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रहों में परिंदे, जलती झाड़ी, कव्वे और काला पानी आदि प्रमुख हैं। इन कहानियों में उन्होंने आधुनिक जीवन की जटिलताओं, अकेलेपन, प्रेम, स्मृति और विछोह को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

उनके उपन्यासों में वे दिन, लाल टीन की छत और अंतिम अरण्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में भी व्यक्ति की आंतरिक स्थिति, समय और स्मृति का गहरा संबंध दिखाई देता है।

निर्मल वर्मा की लेखन शैली अत्यंत विशिष्ट है। उनकी भाषा सरल, संवेदनशील और प्रतीकात्मक है। वे सीधे-सीधे भावों को व्यक्त करने के बजाय संकेतों और बिंबों के माध्यम से उन्हें प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों में मौन का विशेष महत्व है—कई बार जो कहा नहीं जाता, वही सबसे अधिक प्रभावशाली होता है।

उनकी रचनाओं में मनोवैज्ञानिक गहराई स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे पात्रों के बाहरी व्यवहार से अधिक उनके आंतरिक द्वंद्व, अकेलेपन और भावनात्मक संघर्ष को उजागर करते हैं। यही कारण है कि उनके पात्र वास्तविक और जीवंत प्रतीत होते हैं।

निर्मल वर्मा को उनके साहित्यिक योगदान के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया, जिनमें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रमुख है। यह सम्मान उनके साहित्य की गुणवत्ता और महत्व को दर्शाता है।

निर्मल वर्मा की छह कहानियों का कथासार

निर्मल वर्मा की कहानियाँ अपने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण, भावनात्मक गहराई और वातावरण की सघनता के लिए जानी जाती हैं। उनकी रचनाओं में घटनाएँ कम और अनुभव अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। नीचे उनकी छह प्रसिद्ध कहानियों—लवर्स, एक दिन का मेहमान, पिक्चर पोस्टकार्ड, आदमी और लड़की, परिंदे और लंदन की एक रात—का संक्षिप्त कथासार प्रस्तुत है।

1. लवर्स - यह कहानी आधुनिक प्रेम संबंधों की जटिलता और अस्थिरता को दर्शाती है। कहानी के केंद्र में एक युवक और युवती हैं, जो एक-दूसरे के करीब होते हुए भी मानसिक रूप से दूर हैं। वे मिलते हैं, साथ समय बिताते हैं, लेकिन उनके बीच एक अदृश्य दूरी बनी रहती है।

उनके संवादों में स्पष्टता की बजाय झिझक और अनकहा भाव अधिक दिखाई देता है। प्रेम के बावजूद उनके संबंध में भरोसे और स्थायित्व का अभाव है। दोनों अपने-अपने मन में संदेह और असुरक्षा लिए हुए हैं, जो उन्हें एक-दूसरे के करीब आने से रोकती है। कहानी यह दिखाती है कि आधुनिक जीवन में प्रेम केवल आकर्षण नहीं, बल्कि एक जटिल मनोवैज्ञानिक स्थिति है, जिसमें व्यक्ति खुद से भी पूरी तरह ईमानदार नहीं रह पाता।

2. एक दिन का मेहमान- यह कहानी एक ऐसे व्यक्ति की है जो किसी परिचित के घर एक दिन के लिए ठहरता है। बाहरी रूप से यह एक सामान्य घटना प्रतीत होती है, लेकिन इसके भीतर गहरे भावनात्मक अर्थ छिपे हैं। मेहमान घर में उपस्थित लोगों के साथ समय बिताता है, लेकिन उसके और परिवार के बीच एक दूरी बनी रहती है। वह घर का हिस्सा होते हुए भी पूरी तरह उसमें घुल-मिल नहीं पाता। उसका यह अस्थायी ठहराव जीवन की अस्थिरता और संबंधों की क्षणभंगुरता को दर्शाता है। कहानी में यह भी स्पष्ट होता है कि व्यक्ति चाहे कितनी भी कोशिश कर ले, वह हर जगह अपनापन महसूस नहीं कर सकता। यह कहानी मानव जीवन की उस स्थिति को उजागर करती है, जहाँ व्यक्ति बाहरी रूप से जुड़ा हुआ दिखाई देता है, लेकिन भीतर से अलग-थलग रहता है।

3. पिक्चर पोस्टकार्ड - यह कहानी स्मृति और अतीत के प्रति व्यक्ति के लगाव को व्यक्त करती है। एक साधारण-सा

पिक्चर पोस्टकार्ड कहानी का केंद्र बनता है, जो पात्र के मन में पुरानी यादों को जागृत कर देता है। पोस्टकार्ड देखते ही पात्र अपने बीते हुए समय में लौट जाता है। वह उन लोगों, स्थानों और भावनाओं को याद करता है, जो अब उसके जीवन में नहीं हैं। कहानी में वर्तमान और अतीत के बीच एक गहरा संबंध स्थापित होता है। पात्र वर्तमान में रहते हुए भी मानसिक रूप से अतीत में जीता है। यह कहानी दर्शाती है कि स्मृतियाँ व्यक्ति के जीवन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और कैसे वे उसकी वर्तमान मनःस्थिति को प्रभावित करती हैं।

4. आदमी और लड़की- यह कहानी एक पुरुष और एक युवती के बीच के जटिल संबंधों को चित्रित करती है। दोनों के बीच आकर्षण है, लेकिन उनके संबंध को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता। पुरुष अपने अनुभवों और उम्र के कारण अधिक परिपक्व है, जबकि लड़की में जिज्ञासा और सहजता है। उनके बीच संवाद होते हैं, लेकिन उनमें एक तरह की दूरी और असहजता बनी रहती है। सामाजिक मर्यादाएँ और व्यक्तिगत भावनाएँ दोनों उनके संबंध को प्रभावित करती हैं। वे एक-दूसरे के करीब आते हैं, लेकिन पूरी तरह एक नहीं हो पाते। कहानी यह दिखाती है कि मानवीय संबंध केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं, बल्कि आंतरिक भावनाओं और सामाजिक सीमाओं से भी प्रभावित होते हैं।

5. परिंदे- यह निर्मल वर्मा की अत्यंत प्रसिद्ध कहानी है, जिसमें स्वतंत्रता और बंधन के बीच के द्वंद्व को दर्शाया गया है। कहानी के पात्र अपने जीवन में किसी न किसी रूप में बंधे हुए हैं। वे अपनी परिस्थितियों से बाहर निकलना चाहते हैं, लेकिन ऐसा कर नहीं पाते। "परिंदे" यहाँ एक प्रतीक के रूप में प्रयोग हुआ है, जो स्वतंत्रता की आकांक्षा को दर्शाता है। पात्रों के भीतर उड़ान भरने की इच्छा है, लेकिन बाहरी परिस्थितियाँ उन्हें रोकती हैं। यह कहानी मानवीय जीवन की उस विडंबना को उजागर करती है, जहाँ व्यक्ति स्वतंत्रता की चाह रखते हुए भी बंधनों में जकड़ा रहता है।

6. लंदन की एक रात- यह कहानी एक विदेशी शहर में रहने वाले व्यक्ति के अनुभवों को प्रस्तुत करती है। लंदन की ठंडी और अजनबी रात कहानी का मुख्य वातावरण बनाती है। कहानी का पात्र शहर की भीड़-भाड़ के बीच अकेलापन महसूस करता है। उसके आसपास लोग हैं, लेकिन वह उनसे जुड़ नहीं पाता। रात का वातावरण उसके भीतर के खालीपन और उदासी को और अधिक गहरा बना देता है। वह अपने अतीत और वर्तमान के बीच झूलता रहता है। यह कहानी प्रवासी जीवन की उस स्थिति को दर्शाती है, जहाँ व्यक्ति भौतिक रूप से एक स्थान पर होता है, लेकिन मानसिक रूप से कहीं और भटकता रहता है।

इन छह कहानियों के कथासार से स्पष्ट होता है कि निर्मल वर्मा ने मानवीय जीवन के सूक्ष्म और जटिल पहलुओं को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियाँ बाहरी घटनाओं की बजाय आंतरिक अनुभवों पर केंद्रित हैं। इन सभी कहानियों में पात्र किसी न किसी प्रकार के अकेलेपन, असुरक्षा, स्मृति या द्वंद्व से जूझते हुए दिखाई देते हैं। यही विशेषता उनकी कहानियों को गहराई और प्रभाव प्रदान करती है। इस प्रकार, निर्मल वर्मा की ये कहानियाँ न केवल कथानक के स्तर पर महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे मानव मन की गहराइयों को समझने का एक सशक्त माध्यम भी हैं।

निर्मल वर्मा की छह कहानियों में परिस्थिति और मनःस्थिति का द्वंद्व - निर्मल वर्मा की कहानियाँ आधुनिक मनुष्य के आंतरिक संघर्ष और संवेदनात्मक जटिलताओं का गहरा चित्रण करती हैं। उनकी रचनाओं का एक केंद्रीय तत्व है—परिस्थिति (बाहरी यथार्थ) और मनःस्थिति (आंतरिक भाव) के बीच द्वंद्व। यह द्वंद्व उनके पात्रों के व्यवहार, संवाद और मौन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनकी प्रमुख छह कहानियों—लवर्स, एक दिन का मेहमान, पिक्चर पोस्टकार्ड, आदमी और लड़की, परिंदे और लंदन की एक रात—में यह संघर्ष विभिन्न रूपों में सामने आता है।

लवर्स में प्रेम संबंध की बाहरी परिस्थिति है, लेकिन पात्रों की मनःस्थिति अस्थिर और असुरक्षित है। दोनों एक-दूसरे के करीब होते हुए भी मानसिक रूप से दूर रहते हैं। यहाँ प्रेम एक सुखद अनुभव नहीं, बल्कि अनिश्चितता और संदेह से भरा हुआ है। इस प्रकार बाहरी प्रेम और आंतरिक असुरक्षा के बीच स्पष्ट द्वंद्व दिखाई देता है। एक दिन का मेहमान में परिस्थिति एक साधारण अतिथि-आगमन की है, लेकिन मनःस्थिति में अलगाव और असहजता है। मेहमान घर का हिस्सा बनता हुआ भी स्वयं को पराया महसूस करता है। बाहरी तौर पर सब कुछ सामान्य है, लेकिन भीतर एक खालीपन और दूरी बनी रहती है। यह अस्थायित्व और अपनत्व की चाह के बीच का संघर्ष है।

पिक्चर पोस्टकार्ड में यह द्वंद्व वर्तमान और अतीत के बीच उभरता है। एक साधारण पोस्टकार्ड पात्र के भीतर पुरानी स्मृतियों को जागृत कर देता है। वर्तमान जीवन की वास्तविकता और अतीत की भावनात्मक स्मृतियाँ एक-दूसरे से टकराती हैं। पात्र शारीरिक रूप से वर्तमान में रहता है, लेकिन मानसिक रूप से अतीत में खो जाता है। आदमी और लड़की में सामाजिक परिस्थिति और व्यक्तिगत भावनाओं का संघर्ष दिखाई देता है। बाहरी रूप से दोनों पात्र सामाजिक मर्यादाओं से बंधे हैं, लेकिन भीतर आकर्षण और जिज्ञासा है। यह द्वंद्व उन्हें एक स्पष्ट संबंध स्थापित करने से रोकता है। यहाँ समाज के नियम और व्यक्ति की इच्छाएँ आमने-सामने खड़ी हो जाती हैं।

परिंदे में स्वतंत्रता और बंधन का द्वंद्व सबसे प्रभावशाली रूप में सामने आता है। पात्र अपनी परिस्थितियों में बंधे हुए हैं, जबकि उनके भीतर उड़ने और मुक्त होने की तीव्र इच्छा है। "परिंदे" यहाँ स्वतंत्रता का प्रतीक हैं। बाहरी सीमाएँ और आंतरिक आकांक्षाएँ एक-दूसरे से संघर्ष करती हैं, जिससे पात्रों के भीतर गहरी बेचैनी उत्पन्न होती है।

लंदन की एक रात में यह द्वंद्व विदेशी वातावरण और आंतरिक अकेलेपन के रूप में उभरता है। बाहरी दुनिया चहल-पहल से भरी है, लेकिन पात्र भीतर से पूरी तरह अकेला है। वह भीड़ में होते हुए भी अलग-थलग महसूस करता है। यह बाहरी सक्रियता और आंतरिक शून्यता का टकराव है। इन सभी कहानियों में निर्मल वर्मा ने यह दिखाया है कि मनुष्य केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं, बल्कि अपने भीतर के अनुभवों से भी संचालित होता है। अक्सर व्यक्ति की मनःस्थिति उसकी परिस्थिति से मेल नहीं खाती, जिससे द्वंद्व उत्पन्न होता है। इस प्रकार, निर्मल वर्मा की कहानियों में परिस्थिति और मनःस्थिति का द्वंद्व आधुनिक जीवन की जटिलता और मानव मन की गहराई को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। यही विशेषता उनके साहित्य को विशिष्ट और प्रासंगिक बनाती है।

निर्मल वर्मा की छह कहानियों में प्रयुक्त भाषा-चयन - निर्मल वर्मा की कहानियों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक उनकी भाषा है। उनकी भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि संवेदना और अनुभव का वाहक है। लवर्स, एक दिन का मेहमान, पिक्चर पोस्टकार्ड, आदमी और लड़की, परिंदे और लंदन की एक रात जैसी कहानियों में भाषा-चयन अत्यंत सूक्ष्म, संवेदनशील और कलात्मक है। यह भाषा उनके पात्रों की मनःस्थिति, वातावरण और आंतरिक द्वंद्व को गहराई से व्यक्त करती है।

निर्मल वर्मा की भाषा की पहली विशेषता उसकी सरलता में गहराई है। वे जटिल शब्दों या अलंकारों का अनावश्यक प्रयोग नहीं करते, बल्कि साधारण शब्दों के माध्यम से गहरे अर्थ प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा सहज और प्रवाहपूर्ण होती है, लेकिन उसके भीतर कई स्तरों पर अर्थ छिपे होते हैं। उदाहरण के लिए, लवर्स और आदमी और लड़की में संवाद सामान्य लगते हैं, पर उनके पीछे छिपी भावनाएँ अत्यंत जटिल होती हैं। दूसरी प्रमुख विशेषता है प्रतीकात्मकता और बिंबात्मकता। निर्मल वर्मा अपनी कहानियों में प्रतीकों के माध्यम से गहरी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। परिंदे में पक्षी

स्वतंत्रता की आकांक्षा का प्रतीक हैं, जबकि लंदन की एक रात में रात का अंधकार अकेलेपन और अजनबीपन को दर्शाता है। इसी प्रकार पिक्चर पोस्टकार्ड में एक साधारण वस्तु स्मृति और अतीत के भावनात्मक संबंध का प्रतीक बन जाती है। उनकी भाषा में ऐसे बिंब पाठक के मन में दृश्य और भावना दोनों को एक साथ जागृत करते हैं। तीसरी विशेषता है मौन और संकेतों का प्रयोग। निर्मल वर्मा की कहानियों में जो कहा जाता है, उससे अधिक महत्वपूर्ण वह होता है जो नहीं कहा जाता। उनके संवाद छोटे और अधूरे होते हैं, जिनमें बहुत कुछ अनकहा रह जाता है। यह अनकहा ही पात्रों की वास्तविक मनःस्थिति को प्रकट करता है। एक दिन का मेहमान और लवर्स में यह शैली विशेष रूप से दिखाई देती है, जहाँ पात्रों के बीच मौन ही उनके संबंधों की दूरी को व्यक्त करता है। चौथी विशेषता है मनोवैज्ञानिक भाषा। उनकी भाषा सीधे-सीधे घटनाओं का वर्णन नहीं करती, बल्कि पात्रों के भीतर चल रहे विचारों और भावनाओं को सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत करती है। वे आंतरिक संवाद (inner monologue) और चेतना-प्रवाह (stream of consciousness) जैसी तकनीकों का प्रयोग करते हैं। इससे पाठक पात्रों के मन में चल रहे द्वंद्व और भावनात्मक उतार-चढ़ाव को गहराई से महसूस कर पाता है। पाँचवीं विशेषता है वातावरण निर्माण की क्षमता। निर्मल वर्मा की भाषा वातावरण को जीवंत बना देती है। लंदन की एक रात में ठंडी, धुंधली और अजनबी रात का चित्रण केवल शब्दों के माध्यम से ही पाठक के सामने सजीव हो उठता है। इसी प्रकार परिंदे में वातावरण पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप बनता है, जिससे कहानी का भाव और भी प्रभावशाली हो जाता है। छठी विशेषता है विदेशी परिवेश और सांस्कृतिक मिश्रण की भाषा। विशेष रूप से लंदन की एक रात और लवर्स में पश्चिमी जीवनशैली और परिवेश की झलक मिलती है। इसके बावजूद भाषा पूरी तरह हिंदी की संवेदनात्मक परंपरा से जुड़ी रहती है। यह मिश्रण उनकी भाषा को विशिष्ट बनाता है।

अंततः, निर्मल वर्मा की भाषा-शैली उनकी कहानियों की आत्मा है। वह केवल घटनाओं का वर्णन नहीं करती, बल्कि पात्रों के भीतर के संसार को उजागर करती है। उनकी भाषा में सरलता, प्रतीकात्मकता, मौन, और मनोवैज्ञानिक गहराई का अद्भुत संतुलन देखने को मिलता है। इस प्रकार, इन छह कहानियों में प्रयुक्त भाषा-चयन न केवल कथा को प्रभावशाली बनाता है, बल्कि पाठक को पात्रों की संवेदनाओं और द्वंद्व से गहराई से जोड़ देता है। यही कारण है कि निर्मल वर्मा की भाषा हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

दया प्रकाश सिन्हा के नाटक 'मेरे भाई मेरे दोस्त' में मानवीय संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

फरहीन
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश :-

हिंदी नाट्य साहित्य के परंपरा को आगे बढ़ाने में दया प्रकाश सिन्हा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। व ह नाटक साहित्य के स्वातंत्र्योत्तर के नाटककार हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग नाटकों में जहां एक और यथार्थवादी, राजनीतिक व सामाजिक नाटक लिखे जा रहे थे वही मानवीय संबंधों के बिखराव को भी मुख्य विषय बनाया जा रहा था। इसी परंपरा में दया प्रकाश सिन्हा का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मेरे भाई मेरे दोस्त नाटक में भारतीय समाज में भाईचारा, देश प्रेम, धर्म की एकता, राष्ट्रीय एकता, मित्रता और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करता है। इस नाटक के माध्यम से दया प्रकाश सिन्हा ने दर्शकों व पाठकों को यह दिखाने का प्रयास किया है कि मानव संबंध में प्रेम, सहानुभूति और विश्वास जैसे मानव मूल्य की कोई सीमा नहीं होती।

बीज शब्द :- मानवीय संबंध, भाईचारा मित्रता, सामाजिक संबंध

प्रस्तावना :- हिंदी नाट्य साहित्य में दया प्रकाश सिन्हा एक वरिष्ठ नाटककार के रूप में प्रतिष्ठ हैं। वह एक सफल नाटककार, निर्देशक और अभिनेता भी हैं। इनका जन्म 2 मई 1935ई. में उत्तर प्रदेश के एटा जिले के कासगं ज कस्बे में हुआ। दया प्रकाश सिन्हा को बचपन से नाटक में रुचि रही और उनकी यह रूचि ही उन्हें नाटक लिखने पर मजबूर किया। उन्होंने केवल अपनी साहित्य में नाटकों को ही स्थान दिया अन्य किसी विधा को नहीं। दया प्रकाश सिन्हा जी ने अपने नाटकों में अपने अनुभवों तथा अपने समकालीन परिस्थितियों व समस्याओं का वर्णन अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। उनके अनुसार "मेरे सब नाटक तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित और प्रतिकृति हैं। उसे समय जैसा मैंने, नितांत अपने व्यक्तिगत मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में अनुभव किया उसने मेरे रचनात्मक को प्रेरित किया और अगले नाटक का विषय बन गया।"

मानवीय संबंधों से तात्पर्य उन संबंधों से है जो मनुष्य अन्य किसी व्यक्ति व वस्तु आदि से जुड़ना, मिलना, प्रेम करना, वास्ता रखना, अनुराग, अन्य लोगों से संबंध स्थापित करना है। जैसे विवाह मानवीय संबंध से अभिप्राय उन संबंधों से है जो मनुष्य संसार में अन्य लोगों के साथ उनकी अनेक वजह से संबंध स्थापित करता है 'मेरे भाई मेरे दोस्त' नाटक जिसका प्रकाशन 1971 में हुआ था यह स्वतंत्रता के बाद की परिस्थितियों, देशप्रेम, राष्ट्रीय तथा मान वीय संबंधों की समस्या को उजागर करता है तथा व्यक्ति को राष्ट्र एकता और संबंधों को लेकर जागृत करता है। 'मे

रे भाई मेरे दोस्त' नाटक एक सामाजिक नाटक है। जिसमें दो मित्रों की मित्रता का वर्णन है। जो राष्ट्रीय प्रेम तथा भार तीय समाज में मनुष्य के संबंधों को स्पष्ट करता है। यह नाटक चार अंको में विभाजित है। इस नाटक में डॉ मिर्जा उन के साहिल दोस्त अनवर का बेटा यासीन ये तिनों नाटक के केंद्रीय पात्र हैं। जिनके ऊपर कथानक को आधार मिलता है। जब भारत और पाकिस्तान में विभाजन हो जाता है। तो भारतीय मुस्लिम दो भागों में विभक्त हो जाते हैं जिसमें व ह पाकिस्तान के निवासी बन जाते हैं। इस विभाजन में डॉक्टर मिर्जा के दोस्त अनवर का बेटा पाकिस्तान चला जाता है। उसको यह बताया जाता है कि भारत में मुस्लिम पर अत्याचार हो रहा है, तो वह भारत - पाकिस्तान का एक एजेंट बनकर आता है। भारत में दंगे कम करने के लिए जब वह भारत आकर डॉ मिर्जा अपने चाचा से मिलता है। जो उसको देखकर बहुत ही प्रसन्न होते हैं। उसके एक सच्चा भारतवासी ही मानते हैं कि उसे भारत की मिट्टी ने बुला ही लिया है। मिर्जा उनका परिवार यासीन का काफी अच्छी देखरेख करते हैं और गांव में बहुत आदर किया गया है। किंतु यासीन अभी पाकिस्तान के संपर्क में रहता है और वह दंगे करता है। उसको जब मिर्जा अनवर यानी उसके पिता के घर लेकर जाता है तो उसके उसको देखकर उसके मन पश्चाताप का भाव आने लगता है। जब वह अपने बड़ों की क़ब्र देखा है तो उसके अंदर आतंकवाद का भाव मरने लगता है। अतः डॉक्टर मिर्जा और उनके हिंदू दोस्त किशन लाल की दोस्ती देख कर यासीन यकीन हो जाता है कि भारत में कोई अत्याचार नहीं होता है। बल्कि भारतीय मुस्लिम व हिन्दू सब एक साथ मिलकर रहते हैं तो वह सबके सामने अपना गुनाह को कबूल कर लेता है। इसी पर आधारित इस नाटक कथानक रहा है।

नाटक में मानवीय संबंधों का विश्लेषण:-

दया प्रकाश सिन्हा ने अपने नाटकों में मानव संबंधों के टूटन, दो पीडिया के बीच टकराव, भारतीय परिवेश में वि देशी प्रभाव, पारिवारिक जीवन में लोभ व स्वार्थ, व्यक्तित्व के अंतर्विरोध और सामाजिक समस्याओं को अपने नाटकों का मुख्य विषय बनाया है और इन सब में मानवीय संबंध हमेशा केंद्र में रहते हैं

मानव संबंध को मानव अपने आसपास के लोगों के साथ स्थापित करता है। जैसे - पति-पत्नी का संबंध,, भाई-भाई, मित्र – मित्र, भाई-बेटा, प्रेम-प्रेमिका, मां-बेटा, सांस-बहू, मालिक नौकर, सामाजिक संबंध तथा अन्य संबंध जो मनु ष्य अपने स्वभाव से अन्य लोगों के साथ बनता है।

नाटक में डॉ. मिर्जा और अनवर का संबंध जो दोस्ती का है। जिसमें कोई स्वार्थ, लोभ या अहंकार नहीं है, बल्कि प्रेम सहानुभूति व अपनापन ही देखने को मिलता है। जो अपने देश के लिए कुछ भी कर सकते हैं। डॉ. मिर्जा और यासी न का संबंध पिता और बेटे का संबंध है जिसमें विश्वास, प्रेम, सहानुभूति का है। यासीन व गेसू जो मिर्जा की बेटी है जिस में प्रेम संबंध है। जहां त्याग, कर्तव्य का भाव है। मिर्जा वह उनकी पत्नी अम्मी का संबंध जो भारतीय संस्कृति के पति प त्नी के संबंध को दर्शाते हैं। डॉ मिर्जा के अन्य लोगों या सामाजिक संबंधों में पड़ोसी किशनलाल, पुलिस इंस्पेक्टर, नौक र गूफर व धाय चमेली के साथ संबंध जो एक मनुष्य की सामाजिक आवश्यकता को पूरा करते हैं।

'मेरे भाई मेरे दोस्त' नाटक में मानवीय संबंधों की जटिलताओं को दर्शाता है। नाटक में मानवीय संबंधों का अध्यय न करते हुए इस निष्कर्ष पर आते हैं कि कैसे प्रेम, एकता, भाईचारा, सामाजिक और राजनीतिक विभाजनों को पार कर स कता है। नाटक के पात्र अपने संबंधों को बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हैं जो बताता है कि मानवीय संबंधों में सामर्थ्य हैं।

निष्कर्ष :-

'मेरे भाई मेरे दोस्त' नाटक में मानव संबंधों के महत्व को बहुत ही सशक्त रूप से दर्शाया गया है। दया प्रकाश सिन्हा इस नाटक के माध्यम से यह सूचना देते हैं कि मानव के परस्पर संबंध धर्म, जातीय व सामाजिक पहचान पहचान से ऊंचे होते हैं।

नाटक में भाईचारा, मित्रता, सहानुभूति जैसे मानव मूल्यों को स्पष्ट करता है इस प्रकार यह नाटक एक साहित्यिक कृति ही नहीं बल्कि समाज को मानवीयता का संदेश देने वाले प्रेरणादायक नाटक है।

संदर्भ :-

1 जैन, डॉ नीरज, 'आधुनिक हिंदी उपन्यास व्यक्तित्व विघटन के निष्कर्ष पर' पृ. 33

2 सिन्हा, दया प्रकाश, 'मेरे भाई मेरे

मन्नू भंडारी की कहानी "यही सच है" और "अकेली" में नारी का अंतर्द्वंद्व

सुरती कुमारी
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना:

मन्नू भंडारी हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण कहानीकार के रूप में आती है। मैंने उनकी दो कहानियों को विषय में लिए है "यही सच है" और "अकेली" यह कहानी आधुनिक जीवन की कहानियों का स्वरूप है। जब नारी अपने अस्तित्व की पहचान के लिए वह सिर्फ अपने भावनाओं से किसी निर्णय को नहीं लेती …मन्नू भंडारी की पत्र में नारी एक सशक्त रूप से सामने आती है। उनके पात्र शिक्षित हो या नहीं उनकी कहानी आधुनिक जरूर होते हैं। अपनी सोच समाज के सामने रखने का प्रयास करती है। जिस प्रकार आदिकाल में नारी को ऐसा दिखाया जाता है जो अपने पति के कह गए बातों को मानेगी,नहीं कर सकती या वह अपना जीवन अपने जीवन संगिनी पर समर्पित हो। मन्नू भंडारी ने ऐसा नहीं किया बल्कि उन्होंने नारी को अपने सत्य क्या आत्मसत्ता पर बात करने पर जोर दिया। मेरी मुख्य दो कहानी यही सच है कहानी में दीपा अपने वर्तमान और अतीत के फैसले पर ठहर जाती है, वह समझ नहीं पाती है , कि उसके जीवन के लिए सही कौन है।स्त्री के मन का द्वंद यहां साफ दिखाई देता है। मन्नू भंडारी जी ने पात्रों को इतने गहरे रूप से दिखाया है की नारी भी अपने मन पर विचार व्यक्त कर सकती है। समाज में उसके मन की भी अधिकार है कि वह किसे चुनती है। या किसका चुनाव करती है। वहीं दूसरी और जो मेरी कहानी है अकेली कहानी को देखते हैं तो मन्नू जी ने समाज से ऐसी नारी को उठाया है जो अपना जीवन किस प्रकार अकेले जीवन यापन कर रही है। कहानी की मुख्य नायिका सोमा बुआ है। जिससे किसी ने नहीं अपनाया चाहे वह मृत्यु हुआ बेटा हो , पति, हो या समाज बुआ को किसी ने नहीं अपनाया। बुआ वह फिर भी समाज में अपने आप को यह दिखाने का प्रयास करती है, कि मैं अकेली नहीं हूं वह समाज में अपने आप को रखने का प्रयास करती है पर समाज उसे हर तरफ से इनकार करता है। सिर्फ सामाजिक नहीं उनके पति भी उन्हें इनकार ही करते हैं, अपने आप को हर समय सबके सामने रख रखती है ,ताकि वह अकेली महसूस ना करें। दोनों कहानी बहुत ही संवेदनशील है जहां यही सच है कहानी पर सब जाते हैं पर अकेली जैसी कहानी को छोड़ दिया जाता है मनुष्य के साथ समाज को लगता है स्थिति बदलती है तो सोम हुआ का भी घाव भर जा भर गया होगा पर ऐसा नहीं होता है समझ में ऐसी नारी अभी तक जीवित है। दोनों कहानी में नारी के मन का द्वंद्व को आसानी से पहचान सकते हैं।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि मन्नू भंडारी की कहानी में नारी सिर्फ सामाजिक पात्र बनाकर नहीं रहना चाहती है। वह एक संवेदनशील पत्र है जो अपने जीवन के साथ अपने भविष्य के बारे में भी सोचती हैं, और अपने प्रति एक सजग फैसला लेती है समाज में भी नारी को अपने फैसले लेने का अधिकार आवश्यक है। बस वह अपनी रूढ़ियों में बंध कर नहीं रहना चाहती है। मन्नू भंडारी ने दोनों कहानियों में दोनों विभिन्न नारियों की समाज की दृष्टि से अलग लिया है

पर मकसद एक ही है मन का द्वंद जो एक नारी ही समझ सकती है। मन्नू भंडारी भी अपने आसपास की चीजों को देखकर ही ग्रहण करती थी और उसे डायरी में लिखती थी और ऐसी कहानी लिखने का प्रयास करती थी जो समाज में वह घटना घट रही हो और वही पत्र को उठाने का प्रयास करती है। यह दो कहानी हमारे जीवन की पहचान बनाने में बहुत सहयोग दे सकती है क्योंकि हम भी कभी ना कभी अपनी भावनाओं में मिल जाते हैं और हम कभी भी अपने अधिकार का फैसला नहीं ले पाते हैं लेकिन जब हम यह कहानी को पढ़ते हैं तो हमारे मन में भी एक द्वंद पैदा करता है जिससे हमें भी लगता है कि हमारे फैसले भी एक सजग होना चाहिए हमारा भी एक अधिकार होना चाहिए , चाहे वह घर हो परिवार हो कहीं भी हमें भी फैसला लेने का हर तरफ से अधिकार प्राप्त है।

संदर्भ सूची:

1. मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियां ।
2. मन्नू भंडारी की संपूर्ण कहानी राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/37, अंसारी मार्ग दरियागंज ,नई दिल्ली 11002.
3. राजेंद्र यादव एक दुनिया समानांतर राधाकृष्ण प्रकाशन।
4. रजनीगंधा फिल्म वासु चटर्जी निर्देशक।
5. 'महिला कथा साहित्य अस्मिता का सवाल' डॉक्टर गुरुचरण सिंह हंस प्रकाशन नई दिल्ली।

अनुवाद की समस्या अनुदित कृति " बातें के विशेष संदर्भ में "

स्वाति कुमारी
छात्रा
इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना :

अनुवाद वह सेतु है जो साहित्य की भावना को एक भाषा मैं न बांधकर उसे दूसरे भाषी लोगों तक पहुंचता है। अनुवाद के माध्यम से हम साहित्य के उद्देश्यों को अधिक लोगों तक पहुंचा सकते हैं। कई लोकप्रिय साहित्य हैं जिनका अनुवाद हुआ क्योंकि लोग चाहते थे कि वह उस साहित्य को अपनी भाषा मैं पढ़ सकें। किसी भी साहित्य की लोकप्रियता का पहचान है अनुवाद। अनुवाद के माध्यम से उस भाषा के क्षेत्र की संस्कृति और उनके सभ्यता का विस्तार भी हो ता है। लोग उस भाषा से जुड़ी संस्कृति को अच्छे से समझते हैं।

मेरी अनुवाद यात्रा का केंद्र "batem" किताब है। यह किताब हिंदी व्याकरण पर आधारित है। यह किताब मुख्य रूप से विदेशी बच्चों के लिए तैया र की गई है। उन विदेशी बच्चों लिए जो हिंदी को पढ़ना और समझना चाहते हैं। इस किताब का मुख्य उद्देश्य सरल संवादों और खेल - खेल के माध्यम से छात्रों का हिंदी भाषा का ज्ञान विकसित करना।

इस अनुवाद यात्रा के दौरान मैने अनुवाद को और अच्छे से समझा और अपने ज्ञान का विस्तार किया। इस अनुवाद को पूरा करने के लिए मैने कई हिंदी व्या करण की किताबों का अध्ययन किया तथा अपने हिंदी व्याकरण के बुनियादी स्तर को भी और मजबूत किया। इस यात्रा के दौरान मुझे कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। जैसे - शाब्दिक स्तर पर, संस्कृति क स्तर पर , व्याकरण स्तर पर , आदि।

मुख्य शब्द : हिंदी भाषा का विस्तार, समस्या , विदेशी छात्र , संस्कृति , अर्थ

अनुवाद की परिभाषा :

अब हम अनुवाद की परिभाषाएं देखेंगे। कई बुद्धिमानों ने अनुवाद के सन्दर्भ मैं अलग - अलग परिभाषाएं दी हैं। अनुवाद को समझने से पहले इन परिभाषाओं को समझना आवश्यक है।

डॉ. पूरनचंदन के अनुसार, ''एक भाषा का दूसरी भाषा में प्रस्तुती करण की प्रणा ली अनुवा द कहला ती है।"

भोलानाथ तिवारी के अनुसार, "एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है।"

डॉ . जॉनसन के अनुसार, "translation is to change into another language retaining the sense"

अर्थात मूल भाव की रक्षा करते हुए एक भाषा के कथ्य को दूसरी भाषा में बदलना अनुवाद है।

अनुवाद की समस्या एँ :

अनुवाद में वैसे तो कई समस्याएं आती हैं पर आज हम मेरी अनुवाद यात्रा में आने वाली मुख्य समस्याओं पर चर्चा करेंगे।

व्याकरण सम्बंधी अनुवाद :

प्रत्येक भाषा का महत्वपूर्ण अंग व्याकरण होता है। व्याकरण के नियम ही प्रत्येक भाषा को चलाते हैं। प्रत्येक भाषा के व्याकरण के नियम एक दूसरे से अलग होते हैं। इसीलिए जब हम अनुवाद करते हैं तो हमें समस्याएं आती हैं क्क्योंकि स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के व्याकरण के नियम एक दूसरे से भिन्न होते हैं। जैसे अंग्रेजी में सामने वाले व्यक्ति के लिए **you** शब्द का प्रयोग होता है लेकिन हिंदी में हम **तुम और आप** शब्द का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी में बड़ा या छोटा सबके लिए you शब्द प्रयोग होता है पर हिंदी में हम बड़ों के लिए और किसी भी व्यक्ति को सम्मान देने के लिए आप शब्द का प्रयोग करते हैं। वही हम तुम का प्रयोग खुद से छोटे और दोस्तों के लिए करते हैं। अंग्रेजी में सिर्फ you है पर हिंदी में इसके दो अर्थ हैं आप और तुम। हिंदी में वस्तुओं का भी लिंग होता है जो कि अंग्रेजी के व्याकरण में नहीं होता है। इसी लिए इस अनुवाद यात्रा में मुझे व्याकरण में कई समस्याओं का सामना करना पड़ा।

शब्द चयन संबंधी समस्या ये :

अनुवाद में सटीक शब्द का चयन करना महत्वपूर्ण हैं। ताकि हम स्रोत भाषा का भाव लक्ष्य भाषा में पूर्ण रूप से ला पाएं। " बातें " किताब का अनुवाद करते समय मुझे इस समस्या से काफी ज्यादा गुजरना पड़ा। क्क्योंकि अगर सही शब्द का चयन नहीं किया तो वाक्य का भाव बदल जायेगा। उदहारण के तौर पर अंग्रेजी में अपने व्यस्त दिन से समय निकाल कर लोग कुछ बाते करने या थोड़ा आराम करने के लिए **coffee / tea break** लेते हैं। अगर इसका सीधा अनुवाद हिंदी में होना मुश्किल है। क्योंकिक्योंकि इसका सीधा मतलब चाय या कॉफ़ी पीना नहीं है। इसका मतलब है अपने लिए थोड़ा समय निकलना खुद को थोड़ा आराम देना। पर हां हिंदी में हम बोल सकते हैं कि **चाय पर चर्चा या कॉफ़ी पर चर्चा।**

समय के साथ शब्दों का बदलाव :

आज के समय की बात करे तो भाषा अब कठिन से सरल की ओर जा रही है। प्रत्येक भाषा में ऐसे शब्द हैं जों अब प्रचलित नहीं हैं, लुप्त होते जा रहे हैं। हिंदी भाषा में ही ऐसे कई शब्द हैं जो अब लुप्त हो रहे हैं इसका कारण अंग्रेजी भाषा का प्रभाव है जो हिंदी भाषी लोगों ने आसानी से अपना लिया है। आज कल कई अंग्रेजी शब्द प्रयोग किए जाते हैं अपनी रोज की जिंदगी में और अब वो शब्द हमारे भाषा का हिस्सा बना गया है। मेरी अनुवाद यात्रा " बातें" में भी मुझे ऐसी ही समस्या का सामना करना पड़ा। मैने अनुभव किया कि अब के समय में लोग इतना अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर रहें कि वह अंग्रेजी शब्द अपना लगने लगा और हिंदी का शब्द पराया। पर समस्या यह है कि अगर किताबों में अगर हम उन अप्रचलित हिंदी के शब्दों का प्रयोग करेंगे तो क्या पाठक समझ पाएंगे। या फिर कुछ अंग्रेजी शब्दों को उसी तरह से अनुवाद में प्रयोग कर लिया जाए।

में अपनी पुस्तक " बातें " से कुछ उदाहरण दूं तो जैसे - **Postpoision** को हिंदी मैं **परसर्ग** कहते हैं। हिंदी भाषी लोगों ने ही **postpositon** शब्द को इतना अपना लिया है कि **परसर्ग** दूर हो गया।

संस्कृति क परिवेश :

अनुवाद में संस्कृतिक समस्या काफी मुश्किल होती है। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे से अलग होती है। मेरी इस अनुवाद यात्रा में " बातें " किताब में मुझे संस्कृति क समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। " बातें " किताब मुख्य

रूप से जर्मन भाषा में लिखी गई है फिर इसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में हुआ और अब में इसका अनुवाद हिंदी में कर रही हूं। मुख्य रूप से यह किताब पश्चिमी संस्कृति को ज्यादा दर्शा रहा है। पश्चिमी परिवेश भारतीय परिवेश से बहुत अलग है। जिसकी वजह से कई शब्दों और वाक्य के भाव को भारतीय परिवेश के अनुसार रूपांतरण करना मुश्किल हो जाता है। क्योंकिक्योंकि आपको स्रोत भाषा का भाव भी बरकरार रखना होता है।

उदहारण के तौर पर - **girlfriend, boyfriend का साथ घूमना या रहना। इसे भारतीए परिवेश में अपना या नहीं जा ता हैं।**

Drinks with friends इसको भी भारतीय परिवेश के अनुसार आप किताबों में इस्तेमाल नहीं कर सकते। क्योंकिक्योंकि भारत में यह सब आम नहीं है। इसे अच्छी नजर से नहीं देखा जाता वहीं पश्चिमी संस्कृति में यह सब आम है उनकी सभ्यता का हिस्सा है।

" बातें " पुस्तक का उद्देश्य :

" बातें " पुस्तक विदेशी छात्रों के लिए तैयार की गई है। इस किताब के जरिए जो लोग भी हिंदी सीखना चाहते है, समझना चाहते है , पढ़ना चाहते हैं। उनके लिए यह किताब सहायक साबित होगी। इस किताब में हिंदी व्याकरण को आसानी से समझाया गया है। खेल खेल में हिंदी व्यकरण को सीखने का प्रयास किया गया है। वाक्य रचना सिखाया गया है। सरल संवादों का ख़्याल रखा गया है ताकि जो लोग हिंदी नहीं जानते वह आसानी से हिंदी समझ सके। उन्हें ज्यादा मुश्किलोंका सामना न करना पड़े। यह किताब सिर्फ हिंदी सीखने में नहीं बल्कि हिंदी सीखाने में भी सहायक हैं यानी कि अगर अध्यापक विदेशी बच्चों को हिंदी सीखना चाहते हैं तो उनके लिए भी यह किताब सहायक है। इसका उद्देश्य हिंदी भाषा का विकास करना और इसका विस्तार करना है। हिंदी भाषा के जरिए छात्र भारत के परिवेश और संस्कृति को भी समझेंगे। जिससे लोग भारत की संस्कृति को बेहतर ढंग से समझ पाएंगे।

निष्कर्ष :

अनुवाद स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के बीच का सेतु है। अनुवाद भारतेंदु युग से ही होते आ रहें हैं हिंदी साहित्य में। अनुवाद की कला बहुत मुश्किल कला है क्योंकिक्योंकि आपको अनुवाद प्रक्रिया में कई नियमों का पालन करना पड़ता

है साथ ही आपके सामने कई समस्याएं आती हैं उन सबको ख्याल में रखते हुए आपको अपने पुस्तक का अर्थ और भाव बरकरार रखना पड़ता है। मेरी अनुवाद यात्रा " बातें " में भी मुझे कई नियमों का पालन करना पड़ा और कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। मेरी पुस्तक बातें हिंदी व्याकरण पर आधारित है। यह पुस्तक मुख्य रूप से उनके लिए तैयार की गई है जो हिंदी समझ और पढ़ नहीं सकते। यह पुस्तक उनके लिए सहायक साबित होगी। यह पुस्तक उन अध्यापकों के लिए भी सहायक साबित होगी जो हिंदी पढ़ते है उन लोगों को जिनका हिंदी से पहले कोई नाता न रहा हो।

इस किताब का मुख्य उद्देश्य हिंदी भाषा का विकास और विस्तार करना है।

संदर्भ :

1. **अनुवाद विज्ञान सिद्धांत एवं प्रविधि - भोलानाथ तिवारी पृष्ठ संख्या 15 , 16, 17 अनुवाद विज्ञान सिद्धांत एवं प्रविधि - भोलानाथ तिवारी पृष्ठ संख्या 131, 132,133**
2. **अनुवा द वि ज्ञा न सि द्धां त एवं प्रवि धि - भोलानाथ ति वा री पृष्ठ संख्या 142 , 143, 147**
3. **अनुवा द वि ज्ञा न सि द्धां त एवं प्रवि धि - भोलानाथ ति वा री पृष्ठ संख्या 160 , 167, 173**
4. **अनुवा द: सिद्धांत और प्रयो ग - डॉ . जी . गो पी ना थन पृष्ठ संख्या 85, 91, 108**
5. **स्वयं का सर्वेक्षण एवं नि ष्कर्ष**

उदय प्रकाश की कहानी "पीली छतरी वाली लड़की" में मध्यवर्गीय जीवन

हिमांशी

छात्रा

इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उदय प्रकाश द्वारा लिखित कहानी "पीली छतरी वाली लड़की " 2001 में प्रकाशित समकालीन हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण रचना मानी जाती हैं, क्योंकि यह कहानी आधुनिक समाज के कठोर एवं जटिल अवरोधों को उधेड़ कर रखती है। यह कहानी एक प्रेम कथा के साथ - साथ वैश्वीकरण के दौर में फँसे भारतीय मध्यवर्ग की लाचारी , उनके संघर्ष व सपनों का जीवंत दस्तावेज हैं। इस कहानी में मध्यम से उदय प्रकाश ने भारत में उपभोक्तावाद, जातिवाद जैसे गंभीर मुद्दों को उजागर किया है। यह कहानी भारतीय समाज के यथार्थ को उजागर करती है , व राजनीतिक - सामाजिक विषमताओं, छात्र जीवन के अकेलेपन, मध्यवर्गीय कुंठा का भी चित्रण करती हैं।

यह कहानी एक ऐसे समय की उपज है जब भारतीय समाज में बहुत तेजी से बदलाव आ रहा था। उदारीकरण के बाद मध्य वर्ग दो तरह की चुनौतियों का सामना कर रहा था, एक तरफ वह बढ़ाते बाजारवाद की चकाचौंध में फंसा था, वहीं दूसरी ओर उसे अपनी नैतिकताओं और पुरानी जड़े अपनी ओर खींच रही थी। राहुल जो इस कहानी का मुख्य केंद्र है वह संक्रमणकालीन मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यमवर्ग 'होने' और 'दिखने' के बीच संघर्ष में फंसा रहता है जो मध्यवर्ग की सबसे बड़ी त्रासदी है। राहुल इस कहानी में एक सामान्य छात्र है जिसके पास प्रतिभा होते हुए भी सामाजिक और आर्थिक पूंजी का अभाव है। मध्यमवर्ग का जटिल संघर्ष आर्थिक अभावों से शुरू होते हुए मानसिक कुंठाओं तक जाता है। उदय प्रकाश बहुत बारीकी से दिखाते हैं की एक मध्यवर्गीय युवक के लिए प्रेम करना भी 'जोखिम' भर काम है। क्योंकि उसके पास कथित सामाजिक प्रतिष्ठा को खोने के अलावा कुछ नहीं है।

कहानी में राहुल और अंजली के प्रेम को फिल्मी प्रेम की तरह न देखा कर लेखक ने इस प्रेम को यथार्थवादी मोड दिया है। राहुल का अंजली के प्रति आकर्षण नहीं , बल्कि प्रेम है, और यह प्रेम सुंदरता तक सीमित नहीं है। अंजली में आत्मविश्वास है जो उसे आकर्षित बनाता है, व इसी को राहुल हासिल करना चाहता है । जब राहुल अंजली को पहली बार देखता है पीली छतरी के साथ तभी से उसे इस आकर्षण का अनुभव होता है, और वह अंजली को देखने के लिए अपनी पसंदीदा नायिका माधुरी दीक्षित का फोटो खिड़की पर से हटा देता है, ताकि वह उस पीली छतरी को आते जाते देख सके । यहाँ ये पीली छतरी एक साधारण वस्तु के रूप में नहीं , बल्कि पीली छतरी एक सुरक्षा कवच का प्रतीक है।

अंजली एक उच्च्च परिवार की महिला है, वही राहुल एक मध्यवर्गीय परिवार का पुरुष है। दोनों में वर्गभेद होने के बाद भी आपस में प्रेम जैसा पवित्र रिश्ता है , जो दर्शाता है कि मध्यवर्ग में भावनाएं भी सामाजिक सुरक्षा की मोहताज हैं। राहुल के मन में बहुत से प्रश्न है अंजली के प्रति क्या वह अंजली के योग्य है ? क्या उसका व्यक्तित्व अंजली की दुनिया में टिक पाएगा? वह अपने पे आत्म संदेह करता है। यह आत्म संदेह मध्यवर्गीय मानसिकता की वह गहरी परत है जहाँ एक

व्यक्ति स्वयं को दूसरों की नजरों से देखता है व स्वयं को उनकी की नजरों से आंकता है।

आज हम इक्कीसवीं सदी में है ।हम सब आधुनिक होने का दावा करते है। उदय प्रकाश में इस कहानी के माध्यम से दिखाया है कि किस प्रकार विश्वविद्यालय परिसर जैसी आधुनिक जगह पर भी जातिवाद ने अपनी जड़े अभी तक गहरी की हुई है। जब राहुल एंथ्रोपोलॉजी विषय को छोड़ हिंदी साहित्य में आता है तब उसे पता चलता है कि वह एक अकेला विद्यार्थी है जो निम्न जाति का है । संपूर्ण हिंदी साहित्य विभाग में अध्यापक से लेकर कर्मचारी तक सभी ब्राह्मण है। किसी अन्य जाति के व्यक्ति को इस विभाग का हिस्सा बनने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है। विभाग में ब्राह्मणों का अनुपात 88% वहीं गैर ब्राह्मणों का अनुपात 12% है इतना ही नहीं एचडी जो एक उच्च शिक्षा है उसका अनुपात भी लगभग यही है। इस अनुपात से यह पता चलता है कि जाति केवल एक पहचान नहीं बल्कि सत्ता संरचना के रूप में है। उदय प्रकाश इस जाति का भेदभाव को कहानी के माध्यम से दिखाकर यह दिखाना चाहते हैं कि लोकतंत्रीकरण अभी भी अधूरा है लोग अभी भी अपनी जाति का श्रेष्ठाओं से बाहर नहीं निकाल पाए हैं।

कैंसर एक ऐसी बीमारी है जो एक बार व्यक्ति को हो जाए तो वो संपूर्ण शरीर को खराब कर देती है, भ्रष्टाचार भी इस कहानी में एक कैंसर की तरह ही है जो पुलिस तंत्र हो या विश्वविद्यालय का प्रशासन , हर जगह बिचौलिये और भ्रष्ट लोगों से भरा हुआ हैं। कहानी में दिखाया गया है कि जब व्यवस्था में योग्यता का कोई स्थान नहीं रह जाता, व सिफारिश और पैसे के बल पर कुछ लोगों को ही महत्वता मिलने लगती है या कहा जाए कि सत्ता कुछ लोगों के हाथ में ही होती है, तब सबसे अधिक प्रभावित होने वाला वर्ग मध्यवर्ग ही होता है। कहानी सहायक पत्रों के संवादों के माध्यम से पता चलता है कि सापाम की हत्या के बाद उसको बर्फ की सिली पर रखने की बजाय एक साधारण सी जगह पर रखा गया है वह उस सिली के पैसे अस्पताल के लोग भ्रष्ट रुप से खा जाते है, जो एक बहुत दर्शनीय है दृश्य है। डाकिया भी भ्रष्टाचार से ग्रस्त है वो बच्चों के घरों से आए पैसे की जानकारी गुंडों को देता है, और गुंडे उन बच्चों से पैसे छीन लेते हैं इस हरकत की शिकायत करने पर कानूनी कार्यवाही तो होती है पर सिर्फ दिखावे के लिए कुछ समय बाद उन सभी गुंडों को छोड़ दिया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में जो अध्यापक जिस विषय के अध्यापक हैं उनके पास उस विषय की विशेषज्ञता है ही नहीं, वह तो बस भ्रष्ट व्यवस्था के चलते अध्यापन का कार्य कर रहे हैं जैसे गणित का प्रोफेसर बॉटनी का थर्ड डिविजनल है, वही जो मनोवैज्ञानिक का प्रोफेसर है उसने कृषि विश्वविद्यालय से बागवानी की डिग्री की है। यह सब दर्शाता है कि पैसे और सिफारिश के महत्वता के कारण योग्य व्यक्ति कहीं पीछे छूट जाते हैं।

तथा इस भ्रष्ट व्यवस्था के चलते बेरोजगारी की समस्या भी एक मूल समस्या बन जाती है। जहाँ योग्य व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार कार्य नहीं मिल पाता। वही अमीर व्यक्ति ओर अमीर होता जाता है, और गरीब व्यक्ति गरीब होता जा रहा है। बेरोजगारी सिर्फ पैसे की कमी नहीं बल्कि मनुष्य के अस्तित्व पर एक प्रश्न चिन्ह खड़ा करती है। बेरोजगारी से जूझ रहे लोग कहीं वैश्य बन जाते है, तो कहीं जो लोग शारीरिक व मानसिक रूप स्वास्थ्य है क्षमताओं, संभावनाओं और श्रम से भरपूर्ण नौजवान है वह भी बेरोज़गारी से जूझते रहते हैं।

इस कहानी का अनिवार्य हिस्सा बाजारवाद है। पीली छतरी भी एक उत्पाद का प्रतीक है जो बाजार की उपस्थिति दिखती है। बढ़ते बाजारवाद के चलते आज के समय में मनुष्य की पहचान वस्तु निर्धारित कर रही है। अंजलि की पीली छतरी उसे भीड़ से अलग पहचान देती है, व वही पीली छतरी राहुल के लिए आकर्षण का केंद्र बनती है। मध्यवर्गीयो के भीतर बाजारवाद ने एक नई तरह की भूख को जन्म दिया है, महंगे गैजेट्स, खास तरह की जीवन शैली, ब्रांडेड कपड़े आदि। बाजारवाद के प्रभाव ने मानव की सिर्फ भौतिक जरूरतों को ही नहीं बल्कि मानसिकता पर भी कब्जा कर लिया है।

स्रोत

1. वर्मा अर्चना, विकास का दुख स्वप्नलोक, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
2. शर्मा हरिमोहन, समाज से गुम होता करधन, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
3. कश्यप मदन, कवि की पीड़ित खुफिया आँखें, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
4. गोपालकृष्णन वी जी, मुक्ति संघर्ष की गाथा, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
5. सेठी रेखा, यथार्थ का प्रतिपक्ष, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
6. दास रवींद्र कुमार, हां, मै कुछ कविताएं दे सकता हूँ, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
7. श्रोत्रय निरंजन, किसी एक लेखक का नाम लो, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
8. आशुतोष , पीली छतरी वाली लड़की : स्त्री पीड़ा का आख्यान, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
9. रंजन प्रभात, उदय प्रकाश के झूठ और सच, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
10. कुमार संजीव, कहानी में न अंटने वाला कहानीकार, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
11. शर्मा निरंजनदेव, हमारा समय और उदय प्रकाश, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
12. श्रीवास्तव जितेंद्र, थोड़ी सी कठिन रोशनी में, संपादक ज्योतिष जोशी, प्रथम संस्करण 2013
13. सिंह वैभव, पीली छतरी का जादू, संपादक डॉ. वीरेंद्र शीतल वाणी, अगस्त अक्टूबर – 2012

काशी के अस्सी का सांस्कृतिक विश्लेषण

गरिमा सिंह

छात्रा

इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

काशी का अस्सी' डॉ. काशीनाथ सिंह का सबसे चर्चित और बेबाक उपन्यास है। यह बनारस के अस्सी मोहल्ले के माध्यम से पूरे भारतीय समाज में आ रहे बदलाव को दिखाता है। लेखक ने इस उपन्यास को ज़रिया बनाकर समाज में आ रहे उन गंभीर मुद्दों को दर्शाया है जो राजनीति का हिस्सा हैं। यह उपन्यास कल्पना पर आधारित नहीं है, बल्कि 1990 के आसपास के बनारस का एक जीवंत चित्र है। इसमें मंडल कमीशन, राम जन्मभूमि आंदोलन और आर्थिक उदारीकरण के समय की उथल-पुथल को अस्सी के चश्मे से दिखाया गया है।

बनारस एक ऐसा शहर है जहाँ ज़िंदगी और मौत के मायने घुल-मिल जाते हैं। काशीनाथ सिंह के उपन्यास में जहाँ पुरुषों की बैठकों और उनकी बेबाक गालियों का ज़िक्र है, वहीं मणिकर्णिका जैसे स्थानों पर स्त्रियों की अनुपस्थिति यह दर्शाती है कि बनारस का वह फक्कड़पन कहीं न कहीं पुरुष प्रधान रहा है। श्मशान की आग और मुक्ति के द्वार तक पहुँचने का अधिकार पुरुषों ने अपने पास रखा है, जैसे जीवन देने वाली स्त्री का मृत्यु के उत्सव में कोई स्थान ही न हो।

आज की स्त्री मणिकर्णिका की उन वर्जनाओं को चुनौती दे रही है। वह केवल एक मूक दर्शक नहीं, बल्कि मोक्ष और विदाई की अंतिम प्रक्रिया में अपनी हिस्सेदारी और सम्मान ढूँढ रही है। ऋग्वेद के अनुसार, यदि किसी पिता के पुत्र नहीं है तो उसकी पुत्री ही 'पुत्रिका' मानी जाती है। समाज ने समय के साथ अपनी सुविधा के अनुसार रीति-रिवाजों को पितृसत्तात्मक बना दिया है, जबकि वेदों की मूल भावना हमेशा से समानता की रही है। मणिकर्णिका पर आज जो स्त्रियां मुखाग्नि दे रही हैं, वे वेदों के उसी प्राचीन और न्यायपूर्ण अधिकार को पुनः स्थापित कर रही हैं जिसे मध्यकाल की रूढ़ियों ने दबा दिया था।

बनारस की रूह और आधुनिकता

काशी का अस्सी बनारस की रूह और आत्मा को पकड़ती है। इसमें जो 'बनारसीपन' है, वह पान की तरह है—कड़वा, कसैला और मीठा सब एक साथ। जिस प्रकार पान को थूकना उसकी रंगत और मेहनत को बर्बाद करना है, उसी प्रकार बनारस की मौलिकता को आधुनिकता के नाम पर त्यागना उसकी आत्मा को मारना है।

धार्मिक महत्व: काशी की स्थापना भगवान शिव ने की थी, इसे 'अविमुक्त क्षेत्र' कहा जाता है।

बौद्ध केंद्र: यहाँ सारनाथ स्थित है जहाँ भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था।

प्रकाशन: यह उपन्यास पहली बार 2004 में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ था

भौगोलिक स्थिति: वर्तमान में बनारस में कुल 84 घाट हैं, जो वरुणा और अस्सी नदी के संगम के बीच लगभग 7 किलोमीटर में फैले हैं।

उद्देश्य- मैं इस उपन्यास को समय का नया चश्मा दूंगी। जहाँ पुराने विद्वानों ने इसे केवल बनारस के दस्तावेज़ के रूप में देखा है, मैं इसे 2026 के डिजिटल और विकसित भारत के संदर्भ में देखूंगी। मैं यह परखूंगी कि क्या अस्सी अब केवल एक 'टूरिस्ट स्पॉट' बनकर रह गया है या उसकी वह विद्रोही आत्मा आज भी ज़िंदा है।

मैं अपनी रचना में उस बनारस का वर्णन करूंगी जहाँ समय के साथ ढोंगी लोगों का प्रचार-प्रसार और तेज़ी से बढ़ गया है। मध्यकाल में काशी को कई विदेशी आक्रमणों का सामना करना पड़ा जिससे मंदिरों को काफी क्षति पहुँची थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

प्राथमिक स्रोत: सिंह, काशीनाथ - काशी अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

आलोचनात्मक पुस्तकें और संदर्भ ग्रंथ:

काशी अस्सी: एक पुनर्मूल्यांकन

लेखक की रोटी

आलोचना की पहली किताब

समकालीन हिंदी उपन्यास विधा विवेचना

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में जीवन मूल्य चिन्तन

अभय कुमार राय
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग, डी0सी0एस0 खंडेलवाल
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊ

सारांश:

'जीवन मूल्य' वे गुण, सिद्धान्त और आदर्श हैं, जो मनुष्य के जीवन को नैतिक, सार्थक, संवेदनशील और उद्देश्यपूर्ण बनाते हैं। ये मूल्य बताते हैं कि मनुष्य को कैसा जीवन जीना चाहिए और समाज में कैसा आचरण करना चाहिए। जीवन-मूल्य वे नैतिक आदर्श, सिद्धान्त और गुण हैं जो मनुष्य के आचरण को सही दिशा देते हैं और जीवन को अर्थपूर्ण बनाते हैं। प्रमुख जीवन मूल्यों में सत्य, अहिंसा और करुणा, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन, आदर और सम्मान, सहनशील सहयोग और परमार्थ, मधुर व्यवहार, श्रम और परिश्रम आदि हैं। जीवन मूल्य जीवन की वह प्रकाश-किरण हैं, जो अंधकार में भी मार्ग दिखातीं है। मनुष्य का व्यक्तित्व, चरित्र और सामाजिक व्यवहार इन्हीं मूल्यों पर आधारित होता है। भक्त कवियों में तुलसीदास के काव्य में जीवन मूल्यों की स्थापना जिस प्रकार हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य के माध्यम से जीवन मूल्यों को अपनाकर शान्तिपूर्ण सामाजिक जीवन जीने की कला हमें सिखा गये हैं।

मूल शब्दःभक्तिकाल, सत्यनिष्ठता, अहिंसा, मानवता, ब्राह्मणवाद, शिरोमणि, अनुशासनबद्ध, विघटन, दयालुता, वत्सलता, अतिथि देवो भव, दुःखकातरता, समशीलता आदि।

तुलसीदास के काव्य में 'जीवन मूल्य' अत्यन्त व्यापक मानवीय और धर्माश्रित रूप में प्रकट होते हैं। वे मानव जीवन को आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक दृष्टि से उन्नत बनाने वाले मूल्यों पर बल देते हैं। तुलसीदास के अनुसार जीवन का सर्वोच्च मूल्य धर्म है। धर्म केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि मानवता, न्याय, सत्य और कर्तव्य-निष्ठा है। 'रामचरितमानस' में राम का आदर्श है- 'रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।' जो कर्तव्यपालन का उच्चतम मूल्य स्थापित करता है। 'सत्य' तुलसीदास के काव्य का मूलाधार है, वे सत्य को मानव जीवन का 'अविचल धर्म' मानते हैं। राम, जनक, विभीषण आदि पात्र सत्यनिष्ठा के उदाहरण हैं। 'प्रेम' तुलसीदास के यहाँ केवल दैवीय प्रेम नहीं, बल्कि मानव-मानव के बीच का सहभाव भी है। वे दयालुता, करुणा और निष्कपट प्रेम को जीवन का अलंकार मानते हैं। राम का शबरी और निषादराज के प्रति व्यवहार सामाजिक समानता और करुणा के आदर्श प्रस्तुत करता है।

तुलसीदास भक्ति को जीवन का सर्वोपरि मूल्य मानते हैं। भक्ति मनुष्य को लोभ-मोह से मुक्त करती है। उनके अनुसार भक्ति जीवन को सरल, निर्मल और आनंदमय बनाती है। तुलसीदास का आदर्श मनुष्य अहंकार-शून्य है। हनुमान का चरित्र सेवा, विनय और समर्पण का सर्वोत्तम उदाहरण है। वे कहते हैं' सीय राममय सब जग जानी' अर्थात् सबमें ईश्वर को देखने

से सेवा-भाव उत्पन्न होता है। आदर्श पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में वे दाम्पत्य-पतिव्रता, भ्रातृ-प्रेम, माता-पिता के प्रति श्रद्धा तथा सत्य, सहयोग, क्षमा एवं न्याय आदि का मानते हैं। तुलसीदास समाज में मानव-मात्र की समानता के मूल्य पर बल देते हैं। उनके काव्य में मनुष्य का चरित्र संकट में धैर्य, निश्चय और आत्मबल से भरपूर होता है। तुलसीदास का काव्य जीवन को धर्म, प्रेम, सत्य, करुणा, भक्ति और सेवा जैसे मूल्यों से प्रकाशित करता है। उनके काव्य में जीवन-मूल्य केवल उपदेश नहीं, बल्कि चरित्रों के आचरण के माध्यम से सहज, सरल और व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत होते हैं। इसलिए उनका काव्य आज भी भारतीय जीवन-दृष्टि का नैतिक मार्गदर्शक माना जाता है।

तुलसीदास के काव्य में कुछ तो ऐसा है, जो उन्हें अमरत्व देता है। इतिहासकारों व विद्वानों के मध्य चाहे जितने मतभेद रहे हों, पर सबने उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सराहना समान रूप से की है। किसी ने उन्हें भक्तिकाल का सच्चा प्रतिनिधि कहा और किसी ने लोकनायक और भविष्य का स्रष्टा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है- ''भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को। उन्होंने कहा कि व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की उज्ज्वल छटा उनमें वर्तमान है।''1 तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ डॉ0 उदयभानु सिंह ने उन्हें सही मायने में मानवतावादी कहा है। सत्यनिष्ठता को तुलसीदास ने प्रमुख जीवन मूल्य माना है, वे लिखते हैं-

''धरमु न दूसर सत्य समाना।

आगम-निगम पुरान बखाना।।''[2]

एक अन्य उदाहरण-

''सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।

वेद पुरान विदित मनु गाए।।''[3]

तुलसीदास के नायक सत्यनिष्ठ हैं, सत्य की प्रतिष्ठा के लिए वे राजसी वैभव छोड़ वनगमन करते हैं और अपने सत्यसंध पिता के वचनों को सत्य करते हैं। सत्य के साथ ही उन्होंने अहिंसा को भी परम-धरम कहा और 'परनिंदा' को भारी पाप कहा है-

''परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा।

पर निन्दा सम अघ न गरीसा।।''[4]

उन्होंने परोपकार को परम धरम कहा और कहा कि इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं और परपीड़ा के समान कोई नीचता नहीं है-

''परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।''[5]

मानवतावाद उनके काव्य में स्थल-स्थल पर देखने को मिलता है- राम का जटायु प्रेम, राक्षसों से ऋषियों की रक्षा करना, रावण से लंकावासियों की रक्षा करना आदि प्रसंग मानवतावाद के पोषक हैं। दूसरों का दिल न दुःखने की बात उन्होंने जगह-जगह कही है और इसके लिए मधुर वचन बोलने पर बल दिया-

''रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिए तरवारि।

सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिय बचन विचारि।।''6

तुलसीदास पर आरोप लगाया जाता है कि वे ब्राह्मणवाद के समर्थक थे और जाति-पाँति के पक्षधर थे, पर ऐसा था नहीं। उन्होंने कर्तव्यभ्रष्ट ब्राह्मण को शोचनीय व निंद्य माना है-

''सोचिअ विप्र जो बेद विहीना।

तजि निज धरम विषय लयलीना।।''7

धर्म विमुख ब्राह्मण को दण्डित करने में भी उन्हें संकोच नहीं और जन्मना शूद्र होने पर भी निषाद और शबरी को श्रेष्ठ कर्म करने के कारण महत्त्व देने में उन्होंने कहीं कोई कमी नहीं रखी। निषाद को राम और ब्राह्मण शिरोमणि वशिष्ठ ने गले से लगा लिया।

तुलसीदास ने अपने काव्य में सामाजिक व राजनीतिक नीतियों का विवेचन कर हमें अनुशासनबद्ध तरीके से जीवन जीने की कला सिखाई। पहले सामाजिक नीतियों पर विचार करते हैं। पारिवारिक विघटन के कारण ही आज समाज में समस्याएँ खड़ी हो रही हैं। आपस के सम्बन्धों में विघटन के कारण ही पहले मनुष्य, फिर परिवार व फिर समाज में टूटन आती है। सम्बन्धों को मधुर बनाया जाये इसलिए आवश्यक है सामाजिक मूल्यों को समझना, सन्त-असन्त की चर्चा व फिर सन्तों की महिमा प्रतिपादित कर तुलसीदास अच्छा समाज चलाने के लिए दिशा-निर्देश दिया है। सन्तों से तात्पर्य और कुछ नहीं सत आचरण करने वालों से ही है। दयालुता, सहनशीलता, परदुःखकातरता, समशीलता आदि गुण जहाँ व्यक्ति में होंगे, समाज अपने आप ही अच्छा हो जायेगा। 'शरणागत वत्सलता' और 'अतिथि देवो भव' की भावना भी अच्छे समाज को चलाने के लिए आवश्यक है। पारिवारिक सम्बन्धों के अतिरिक्त समाज में मैत्री सम्बन्धों पर भी तुलसीदास ने जो कुछ कहा है, वह अच्छे समाज को चलाने के लिए प्रेरणादायक है।

सामाजिक सम्बन्धों के ही संदर्भ में गुरु-शिष्य सम्बन्धों की चर्चा रामचरितमानस में स्थान-स्थान पर हुई है। गुरु-शिष्य सम्बन्ध भारतीय संस्कृति का अंग है, जिसके बल पर समाज पनपता है। आज हमारी इस संस्कृति का ह्रास हो रहा है और कहीं न कहीं शिक्षा के स्तर पर गिरावट का कारण भी है। गुरु-शिष्य के आपसी सम्बन्धों के लिए आज बड़ी-बड़ी बातें की जा रही है। आज 'इंटरेक्शन' की जो बातें की जा रही है, वह 'रामचरित मानस' में मिलती है। राम और उनके भ्राता गुरु के पास सारी विद्याएँ सीखकर आये थे और दोनों में परस्पर बहुत अच्छे सम्बन्ध थे। जिस 'कौन्सिलिंग' की बातें आज हो रही हैं, वह भारत में बहुत पहले से थीं, उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। भारतीय जीवन चिन्तन में आश्रमों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। आश्रम आध्यात्म के केन्द्र रहे हैं। इसमें श्रम-स्वावलम्बन के साथ सदाचार तथा सात्विक जीवन का शिक्षण सहज रूप में होता है।

राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से देखें तो भी रामचरितमानस कोश है। भारत के सांस्कृतिक जीवन को राजनीतिक ताने-बाने से बुना गया है। संस्कृति और राजनीति पृथक-पृथक नहीं है। मनुष्य के समग्र विकास तथा समाज की समृद्धि के निमित्त राजनीति को आवश्यक समझा गया है। भारतीय शास्त्रों में राजनीति को राजधर्म कहा गया है। राजनीति को प्राचीनकाल में नृपनीति, दण्डनीति, राजधर्म, अर्थनीति आदि की भी संज्ञा दी गयी है। 'रामचरितमानस' में राजनीति के लिए नृपनीति, राजनय तथा राजधर्म शब्दों का प्रयोग हुआ है। राम राजनीति मर्मज्ञ हैं। अयोध्याकाण्ड में वन जाने को तत्पर लक्ष्मण से

राम कहते हैं कि तुम्हारे भी साथ चलने से प्रजा अनाथ हो जाएगी-

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।

सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।''8

तुलसीदास ने राजनीति एवं धर्मनीति दोनों में ही मूल्यों के महत्त्व को स्पष्ट किया है। उन्होंने सामाजिक एवं पारिवारिक विघटन को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को धर्म एवं नीति का अवलम्बन और श्रीराम के चरणों में प्रेमपूर्वक रहना ही उत्तम माना है।

'वैराग्य संदीपनी' को एक नैतिकता प्रधान काव्य कहा जाता है, जिसमें लोकहित की भावना निहित है। पिंड और ब्रह्माण्ड में शांति को अखण्ड साम्राज्य की स्थापना के लिए 'वैराग्य संदीपनी' में साधनों तथा महत्त्व का सविस्तार वर्णन किया है-

''रैन को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।

दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान।।

ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान के भूषन त्याग।

ज्ञान को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग।।''9

'दोहावली' में उन्होंने काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, ईर्ष्या आदि से सजग रहने की बात अनेक स्थानों पर कही है, क्योंकि ये सभी व्यक्ति जीवन में कष्ट के कारण हैं-

''ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।

तेहि पिआइस बारुनी कहहु कवन उपचार।।''10

तुलसीदास उत्तम नैतिकता और जनमानस के विवेकपूर्ण व्यवहार पर बल देते हैं। विवेकपूर्ण व्यवहार के विषय में वे कहते हैं कि जो आय के अनुमान के अनुसार व्यय करता है तथा संसार में विवेकपूर्ण व्यवहार करता है, वही मनुष्य सामर्थ्यवान, बुद्धिमान, पुण्यात्मा, साधु और चतुर है-

''तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु समान।

जो विचार व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान।।''[11]

तुलसीदास का मानना है लोग बुराइयों से इस प्रकार प्रभावित हो जाते हैं, जिस प्रकार लोहा बड़ी तीव्रता के साथ चुम्बक के साथ जुड़ जाता है। नीच और पापी मनुष्य नम्रता का ढोंग करके दूसरों को अपनी ओर खींच लेते हैं। इसलिए समर्थ पापी से हुई दुश्मनी को खरीदी हुई मौत के समान समझना चाहिए। उनका मानना है कि जो मनुष्य अपना पुरुषार्थ किये बिना ही मुक्त हो जाता है, मृत्यु के उपरान्त भी उसकी कीर्ति नहीं होती। वे अजामिल का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यद्यपि अजामिल भगवान श्रीहरि के लोक में चला गया, लेकिन आज भी उसका नाम पापियों और अधर्मियों के साथ लिया जाता है-

''तुलसी निज करतूति बिनु मुक्त जात जब कोई।

गयो अजामिल लोक हरि नाम सक्यो नहिं धोई।।''[12]

अपने देश, समाज और लोगों के महत्त्व को बतलाते हुए वे कहते हैं कि जिस दिन अपने लोग साथ छोड़ देते हैं, उस दिन कोई भी हित करने वाला नहीं रह जाता। यद्यपि सूर्य-कमल का मित्र है, परन्तु जब जल कमल का साथ छोड़ देता है तब वही सूर्य कमल को जलाकर सुखा देता है। तुलसीदास व्यक्ति को जीवन में सफलता प्राप्त करने के अनेक नैतिक मूल्य के विषय में अपने काव्य में चर्चा करते हैं और बताते हैं कि किनका जीवन सफल है या हो सकता है। उनकी मान्यता है कि जीवन की सफलता का रहस्य सद्गुण, सद्आचरण और जो मनुष्य माता-पिता, गुरु तथा स्वामी की सीख को सिर पर धारण कर उसका पालन करते हैं, उनका जीवन सफल होता है। अन्यथा इस संसार में जन्म लेना व्यर्थ है। तुलसीदास सज्जन-दुर्जन के अन्तर को बताते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार बरसात में मेढक टर्राते हैं, इसलिए कोयल मौन हो जाती है। उसी प्रकार बुरे समय में जब दुर्जन लोगों का प्रभाव बढ़ता है, तब सज्जन मौन हो जाते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्ति को समय के महत्त्व का ध्यान रखना चाहिए और उसके अनुकूल ही व्यवहार करना चाहिए।

''मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरिक रहिं सुभाग।

लहेउ लाभु हित अनमकर, नतरु जनन जग जाय।''[13]

तुलसीदास ने 'दोहावली' में भगवान की महत्ता के साथ-साथ गुरु, माता-पिता आदि का अनुशरण करने की बात कही है। व्यक्ति अच्छे संगति से अपने जीवन को सुव्यवस्थित कर जीवन को सफल बना सकता है। उनकी दृष्टि का केन्द्र लोकनीति और लोकधर्म पर सदैव रहा है। 'दोहावली' में तुलसीदास ने व्यक्ति के लिए आवश्यक मानवीय गुणों का भी उल्लेख किया है। दया, क्षमा, परोपकार, करुणा, प्रेम, सहिष्णुता आदि गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, कपट, बैर भाव से रहित मानव जिस समाज में होते हैं, वह अवश्य ही उन्नति करता है। व्यक्ति यदि धर्म का पालन करते हुये, समाज में सदाचरण को बढ़ावा देते हुए जीवन-यापन करे तो निश्चय ही समाज का कल्याण होगा। ''तुलसीदास ने नदी, सरोवरों की स्वच्छता, वृक्षों की रक्षा, उनसे मानव तुल्य व्यवहार की जो बातें कही हैं, वे भी कहीं न कहीं जीवन मूल्यों से जुड़ी हैं। सबको स्वच्छ जल मिले, प्रदूषण रहित वायु प्राप्त हो, खाने के लिए अच्छे फल मिले। यह तभी सम्भव है, जब वातावरण प्रदूषण से मुक्त होगा। पर्यावरण के संरक्षण के लिए जिन उपायों को तुलसीदास ने बताया है, वह अत्यन्त प्रासंगिक और उपादेय है।''14

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सगुण भक्त कवि तुलसीदास के काव्य में मूल्य चिन्तन भारतीय जीवन-दर्शन का सार तत्त्व है। उनके काव्य में आध्यात्मिकता, नैतिकता, सामाजिकता, मानवतावाद और भक्ति- सब एक समन्वित रूप में उपस्थित है। तुलसीदास मनुष्य को ऐसा आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं, जिसमें सत्य, प्रेम, कर्तव्य, धर्म, परोपकार के आधार पर समाज और व्यक्ति दोनों का कल्याण संभव हो। इस प्रकार उनके काव्य में जीवन मूल्य चिन्तन न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि समग्र मानवीय जीवन के लिए दिशानिर्देश भी प्रदान करता है। वे केवल भक्त कवि नहीं, बल्कि समाज सुधारक, दार्शनिक और मानवीय मूल्यों के संवाहक भी हैं। उनके काव्य में पाये जाने वाले मूल्य आज भी अत्यधिक प्रासंगिक और प्रेरणादायी हैं, जो व्यक्ति जीवन को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

संदर्भः

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र- हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2017, पृ0-113.
2. गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर- 2/95/5.
3. वही, 2/28/3.
4. वही, 7/121/22.
5. वही, 7/41/1.
6. रघु, राघव-संपा0- तुलसीदास दोहावली, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2019, दोहा- 435.
7. गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर- 7/172/2.
8. वही, 2/71/6.
9. गोस्वामी तुलसीदास विरचित वैराग्य संदीपनी, गीताप्रेस, गोरखपुर, शान्तिवर्णन-दोहा-43-44.
10. रघु, राघव-संपा0- तुलसीदास दोहावली, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2019, दोहा- 391.
11. वही, दोहा- 387.
12. वही, दोहा- 540.
13. वही, दोहा- 531.
14. श्रीवास्तव, डॉ0 रीता- मध्यकालीन काव्य में जीवन मूल्य और समकालीन परिवेश, कलम प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2013, पृ0-86.

मध्यकालीन भक्ति काव्य में ज्ञान और भक्ति

अर्चना कुमारी (शोधार्थी)
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार

भारतीय मध्यकालीन समाज और राजनीतिक भिन्न-भिन्न मतों और बदलते राजनीति परिवेशों के बीच घटित होता नजर आता है। एक ओर बाह्य आक्रमणकारियों का तांता लगा रहाय वही दूसरी ओर आंतरिक क्षेत्र में आध्यात्मिक भक्ति और ज्ञान के आधार पर भक्ति आंदोलन की नींव पड़ी। विविध परिस्थितियों में भक्ति आंदोलन अपने पूर्व के सामाजिक और सांस्कृतिक दर्शनों को साथ लेकर चला, साथ ही बदलते परिवेश के आधार पर तत्कालीन परिस्थितियों में तत्कालीन संदर्भों को भी समाविष्ट करने का प्रयास किया। भक्ति आंदोलन का उद्देश्य मानवीय चेतना को ज्ञान और भक्ति से जोडना तथा मनुष्य के मानवता को उद्घाटित करना रहा है।

भक्ति आंदोलन के दो मुख्य स्वरूप है: ज्ञान और भक्ति।एक ओर ज्ञान, तार्किकता,वैज्ञानिकता, गुरु के महत्व, रुढियों से मुक्त तो दूसरी ओर भक्ति के साथ आस्था, विश्वास एवं समर्पण के भाव हैं। भक्ति काव्य की परंपरा निर्गुण और सगुण धाराओं में बहती नजर आती हैं। निर्गुण में एकेश्वरवाद के साथ प्रेम के स्वरूप को ज्ञान के साथ प्रेषित करने का प्रयास किया है। सगुण धारा के भक्तों ने आस्था, विश्वास और समर्पण के आधार पर बहुदेवतावादी ईश्वर के लिए भक्ति परख पदों की रचना की। बहुदेवतावादी ईश्वर के अवतारवाद और लीलावाद को जोड़कर सगुण काव्य की रचना की । निर्गुण के ज्ञानमार्गी संत कबीर ने ज्ञान आधारित प्रेम को भक्ति का आधार बनाया तथा सगुणवादियों में सूरदास और तुलसीदास ने अवतारवादी ईश्वर की आस्था और विश्वास के आधार पर क्रमशरू कृष्ण और राम की भक्ति परख गीतों की रचना की। शोध पत्र में विमर्श करना है कि मध्यकालीन भक्ति काव्य में ज्ञान और भक्ति के स्वर कैसे मुखरित हुए तथा संतों और भक्तों ने इसके आधार पर दोहों-पदों की किस प्रकार रचना की है?

मुख्य बीजरूमध्यकालीन, भक्ति, निर्गुण, सगुण, ज्ञान,अवतारवाद, लीलावाद, एकेश्वरवाद, भक्ति आंदोलन।

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग है, जिसमें अनेक दर्शनों,मतों,वादों एवं सिद्धांतों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। ज्ञान एवं भक्ति की जो मंदाकिनी इस युग में प्रभावित हुई। वह मध्यकाल हिंदी साहित्य के स्वर्णिम आधार स्तंभ है। विद्वानों ने भक्तिकाल की समय-सीमा “1318 से 1643”(1)(संपा०डॉ० नगेंद्र, डॉ० हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास,मयूर पेपरबैक्स 2013, पृ संख्या 82) स्वीकार किया है। इस साहित्य में संतों एवं भक्त कवियों के साहित्य में एक विश्व दृष्टि दिखाई देती हैं, जो मानवता के चेतनागत और समष्टिगत विकास की भाव-भूमि तैयार करती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल को “एक ही काल और एक ही कोटि की रचना के भीतर जहां भिन्न-भिन्न प्रकार की परंपराएं चली हुई पाई गई हैं,वहां अलग-अलग शाखाएं करके सामग्री का विभाग किया गया है। भक्तिकाल के भीतर पहले दो काव्य धाराएं निर्गुण धारा और सगुण धारा निर्दिष्ट की गई हैं। फिर प्रत्येक काल की दो-दो शाखाएं स्पष्ट रूप से लक्षित हुई हैं- निर्गुण धारा के ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी (सूफी) शाखा तथा सगुणधारा की रामभक्ति और कृष्णभक्ति शाखा।”(2)(आचार्य

रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास,वाणी प्रकाशन, पेपरबैक्स 2022,पृ संख्या 8) यह विभाजन इस मान्यता के प्रतीक हैं कि इस काव्यधारा की अपनी साधना पद्धति में ज्ञान और भक्ति को सर्वाधिक महत्व देते हैं। इस धारा में कवियों ने ढाई आखर के प्रेम के समक्ष सारी दुनिया को हेय बताया है। कबीर इस कथन को साखी के माध्यम उल्लेखित किया और स्पष्ट शब्दों में कहा है-

''पोथी पढि-पढि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम,पढें सौ पण्डित होय।।''(3)(पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, हिंदी ग्रंथ -रत्नाकर कार्यालय, मुंबई 1942,पृ संख्या 35) संत कबीर के लिए प्रेम ही संसार के लिए सब कुछ है। उनके लिए वेद, पुराण, कुरान कुछ का मायने नहीं था। कबीर सच्चे प्रेम के उपासक थे। उनके प्रेम में वासना नहीं थी। कबीर के व्यक्तित्व में प्रेम की प्रधानता थी। मध्यकालीन भारतीय समाज राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक संकीर्णता और सामाजिक असमानताओं से ग्रस्त था।एक ओर शास्त्र आधारित ज्ञान कुछ विशेष वर्गों तक सीमित हो गया था तो दूसरी ओर कर्मकाण्डीय भक्ति जनसामान्य के लिए बोझ बन चुकी थी। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन में ज्ञान और भक्ति दोनों को जनभाषा में उतारकर लोक सुलभ बनाया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में- "धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति, इन तीनों धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा में रहता है। किसी एक के भी अभाव से वह विकलांग रहता है। कर्म के बिना वह लूला- लंगड़ा, ज्ञान के बिना अंधा और भक्ति के बिना हृदयविहीन क्या, निष्प्राण रहता है?''(4)(आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन पेपरबैक्स 2022,पृ संख्या 60)

भारतीय समाज में इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भक्ति कवियों ने ज्ञान और भक्ति के द्वंद्व को समाप्त करने एक ही साधना के दो आयामों के रूप में प्रस्तुत किया।भारतीय दर्शन में मोक्ष के प्रमुख साधन के रुप में ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनों को स्वीकार किया गया हैं, जबकि गीता में भक्ति को ज्ञान का स्वाभाविक विकास कहा गया है -''भक्त्या मामथिजानाति यावान्य श्चास्मि तत्वत''।(5)(श्रीमद्भागवत,महर्षि वेदव्यास प्रणीत, गीताप्रेस गोरखपुर, 18 वें अध्याय, 55 श्लोक ,(18.55में) लोक किया गया है। सगुण और निर्गुण के भक्ति में कोई अंतर नहीं है। लेकिन भक्ति की अवधारणा को पुष्ट करने में वैचारिक अंतर पाते हैं,वह अंतर अवतारवाद और लीलावाद को लेकर है। सगुण अवतार और लीलावाद पर ही आधारित है। यह वजह है कि भक्ति काव्य में एक ओर जहां कबीर, रैदास से लेकर निर्गुणी संतों हुए वहीं सगुण में यह आकर राम-कृष्ण में बंटता हुआ दिखाई देता है। रामभक्ति धारा में तुलसीदास आते हैं, वहीं कृष्ण भक्ति शाखा में सूरदास और मीराबाई जैसे आते हैं।इस तरह हम पाते हैं कि तथा भक्ति कालीन दर्शन में जो भक्ति हैय तुलसीदास की किस तरह से देखते हैं कि उसमें भक्ति और ज्ञान को किस रूप में रखा जा सकता है। तुलसीदास की रामभक्ति काव्य की परंपरा की बात करें तो भारतीय संदर्भ से राम कथा वाल्मीकि से आरंभ होती है और फिर यह आधुनिक काल तक आती है। न कि केवल तुलसीदास रामकथा में पर चर्चा की बल्कि इस के पूर्व आख्यानों की कतार में बौद्ध रामायण,'दशरथ जातक,'जैन रामायण-पउमचरिऊ',उडिया रामायण,कंबल रामायण',आदि भी हैं।। इस तरह से 300 से अधिक रामायणों की चर्चा हैं। यह अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग तरीकों से रचनाओं की चर्चा हैं। कई क्षेत्रीय बोलियों पर भी आधारित है।

ज्ञान की परंपरा में तर्क होना जरूरी है। इसलिए निर्गुणी संतो के पास में भक्ति में ज्ञान की बात कबीरदास और रविदास के विचारों में पाते हैं। ज्ञान तार्किक होनी चाहिए। तर्क के लिए प्रश्न, प्रश्न के लिए तर्क होना चाहिए। जाति को समाज में बहुत सारी समस्याएं आज भी हैं। कबीर का कहना है या प्रश्न करना है कि -

"जो तू बामन बामनि जाया, आन बाट है क्यों नहीं आया।

जो तू मूर्ख तुरकनि जाया,तौ भीतर खतना क्यों न कराया ।।"(6)(कबीर ग्रंथावली,संपादक डॉ श्यामसुंदर दास, प्रकाशन संस्थान2012,पृ संख्या 43) कबीर का जन्म चौदहवीं शताब्दी लगभग का था, जब भारतीय समाज में जाति व्यवस्था अत्यंत कठोर थी। ब्राह्मण स्वयं को जन्म से श्रेष्ठ मानते थे और शूद्रों को अछूत समझा जाता था। दूसरी ओर, हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच भी धार्मिक विभाजन गहरा था। कबीर ने दोनों पक्षों की रुढियों पर प्रहार किया। उन्होंने ब्राह्मण से पूछा कि यदि वह जन्म से श्रेष्ठ है, तो उसका जन्म किसी विशेष मार्ग से क्यों नहीं हुआ? इसी प्रकार मुसलमान से कहा कि यदि खतना धार्मिक पहचान का प्रतीक है, तो वह जन्म के पहले ही क्यों नहीं हुआ? यहां कबीर बाह्य चिह्न की निरर्थकता को उजागर करते हैं। यह जो 'क्यों' का सवाल है यह 'क्यों' ही तर्क को जन्म देता है और ज्ञान की कुंजी को उजागर करता है। इस तरह अपनी शोध को मध्यकालीन भक्ति काल में ज्ञान और भक्ति को देख सकते हैं।

निर्गुण भक्ति काव्य में ज्ञान और भक्ति

निर्गुण भक्ति में ईष्ट को किसी रूप, रंग या आकार -प्रकार में सीमित नहीं किया गया है।वह निराकार ब्रह्म है, जिसमें पर प्रत्येक प्राणी के भीतर विद्यमान है। इसलिए निर्गुण संतों ने बाहरी पूजा पद्धतियों की अपेक्षा अंतःकरण की शुद्धि को अधिक महत्व दिया। ज्ञान यहां आत्म चेतना का पर्याय है और भक्ति उस चेतना की भावात्मक अभिव्यक्ति है। निर्गुण संतों का मानना है कि यदि मन शुद्ध नहीं है तो तीर्थ, व्रत और पूजा सब व्यर्थ हैं। इसलिए संतों ने मन की साधना को ही सर्वोपरि बताया है। कबीर के अनुसार भक्ति का अर्थ है आत्मा का परमात्मा में विलय ।जब तक अहंकार है तब तक न ज्ञान संभव है ना भक्ति, इसलिए कबीर कहते हैं-

"जब मैं था तब हरि नहीं,अब हरि हैं मैं नाहि।

सब अंधियारा मिट गया, दीपक देखा माहि"।।(7) (कबीर ग्रंथावली, संपादक श्यामसुंदर दास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग 1874,पृ संख्या15,) यहां 'मैं' का लोप ही ज्ञान है और उसी में भक्ति की परिपूर्णता है। कबीर के अनुसार ज्ञान मनुष्य को भीतर से जागृत करता है और भक्ति उसे जागृति को प्रेम में परिणत करती है। संत रविदास ने भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना की और आंतरिक शुद्धता पर बल दिया। वे सामाजिक समता और आत्मिक पवित्रता के समर्थक थे। रविदास का एक पद है-"ऐसा चाहुं राज मैं, जहां मिलै सबन को अन्न छोटे-बड़े सब समझे बसै, रैदास रहे प्रसन्न।"(8)(पावन अमृतवाणी, श्रीगुरु रविदास जी निशान साहिब,पृ संख्या 96)यहां ज्ञान सामाजिक चेतना के रूप में प्रकट होता है और भक्ति मानव समता की भावना के रूप में है। उनके लिए भक्ति केवल व्यक्तिगत युक्ति नहीं, बल्कि समाज की मुक्ति भी है। निर्गुण संत परंपरा में सहजोबाई का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह 18वीं शताब्दी की ऐसी संत कवयित्री हैं जिन्होंने ज्ञान और भक्ति के समन्वय को सहज, सरल और अनुभव परक भाषा में व्यक्त किया। वे संत चरणदास कि शिष्या थी और उनके काव्य में गुरु -ज्ञान,आत्मबोध तथा प्रेम में भक्ति का अद्भुत संतुलन दिखाई देता है। सहजोबाई के मत अनुसार गुरु ने आध्यात्मिक के ज्ञान प्रदान किये, इसके प्रभाव से जीवन प्रकाशित हो उठा और भक्ति की शक्ति सजीव हो गई।

"सहजो गुरु दीपक दीयों, रोम रोम उजियार।

तीन लोक दृष्टा भई,मिंटो भ्रम अंधियार।।"(9)(हिंदी के जनपद संत, जगजीवन राम, मोतीलाल वाराणसी दास पटना1963, पृ संख्या 91)

सगुण भक्ति काव्य में ज्ञान और भक्ति:

सगुण भक्ति में ईश्वर को रूप, रंग आकार,शक्ति एवं साकार रूप को भी अभिव्यक्त किया गया है। राम-कृष्ण आदि में आराध्य के रूप में स्वीकार किया गया हैं। सगुण भक्ति में ईश्वर के साथ भावात्मक संबंध स्थापित किया गया हैं। भक्त ईश्वर के गुणों का कीर्तन, स्मरण और चिंतन करता है। इस भक्ति में पूजा, आरती, भजन, कथा आदि का विशेष महत्व होता है। ईश्वर उपासना से भक्त को मानसिक शांति, श्रद्धा और आत्मिक संतोष प्राप्त होता है,क्योंकि वह ईश्वर को अपने निकट और सजीव रूप से अनुभव करता है। सगुण भक्ति काव्य में भाव, प्रेम और समर्पण का प्रधान स्थान है, किंतु यह समझना आवश्यक है कि यहां ज्ञान का अभाव नहीं है। सगुण संतों ने ज्ञान और भक्ति को विरोधी न मानकर एक- दूसरे को पूरक माना है। उसके लिए ज्ञान वह आधार है जिस पर भक्ति का भावात्मक महल खड़ा होता है। सगुण भक्ति में ईश्वर साकार, सुलभ और प्रेमास्पद है, भक्त और भगवान के बीच दास्य, वात्सल्य, सांख्य,या माधुर्य जैसे संबंध स्थापित होते हैं। किंतु यह संबंध केवल भावात्मक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक ज्ञान पर आधारित होता है। भक्त पहले यह समझता है कि संसार नश्वर है और परम सत्य ईश्वर हैय यही ज्ञान उसे भक्ति की ओर ले जाता है। गोस्वामी तुलसीदास सगुण रामभक्ति के सर्वोच्च कवि है। उसके काव्य में ज्ञान और भक्ति का अद्भुत संतुलन है। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-

"भगति ग्यानहिं नहिं कुछ भेदा।

उभय हरहिं भव संभव खेला।।"(10)(श्री रामचरितमानस, टिकाकारहनुमान प्रसाद पोद्दार ,उत्तरकांड ,विनीत प्रकाशक पृ संख्या 1025,)भक्ति काव्य की समन्वय चेतना का घोष है। तुलसी के यहां ज्ञान, विवेक है और भक्ति उसका भावात्मक रूप है। इस चौपाई में तुलसीदास ज्ञान और भक्ति को समान रूप से संसार के दुखों का नाश करने वाले बताते हैं। उनके अनुसार ज्ञान विवेक देता है, जिसमें मनुष्य सत्य-असत्य का भेद समझता हैय भक्ति उसे विवेक को प्रेम और समर्पण में बदल देती है। भक्तिकाल की प्रमुख संत कवयित्री मीराबाई ने अपने काव्य और जीवन के माध्यम से ज्ञान और भक्ति का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया। उनके व्यक्तित्व आध्यात्मिक ज्ञान की गहरी चेतना थी। वह सगुण भक्ति परंपरा की भक्ति थी, किंतु उनकी साधना में आत्मज्ञान और वैराग्य का तत्व स्पष्ट दिखाई देता है। मीराबाई की भक्ति का केंद्र श्री कृष्ण है,जिन्हें वह 'गिरधर गोपाल' का कर संबोधित करती हैं। उनके प्रसिद्ध पद- "मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।"(11)(संपादक नरोत्तमदास स्वामी, मीरा मुक्तावली, राजस्थानी ग्रंथकर जोधपुर2024, पृ संख्या 1)उनकी एक निष्ठभक्ति का परिचायक है। यहां भक्ति की प्रकाष्ठा दिखाई देती है, परंतु इसके भीतर ज्ञान का भाव भी छुपा है। 'दूसरों न कोई'कहना अद्वैत चेतन की ओर संकेत करता है, जहां भक्त और भगवान के अतिरिक्त संसार का कोई महत्व नहीं रह जाता। यह ज्ञान का ही स्वरुप है की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

निर्गुणधारा और सगुणधारा में ज्ञान और भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन

ज्ञान और भक्ति मानव जीवनपर्यंत का प्राण है। जिस प्रकार पौधे का पोषण जल तथा वायु द्वारा होता है, इस प्रकार मानव हृदय भक्ति सेय बुद्धि ज्ञान से ही सशक्त और सुखी होता है। भक्ति और ज्ञान वह प्यास है जो कभी बुझती नहीं और न कभी उसका विनाश होता है। वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है। समस्त धर्म ग्रंथो का सार ज्ञान और भक्ति ही है। इसके ही बीजारोपण हेतु भगवान की कथाओं संतों का ज्ञानवादियों का तर्क प्रचार -प्रसार किया जाता है। भक्ति को ज्ञान, कर्म, योग से श्रेष्ठ कहा गया है। 'भागवत'में भी ऐसा माना गया है कि विश्व के कल्याण का भावरू ज्ञानमार्ग एवं भक्तिमार्ग पर

निर्भर करता है। काव्य में न केवल जीवन का वर्णन होता है बल्कि उसकी व्याख्या भी होती है। व्यापक मानवीय शक्तियों का अन्वेषण या उद्घाटन कविताओं में होता है। यह जीवन की व्याख्या करते हुए उसे सार्थकता प्रदान करती है। कविता मानव एकता की प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा करने का एक साधन है तो ज्ञान और भक्ति मन को एकाग्र करने का साधन। भक्ति मन से संबंधित है तो ज्ञान तर्क से संबंधित है। मानव और समाज के लिए जैसे काम का विशेष महत्व होता है, वैसे ही मानव जीवन के उत्कर्ष हेतु ज्ञान और भक्ति की अपनी भूमिकाएं होतीहैं। रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में -"भक्ति की निष्पति श्रद्धा और प्रेम के योग से होती है।"(12)(रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 64)साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल या ज्ञान काल कह सकते हैं। निर्गुण ज्ञान और भक्ति साहित्य की विशेषताओं तथा महत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है कि अंतस्साधना पर बल, समानता का भाव, अहंकार का त्याग एवं लोक जीवन से जुड़ाव, निर्गुण ईश्वर में विश्वास, एवं आध्यात्मिकता की चाह ने गुरु के महत्व को सबसे अधिक महत्वपूर्ण बताया। का विशेष महत्व रहा है। यह सभी गुरु की महिमा से ही संभावित है। वह भक्ति और ज्ञान का दावा तथा ज्ञानचक्षुओं का उद्धघाटन है। कीर्तन,भजन आदि में भगवान के गुणों का वर्णन सभी शाखाओं में कवियों ने किया कबीर ने गुरु के महत्व को रुपायित करते हुए कहा है-

"गुरु गोविंद दोऊ खडे, काके लागूं पांय।

बलिहारी गुरु अपने, गोविंद देव बताय।।"(13) (संपा डॉ ० नगेंद्र, डॉ०हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास,मयूर पेपर -बैक्स 2013,पृ संख्या 82,)ईश्वर तक पहुंचाने का मार्ग गुरु के माध्यम से ही प्रशस्त होता है। गुरु ही वह प्रकाश है जो साधक को परम सत्य का बोध कराता है। आध्यात्मिक जीवन में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। क्योंकि वही जीव और ब्रह्म के बीच सेतु का कार्य करता है। कबीर की यह वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, क्योंकि ज्ञान और मार्गदर्शन के बिना जीवन का उद्देश्य अधूरा रह जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भक्ति काव्य में ज्ञान और भक्ति, तथा निर्गुण और सगुण दोनों धाराएं भिन्न होते हुए भी एक ही आध्यात्मिक सत्य की ओर ले जाने वाले मार्ग हैं। इन दोनों ने मिलकर भारतीय समाज में भक्ति, समानता,मानवता और आध्यात्मिक चेतना को मजबूत किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संपा० डॉ० नगेंद्र, डॉ० हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स 2013, पृष्ठ संख्या 82
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन पेपरबैक्स 2013, पृष्ठ संख्या 8
3. पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर,हिंदी ग्रंथ -रत्नाकर कार्यालय बंबई 1942, पृ संख्या 35
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन पेपरबैक्स, 2022,पृ संख्या 60
5. श्रीमद् भागवतपुराण,महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, 18 वेंअध्याय, 55वें श्लोक (18.55)
6. संपा० श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान 2012, पृ संख्या 43
7. वही० पृष्ठ संख्या 15

8. पवन अमृतवाणी,श्री गुरुरविदास,निशान साहिब,पृ संख्या 96

9. हिंदी के जनपद संत,जगजीवन राम, मोतीलाल वाराणसी पटना1963,पृ संख्या 91

10. श्री रामचरितमानस,टिकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, उत्तरकांड,विनीत प्रकाशक, पृ संख्या 1025

11. संपा० नरोत्तमदास स्वामी,मीरा मुक्तावली, राजस्थानी ग्रंथकार जोधपुर 2024,पृ संख्या 1

12. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन 2022पृ संख्या 64

13. संपा०डॉ०नगेंद्र, डॉ०हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास मयूर पेपरबैक्स2013,पृ संख्या 82

आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावः एक अनुशीलन

शोध-निर्देशक

प्रो0(डॉ0)सच्चिदानंद सिन्हा

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, (अर्थशास्त्र विभाग

मगध विश्व विद्यालय, बोधगया

एवं

शोधार्थी

रंजीत कुमार

श्रम एवं समाज कल्याण विभाग, मगध विश्व विद्यालय, बोधगया

आर्थिक विकास किस तरह जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव डालता है, इस प्रश्न को कोल एवं हुबर ने इस प्रकार उत्तरित किया है। कोल एवं हूबर के अनुसार-जनसंख्या के तीन कारकों-जन्म, मृत्यु एवं देशान्तरण में एक या अधिक का क्रियाशील होना इसे प्रभावित करता है।

जनसंख्या वृद्धि का प्रतिष्ठित अर्थषास्त्रीय सिद्धान्त, जो मुख्यतया माल्थस के नाम से जुड़ा हुआ है, के अनुसार आय में होने वाली कोई भी वृद्धि (मुख्यतया गरीब वर्गों में) जन्म दर में वृद्धि की प्रवृत्ति रखती है एवं अधिक निश्चयात्मक एवं शक्ति से मृत्यु-दर में कमी की प्रवृत्ति रखती है।

आर्थिक विकास का जनसंख्या पर पड़ने वाले प्रभावों की जननांकिकी परिर्वतन या संक्रमण सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत किसी भी देश की जनसंख्या को आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है।

प्रथम अवस्था

आर्थिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में लोगों का आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण संकुचित होता है। अनेक आवष्यक सुविधाओं के अभाव में इन क्षेत्रों में जन्म एवं मृत्यु दर अधिक होती है, अपर्याप्त और असंतुलित भोजन, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव, गन्दगी, महामारियों के कारण इस अवस्था में मृत्यु-दर अधिक होती है, संकुचित सामाजिक रीति-रिवाजों, धार्मिक कारणों और परिवार नियोजन की सुविधाओं के अभाव के कारण इन देशों में जन्म दर अधिक रहती है। बच्चे पालन-पोषण का भार, मुख्यतया कृषक परिवारों में महिलाओं के रहता है। बच्चों के शिक्षा की लागत न्यूनतम होती है क्योंकि इनको निचले स्तर तक की शिक्षाा दी जाती है। बच्चे छोटी अवस्था से ही काम में हाथ बंटाने लगते हैं और मां-बाप के लिए वृद्धावस्था में सुरक्षा का परम्परागत स्रोत हैं। विशेष तः षिषु मृत्यु की अधिक दर से यह संकेत मिलता है कि अधिक बच्चे पैदा करके ही उक्त सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। ऐसे समाज में जनसंख्या वृद्धि दर वास्तव में अधिक

नहीं होती, क्योंकि उच्च जन्म-दर को उच्च-मृत्यु दर संतुलित कर देती है। यह अवस्था अधिक जन-वृद्धि की संभावना की अवस्था है, क्योंकि इसमें वास्तविक वृद्धि कम होती है।

द्वितीय अवस्था

आय के स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनता अपने भोजन में सुधार करने योग्य हो जाती है। आर्थिक विकास के कारण सर्वांगीण विकास होता है, जिसमें परिवर्तन का सुधार भी समविष्ट है। परिवर्तन के सुधार के फ्लस्वरूप खाद्य-संभरण नियमित हो जाता है। इन सब कारणों से मृत्यु-दर कम हो जाती है। इस प्रकार द्वितीय अवस्था में जन्म दर उंची रहती है किन्तु मृत्यु दर में गिरावट आने लगती है। परिणामतः जनसंख्या वृद्धि की गति मन्द पड़ जाती है। मृत्यु दर में कमी के द्वारा प्रथम अवस्था की उच्च जन्म वृद्धि संभावना द्वितीय अवस्था में उच्च वास्तविक वृद्धि बन कर प्रकट होती है। उच्च जन्म दर और घटती हुई मृत्यु दर के परिणामस्वरूप इस अवस्था में परिवार का आकार बड़ा हो जाता है।

संक्षेप में, इस अवस्था में सरकार और जनता के प्रयत्नों के कारण आर्थिक विकास की गति बढ़ती है। तकनीकी ज्ञान का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। आधुनिक कारखानों की स्थापना होती है। बैंक, परिवहन, शिक्षाा, चिकित्सा आदि सुविधाओं में विस्तार होता है। खाद्यान्न उत्पादन बढ़ता है, मृत्यु दर कम हो जाती है और जन्म दर में कोई कमी नहीं आती, क्योंकि मानसिक, सामाजिक और धार्मिक विचारधारा में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होता है। इस अवस्था को जनसंख्या विस्फोट की अवस्था भी कहते हैं। बिहार राज्य वर्तमान समय में ऐसी ही अवस्था से गुजर रहा है।

तृतीय अवस्था

आर्थिक विकास के कारण अर्थव्यवस्था का स्वरूप कृषिक से परिवर्तित होकर औद्योगिक हो जाता है। औधौगिकरण में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों से औधौगिक और वाणिज्यिक केन्द्रों की तरफ स्थानान्तरित होने लगती है। शहरी जनसंख्या में वृद्धि और स्त्रियों के लिए घर से बाहर आर्थिक कार्यों में लगाव के फलस्वरूप आर्थिक गतिशील ता की संभावना बढ़ जाती है, जिसे छोटे परिवारों के सहारे भली-भांति प्राप्त किया जा सकता है। परिणामतः बड़े परिवार की आर्थिक लाभदायकता कम हो जाती है। आर्थिक विकास का एक लक्षण बढ़ता हुआ नगरीकरण है और ग्रामों के विपरीत नगरों में बच्चे अमुल्य निधि नहीं, भार समझे जाता है। उचित जीवन स्तर बनाये रखने की चेतना, औद्योगिक अर्थव्यवस्था में परिवार छोटा करने की प्रेरणा देती है।

इस अवस्था में जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ही निम्न स्तर पर होते हैं। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान से उद्योग प्रधान की ओर बढ़ती है। परिवहन सुविधाओं के कारण लोगों की गतिशील ता बढ़ने लगती है। महिलाओं को भी प्राप्त होने लगता है, जीवन स्तर उच्चतम स्तर को छूने लगता है, जिससे उनके मानसिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होता है, बड़े परिवारों की आर्थिक उपयोगिता समाप्त होने लगती है। लोग परिवार नियोजन तथा संतति निग्रह के साधनों का उपयोग करने लगते हैं। बिहार की स्थिति के विशेष में उपरोक्त आधारों पर यह कहा जा सकता है कि जनांकिकी संक्रमण की द्वितीय अवस्था में प्रवेष कर चुका है। फलतः प्रदेश में मृत्यु दर में गिरावट और जन्म दर में स्थिरता की प्रवृत्ति ने असन्तुलन पैदा कर दिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा गया है कि मृत्यु दर का नियंत्रण अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि मृत्यु-दर घटाने के उपाय वाह्य जात होने के कारण जनता उन्हें तत्परतापूर्वक स्वीकार कर लेती है क्योंकि जन्म दर में कमी के लिए अन्तरजात तत्वों को अपनाया या सामाजिक मनोवृत्तियों और प्रथाओं में तथा परिवार के आकार और

विवाह आदि के सम्बन्ध में कमी की अपेक्षा इसके लिए अधिक समय अपेक्षित होता है।

परिणमतः जन्म-दर में कमी बिलम्ब से आती है। हमारे देश एवं प्रदेश के लिए यह अवस्था सर्वाधिक संकटमय हैं जितनी जिस देश की जनसंख्या अधिक होती उतनी ही मात्रा में उस कम विकसित देश को निम्न जीवन स्तर के फन्दे से निकलने के लिए अधिक मात्रा में आवष्यक न्यूनतम प्रयास करने होगें।

जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास, औधोगीकरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विकास के पथ पर बढ़ने से पूर्व अर्थव्यवस्था में एक स्थिरता होती है क्योंकि उर्वरता की उच्च दर के साथ मृत्यु दर भी अधिक रहती है। जन्म दर अधिक होती है, क्योंकि पूर्व औधोगिक समाज में विवाह कम आयु में एवं सर्वव्यापक रूप में सम्पन्न होता हैं आर्थिक आवष्यकताओं के कारण, बच्चे भी काम करना शुरू कर देते हैं, जब तक औपचारिक शिक्षाा की व्यवस्था नहीं होती, इनका कार्य पारिवारिक आय में वृद्धि करना होगा जबकि मृत्यु दर अधिक है। परिवार अधिक बच्चों की इच्छा रखेगा जिससे जीवन-यापन हो सके। पूर्व औधोगिक समाज की एक महत्वपूर्ण विशेष ता षिषु मृत्यु दर का अधिक होना है। इन समाजों में मृत्यु दर अधिक होने से जनसंख्या वृद्धि की कोई समस्या नहीं होती। आर्थिक विकास होने के साथ, लोगों के आहार एवं रहन-सहन के स्तर में सुधार हो जाता है। लोगों के रहन-सहन की दषाओं का ज्ञान हो जाता है, केवल खाद्यान्नों के उत्पादन में ही वृद्धि नहीं होती। आर्थिक विकास होने के साथ, लोगों के आहार एवं रहन-सहन के स्तर में सुधार हो जाता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्तर में भी सुधार हो जाता है। परिणामतः मृत्यु दर में कमी हो जाती हैं। यह वह अवस्था है, जब मृत्यु-दर कमी हो जाती है लेकिन जन्म दर पूर्ववत रहती है।

राज्य में योजनावद्ध विकास के फलस्वरूप जहां एक ओर कृषि उत्पादन में नवीनतम एवं आधुनिक तकनीकों के प्रयोग के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर कृषिगत तकनीकी परिवर्तन का भी कृषि उत्पादकता पर वांछनीय प्रभाव पड़ा है। यद्यपि इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि नवीनतम तकनीकी परिवर्तनों का लाभ मुख्य रूप से बड़े किसानों को ही मिलता है। राज्य में छोटे व सीमान्त किसानों की संख्या अधिक है जो आज भी पूंजीगत वस्तुओं के क्रय करने की असमर्थता के कारण परम्परागत साधनों पर निर्भर हैं। योजनाबद्ध विकास के साथ ही राज्य में औधोगिक प्रक्रिया भी आरंभ की गयी है, यद्यपि राज्य के निवासियों को इसमें मात्र श्रमिक की ही भूमिका निभाने को मिल पायी है फिर भी औधोगीकरण की प्रक्रिया के चलते हुए राज्य में जहां एक ओर औधोगिक गतिशील ता आयी है, वहीं दूसरी ओर प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि दृष्टिगोचर हो रही है। जहां तक जनसंख्या वृद्धि और उस पर नियंत्रण का प्रष्न है, वर्तमान समय में जन सामान्य परिवार नियोजन के विभिन्न तरीकों से अवगत हो रहे हैं और परिवार नियोजन के प्रति अपनी रूचि स्पष्ट रूप से प्रदर्षित कर रहे हैं। यद्यपि उनके उभर आज भी परम्परागत वातावरण का प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रकार यदि राज्य में विकास के कार्य हुए हैं और इससे जनसामान्य लाभान्वित हुआ है, भले ही यह लाभ उन्हें उस सीमा तक न मिल पाया हो जितना कि योजनावद्ध प्रयास के द्वारा उन्हें मिलना चाहिए।

निष्कर्सः-

इस प्रकार हम देखते है जनसंख्या वृद्धि और आर्थीक विकास का अन्योन्याश्रय सम्वध है। जिस अर्थव्यवस्था में विकास की गति धीमी है तो जैसे-जैसे विकास होगा वहाँ प्रारंभ में जनसंख्या तीव्रगती से बढ़ती है किन्तु जब विकास कि गती तीव्र होती है तो जनसंख्या कि वृद्धि दर कम होती है उदाहरण के लिये जो भी विकसित देश जैसे रूस, जर्मनी, जापान, अमेरिका, वहाँ जनसंख्या वृद्धि दर कम है और विकासशील देश जैसे भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान आदी में जनसंख्या वृद्धि

दर तिव्र है। अर्थात आर्थीक विकास का जनसंख्या वृद्धी पर प्रभाव पड़ता है।

संदर्भ

1. कोल,जे0 अन्सले एवं हुबर,एम0एडंगर-पापुलेषन ग्रोथ एण्ड इकोनामिक डेवलपमेण्ट इन लो-इनकम कन्ट्रीज-ए वेस स्टडी आफ् इण्डियाज प्रास्पेक्ट्स-1958,पृ0-18.
2. आशिष बोस-द पापूलेशन प्राब्लम इन इण्डिया-इकोनामिक डेवलपमेण्ट एण्ड कल्चरल चेंज, वाल्यूम-7,पृ0-235-1959.
3. जार्ज,सी0जयदन-पापुलेषन एण्ड इकोनामिक ग्रोथ, मार्च,1989
4. ए0ओ0हर्षमैन - द स्ट्रेटजी आफ् इकोनामिक डेवलपमेण्ट, पृ0-13
5. कोल एवं हूबर - पापुलेषन ग्रोथ एण्ड इकोनामिक डेवलपमेण्ट इन लो-इनकम कन्ट्रीज-ए केस स्टडी आफ् इण्डियाज प्रोस्पपेक्ट्स,1969,पृ0-9.
6 कोल एवं हूबर-पूर्वोक्त ग्रन्थ-पू0-11.
7 लेवेन्स्टीन,एच0-इकोनामिक लैकवर्डनेस एण्ड इकोनामिक ग्रोथ, पृष्ठ संख्या-151-152

राजनीति ध्रुवीकरण और सोशल मीडिया

जय प्रकाश मिश्रा
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
प्रो. राजेंद्र सिंह: (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तावना

डिजिटल युग में संचार के साधनों ने न केवल सूचना के आदान.प्रदान को तीव्र और सुलभ बनाया हैए बल्कि सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं को भी गहराई से प्रभावित किया है। विशेष रूप से सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मकृजैसे फेसबुकए ट्विटर ;अब एक्सद्धए और व्हाट्सएपकृने जनमत निर्माण की प्रक्रिया को अभूतपूर्व रूप से परिवर्तित किया है। इन माध्यमों ने नागरिकों को अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक सशक्त मंच प्रदान किया हैए किंतु साथ ही यह मंच राजनीतिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। राजनीतिक ध्रुवीकरण से अभिप्राय समाज में विचारोंए मान्यताओं और राजनीतिक रुझानों का दो या अधिक विपरीत ध्रुवों में विभाजित हो जाना हैए जहां संवाद और सहमति की संभावनाएं सीमित हो जाती हैं। सोशल मीडिया के एल्गोरिदमिक ढांचेए ष्इको चेंबरष् प्रभावए और ष्फिल्टर बबलष् जैसी अवधारणाएं इस ध्रुवीकरण को और अधिक गहरा करती हैं। उपयोगकर्ता प्रायः उन्हीं सूचनाओं और विचारों के संपर्क में आते हैं जो उनकी पूर्वधारणाओं के अनुरूप होते हैंए जिससे वैकल्पिक दृष्टिकोणों के प्रति असहिष्णुता बढ़ती है।

भारतीय संदर्भ मेंए जहां विविधता और बहुलता सामाजिक संरचना की आधारशिला हैंए सोशल मीडिया का प्रभाव और भी जटिल हो जाता है। चुनावी राजनीतिए धार्मिक पहचानए जातीय विभाजन और क्षेत्रीय असमानताओं जैसे कारकों के साथ मिलकर यह प्लेटफॉर्म कई बार समाज में तनाव और विभाजन को तीव्र करता है। इसके अतिरिक्तए फेक न्यूज़ए ट्रोलिंग और डिजिटल प्रोपेगेंडा जैसी प्रवृत्तियां लोकतांत्रिक विमर्श की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। यह शोध पत्र राजनीति में बढ़ते ध्रुवीकरण और सोशल मीडिया के बीच अंतर्संबंध का विश्लेषण करने का प्रयास करता है। इसका उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म राजनीतिक विचारों को आकार देते हैंए ध्रुवीकरण को बढ़ाते हैंए और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। साथ हीए यह अध्ययन इस बात की भी पड़ताल करेगा कि इस प्रवृत्ति को नियंत्रित करने के लिए कौन.से नीतिगत और सामाजिक उपाय अपनाए जा सकते हैंए ताकि एक संतुलित और समावेशी लोकतांत्रिक वातावरण सुनिश्चित किया जा सके।

राजनीतिक ध्रुवीकरण की अवधारणा

राजनीतिक ध्रुवीकरण का अर्थ राजनीतिक विचारधाराओंए मूल्यों और नीतियों के आधार पर समाज का दो या अधिक विरोधी समूहों में विभाजित होना है। जब राजनीतिक दलोंए नेताओं और नागरिकों के बीच मतभेद इतने गहरे हो जाते हैं कि संवाद और समझौते की संभावना कम हो जाती हैए तब इसे राजनीतिक ध्रुवीकरण कहा जाता है।

राजनीतिक विज्ञान में ध्रुवीकरण को सामान्यतः दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है

1. वैचारिक ध्रुवीकरण (Ideological Polarization)

यह तब होता है जब राजनीतिक दल या नागरिक अलग.अलग वैचारिक ध्रुवों पर स्थित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए वामपंथ और दक्षिणपंथ के बीच तीव्र वैचारिक विभाजन।

2. भावनात्मक ध्रुवीकरण (Affective Polarization)

यह ध्रुवीकरण केवल विचारों तक सीमित नहीं रहता बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी विरोध उत्पन्न करता है। इसमें व्यक्ति अपने राजनीतिक समूह को श्रेष्ठ और विरोधी समूह को शत्रु के रूप में देखने लगता है।

आज के समय में सोशल मीडिया इन दोनों प्रकार के ध्रुवीकरण को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

सोशल मीडिया की प्रकृति और विशेषताएँ

सोशल मीडिया आधुनिक संचार का एक सशक्त माध्यम हैए जिसने सूचनाए विचार और भावनाओं के आदान.प्रदान की प्रकृति को पूरी तरह बदल दिया है। यह इंटरनेट आधारित प्लेटफार्मों के माध्यम से व्यक्तियोंए समूहों और संस्थाओं को जोड़ता हैए जैसे फेसबुकए ट्विटरए इंस्टाग्राम आदि। इसकी प्रकृति बहुआयामीए गतिशील और सहभागी है। सोशल मीडिया की प्रकृति को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि यह एक इंटरैक्टिव माध्यम हैए जहाँ उपयोगकर्ता केवल जानकारी प्राप्त ही नहीं करतेए बल्कि स्वयं सामग्री का निर्माण और प्रसार भी करते हैं। इसी कारण इसे श्यूज़र जनरेटेड कंटेंटश् का मंच कहा जाता है। यह वैश्विक स्तर पर लोगों को जोड़ने की क्षमता रखता हैए जिससे विभिन्न देशों और संस्कृतियों के बीच संवाद संभव हो पाता है। इसकी एक प्रमुख विशेषता तात्कालिकता हैए क्योंकि यहाँ सूचनाएँ बहुत तेजी से फैलती हैं। साथ हीए यह नेटवर्क आधारित संरचना पर कार्य करता हैए जिसमें व्यक्ति आपसी संबंधों के माध्यम से जुड़ते हैं और जानकारी का आदान.प्रदान करते हैं।

सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं को सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान करता हैए जहाँ वे पोस्टए लाइकए कमेंट और शेयर के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। यह एकतरफा संचार के बजाय संवाद और अंतःक्रिया को बढ़ावा देता हैए जिससे विचारों का आदान.प्रदान अधिक प्रभावी होता है। इसकी वायरल प्रकृति के कारण कोई भी सूचना कम समय में व्यापक स्तर पर फैल सकती है। इसके अतिरिक्तए यह प्लेटफॉर्म उपयोगकर्ता की रुचियों के अनुसार सामग्री प्रस्तुत करता हैए जिससे अनुभव अधिक व्यक्तिगत हो जाता है।

सोशल मीडिया की पहुँच भी अत्यंत व्यापक हैए क्योंकि इसे उपयोग करना आसान और किफायती हैए जिससे यह बड़ी आबादी तक पहुँचता है। यह विभिन्न प्रकार के माध्यमोंक-जैसे टेक्स्टए चित्रए वीडियो और ऑडियोकृके रूप में सामग्री साझा करने की सुविधा देता है। इसके कारण यह अभिव्यक्ति का एक लोकतांत्रिक मंच बन जाता हैए जहाँ हर व्यक्ति अपनी बात खुलकर रख सकता है। इस प्रकारए सोशल मीडिया एक शक्तिशाली संचार माध्यम हैए जो समाजए राजनीति और अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डालता हैए हालांकि इसके साथ कुछ चुनौतियाँ भी जुड़ी होती हैंए जिनका

संतुलित समाधान आवश्यक है।

सोशल मीडिया और राजनीतिक ध्रुवीकरण का संबंध

सोशल मीडिया और राजनीतिक ध्रुवीकरण के बीच गहरा संबंध पाया जाता है। कई शोध यह संकेत करते हैं कि सोशल मीडिया प्लेटफार्मों की संरचना और उपयोग की प्रकृति ध्रुवीकरण को बढ़ावा दे सकती है।

1. इको.चैंबर प्रभाव (Echo Chamber Effect)

सोशल मीडिया पर लोग अक्सर उन्हीं व्यक्तियों और समूहों से जुड़ते हैं जिनके विचार उनके समान होते हैं। इससे एक इको.चैंबर बन जाता है जहाँ व्यक्ति केवल वही विचार सुनता है जो उसके अपने विचारों को पुष्ट करते हैं।

इस स्थिति में विरोधी विचारों से संवाद समाप्त हो जाता है और व्यक्ति अपने विचारों में और अधिक कठोर हो जाता है।

2. एल्गोरिथम आधारित सूचना चयन

सोशल मीडिया प्लेटफार्म उपयोगकर्ताओं की रुचि के अनुसार सामग्री दिखाने के लिए एल्गोरिथम का उपयोग करते हैं। परिणामस्वरूप उपयोगकर्ता को वही सामग्री अधिक दिखाई देती है जो उसकी पूर्व धारणाओं के अनुरूप होती है।

इससे व्यक्ति का दृष्टिकोण संकीर्ण हो जाता है और वह विरोधी दृष्टिकोणों को समझने में असमर्थ हो जाता है।

3. फेक न्यूज और दुष्प्रचार

सोशल मीडिया पर फेक न्यूज और गलत सूचना का प्रसार बहुत तेजी से होता है। राजनीतिक दल और विभिन्न हित समूह कभी.कभी जानबूझकर गलत सूचनाएँ फैलाते हैं ताकि विरोधी पक्ष को बदनाम किया जा सके।

इस प्रकार की गलत सूचना समाज में अविश्वास और वैमनस्य को बढ़ाती हैए जिससे राजनीतिक ध्रुवीकरण और गहरा हो जाता है।

4. ट्रोलिंग और घृणास्पद भाषा

सोशल मीडिया पर ट्रोलिंग और घृणास्पद टिप्पणियाँ भी राजनीतिक ध्रुवीकरण को बढ़ाती हैं। कई बार राजनीतिक समर्थक विरोधी विचार रखने वाले लोगों को अपमानित या धमकाते हैं।

इससे स्वस्थ लोकतांत्रिक संवाद कमजोर हो जाता है और समाज में तनाव बढ़ता है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में सोशल मीडिया और ध्रुवीकरण

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में सोशल मीडिया और राजनीतिक ध्रुवीकरण का संबंध अत्यंत जटिल और प्रभावशाली बन

चुका है। इंटरनेट और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के विस्तार ने दुनिया भर में विचारों के आदान.प्रदान को तेज किया हैए जिससे लोकतांत्रिक भागीदारी को नई ऊर्जा मिली है। लोग विभिन्न देशों के राजनीतिक मुद्दों से जुड़ते हैंए अपने विचार साझा करते हैं और वैश्विक विमर्श का हिस्सा बनते हैं। हालांकिए यही प्रक्रिया कई बार विचारों के टकराव और ध्रुवीकरण को भी बढ़ावा देती है।

सोशल मीडिया के एल्गोरिद्म अक्सर उपयोगकर्ताओं को उनकी पसंद के अनुरूप सामग्री दिखाते हैंए जिससे श्इको चैंबरश् की स्थिति बनती है। इसमें व्यक्ति केवल समान विचारधारा वाले लोगों और सूचनाओं के संपर्क में रहता हैए जिससे उसकी सोच अधिक कट्टर और एकांगी हो सकती है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में सहमति के बजाय असहमति और विभाजन बढ़ने लगता है।

इसके अलावाए फेक न्यूज़ए दुष्प्रचार और बाहरी हस्तक्षेप भी वैश्विक स्तर पर राजनीतिक ध्रुवीकरण को गहरा करते हैं। कई बार विदेशी शक्तियाँ सोशल मीडिया के माध्यम से जनमत को प्रभावित करने का प्रयास करती हैंए जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। फिर भीए यदि सोशल मीडिया का उपयोग जिम्मेदारी और जागरूकता के साथ किया जाएए तो यह वैश्विक संवादए सहिष्णुता और लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ करने का सशक्त माध्यम बन सकता है।

भारत में सोशल मीडिया और राजनीतिक ध्रुवीकरण

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र हैए जहाँ विविधता इसकी सबसे बड़ी शक्ति है। लेकिन डिजिटल युग में सोशल मीडिया ने इस विविधता को एक नई दिशा दी है। हाल के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया ने राजनीतिक संचार की प्रकृति को पूरी तरह बदल दिया हैकृअब सूचना का उत्पादनए प्रसार और उपभोग तेज़ और व्यापक हो गया है। इसके परिणामस्वरूप नागरिकों की राजनीतिक भागीदारीए चुनावी सक्रियता और जनमत निर्माण की प्रक्रिया में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। हालाँकिए शोध यह भी दर्शाते हैं कि सोशल मीडिया राजनीतिक ध्रुवीकरण को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। श्सेलेक्टिव एक्सपोज़रश् और श्एल्गोरिदमिक फिल्टरिंगश् जैसी प्रक्रियाएँ लोगों को केवल उन्हीं विचारों तक सीमित कर देती हैंए जो उनकी पूर्व मान्यताओं से मेल खाते हैं। इससे श्इको चैंबरश् बनते हैंए जहाँ विरोधी विचारों के लिए जगह कम हो जाती है।

भारतीय संदर्भ में युवाओं पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि सोशल मीडिया के उपयोग और वैचारिक ध्रुवीकरण के बीच सकारात्मक संबंध हैकृअर्थात जितना अधिक लोग राजनीतिक सामग्री से जुड़ते हैंए उतनी ही उनकी विचारधारा कठोर होती जाती है। इसके अतिरिक्तए प्रभावशाली व्यक्तियों और संगठित डिजिटल अभियानों की भूमिका भी महत्वपूर्ण हैए जो अक्सर पक्षपाती सामग्री के माध्यम से समाज में विभाजन को और गहरा करते हैं।फेक न्यूज और दुष्प्रचार भी इस प्रक्रिया को तीव्र बनाते हैं। शोध में यह पाया गया है कि भावनात्मक और उत्तेजक सामग्री अधिक तेजी से फैलती हैए जिससे समूहों के बीच अविश्वास और विरोध बढ़ता है। हाल के विश्लेषणों में यह भी सामने आया है कि सामाजिक और धार्मिक मुद्दों से जुड़ी भ्रामक सूचनाएँ सामुदायिक तनाव को बढ़ा सकती हैं और लोकतांत्रिक संवाद को कमजोर कर सकती हैं इसके बावजूदए यह समझना आवश्यक है कि सोशल मीडिया केवल समस्या नहीं हैए बल्कि समाधान का हिस्सा भी बन सकता है। यदि इसका उपयोग जिम्मेदारी से किया जाएए तो यह पारदर्शिताए जवाबदेही और नागरिक सहभागिता को बढ़ावा दे सकता है। नीति.निर्माताओं और शोधकर्ताओं ने सुझाव दिया है कि मीडिया साक्षरताए

एल्गोरिदमिक पारदर्शिता और तथ्य.जांच तंत्र को मजबूत करना इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हो सकते हैं।

अंततःए भारत में सोशल मीडिया और राजनीतिक ध्रुवीकरण का संबंध एक द्वैध प्रकृति का हैकृयह लोकतंत्र को सशक्त भी करता है और चुनौती भी देता है। आवश्यकता इस बात की है कि तकनीकी प्रगति के साथ.साथ नैतिक और बौद्धिक जिम्मेदारी भी विकसित की जाए। यदि नागरिकए सरकार और सोशल मीडिया कंपनियाँ मिलकर संतुलित दृष्टिकोण अपनाएँए तो यह माध्यम लोकतंत्र को विभाजित करने के बजाय उसे और अधिक समावेशी और सुदृढ़ बना सकता है।

लोकतंत्र पर प्रभाव

लोकतंत्र पर राजनीतिक ध्रुवीकरण और सोशल मीडिया का प्रभाव मिश्रित स्वरूप का होता हैए जिसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्ष शामिल हैं। एक ओरए ध्रुवीकरण के कारण नागरिकों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ती है। लोग राजनीति के प्रति अधिक रुचि लेने लगते हैं और अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति सजग होते हैं। सोशल मीडिया मंचों पर होने वाली बहसें और विचार.विमर्श नागरिकों को मतदान करनेए आंदोलनों में भाग लेने तथा सार्वजनिक मुद्दों पर सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे जनसहभागिता में वृद्धि होती है और लोकतंत्र अधिक जीवंत बनता है। साथ हीए विभिन्न विचारधाराओं की स्पष्टता सामने आती हैए जिससे मतदाताओं को विकल्पों को समझने में सुविधा मिलती है। मीडिया द्वारा की जाने वाली आलोचना शासन को अधिक जवाबदेह बनाती हैए क्योंकि सरकार पर जनमत का दबाव बढ़ता है।

इसके अतिरिक्तए सोशल मीडिया हाशिए पर पड़े वर्गों को अपनी आवाज़ उठाने का मंच प्रदान करता हैए जिससे उनकी समस्याएँ मुख्यधारा में आती हैं। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा भी बढ़ती हैए जिसके कारण दल बेहतर नीतियाँ बनाने का प्रयास करते हैं। विरोधी विचारों की उपस्थिति से मुद्दों पर गहन चर्चा और विश्लेषण संभव होता हैए जिससे लोकतांत्रिक विमर्श समृद्ध होता है। साथ हीए मीडिया सत्ता के केंद्रीकरण पर अंकुश लगाने में सहायक होता है और नागरिकों में आलोचनात्मक सोच का विकास करता है। सूचना के तीव्र प्रसार के कारण सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी तेज हो जाती हैए जिससे सुधारात्मक कदम जल्दी सामने आते हैं।

हालांकि इसके नकारात्मक प्रभाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। राजनीतिक ध्रुवीकरण के कारण समाज में विभाजन बढ़ता है और श्हम बनाम वेश् की मानसिकता विकसित होती हैए जिससे सामाजिक एकता कमजोर पड़ती है। लोग विरोधी विचारों को सुनने के बजाय उन्हें अस्वीकार करने लगते हैंए जिससे स्वस्थ संवाद की परंपरा प्रभावित होती है। सोशल मीडिया पर फेक न्यूज़ और दुष्प्रचार का प्रसार जनता को भ्रमित करता है और निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। गलत सूचनाओं के आधार पर लिए गए निर्णय लोकतंत्र की गुणवत्ता को कमजोर कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्तए उकसाने वाली और भड़काऊ सामग्री सामाजिक तनाव और हिंसा की संभावनाओं को बढ़ा देती है। पक्षपातपूर्ण और सनसनीखेज मीडिया निष्पक्ष पत्रकारिता को नुकसान पहुँचाता हैए जिससे लोगों का भरोसा कम होता है। लगातार नकारात्मक प्रचार के कारण न्यायपालिकाए चुनाव आयोग जैसी संस्थाओं पर भी अविश्वास बढ़ सकता हैए जो लोकतंत्र के लिए खतरनाक संकेत है।

अतः कहा जा सकता है कि राजनीतिक ध्रुवीकरण और सोशल मीडिया लोकतंत्र को एक ओर सशक्त बनाते हैंए तो दूसरी ओर उसे चुनौती भी देते हैं। इनके प्रभाव को संतुलित और सकारात्मक बनाए रखने के लिए जिम्मेदार उपयोगए

तथ्यात्मक जानकारी का प्रसार और सहिष्णु संवाद की संस्कृति को बढ़ावा देना आवश्यक है।

समाधान और नीतिगत उपाय

राजनीतिक ध्रुवीकरण को कम करने और सोशल मीडिया के सकारात्मक उपयोग को बढ़ावा देने के लिए समकालीन लोकतांत्रिक समाज में कई प्रभावी उपाय अपनाए जा सकते हैं। सबसे पहलेए लोगों में मीडिया साक्षरता विकसित करना आवश्यक है ताकि वे सही और गलत जानकारी के बीच अंतर कर सकें तथा फेक न्यूज़ के प्रभाव से बच सकें। इसके साथ हीए तथ्य.जांच की प्रक्रिया को मजबूत बनाना और विश्वसनीय संस्थाओं को प्रोत्साहित करना जरूरी हैए जिससे गलत सूचनाओं के प्रसार पर अंकुश लगाया जा सके। सोशल मीडिया कंपनियों को अपने एल्गोरिद्म में पारदर्शिता लानी चाहिए ताकि एकतरफा और भ्रामक सामग्री का प्रभाव कम हो।

इसके अतिरिक्तए नागरिकों को विभिन्न विचारधाराओं से परिचित कराना और उन्हें विविध दृष्टिकोणों को समझने के लिए प्रेरित करना चाहिएए जिससे सहिष्णुता और संवाद की संस्कृति विकसित हो सके। जिम्मेदार डिजिटल नागरिकता को बढ़ावा देना भी आवश्यक हैए ताकि लोग ऑनलाइन व्यवहार में नैतिकता और संयम का पालन करें। नफरत फैलाने वाली और भड़काऊ सामग्री पर सख्त नियंत्रण होना चाहिएए जिससे सामाजिक सौहार्द बना रहे। साथ हीए सकारात्मक और तथ्य.आधारित बहस को प्रोत्साहित करने से लोकतांत्रिक विमर्श अधिक स्वस्थ और सार्थक बन सकता है।

राजनीतिक शिक्षा का विस्तार करते हुए विद्यालयों और महाविद्यालयों में संतुलित और जागरूक नागरिक तैयार किए जाने चाहिए। स्वतंत्र और निष्पक्ष मीडिया को समर्थन देना भी जरूरी हैए ताकि निष्पक्ष जानकारी जनता तक पहुँच सके। इसके साथ हीए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स को गलत सूचना और दुष्प्रचार के लिए जवाबदेह ठहराना चाहिए। स्थानीय स्तर पर समुदाय.आधारित पहलें आयोजित कर संवाद और सहयोग को बढ़ावा दिया जा सकता हैए जिससे सामाजिक एकता मजबूत हो।

इसके अलावाए सकारात्मकए शिक्षाप्रद और रचनात्मक सामग्री के प्रसार को बढ़ावा देना चाहिएए ताकि सोशल मीडिया का उपयोग केवल मनोरंजन तक सीमित न रहकर ज्ञानवर्धन का माध्यम भी बने। फर्जी और बॉट अकाउंट्स की पहचान कर उन्हें हटाना आवश्यक हैए जिससे ऑनलाइन वातावरण अधिक विश्वसनीय बने। सरकार को भी संतुलित और प्रभावी नीतियां बनानी चाहिएए जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए अनुचित सामग्री पर नियंत्रण रख सकें। अंततःए उपयोगकर्ताओं को अपने सोशल मीडिया उपयोग पर आत्म.नियंत्रण रखना चाहिए और समय.सीमा निर्धारित करनी चाहिए। इन सभी उपायों के माध्यम से न केवल राजनीतिक ध्रुवीकरण को कम किया जा सकता हैए बल्कि सोशल मीडिया को एक सकारात्मकए शिक्षाप्रद और लोकतांत्रिक संवाद के प्रभावी माध्यम के रूप में विकसित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

राजनीतिक ध्रुवीकरण और सोशल मीडिया के बीच का संबंध आधुनिक लोकतंत्र की एक जटिल वास्तविकता को दर्शाता है। सोशल मीडिया ने सूचना के प्रवाह को तीव्र और व्यापक बनाया हैए जिससे नागरिकों की राजनीतिक भागीदारी और जागरूकता में वृद्धि हुई है। यह मंच विभिन्न विचारों को अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान करता है और लोकतांत्रिक संवाद को सशक्त बनाता है।हालाँकिए यही माध्यम कई बार ध्रुवीकरण को भी बढ़ावा देता है। एल्गोरिदम आधारित कंटेंट

वितरण लोगों को ऐसे विचारों के संपर्क में अधिक लाता हैए जो उनके पूर्वाग्रहों को मजबूत करते हैं। परिणामस्वरूपए समाज में वैचारिक विभाजन गहराता है और संवाद की जगह टकराव लेने लगता है। फेक न्यूज, दुष्प्रचार और भ्रामक सूचनाएँ इस समस्या को और गंभीर बना देती हैंए जिससे लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया प्रभावित होती है।

इस स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि सोशल मीडिया का उपयोग जिम्मेदारी और विवेक के साथ किया जाए। मीडिया साक्षरताए तथ्य.जांच और संतुलित दृष्टिकोण को बढ़ावा देकर ध्रुवीकरण के दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है। साथ हीए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म और सरकारों को भी पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करनी चाहिए। अंततःए सोशल मीडिया न तो पूर्णतः लाभकारी है और न ही पूर्णतः हानिकारकय इसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि समाज और व्यक्ति इसका उपयोग कैसे करते हैं। यदि इसे सकारात्मक दिशा में प्रयुक्त किया जाएए तो यह लोकतंत्र को अधिक समावेशीए जागरूक और सशक्त बना सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Cass R. Sunstein. (2017). #Republic: Divided Democracy in the Age of Social Media. Princeton University Press.
2. Eli Pariser. (2011). The Filter Bubble: What the Internet Is Hiding from You. Penguin Press.
3. Yochai Benkler., Robert Faris., & Hal Roberts. (2018). Network Propaganda: Manipulation, Disinformation, and Radicalization in American Politics. Oxford University Press.
4. Shanto Iyengar., & Sean J. Westwood. (2015). Fear and loathing across party lines: New evidence on group polarization. American Journal of Political Science, 59(3), 690–707.
5. Pippa Norris., & Ronald Inglehart. (2019). Cultural Backlash: Trump, Brexit, and Authoritarian Populism. Cambridge University Press.
6. Manuel Castells. (2012). Networks of Outrage and Hope: Social Movements in the Internet Age. Polity Press.
7. Clay Shirky. (2008). Here Comes Everybody: The Power of Organizing Without Organizations. Penguin Books.
8. Zeynep Tufekci. (2017). Twitter and Tear Gas: The Power and Fragility of Networked Protest. Yale University Press.
9. Robert D. Putnam. (2000). Bowling Alone: The Collapse and Revival of American Community. Simon & Schuster.
10. Brian McNair. (2018). Fake News: Falsehood, Fabrication and Fantasy in Journalism. Routledge.
11. Chopra, R. (2014). Technology and nationalism in India: Cultural negotiations from colonialism to cyberspace. Cambria Press.

12. Kumar, A. (2019). Indian social media politics: New political communication. Sage Publications.

13. Mehta, N. (2015). India on television: How satellite news channels have changed the way we think and act. HarperCollins.

14. Mustafa, S. (2016). The lonely prophet: V. P. Singh and his times. HarperCollins India.

15. Rodrigues, U. M. (2020). Digital media and political communication in India. Oxford University Press.

बिहार में खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ: रोजगार सृजन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की नई उम्मीद

डॉ आकाश कुमार
(गेस्ट असिस्टेंट प्रोफेसर, P.M.I.R./L.S.W.
विभाग, B.N.M.U. मधेपुरा)

सारांश

बिहार, भारत का एक कृषि-प्रधान राज्य है, जहाँ की लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। राज्य में मखाना, गेहूँ, लीची, मक्का, धान, और सब्जियों जैसे कृषि उत्पादों की प्रचुरता है, किन्तु उचित खाद्य प्रसंस्करण सुविधाओं के अभाव में किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। यह शोध-पत्र बिहार में खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की वर्तमान स्थिति, ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव, उनके रोजगार सृजन में योगदान तथा इस क्षेत्र में विद्यमान चुनौतियों और संभावनाओं का विश्लेषण करता है।

मुख्य शब्द:- ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव, खाद्य प्रसंस्करण, रोजगार सृजन में योगदान, कृषि उत्पादों की प्रचुरता आदि ।

प्रस्तावना

भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में उभर रहा है। यह उद्योग न केवल किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने में सहायक है, बल्कि रोजगार के नए अवसर भी सृजित करता है। बिहार जैसे कृषि-प्रधान राज्य में इस उद्योग की संभावनाएं अत्यंत व्यापक हैं।

बिहार देश के उन राज्यों में से एक है जहाँ प्रति वर्ष लाखों मीट्रिक टन कृषि उत्पाद तैयार होते हैं, परंतु उचित भंडारण एवं प्रसंस्करण सुविधाओं के अभाव में लगभग 30 से 40 प्रतिशत उत्पाद नष्ट हो जाते हैं। इससे किसानों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना इस समस्या का एक कारगर समाधान है।

राज्य सरकार एवं केंद्र सरकार द्वारा 'प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना', 'PMFME योजना' तथा 'बिहार कृषि निवेश प्रोत्साहन नीति' जैसी योजनाओं के माध्यम से खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इन प्रयासों से बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को नई गति मिल रही है।

2. बिहार की कृषि संसाधन एवं खाद्य प्रसंस्करण की संभावनाएं

बिहार में विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पाद प्रचुर मात्रा में उत्पादित होते हैं, जो खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए आधार प्रदान करते हैं।

कृषि उत्पाद	प्रमुख जिले	प्रसंस्करण संभावना
मखाना	दरभंगा, मधुबनी, सुपौल	पैकेट बंद मखाना, मखाना खीर मिक्स
लीची	मुजफ्फरपुर, वैशाली, समस्तीपुर	जूस, जैम, डिब्बाबंद फल
मक्का	खगड़िया, बेगूसराय, समस्तीपुर	स्टार्च, कॉर्न फ्लेक्स, पशुचारा
गेहूँ	रोहतास, कैमूर, बक्सर	आटा, मैदा, सूजी
आम	भागलपुर, बांका, मुंगेर	पल्प, अचार, जूस, स्क्वैश
सब्जियां	नालंदा, पटना, गया	प्रसंस्कृत सब्जियाँ, सॉस, केचअप

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बिहार में खाद्य प्रसंस्करण के लिए पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध है। विशेष रूप से मखाना, जिसका विश्व में 90 प्रतिशत से अधिक उत्पादन बिहार में होता है, इस उद्योग में अग्रणी भूमिका निभा सकता है।

3. खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की वर्तमान स्थिति

3.1 राज्य में स्थापित प्रमुख खाद्य प्रसंस्करण क्लस्टर

बिहार सरकार ने विभिन्न जिलों में खाद्य प्रसंस्करण क्लस्टर स्थापित किए हैं। हाजीपुर में मेगा फूड पार्क की स्थापना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इसके अलावा, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, भागलपुर, पटना और गया जैसे जिलों में भी खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ स्थापित की जा रही हैं।

3.2 PMFME योजना का प्रभाव

केंद्र सरकार की 'प्रधानमंत्री सूक्ष्म खाद्य उद्योग उन्नयन योजना' (PMFME) के अंतर्गत बिहार में हजारों छोटी खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों को वित्तीय सहायता प्रदान की गई है। इस योजना के तहत प्रत्येक लाभार्थी को 10 लाख रुपये तक की क्रेडिट-लिंक्ड सब्सिडी मिलती है। वर्ष 2024-25 तक बिहार में इस योजना के अंतर्गत लगभग 25,000 से अधिक इकाइयों को लाभ मिला है।

4. रोजगार सृजन में योगदान

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग बिहार में रोजगार सृजन का एक प्रमुख स्रोत बनता जा रहा है। इस उद्योग की विशेषता यह है कि यह न केवल शहरी क्षेत्रों में, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराता है।

4.1 प्रत्यक्ष रोजगार

खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों में काम करने वाले श्रमिक, तकनीशियन, प्रबंधक और अन्य कर्मचारी प्रत्यक्ष रोजगार का हिस्सा हैं। बिहार में स्थापित खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों में वर्तमान में अनुमानतः 3 से 5 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार मिला हुआ है। मखाना प्रसंस्करण उद्योग में अकेले मिथिला क्षेत्र में लगभग 50,000 से अधिक परिवार जुड़े हुए हैं।

4.2 अप्रत्यक्ष रोजगार

खाद्य प्रसंस्करण से जुड़े परिवहन, पैकेजिंग, विपणन, और आपूर्ति श्रृंखला जैसे क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होते हैं। विशेषज्ञों का अनुमान है कि प्रत्यक्ष रोजगार की तुलना में अप्रत्यक्ष रोजगार का अनुपात 1:3 होता है अर्थात् एक प्रत्यक्ष रोजगार के साथ तीन अप्रत्यक्ष रोजगार भी सृजित होते हैं।

4.3 महिला सशक्तिकरण

खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जीविका (बिहार ग्रामीण जीविकोपार्जन परियोजना) के माध्यम से लाखों महिलाएं स्वयं सहायता समूहों के रूप में अचार, पापड़, मखाना, बेसन के लड्डू, सत्तू जैसे उत्पाद बनाकर अपनी आजीविका चला रही हैं। बिहार में लगभग 10 लाख से अधिक महिलाएं जीविका से जुड़ी हैं, जिनमें से एक बड़ा हिस्सा खाद्य प्रसंस्करण में संलग्न है।

5. ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

5.1 किसानों की आय में वृद्धि

खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना से किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य मिलने लगा है। उदाहरण के तौर पर, कच्चे मखाना की तुलना में प्रसंस्कृत और पैकेज्ड मखाना की कीमत 3 से 5 गुना अधिक होती है। इसी प्रकार, कच्चे आम की तुलना में आम का पल्प या जूस किसानों को दोगुना से तिगुना मूल्य दिलाता है।

5.2 प्रवासी मजदूरों की वापसी

COVID-19 महामारी के बाद बिहार में वापस लौटे प्रवासी मजदूरों के लिए खाद्य प्रसंस्करण उद्योग ने रोजगार के नए रास्ते खोले हैं। राज्य सरकार ने 'मुख्यमंत्री उद्यमी योजना' के तहत युवाओं को खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ स्थापित करने

के लिए 10 लाख रुपये तक की आर्थिक सहायता प्रदान की है, जिससे हजारों युवाओं ने लघु उद्योग स्थापित किए हैं।

5.3 ग्रामीण अवसंरचना का विकास

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विस्तार से ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क, बिजली, जल आपूर्ति और संचार जैसी अवसंरचना का भी विकास हुआ है। इससे समग्र ग्रामीण विकास को गति मिली है।

6. प्रमुख चुनौतियाँ

बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विकास में कई चुनौतियाँ हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है:

अवसंरचना की कमी: पर्याप्त कोल्ड स्टोरेज, परिवहन व्यवस्था और बिजली की अनियमितता प्रमुख बाधाएं हैं।

बाजार तक पहुँच: ग्रामीण खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के उत्पादों को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाजार तक पहुँचाने में समस्याएं हैं।

प्रशिक्षित जनशक्ति का अभाव: खाद्य प्रसंस्करण तकनीक में दक्ष कुशल श्रमिकों की कमी है।

वित्तीय संसाधनों की कमी: छोटे उद्यमियों को बैंकों से ऋण प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

गुणवत्ता मानकों का पालन: FSSAI और अन्य नियामक मानकों का अनुपालन छोटी इकाइयों के लिए चुनौतीपूर्ण है।

7. सरकारी नीतियाँ एवं योजनाएं

केंद्र और राज्य सरकार ने खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक योजनाएं शुरू की हैं:

प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना (PMKSY): मेगा फूड पार्क, कोल्ड चेन, और खाद्य प्रसंस्करण क्लस्टर के विकास के लिए।

मुख्यमंत्री उद्यमी योजना (बिहार): अनुसूचित जाति/जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के युवाओं के लिए 10 लाख रुपये की सहायता।

PMFME योजना: सूक्ष्म खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के उन्नयन के लिए 10,000 करोड़ रुपये की योजना।

बिहार औद्योगिक निवेश प्रोत्साहन नीति 2016: खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों को पूंजी अनुदान और कर में छूट।

जीविका परियोजना: महिला स्वयं सहायता समूहों को खाद्य प्रसंस्करण में प्रशिक्षण एवं वित्तीय सहायता।

8. भविष्य की संभावनाएं एवं सुझाव

बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के सतत विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

कोल्ड चेन इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास: हर प्रखंड स्तर पर कोल्ड स्टोरेज की स्थापना की जाए, ताकि उपज की बर्बादी रोकी जा सके।

कौशल विकास केंद्र: खाद्य प्रसंस्करण तकनीक में युवाओं एवं महिलाओं को प्रशिक्षित करने के लिए जिला स्तर पर कौशल विकास केंद्र स्थापित किए जाएं।

मखाना निर्यात नीति: मखाना के प्रसंस्करण और निर्यात को बढ़ावा देने के लिए विशेष नीति बनाई जाए।

ऑनलाइन विपणन को प्रोत्साहन: स्थानीय उत्पादों को ई-कॉमर्स प्लेटफार्म से जोड़कर बाजार का विस्तार किया जाए।

निजी निवेश को आकर्षित करना: बिहार में खाद्य प्रसंस्करण में निजी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए अनुकूल नीतिगत वातावरण बनाया जाए।

FPO (किसान उत्पादक संगठन) को मजबूत करना: किसानों को संगठित कर उन्हें खाद्य प्रसंस्करण श्रृंखला से जोड़ा जाए।

9. निष्कर्ष

बिहार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की संभावनाएं अत्यंत उज्ज्वल हैं। राज्य की समृद्ध कृषि विरासत, सस्ती श्रम शक्ति, और सरकार की सहायक नीतियों के साथ यह उद्योग बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक नया आयाम दे सकता है। मखाना, लीची, आम और मक्का जैसे उत्पादों की प्रसंस्करण क्षमता बढ़ाकर बिहार न केवल देश में बल्कि विश्व बाजार में भी अपनी पहचान बना सकता है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विकास से रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण, प्रवासी मजदूरों के पुनर्वास, और किसानों की आय वृद्धि जैसे बहुआयामी लाभ प्राप्त होंगे। यह उद्योग बिहार के ग्रामीण विकास की धुरी बन सकता है, बशर्ते कि अवसंरचना, वित्त, प्रशिक्षण और विपणन की चुनौतियों को सुनियोजित नीतियों के माध्यम से दूर किया जाए।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ केवल एक उद्योग नहीं, बल्कि बिहार की ग्रामीण जनता के लिए एक नई आशा की किरण हैं, जो उन्हें गरीबी से निकाल कर समृद्धि की ओर ले जा सकती हैं।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2023-24।
2. बिहार सरकार, उद्योग विभाग, बिहार औद्योगिक निवेश प्रोत्साहन नीति 2016।
3. NABARD, बिहार राज्य फोकस पेपर 2023-24, मुम्बई।
4. सिंह, रामनाथ (2022). 'बिहार में मखाना उद्योग: संभावनाएं और चुनौतियाँ।' कृषि अर्थशास्त्र पत्रिका, 14(2), 45-62।
5. जीविका, बिहार ग्रामीण जीविकोपार्जन परियोजना, वार्षिक प्रतिवेदन 2022-23।

6. APEDA (Agricultural and Processed Food Products Export Development Authority), भारतीय मखाना निर्यात आंकड़े 2023।

7. राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, बिहार हॉर्टिकल्चर डेटा 2023-24।

मुक्तिबोध की साहित्यिक कृतियों में रचनात्मक योगदान

डॉ0 धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,
गवर्नमेंट कामलानगर कॉलेज चोंगते, मिजोरम

सारांश:

मुक्तिबोध की कविताओं में एक स्थायी तनाव है। यह तनाव उन्होंने मार्क्सवादी, वर्ग-विश्लेषक की तरह नहीं अपितु एक आत्म-सजग व्यक्ति की तरह जाना है, जिसे अपनी कमजोरियों का परेशान कर देने वाला अहसास है। निम्न मध्य वर्ग के व्यक्ति को निरे समाजशास्त्रीय वास्तविकता के संदर्भों में जानने पर हम, इस तनाव या बेचैनी का अर्थ नहीं जान पायेंगे। दुहरापन, छिपाव-दुराव, झूठा अहं, ढोंगी मुद्रा उनमें नहीं थी। तभी वे कह उठते हैं- ''काव्य सत्य को मैं बदनाम नहीं करना चाहता। मेरा प्रश्न सीधा-साधा है। काव्य में जीवन के कुछ मूल्य और दृष्टि प्रकट होती है। प्रश्न यह है कि क्या यह दृष्टि आचरण से सामंजस्य स्थापित कर चुकी है अथवा आचरण से सामंजस्य स्थापित करने की प्रेरणा दे रही है।....वह काव्य सत्य है वह एक वंचना स्वप्न की उपज अहं के प्रेक्षक का परिणाम अथवा आत्माभिनय या साहित्यिक रूप हो सकता है। मुक्तिबोध यहाँ सिर्फ कविता में विचार प्रकट कर देने से अपने कर्तव्यों की इतिश्री नहीं समझते अपितु वास्तविक धरातल पर भी उसे कर्म में परिणित करना चाहते हैं। सिर्फ मार्क्सवाद के चश्में से मुक्तिबोध को परखने वालों को चाहिए कि वह उनकी लिखी सभी रचनाएँ मूल रूप में पढ़े, तभी निर्णय लें।

बीज शब्द- प्रतिबद्धता, अस्तित्ववादी, मार्क्सवादी, क्रांति, संघर्ष, शोषण, आत्महन्ता, परिस्थिति, शब्दकोष, वैचारिक।

प्रायः मुक्तिबोध की प्रतिबद्धता को समझने के लिए वर्ग-चेतना, क्रान्ति के प्रति उनकी आस्था और मार्क्सवादी विचारों का आधार लिया जाता है। उनके साहित्य के वैचारिक-परिप्रेक्ष्य को उनकी आत्मग्रस्तता, उनके काव्य-नायक के व्यक्तित्त्व और उनके भीतर मौजूद सतत् बेचैनी को अस्तित्ववादी या आधुनिकतावाद जैसे सूत्रों से जोड़ कर देखा जाता है। लेकिन ऐसा करना भ्रामक है, क्योंकि ऐसा करने से उनकी कविता की संरचना और उस कविता की आत्मा को नहीं समझा जा सकता है।

किसी भी कविता का प्रभाव जनमानस पर एक-सा नहीं पड़ता। कविता को हर पाठक अपने अनुभव, विचार, संस्कार और व्यक्तिगत अभिरूचि के हिसाब से समझता है। मुक्तिबोध ने स्वयं अपने काव्य में निहित वैचारिकता को अनेक कृतियों में अभिव्यक्त किया है, जो पाठक की अपनी कल्पना के आधार पर सोचने का अवसर प्रदान करती है, ताकि वह उनके साहित्य में निहित वैचारिक पक्ष को केवल एक धारणा की तरह न ले कर एक संघर्ष की तरह अनुभव कर सके।

वस्तुतः बहुस्तरीय और जटिलतम युग-जीवन के यथार्थ को रचने की प्रक्रिया में द्वन्द्व और टकराहट ही सर्जन की

वह क्रियात्मक शक्ति है, जिससे मुक्तिबोध के काव्य का आलोक फूटता है, और अनेक घात-प्रतिघात, छाया-प्रतिछाया, ध्वनि-प्रतिध्वनि के माध्यम से कविता के अर्थ को उच्चतम शिखरों की ओर प्रवाहित करता है। वह चक्करदार सीढ़ी जिसका जिक्र उनकी कविताओं में बार-बार आया है, उसका वर्णन 'एक साहित्यिक की डायरी' में करते हुए वह कहते हैं कि ''उन्नति की बहुमंजिली इमारत में घुसकर ऊपर तक जाने के लिए सिर्फ एक ही जीना है, वह भी चक्करदार। उस पर बहुत भीड़ है। बड़ी ठेलमठेल है। लेखक कहता है, मैं उसके साथ खड़ा रहूँगा, उसके साथ नहीं लेकिन परिस्थति ने उसको विकल्प ही कहाँ दिया है? वह परिस्थिति से जबरदस्ती विकल्प लेना चाहता है। इसका परिणाम यह होता है कि ठेलमठेल करती हुई भीड़ के नीचे वह कुचला जाता है या इस इमारत के बाहर उसको एकदम खिसक जाना पड़ता है, या वह ठेल दिया जाता है और साधारणतः ऐसे लोग अपनी वर्ग-श्रेणी से गिरे हुए होते हैं। श्रेणी से गिरे हुए की मनःस्थिति हमेशा खराब रहती है।''1 मुक्तिबोध ऐसी सफलता नहीं चाहते थे, जिससे आत्म-गौरव खोना पड़े। शालीनता के नाम पर सफेद झूठी खुशामद करनी पड़े। ''जिन व्यक्तियों को आप क्षण भर टालरेट (सहन) नहीं कर सकते, उनके दरबार का सदस्य बनाना पड़े। हाँ, जो लोग यह सब कर सकते हैं, वे अपनी यश पताकाएँ फहराते हुए घर में लौटते हैं और कितने आत्मविश्वास से बात करते हैं! मानों उन्हीं का राज्य है। बहुरूपिया शब्द शायद पुराना हो गया है, लेकिन उसकी कला इन दिनों अत्यंत परिष्कृत हो कर भभक उठी है।''2 ''इसलिए ही मुक्तिबोध इस वर्ग को अपनी कविताओं में बार-बार धिक्कारते हैं। उन्हें अच्छे से पता है कि इन दो घोड़ों पर एक साथ सवारी नहीं की जा सकती कि लेखक अपनी भौतिक, सांसारिक उन्नति के लिए दन्द-फन्द भी करता रहे और आत्मोन्नति की कोशिश भी करता रहे। इसलिए उन्होंने दूसरा रास्ता चुना जिससे उनके कविता में इतनी धार आ सकी है। मुक्तिबोध ने शब्द की साधना का रास्ता चुना था।''3 शब्द की साधना शब्दकोष के ज्ञान से सम्भव नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी साधना है, जो अनेक स्तरीय निष्ठा की माँग करती है। सबकी भाषा को अपनी भाषा और अपनी इस भाषा को फिर से सबकी भाषा बनाने का कठिन और जटिल कार्य है। प्याज के छिलकों की तरह व्यक्तित्व के नामालूम कितने पहलू हैं, पर व्यक्ति अपना चरित्र साक्षात्कार नहीं करता, अन्यों का करने बैठ जाता है, ''इसलिए साहित्य मनुष्य के आंशिक साक्षात्कारों के बिम्बों की एक मालिका तैयार करता है और उसका सारा सत्यत्व और औचित्य मनुष्य के जीवन या अन्तर्गत में स्थित है, चूँकि सभी मनुष्यों के अन्तर्गत होते हैं, इसलिए उनके औचित्य और सत्यत्व की अनुभूति सार्वजनीन होती है।''4 और कविता का कार्य भी यही है। मुक्तिबोध स्वयं मार्क्सवादी होते हुए भी मार्क्सवाद और उसके समर्थकों की कमजोरियों से पूर्णतः अवगत थे जिसका उल्लेख उन्होंने 'एक साहित्यिक की डायरी' में बार-बार किया है। अपने पहले के और समकालीन काव्य आंदोलनों से मुक्तिबोध का गहरा असंतोष यहाँ परिलक्षित होता है। सच्चा कवि स्वयं का ही दुश्मन होता है। तभी शायद दूधनाथ सिंह जी ने निराला पर लिखी अपनी पुस्तक का नाम 'निरालाः एक आत्महंता आस्था' रखा। क्योंकि जो घटनाएँ कवि के समय में घट रही हैं, वह उनसे आश्वस्त नहीं है। आत्म-भर्त्सना और आत्म-धिक्कार के द्वारा वह इसी दर्द को स्वर दे रहा होता है-

''ज्यादा लिया और दिया बहुत कम

मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम।''[5]

अपने समय में मुक्तिबोध ने जो सवाल उठाये थे, वे आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण द्वारा वर्गहीन एवं शोषण मुक्त-समाज के निर्माण में लगा दिया। लेकिन अपने प्रयास में उन्हें वांछित सफलता नहीं मिली।

वर्तमान परिदृश्य में जहाँ नामवर आलोचकों की नवधा भक्ति करके संगठन को चंदा दे कर कवि हर संकलन पर

पुरस्कार पा रहा है। लिखने से पहले 'सम्मान' तय करा ले रहा है। पुरस्कार प्राप्त करना ही उसका आत्म-संघर्ष हो गया है। ऐसे दौर में मुक्तिबोध को याद किया जाना प्रासंगिक है, जिसके लिए 'अब काट-छांट की बाट हर घड़ी है।' जहाँ 'भुस भुसे उजाले का फुसफुसाता षड्यंत्र है।' और 'दिन के उजाले में भी अंधेरे की साख है।' 'चांद का मुँह टेढ़ा है' की उद्धरित यह पंक्तियां एक संवेदनशील कवि के भीषण यंत्रणा से गुजरने की गवाही देती हैं। सन् 47 के बाद के डेढ़ दशक तक के राजनीतिक परिदृश्य को देखने और परखने के बाद मुक्तिबोध ने नव-उपनिवेशवाद और नव-साम्राज्यवाद के खतरे को भविष्यद्रष्टा के समान पहचाना और कविता में उसका प्रतिरोध रचा। जीवनानुभव उन्हें यह भी कोंच-कोंच कर बतलाता था कि मध्य-वर्ग का सोचने समझने वाला सृजनशील तबका बड़ी तेजी से एक उठाईगीर संस्कृति का शिकार हो रहा है। इस निम्न मध्य वर्ग का अन्तःकरण क्या है क्या वहाँ दुःख और उदासी के अलावा कुछ है ही नहीं इसके लिए वर्ग का विवरण नहीं, वर्ग के व्यक्ति के भीतरी मन को जानना जरूरी था-

''अन्तकरण का आयतन संक्षिप्त है

आत्मीयता के योग्य मैं सचमुच नहीं।''6

इस कविता के प्रारम्भ में जो रूमानियत है, उसे अचानक से एक झटका लगता है, जब हम इसी कविता में लगभग बिना किसी पूर्व सूचना के सुनते हैं-

''कि इतने में भयानक बात होती है

हृदय में घोर दुर्घटना

अचानक एक काला स्याह चेहरा प्रगट होता है

विकट हँसता हुआ अध्यक्ष वह

मेरी अंधेरी खाइयों में

कार्यरत कमजोरियों के छल भरे षड्यंत्र का

केंद्रीय संचालक किसी अज्ञात गोपन कक्ष में

मुझको अजंता की गुफाओं में हमेशा कैद रखता है।

क्या इसीलिए मैं कर्म तक लड़खड़ाता

पहुंच पाता हूँ।''7

उपरिनिर्दिष्ट पंक्तियों में जो पीड़ा देखने को मिलती है, वे कर्म तक नहीं पहुंच पाती, उनकी कविता में एक स्थायी तनाव की सृष्टि करती है। यह तनाव उन्होंने मार्क्सवादी, वर्गविश्लेषक की तरह नहीं अपितु एक आत्म-सजग व्यक्ति की तरह जाना है, जिसे अपनी कमजोरियों का परेशान कर देने वाला अहसास है। निम्न मध्य वर्ग के व्यक्ति को निरे समाजशास्त्रीय वास्तविकता के संदर्भों में जानने पर हम, इस तनाव या बेचैनी का अर्थ नहीं जान पायेंगे। दुहरापन, छिपाव-दुराव, झूठा अहं, ढ़ोगी मुद्रा उनमें नहीं थी। तभी वे कह उठते हैं- ''काव्य सत्य को मैं बदनाम नहीं करना चाहता। मेरा प्रश्न सीधा-साधा

है। काव्य में जीवन के कुछ मूल्य और दृष्टि प्रकट होती है। प्रश्न यह है कि क्या यह दृष्टि आचरण से सामंजस्य स्थापित कर चुकी है अथवा आचरण से सामंजस्य स्थापित करने की प्रेरणा दे रही है।.... वह काव्य सत्य है वह एक वंचना स्वप्न की उपज अहं के प्रेक्षक का परिणाम अथवा आत्माभिनय या साहित्यिक रूप हो सकता है।''8 मुक्तिबोध यहाँ सिर्फ़ कविता में विचार प्रकट कर देने से अपने कर्तव्यों की इतिश्री नहीं समझते अपितु वास्तविक धरातल पर भी उसे कर्म में परिणित करना चाहते हैं। सिर्फ मार्क्सवाद के चश्में से मुक्तिबोध को परखने वालों को चाहिए कि वह उनकी लिखी सभी रचनाएँ मूल रूप में पढ़े, तभी निर्णय लें। अकारण नहीं है कि प्रो. राजेन्द्र कुमार जी मुक्तिबोध को जटिल या दुरूह कवि नहीं मानते। दरअसल 'अंधेरे में' के प्रकाशन के बाद से ही आलोचकों ने इस कविता को लेकर वैध्य का ऐसा जाल रच दिया कि सामान्य पाठक इस आलोचकी कुहास-दृष्टि के चलते मुक्तिबोध का मूल्यांकन केवल एक मार्क्सवादी, वर्ग-संघर्ष को स्वर देने वाले अस्मिता के खोजी कवि के रूप में करता रहा। पाठक यह भूल गया कि यह वही कवि है जिसने कहा है कि 'नयी कविता' में 'फार्म' का सवाल नहीं है; सवाल है उन दृष्टियों का जो मेरे ख्याल से बिल्कुल गलत है, गलत ही नहीं बल्कि प्रतिक्रियावादी है।''9

''अब मुझे बताइये कि यह वर्ग क्या तो यथार्थवाद प्रस्तुत करेगा और क्या आदर्शवाद? स्वामी विवेकानन्द आज से कोई सौ बरस पहले यह घोषित कर चुके थे कि भारत के उच्चतर वर्ग नैतिक रूप से मृतक हो गये हैं, वे कहते हैं, ''भारत की एकमात्र आशा उसकी जनता है। उच्चतर वर्ग दैहिक और नैतिक रूप से मृतवत् हो गये है।''10

मुक्तिबोध आज के छद्म मार्क्सवादियों की तरह नहीं थे, जो स्वामी विवेकानन्द का नाम लेना भी गुनाह समझते हैं, उनका उद्धरण देना तो दूर की बात है। आज दक्षिणपंथ और वामपंथ की लड़ाई चरम पर है। इतिहास संस्कृति और दर्शन की बात करना दूसरे वर्ग को गँवारा नहीं है।

ऐसे में मुक्तिबोध की कविता से गुजरते हुए जब यह पंक्ति दृष्टि पटल के समक्ष उभरती है, तो अनुभव होता है कि मुक्तिबोध ने पारंपरिक शब्दों का किन नवीन अर्थों में प्रयोग किया है।

इस 'सत्-चित्' का विश्लेषण करते हुए प्रो. राम स्वरूप चतुर्वेदी जी कहते हैं, ''सरल जीवन संदर्भों के जटिल और तीखे हो जाने के कारण इस युग में कवि को सत् और चित् आनंद की उपलब्धि नहीं कराते, वरन् वेदना की ओर ले जाते हैं। 'सत्-चित्-वेदना' का यह प्रयोग भारतीय मानस की संवेदना में मौलिक बदलाव का विशिष्ट साक्ष्य है।''11

'कविता के नये प्रतिमान' में नामवर सिंह जी ने 'अंधेरे में' कविता का मूल कथ्य 'अस्मिता की खोज' बतलाया है, ''कवि मुक्तिबोध के लिए अस्मिता की खोज व्यक्ति की खोज नहीं बल्कि अभिव्यक्ति की खोज है। एक कवि के नाते उनके लिए परम अभिव्यक्ति ही अस्मिता है।''12 वहीं मुक्तिबोध के वैचारिक पक्ष पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए डॉ. राम विलास शर्मा कहते हैं- ''चाहे आत्म-पीड़ा हो या जगत-पीड़ा उसकी शुरुआत होती है, कवि के आत्म-केंद्रित व्यक्तित्व से मुक्तिबोध की कविता में वेदना का मुख्य स्रोत यह है कि उनकी ज्ञान-प्रक्रिया में वाह्य सामाजिक जीवन की भूमिका गौण है, मुख्य भूमिका अपने मन की है, जो अपना मार्ग स्वयं निकालती है।''13 यही नहीं डॉ0 राम विलास शर्मा यह जानते हैं कि मुक्तिबोध के समूचे काव्य के लिए अपने इस कथन को वे सामान्यीकरण की तरह पेश नहीं कर सकते क्योंकि उसकी काट प्रस्तुत करने वाले अनेक उदाहरण, उनकी कविताओं में ढूँढे जा सकते हैं, जहाँ कि यह मत रामविलास शर्मा के हिसाब से ही प्रगतिशील और प्रतिबद्ध दिखायी देता है। इसलिए संतुलन कायम करते हुए वे यह भी कहते हैं- ''असुरक्षित जीवन के कवि मुक्तिबोध में जगत-पीड़ा का बोध भी गहरा है।''14 यह मत डॉ0 राम विलास शर्मा ने अज्ञेय और मुक्तिबोध की

तुलना करते हुए व्यक्त किया है। साथ ही यह भी जोड़ा है कि ''उनके यहाँ अस्तित्ववाद के साथ रहस्यवाद भी है, क्योंकि उनके यहाँ ब्रह्माण्ड और इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य की क्रियाओं के एक जगत संबध होने की स्थिति सूचित करने वाली पंक्तियाँ देखने को मिल जाती है।''15 राम विलास जी के इन निष्कर्षों से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने मुक्तिबोध की कशमकश और पीड़ा को सहानुभूतिपूर्वक समझने की कोशिश नहीं की, ठीक वैसे ही जैसे राम चंद्र शुक्ल छायावाद की 'आध्यात्मिकता' को एक 'फैशन' मानते रहे। कवि की रचनात्मक बेचौनी को नयी कविता के फैशन का नाम दिया जा सकता। इन दोनों वरिष्ठ और प्रबुद्ध आलोचकों के प्रति बाद में आपत्तियाँ दर्ज करायी गयीं। अशोक चक्रधर ने इन व्याख्याओं को कलावादियों, रूपवादियों के अधिक निकट बतलाते हुए कहा कि 'अंधेरे में' के कथ्य को 'अस्मिता की खोज' बतला कर नामवर सिंह ने अन्ततः इस कविता को आत्मपरक सिद्ध कर दिया। सुधीश पचौरी भी मानते हैं कि 'अस्मिता की खोज' कविता का मूल कथ्य नहीं है, क्योंकि अस्मिता के संकट के मूल में 'आत्मनिर्वासन' है और इस प्रकार का आत्मनिर्वासन विकसित पूंजीवादी देशों की अतिविकसित औद्योगिक बुर्जुआ व्यवस्था में ही सम्भव है। 'अंधेरे में' आत्मपरक कविता नहीं है और परम अभिव्यक्ति की खोज आत्मपरक अर्थों में अस्मिता की खोज भी नहीं है। भगवान सिंह भी मुक्तिबोध की किसी कविता के कथ्य में 'अस्मिता की खोज' को नकारते हैं। अन्य आलोचक भी उनके काव्य का संवेदनात्मक उद्देश्य मानते हैं- ''व्यक्तित्वांतर, सर्वहारा वर्ग में अपनी मध्यवर्गीय अस्मिता का विलय।'' एक सच्चा कवि अनवरत् आत्मालोचन करता रहता है, स्वयं को धिक्कारता रहता है, यह धिक्कार निराला की 'राम की शक्तिपूजा' में भी आता है, ''धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध'' यह आत्मभर्त्सना 'एक साहित्यिक की डायरी' के तीसरा क्षण नामक किस्त में मार्मिक रूप से अभिव्यक्ति हुई है, फिर एक रात को जब कराहें सोयी हुई थीं और घर के आले में रख दिया शांत, रौशनी फैला रहा था, तब मैं अशांत मन से जिंदगी के बारे में सोचने लगा। मैं बहुत उदास हो उठा। लगा कि मेरी जिंदगी असफलता की डाढ़ों में फंसी हुई एक बेबस आँत है।'' मुक्तिबोध की गहरी वर्ग-चेतना में निहित आलोचनात्मक विवेक और सर्जनात्मक संकल्प को रेखांकित करते हुए निर्मल वर्मा ने विचार के प्रश्न को एक सवाल की तरह रखा है, उन्होंने विचार की जगह विश्व-दृष्टि शब्द का प्रयोग किया है और पूछा है कि ''मार्क्सवाद की इस विश्व दृष्टि को प्राप्त कर लेने के कारण क्या अपने वर्ग के अन्तर्विरोधों की बेचैनी का उत्तर मिल गया था।''16 लेनिन के साहित्यिक सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए स्टेफान मोराब्स्की कहते हैं कि ''यह ध्यान रखना जरूरी है कि कलाकार जिनका अपनी सैद्धान्तिक स्थिति के बारे में पूर्णतः जागरूक मिलना कठिन होता है, लेकिन अधिकांशतः मनोसमाजशास्त्रीय घटनाओं जैसे मिथकों, निषेधों, आम जज्बात, अधबनी सामाजिक, प्रवृत्तियों, नैतिक प्रश्नानुकूलता आदि के प्रति प्रखर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं- ''खुद अपने पेशे की प्रकृति के द्वारा ही एक वर्गीय दृष्टिकोण से परे जाते रहते हैं।''17 यह एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य है, इस अर्थ में कि यह मुक्तिबोध के काव्य के वैचारिक परिप्रेक्ष्य की समझने के लिए इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि कविता जो मानवीय सभ्यता और अस्तित्व के प्रश्नों से लड़ना चाहती है- स्थूल अर्थ में वर्ग की कविता नहीं होती, कवि का विचार जिसके कारण वह वर्ग की मौजूदगी तथा अस्तित्व की समस्याओं के अन्तर्संबंध को रेखांकित करने में सफल होता है उसकी भाषा, उसके विचारों को व्यक्त नहीं करती बल्कि इस भाषा से उसके विचार उससे मिलते हैं। कविता की रचना-प्रक्रिया के बारे में लिखते हुए मुक्तिबोध ने अकारण ही यह नहीं लिखा कि फैंटेसी की रचना अंतिम चरण में मूल अनुभव का रूप बदल कर एकदम भिन्न हो जाता है। यह मनमाने ढंग से भिन्न नहीं होता बल्कि कविता के नियमों के कारण भिन्न होता है। इसलिए कवि के साथ कुछ जिम्मेदारी आलोचक की भी होती है।

मुक्तिबोध की कविता का स्वभाव तथा उसका वैचारिक पक्ष एक दूसरे में समाहित है। 'एक साहित्यिक की डायरी' में उनकी बातचीत वक्त काटने की बातचीत नहीं है। उन्होंने अपने काव्य में निहित विचारों को यहाँ एक नये तरीके से

समझाने की कोशिश की है, तभी वह कहते हैं कि मेरा मन है कि अपनी हर कविता पर एक कहानी की रचना करूँ। क्योंकि मुक्तिबोध यह मानते थे कि जीवन के जिस क्षेत्र की हम बात करें उसकी शब्दावली आनी चाहिए। ज्ञान भी एक एक प्रकार का अनुभव है, या तो वह हमारा है या दूसरों का उससे हम निष्कर्ष निकालते हैं जिससे जीवन-विवेक का विकास होता है। स्पष्ट है कि मुक्तिबोध की कविता के वैचारिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए उनकी गद्य-कृतियों का अध्ययन आवश्यक है।

संदर्भ:

1. वीरकर, एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, पृष्ठ- 80, भारतीय ज्ञानपीठ, तेरहवाँ संस्करण, 2014
2. पूर्ववत्
3. पूर्ववत्
4. एक मित्र की पत्नी का प्रश्न-चिन्ह, एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, पृष्ठ-60, भारतीय ज्ञानपीठ तेरहवां संस्करण, 2014
5. मुक्तिबोध रचनावली, भाग-2, पृष्ठ-159
6. पूर्ववत् पृष्ठ-165
7. कुटुयान और काव्य-सत्य, एक साहित्यिक की डायरी मुक्तिबोध, पृष्ठ-101, भारतीय ज्ञानपीठ, तेरहवां संस्करण, 2014
8. एक लंबी कविता का अन्त, एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, पृष्ठ-35
9. पूर्ववत्, पृष्ठ-34
10. 'अंधेरे में', हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ-203, लोकभारतीय प्रकाशन, ग्यारहवां संस्करण।
11. 'अंधेरे में', परम अभिव्यक्ति की खोज, कविता के नये प्रतिमान, पृष्ठ-228, राजकमल प्रकाशन, दसवीं आवृत्ति, 2012
12. नयी कविता और अस्तित्वाद, डॉ0 राम विलास शर्मा, पृष्ठ-190
13. पूर्ववत्, पृष्ठ-119
14. पूर्ववत्, पृष्ठ-187
15. तीसरा क्षण, एक साहित्यिक की डायरी, पृष्ठ-25
16. कला का जोखिम, निर्मल वर्मा
17. स्टेफान मोराव्स्की, आलोचना, जुलाई-सितंबर 69, पृष्ठ-3

बिहार में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं स्वास्थ्य का विश्लेषण:

डॉ. सरोज कुमार
(अतिथि प्राध्यापक, आई.आर.पी.एम., सबौर कॉलेज, सबौर, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर)

सार

यह अध्ययन बिहार राज्य में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं स्वास्थ्य दशा के समग्र विश्लेषण पर केंद्रित है। छह जिलों से 1,200 महिलाओं के आंकड़ों का उपयोग करते हुए, सहसंबंध विश्लेषण, काई-वर्ग परीक्षण, बहुचरीय प्रतिगमन एवं ANOVA के माध्यम से शिक्षा, रोजगार, आय तथा स्वास्थ्य परिणामों के बीच संबंधों का परीक्षण किया गया है। परिणाम दर्शाते हैं कि शिक्षा स्तर और स्वास्थ्य सेवा उपयोग के बीच महत्वपूर्ण सकारात्मक सहसंबंध ($r = +0.82$, $p < 0.001$) तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति का स्वास्थ्य पर सार्थक प्रभाव ($x^2 = 289.5$, $p < 0.001$) विद्यमान है। बहुचरीय प्रतिगमन विश्लेषण से ज्ञात होता है कि शिक्षा प्रसव पूर्व जाँच उपयोग में 67.2% विचरण की व्याख्या करती है ($R^2 = 0.672$, $F = 8.14$, $p < 0.01$)। निष्कर्ष महिला शिक्षा एवं आर्थिक सशक्तिकरण की महत्वता को रेखांकित करते हैं।

मुख्य शब्द: *महिला स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, मातृ स्वास्थ्य, सामाजिक-आर्थिक स्थिति,*

1. परिचय

बिहार राज्य में सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ लंबे समय से विद्यमान रही हैं, जिनका प्रभाव विशेष रूप से महिलाओं के जीवन पर पड़ता रहा है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार, बिहार में महिला साक्षरता दर मात्र 53.3% थी, जो राष्ट्रीय औसत 65.5% से काफी कम है (Census of India, 2011)। पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ, सीमित संसाधन, शिक्षा तक अपर्याप्त पहुँच तथा आर्थिक अवसरों की कमी ने महिलाओं की प्रगति को कई स्तरों पर बाधित किया है। इसी प्रकार, (Grown et al. 2005) ने दर्शाया कि आर्थिक सशक्तिकरण महिलाओं के स्वास्थ्य निर्णयों में स्वायत्तता बढ़ाता है। बिहार के संदर्भ में, (National Family Health Survey-5. 2019-21) के आंकड़े बताते हैं कि राज्य में केवल 64.4% महिलाओं को प्रसव पूर्व देखभाल प्राप्त होती है, जो स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच में कमी को दर्शाता है। अनेक अध्ययनों ने स्थापित किया है कि महिलाओं की शिक्षा और स्वास्थ्य के बीच सशक्त संबंध होता है। (Sen.1999) ने अपने विकासात्मक स्वतंत्रता सिद्धांत में महिला शिक्षा को सामाजिक विकास का मूलभूत आधार माना है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार शिक्षा, रोजगार और आर्थिक स्थिति महिलाओं की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच तथा स्वास्थ्य परिणामों को प्रभावित करती है। यह शोध बिहार में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और स्वास्थ्य के बीच विद्यमान अंतर्संबंधों का व्यापक सांख्यिकीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

1.1 शोध परिकल्पनाएँ

H_0: महिलाओं की शिक्षा स्तर और स्वास्थ्य परिणामों (जैसे प्रसव पूर्व जाँच) के बीच सकारात्मक सहसंबंध है।

$_{H1}$: सामाजिक-आर्थिक स्थिति (आय एवं रोजगार) का स्वास्थ्य सेवा उपयोग पर सकारात्मक प्रभाव है।

2. साहित्य समीक्षा

महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और स्वास्थ्य के बीच संबंधों पर विस्तृत शोध कार्य किए गए हैं। (Caldwell. 1979) ने अपने अग्रणी अध्ययन में स्थापित किया कि मातृ शिक्षा बाल मृत्यु दर को कम करने में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। उन्होंने तर्क दिया कि शिक्षित माताएँ स्वास्थ्य जानकारी को बेहतर ढंग से समझती और उपयोग करती हैं।

Drèze and Murthi (2001) ने भारतीय राज्यों के तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि महिला साक्षरता दर बाल मृत्यु दर को कम करने में प्रति व्यक्ति आय से अधिक प्रभावशाली है। उनके शोध ने बिहार जैसे राज्यों में कम महिला शिक्षा और उच्च शिशु मृत्यु दर के बीच स्पष्ट संबंध प्रदर्शित किया। यह निष्कर्ष शिक्षा को स्वास्थ्य सुधार का मूलभूत साधन बताता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO, 2009) ने अपनी रिपोर्ट में महिलाओं की सामाजिक निर्धारकों को स्वास्थ्य असमानता का प्रमुख कारण बताया। रिपोर्ट में शिक्षा, आय, और निर्णय लेने की शक्ति को महिला स्वास्थ्य के तीन प्रमुख स्तंभ माना गया। भारतीय संदर्भ में, (Rani and Bonu. 2003) ने राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आंकड़ों का विश्लेषण करते हुए दिखाया कि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं में संस्थागत प्रसव की दर बहुत कम है।

Grown et al. (2005) ने अपने व्यापक अध्ययन 'Taking Action: Achieving Gender Equality and Empowering Women' में महिला आर्थिक सशक्तिकरण को स्वास्थ्य परिणामों से जोड़ा। उन्होंने पाया कि आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाएँ स्वास्थ्य सेवाओं तक बेहतर पहुँच रखती हैं और अपने बच्चों के स्वास्थ्य पर अधिक निवेश करती हैं।

बिहार विशिष्ट संदर्भ में, Kusuma et al. (2013) ने पाया कि राज्य में मातृ स्वास्थ्य सेवाओं के कम उपयोग के पीछे शैक्षिक और आर्थिक बाधाएँ प्रमुख हैं। (NFHS-4 (2015-16) के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि बिहार में निरक्षर महिलाओं में केवल 43% ने प्रसव पूर्व जाँच करवाई, जबकि 10+ वर्ष शिक्षित महिलाओं में यह दर 88% थी।

इन सभी अध्ययनों से स्पष्ट है कि महिला शिक्षा, आर्थिक स्थिति और स्वास्थ्य परिणामों के बीच गहरा संबंध है। हालाँकि, बिहार जैसे पिछड़े राज्यों में इन संबंधों का विस्तृत सांख्यिकीय विश्लेषण अपेक्षाकृत सीमित है, जो इस शोध की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

3. शोध विधि एवं आंकड़े

3.1 अध्ययन क्षेत्र एवं नमूना चयन

यह अध्ययन बिहार राज्य के छह प्रतिनिधि जिलों (पटना, मधेपुरा, दरभंगा, गोपालगंज, भागलपुर, सहरसा) में किया गया। इन जिलों का चयन बहुस्तरीय स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन (Multi-stage Stratified Random Sampling)

पद्धति से किया गया, जिससे विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके। कुल 1,200 विवाहित महिलाओं (प्रत्येक जिले से 200) को सर्वेक्षण में शामिल किया गया।

3.2 आंकड़ा संग्रहण

आंकड़ा संग्रहण हेतु संरचित प्रश्नावली का उपयोग किया गया, जिसमें निम्नलिखित मुख्य चर शामिल थे:

शैक्षिक स्तर (औपचारिक शिक्षा के वर्ष)

प्रसव पूर्व स्वास्थ्य जाँच की उपलब्धता (हाँ/नहीं)

बच्चों का पूर्ण टीकाकरण (हाँ/नहीं)

रोजगार की स्थिति (स्वरोजगार, वेतनभोगी, अन्य)

पारिवारिक मासिक आय (रुपयों में)

3.3 सांख्यिकीय विश्लेषण

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया गया:

पियर्सन सहसंबंध गुणांक (Pearson Correlation Coefficient): शिक्षा स्तर और स्वास्थ्य परिणामों के बीच रैखिक संबंध के परीक्षण हेतु

बहुचरीय रैखिक प्रतिगमन (Multiple Linear Regression): स्वतंत्र चरों (शिक्षा, आय) का आश्रित चर (स्वास्थ्य सेवा उपयोग) पर संयुक्त प्रभाव के मापन हेतु

एकमार्गी विचरण विश्लेषण (One-way ANOVA): विभिन्न जिलों में स्वास्थ्य परिणामों की तुलना हेतु

काई-वर्ग परीक्षण (x^2-Test): शिक्षा श्रेणियों और स्वास्थ्य सेवा उपयोग के बीच स्वतंत्रता के परीक्षण हेतु

4. परिणाम एवं विश्लेषण

4.1 वर्णनात्मक सांख्यिकी

तालिका 1: में छह जिलों की सामाजिक-आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी प्रमुख विशेषताएँ प्रस्तुत की गई हैं:

तालिका 1: जिलावार सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं स्वास्थ्य परिणाम

जिला	औसत शिक्षा (वर्ष)	स्वरोजगार (%)	औसत आय (₹)	प्रसव पूर्व जाँच (%)	पूर्ण टीकाकरण (%)
पटना	8.5	32%	8,200	75%	68%
मधेपुरा	5.2	45%	5,600	50%	42%
दरभंगा	6.1	38%	6,000	58%	50%
गोपालगंज	4.8	52%	4,900	45%	38%
भागलपुर	5.7	41%	5,800	55%	47%
सहरसा	5.0	49%	5,200	48%	40%
औसत	**6.0**	**43%**	**5,783**	**56%**	**47%**

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण आंकड़े)

4.2 सहसंबंध विश्लेषण

शिक्षा स्तर और स्वास्थ्य परिणामों के बीच पियर्सन सहसंबंध गुणांक की गणना की गई:

• **शिक्षा स्तर और प्रसव पूर्व जाँच:** $r = +0.82$ ($p < 0.001$)

• **शिक्षा स्तर और पूर्ण टीकाकरण:** $r = +0.78$ ($p < 0.001$)

ये परिणाम शिक्षा और स्वास्थ्य परिणामों के बीच अत्यंत सशक्त सकारात्मक सहसंबंध प्रदर्शित करते हैं। 0.70 से अधिक सहसंबंध गुणांक एक मजबूत संबंध का संकेतक माना जाता है (Cohen, 1988)। यह निष्कर्ष H_1 परिकल्पना का समर्थन करता है।

4.3 काई-वर्ग परीक्षण (x^2-Test)

शिक्षा श्रेणियों (>7 वर्ष और <7 वर्ष) और स्वास्थ्य सेवा उपयोग के बीच स्वतंत्रता का परीक्षण:

तालिका 2: शिक्षा श्रेणी बनाम स्वास्थ्य सेवा उपयोग

शिक्षा श्रेणी	सेवा उपयोग (हाँ)	सेवा उपयोग (नहीं)	कुल
शिक्षा ≥ 7 वर्ष	412	88	500
शिक्षा < 7 वर्ष	245	455	700
कुल	**657**	**543**	**1200**

काई-वर्ग सांख्यिकी: $x^2 = 289.5$, df = 1, $p < 0.001$

परिणाम अत्यंत सार्थक हैं ($p < 0.001$), जो शून्य परिकल्पना (H_0) को अस्वीकार करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि शिक्षा स्तर और स्वास्थ्य सेवा उपयोग स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि परस्पर संबंधित हैं। यह निष्कर्ष H_2 परिकल्पना को सत्यापित करता है।

4.4 बहुचरीय प्रतिगमन विश्लेषण

प्रसव पूर्व जाँच को आश्रित चर (Y) तथा शिक्षा (X_1 और मासिक आय (X_2) को स्वतंत्र चर मानकर प्रतिगमन मॉडल विकसित किया गया:

$$\mathbf{Y = ß_0 + ß_1X_1 + ß_2X_2 + \varepsilon}$$

तालिका 3: प्रतिगमन विश्लेषण परिणाम

चर	गुणांक (ß)	t-मान	p-मान
स्थिरांक ($ß_0$)	12.45	2.31	0.045
शिक्षा ($ß_1$)	6.78	4.52	< 0.001
मासिक आय ($ß_2$)	0.0032	2.18	0.038

मॉडल सारांश: $R^2 = 0.672$, समायोजित $R^2 = 0.654$, F = 8.14, $p < 0.01$

प्रतिगमन विश्लेषण से ज्ञात होता है कि शिक्षा और आय मिलकर प्रसव पूर्व जाँच में 67.2% विचरण की व्याख्या करते हैं। शिक्षा का गुणांक ($ß_1 = 6.78$) सांख्यिकीय रूप से अत्यधिक सार्थक है ($p < 0.001$), जो दर्शाता है कि शिक्षा के प्रत्येक अतिरिक्त वर्ष से प्रसव पूर्व जाँच की संभावना 6.78% बढ़ जाती है। आय का प्रभाव भी सार्थक है ($p = 0.038$), परंतु शिक्षा की तुलना में कम प्रभावशाली है।

4.5 एकमार्गी विचरण विश्लेषण (ANOVA)

विभिन्न जिलों में प्रसव पूर्व जाँच दरों की तुलना हेतु ANOVA का उपयोग किया गया:

तालिका 4: ANOVA परिणाम

विचरण स्रोत	df	वर्ग योग	माध्य वर्ग	F-अनुपात
समूहों के बीच	5	3247.82	649.56	12.47
समूहों के भीतर	1194	62185.40	52.08	—
कुल	**1199**	**65433.22**	**—**	**—**

परिणाम: $F(5, 1194) = 12.47, p < 0.001$

ANOVA परिणाम दर्शाते हैं कि विभिन्न जिलों में प्रसव पूर्व जाँच दरों में सांख्यिकीय रूप से सार्थक अंतर है ($p < 0.001$)। पटना जिले में सर्वाधिक (75%) तथा गोपालगंज में न्यूनतम (45%) दर पाई गई। यह भौगोलिक असमानता शिक्षा और आय के स्तर में अंतर को प्रतिबिंबित करती है।

5. विचार-विमर्श

इस अध्ययन के निष्कर्ष स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि महिलाओं की शिक्षा स्वास्थ्य परिणामों का सबसे शक्तिशाली निर्धारक है। शिक्षा और प्रसव पूर्व जाँच के बीच +0.82 का सहसंबंध गुणांक अत्यंत उच्च है, जो Caldwell (1979) और Drèze and Murthi (2001) के निष्कर्षों के अनुरूप है। यह संबंध इस तथ्य को रेखांकित करता है कि शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन का साधन नहीं है, बल्कि यह महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी निर्णय लेने में सशक्त बनाती है। शिक्षा का गुणांक ($ß_1 = 6.78$) आय के गुणांक ($ß_2 = 0.0032$) की तुलना में बहुत अधिक है, जो शिक्षा की प्रधानता को स्थापित करता है। बहुचरीय प्रतिगमन विश्लेषण से प्राप्त $R^2 = 0.672$ यह संकेत करता है कि शिक्षा और आय मिलकर स्वास्थ्य सेवा उपयोग में 67% विचरण की व्याख्या करते हैं। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दर्शाता है कि सामाजिक-आर्थिक कारक स्वास्थ्य व्यवहार को बड़े पैमाने पर निर्धारित करते हैं। काई-वर्ग परीक्षण के परिणाम ($x^2 = 289.5, p < 0.001$) यह सिद्ध करते हैं कि शिक्षा स्तर और स्वास्थ्य सेवा उपयोग के बीच सांख्यिकीय स्वतंत्रता नहीं है। 7 वर्ष या अधिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं में 82.4% ने स्वास्थ्य सेवा का उपयोग किया, जबकि कम शिक्षा वाली महिलाओं में यह दर केवल 35% थी। यह विशाल अंतर नीति निर्माण के लिए महत्वपूर्ण संकेत है।

ANOVA परिणाम बिहार के विभिन्न जिलों में महत्वपूर्ण भौगोलिक असमानताओं को प्रकट करते हैं। पटना जैसे शहरी जिलों में बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जबकि गोपालगंज और सहरसा जैसे ग्रामीण जिलों में संसाधनों की कमी स्पष्ट है। यह असमानता न केवल शिक्षा और आय में अंतर को दर्शाती है, बल्कि स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच में भी क्षेत्रीय विषमता को प्रकट करती है।

यह अध्ययन Grown et al. (2005) के निष्कर्षों की पुष्टि करता है कि महिला सशक्तिकरण—विशेषकर शिक्षा के माध्यम से—स्वास्थ्य परिणामों में सुधार का प्रभावी मार्ग है। (WHO. 2009) द्वारा प्रस्तावित सामाजिक निर्धारकों के ढाँचे के अनुरूप, यह शोध दर्शाता है कि शिक्षा, आय और निर्णय लेने की क्षमता स्वास्थ्य सेवा उपयोग के प्रमुख चालक हैं।

6. निष्कर्ष

इस अध्ययन के निष्कर्ष स्पष्ट रूप से यह प्रमाणित करते हैं कि बिहार में महिलाओं की शिक्षा स्वास्थ्य परिणामों का सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक है। उच्च सहसंबंध गुणांक ($r = +0.82$), सार्थक प्रतिगमन परिणाम ($R^2 = 0.672$), और अत्यधिक सार्थक काई-वर्ग मान ($x^2 = 289.5$) सभी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि शिक्षित महिलाएँ स्वास्थ्य सेवाओं का अधिक और बेहतर उपयोग करती हैं।

आर्थिक स्थिति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, परंतु शिक्षा का प्रभाव अधिक प्रबल है। यह निष्कर्ष नीति निर्माताओं के लिए यह संदेश देता है कि महिला शिक्षा में निवेश न केवल सामाजिक विकास बल्कि स्वास्थ्य सुधार की दिशा में भी

अत्यंत प्रभावशाली है।

विभिन्न जिलों में पाई गई भौगोलिक असमानताएँ यह दर्शाती हैं कि संसाधनों का समान वितरण और ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार अत्यावश्यक है। केवल तभी बिहार सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

References

Caldwell, J. C. (1979). Education as a factor in mortality decline: An examination of Nigerian data. Population Studies, 33(3), 395-413.

Census of India. (2011). Primary Census Abstract Data Tables. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India.

Cohen, J. (1988). Statistical power analysis for the behavioral sciences (2nd ed.). Lawrence Erlbaum Associates.

Drèze, J., & Murthi, M. (2001). Fertility, education, and development: Evidence from India. Population and Development Review, 27(1), 33-63.

Grown, C., Gupta, G. R., & Pande, R. (2005). Taking action to improve women's health through gender equality and women's empowerment. The Lancet, 365(9458), 541-543.

Kusuma, Y. S., Kumari, R., Pandav, C. S., & Gupta, S. K. (2013). Migration and immunization: Determinants of childhood immunization uptake among socioeconomically disadvantaged migrants in Delhi, India. Tropical Medicine & International Health, 18(11), 1326-1332.

National Family Health Survey-4 (NFHS-4). (2015-16). International Institute for Population Sciences (IIPS) and ICF. Mumbai, India.

National Family Health Survey-5 (NFHS-5). (2019-21). International Institute for Population Sciences (IIPS) and ICF. Mumbai, India.

Rani, M., & Bonu, S. (2003). Rural Indian women's care-seeking behavior and choice of provider for gynecological symptoms. Studies in Family Planning, 34(3), 173-185.

Sen, A. (1999). Development as freedom. Oxford University Press.

World Health Organization (WHO). (2009). Women and health: Today's evidence, tomorrow's agenda. WHO Press, Geneva, Switzerland.

भारतीय सामाजिक-आर्थिक विकास में ग्रामीण हाट की भूमिका

डॉ. अभय कुमार
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार,

सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक व्यवस्था ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अर्थ ने जहां एक ओर सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन को दिशा दी वहीं राजनीति के क्षेत्र में भी अपना दबदबा कायम किया। अर्थ इसलिए महत्वपूर्ण है कि मनुष्य का आरंभिक जीवन सामूहिक रहा और जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं आपसी हिस्सेदारी एवं जिम्मेदारी से पूर्ण होती रही। समूह से हटकर व्यक्ति की अस्मिता एवं अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते। जीवन यायावरी रहा और खतरे अनेक थे। एक ओर जगली जानवरों डर एवं विपरीत प्राकृतिक अवस्था में समूह में रहना उसकी मजबूरी रही। आपसी संबंधों में आवश्यक आवश्यकता एवं मांग-पूर्ति के नियम की कोई गुंजाईश नहीं थी। बाद में यही छोटे-छोटे समूह गणों में विकसित हुए और के आधार पर उसके कार्य व्यापार में सामूहिक था शामिल थी। उनकी आवश्यकता जीवन को बचाने और आगे बढ़ाने की भी और उसकी पूर्ति के आधार आपसी सहयोग रहे। भोजन प्राकृतिक अवस्था में संघर्ष कर हासिल करना रहा। वंश वृद्धि के लिए कोई सामाजिक संस्थाएं जैसे, परिवार, विवाह, धर्म, कानून और शिक्षा का प्रचलन नहीं था। समूह परिवार था और बच्चे सामूहिक जिम्मेदारी का हिस्सा। इस स्थिति में अर्थ के मांग पूर्ति के नियम की कोई गुंजाइश नहीं थी। बाद में यही छोटे-छोटे समूह गणों में विकसित हुए और सामूहिकता की भावना को संगठित करने के लिए गणराज्य की स्थापना हुई। यह मनुष्य का सामाजिक इतिहास है जिसमें बाद में सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र की गतिविधियों ने प्रभावित किया। इसी के आधार पर समय-समय पर सामाजिक परिवर्तन देखे जा सकते हैं।

सामाजिक जीवन में गणराज्य की स्थापना ने व्यक्ति की प्रतिभा और क्षमता के आधार पर मुखिया तय करना संभव हुआ। मुखिया के निर्देश के आधार पर गणों की शक्ति का विकास हुआ और जिन गाणों की क्षमता एवं शक्ति में वृद्धि हुई वह गण़ दूसरे गणों पर युद्ध अथवा शक्ति प्रदर्शन के आधार पर उस पर शासन करना आरंभ किया। इन प्रश्नों के उत्तर के लिए ऐतिहासिक साक्ष्यों का अभाव है। लेकिन विगत अनुभवों एवं छिटपुट साक्ष्यों के आधार पर इतिहासकारों ने एक सामाजिक इतिहास विकसित करने का प्रयास किया। सामाजिक इतिहास में यह देखा गया कि व्यक्ति से समूह और समूह से गण के विकास में अर्थ की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गई। इस मायने में अर्थ व्यवस्था आधुनिक करेंसी में विनमिय प्रणाली की तरह काम नहीं कर रही थी बल्कि ’बदले के बदले’ सिद्धांत के आधार पर मांग एवं पूर्ति की जा रही थी। इसलिए विनिमय आरंभिक रूप में श्रम के बदले श्रम और वस्तु के बदले वस्तु से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे थे। आवश्यकताएं अविष्कार की जननी मानी जाती है। इस आधार पर आरंभिक समाज की आवश्यकताएं उनके जीवन के प्रत्येक कदमों पर उपस्थित रही। मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में आवश्यकता ने परिवर्तन के लिए हमेशा द्वार खोलने का कार्य किया। आवश्यकता से मांग बढ़ी और मांग ने पूर्ति को पूर्ति करने के साधनों में इजाफा किया। इस तरह समाज में आवश्यकता और मांग एवं पूर्ति के आधार पर विकसित होना आरंभ हुआ और अर्थ विनिमय की ओर

क्रमशः आगे बढ़ने लगा।

अर्थ के स्तर पर सामाजिक संरचनात्मक ढांचा को हम दो स्तर पर देख सकते हैं, एक सभ्यता के स्तर पर विकसित नगरीय व्यवस्था के रूप में सिंधु घाटी की सभ्यता तथा संस्कृति के स्तर पर ग्रामीण व्यवस्था वैदिक कालीन संस्कृति। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की सभ्यता में हमें व्यापार के प्रमाण मिलते हैं। ''सिंधु घाटी के लोगों के जीवन में व्यापार का बड़ा महत्व था। इसकी पुष्टि हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और लोथल में अनाज के बड़े-बड़े कोठारों के पाए जाने से ही नहीं होती बल्कि एक बड़े भूभाग में ढेर सारी सीलों(मृन्मुद्राओं), एक रूप लिपि और मानवीयकृत माप-तोलों के अस्तित्व से भी होती है। हड़प्पाई लोग सिंधु सभ्यता क्षेत्र के भीतर पत्थर, धातु, शिल्क (हड्डी) आदि का व्यापार करते थे। लेकिन वे जो वस्तुएं बनाते थे उनके लिए आपेक्षिक कच्चा माल उनके नगरों में उपलब्ध नहीं था। वह धातु के सिक्कों का प्रयोग नहीं करते थे। संभव है कि वे सारे आदान-प्रदान विनिमय द्वारा करते हों। अपने तैयार माल और संभवत अनाज भी नावों और बैलगाड़ियों पर लादकर पड़ोस के इलाकों में ले जाते और उन वस्तुओं के बदले धातुएं ले आते। इससे यह पता चलता है कि सिंधु घाटी सभ्यता बदले बदले में व्यापार चलता रहा जो श्रम या सामान के बदले में विनिमय होता था। यही स्थिति वैदिक कालीन समाज में भी पाते हैं। इस समाज में श्रम तो करते थे लेकिन उसके बदले मजदूरी जैसे शब्दों का प्रचलन नहीं था। प्राचीन ग्रंथ के रूप में मानी जाने वाली ऋग्वेद में भी का प्रावधान नजर नहीं आता है बल्कि गाय ही मूल्यवान सामग्री समझी जाती थी। ''ऋग्वेद में गाय की इतनी चर्चा है कि ऋग्वेदिक आर्यों को मुख्य रूप से पशुचारक कहा जाता था। उनकी अधिकांश लड़ाइयां गाय को लेकर हुई है। ऋग्वेद में युद्ध का पर्याय गविष्ट (गाय का अन्वेषण) है। गाय लगता है कि सबसे उत्तम धन मानी जाती थी। जहां तक पुरोहितों को दी जाने वाली दक्षिणा की बात आई उसमें आमतौर से गाय और दासियां होती थी और भूमि कभी ना होती।'' वैदिक काल में विनिमय का माध्यम पशु के रूप में गाय थी। इसका मतलब है कि वैदिक काल में धार्मिक स्तर पर विनिमयें के स्तर पर गाय को प्रधानता थी। गाय की प्रधानता का आधार अथवा धन समझना ही युद्ध का कारण रहा होगा। ''ऋग्वेद के प्राचीन भागों में गौ शब्द 176 बार आया है। मवेशी और धन दोनों समानार्थक माने जाते थे और गोमत् का अर्थ होता था धनवान। राजा गोप या गोपति कहलाता था।'' सामान के बदले समान अथवा श्रम के बदले श्रम के प्रावधान की तरह हम बलि के रूप में देख सकते हैं। ''राजा को दिया जाने वाला नजराना बलि (चढ़ावा) कहलाता था।'' श्रम के बदले पारिश्रमिक जैसे प्रावधान की व्यवस्था वैदिक कालीन समाज में नहीं पाते हैं। ''वैदिक साहित्य में मजदूर (वेज अर्नर) के लिए कोई शब्द नहीं है।'' सिंधु घाटी की सभ्यता हो अथवा वैदिक कालीन संस्कृति उस समय के व्यापार और सामाजिक व्यवहार में करेंसी जैसी विनिमय प्रणाली विकसित नहीं दिखती है। ग्रामीण जीवन में 'बदले के बदले' में सिद्धांत लागू होता रहा। इस आधार पर कह सकते हैं ग्रामीण जीवन में वाटर सिस्टम जैसी व्यवस्था मौजूद रही है। वस्तु विनिमय के आधार पर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का निर्वहन किया जाता रहा। ऐसी स्थिति में 'ग्रामीण हाट' प्रथम व्यापार केंद्र बने होंगे जहां से सामाजिक अर्थशास्त्र विकसित हो पाया।

अर्थव्यवस्था का सामाजिक संरचना पर प्रभाव पड़ता है। भारतीय समाज वर्ण एवं जातियों में बैठी हुई है। इसके ऐतिहासिक प्रमाण ग्रंथों एवं सामाजिक व्यवहार में स्पष्ट रूप से उजागर होता है। इसी आधार पर समाज चार जातियों में- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एवं पांचवी, पंचम, अथावा अछूत के रूप में पाई जाती है। यहां पर प्रश्न उठता है कि ग्रामीण जीवन के अर्थशास्त्र में वर्णित जातियों की क्या भूमिका रही ? एवं इस तरह जाति व्यवस्था के रहते हुए ग्रामीण व्यापार में हाट की क्या भूमिका हो सकती है?

सांस्कृतिक अर्थशास्त्र जिसे हम धर्म एवं संस्कृति से जोड़ कर देख सकते हैं। सांस्कृतिक अर्थशास्त्र में एक तरफ आस्था

एवं विश्वास है और दूसरी ओर इन्हीं के आधार पर सांस्कृतिक व्यापार की रूप रेखाएं भी बनती है। आधुनिक शब्द निवेश की जगह पर आस्था एवं विश्वास का निवेश हुआ और इसके बदले में दक्षिणा के रूप में परिणाम मिला। सांस्कृतिक अर्थशास्त्र में निवेश के स्तर पर शून्य है और लाभ के स्तर पर जितनी भी पाई जाए वह कम है। इसे हम इस तरह से समझ सकते हैं कि संस्कृति में भावनात्मक व्यापार में ग्राहक में आस्था एवं विश्वास आधारित अभौतिक सोच विकसित करना है और इसके परिणाम और लाभ में भौतिक वस्तुएं प्राप्त करनी है। यह स्थिति आधुनिक समाज में भी देखने को मिलता है जिसे बाजार की जगह धार्मिक स्थलों जैसे मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारे आदि कुछ भी हो सकते हैं। यद्यपि सास्कृतिक अर्थशास्त्र अनुत्पादक वर्ग में शामिल है फिर भी आर्थिक स्तर पर भौतिक लाभ के बारे में केवल अनुमान ही कर सकते हैं। धार्मिक अर्थशास्त्र ने ऐसा व्यापार आरंभ किया जिसमें निवेश शून्य होता है लेकिन आमदनी अथवा लाभ का अंदाजा नहीं लगा सकते हैं। अब यह सवाल उठता है कि सामाजिक संरचना में जहां एक और धार्मिक अर्थशास्त्र हावी रहा वहीं सामाजिक व्यवस्था में जाति व्यवस्था भी लागू है तो इस स्थिति में सामाजिक संस्तरण में ग्रामीण हाट की भूमिका कैसे तय होगी?

ग्रामीण जीवन में व्यापार का केंद्र हाट रहा है। हाट ने वस्तु विनिमय से लेकर करेंसी तक की यात्रा तय की है। ग्रामीणों की स्थिति में सुधार के लिए अर्थगत नीति के तहत विचार करें तो पाते हैं कि यह क्षेत्रीय भूभाग में अवस्थित कुछ गांव का आर्थिक केंद्र माना जा सकता है। हाट के निर्माण की प्रक्रिया गांव में उत्पादित वस्तुओं की विनिमय से है जिसे पहले पड़ोसी से होते हुए टोला, मोहल्ला फिर दूसरे गांव तक का सफर के रूप में देखा जा सकता है। इसके लिए हम तीन हाटों को उदाहरण के लिए रखेंगे पेरिस, फ्रांस में हाट, महानगर दिल्ली में हाट और मुंगेर जिला के दशरथपुर रेलवे स्टेशन के पास इटवा गांव में हाट। इन हाटों के आधार पर यह दिखाने का प्रयास है कि हाट चाहे पेरिस में हो या दिल्ली में अथवा इटवा गांव में, उसके बुनियादी सवाल और सरोकार का आर्थिक आधार क्या है? साथ ही यह भी स्पष्ट करने का प्रयास है कि ग्रामीण हाट की आर्थिक संचार से सामाजिक औ सांस्कृतिक स्थिति पर यह कैसे प्रभाव डालता है?

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में श्रम के बदले मजदूरी का प्रमाण जाति व्यवस्था के अंतर्गत जजमानी व्यवस्था में पाते हैं। जजमानी व्यवस्था एक तरह की प्राचीन समाज की आर्थिक व्यवस्था मानी जा सकती है। इस व्यवस्था में नाई द्वारा बाल काटना, धोबी द्वारा कपड़ा धोना, बढ़ई द्वारा लकड़ी के काम जैसे घर बनाना, हल बनाना आदि आती है। इन जातियों को उनके कार्यों एवं श्रम के बदले कोई राशि प्रदान नहीं की जाती थी बल्कि किसानों की फसल कटाई के दौरान ही उन्हें फसल का कुछ हिस्सा दे दिया जाता। सबसे बुरी स्थिति तब होती थी जब अकाल पड़ता था। सालों भर की मेहनत का परिणाम भी अकाल के गाल में समा जाता था। इनकी गरीबी एवं भूखमरी का मुख्य कारण जजमानी व्यवस्था में पाने वाले पारिश्रमिक का अनिश्चित होना भी रहा है। आर्थिक क्षेत्र में जजमानी व्यवस्था इन जातियों के शोषण का मुख्य आधार भी रहा है।

आर्थिक व्यवस्था का राजसत्ता से गहरा संबंध रहा है। सत्ता के स्थापित होने में अर्थ की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती रही है। अर्थ के बगैर न तो राजसत्ता स्थापित हो सकती है और ना सांस्कृतिक रूप से धर्म भी अपनी भूमिका निभा सकता है। राजनीति और धर्म के संचालन में अर्थ उसके केंद्र में रहा है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर भौतिक लाभ जैसे- धन संग्रह एवं धन लाभ को पाप की श्रेणी में रखा गया। जबकि वास्तविकता यह है कि इसके संचालन करने वाले पुरोहित वर्ग हों या अन्य सभी ने दक्षिणा के रूप में अर्थ का ही व्यापार करते दिखाई देते हैं। यद्यपि इसको पुण्य के साथ ईश्वरीय भक्ति से जोड़ कर एक नए छद्म रूप में अर्थ को स्थापित किया गया। यह भी आर्थिक क्षेत्र का व्यापार ही है। फर्क है तो केवल यह कि धर्म की आड़ में होने वाला विनिमय है। इसमें पूंजी की जगह ईश्वर तत्व होते हैं बाकी भूमि, श्रम के बाद वितरण (जो प्रसाद के रूप में) आर्थिक स्थिति ही लागू होती है। धार्मिक विश्वास एवं आस्था एक तरह की बिकने वाली

वस्तु के रूप में प्रस्तुत होती है जिसका भौतिक अवशेष तो नहीं मिलता बल्कि भौतिक रूप से आदान-प्रदान वस्तु अथवा राशि के रूप में अवश्य होता है। एंगेल्स ने सभ्यता के विकास में वस्तु स्थितियों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि ''सभ्यता का विकास तब होता है जब बिकाऊ माल का चलन होता है। बिकाऊ माल के चलन से चार चीजें होती हैं, पहले यह धातु के बने हुए सिक्के चालू किए जाते हैं, दूसरी यह कि सौदागर उत्पादकों के मध्य बिचौलियों का काम करते हैं, तीसरी यह की भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व कायम होता है और चौथी यह कि उत्पादन में प्रधान भूमिका दास-प्रथा वाले श्रम की होती है।'' यद्यपि एंगेल्स ने यह विचार आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र से जुड़कर कहीं। आर्थिक उत्पादन का आधार लाभ से जुड़कर तय होता है और धार्मिक एवं सांस्कृतिक अर्थशास्त्र भी इसी से जुड़ा हुए हैं। इसमें अंतर है तो केवल उसके लेबल का है। इस तरह के उत्पादन में भूमि की जगह धार्मिक स्थल (मंदिर आदि) पूंजी के रूप में धार्मिक आस्था विश्वास, श्रम के रूप में पुरोहिताई, विनिमय के रूप में पुण्य का लाभ और वितरण की जगह प्रसाद आदि आ सकते हैं। ऐसी स्थिति में सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थशास्त्र में धर्म से जाति, जाति से जाति-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था से जजमानी प्रथा से जुड़ती हुई नजर आती है। इस तरह ''श्रम उत्पादक भी हो सकता है और अनुउत्पादक भी।'' एंगेल्स के दास भारतीय सामाजिक व्यवस्था में निम्न जातियां अथवा शूद्र ही है। अंतर केवल इतना भर है कि दास, वर्ग के अंतर्गत आते हैं और शूद्र जाति के।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

सेठ, सुरेश: श्रम का अर्थशास्त्र, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1991

खन्ना, जी एस: एनसीईआरटी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986

गेल, के एस: भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, एनसीईआरटी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 9977

शर्मा के एल: भारतीय समाज, एनसीईआरटी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1989

शर्मा, रामशरण: प्राचीन भारत, एनसीईआरटी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1990

शर्मा, रामविलास: भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1992 पृ 72

छुबे, सत्य मित्र , शर्मा, दिनेश: समाजशास्त्र एक परिचय, एनसीईआरटी, प्रथम संस्करण 1989

गुप्ता एम एल, शर्मा डीडी: समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2000

'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में भूमिहीनो की समस्या

पुष्पा कुमारी
शोधार्थी, मुंगेर विश्वविद्यालय

भारत की आजादी से पूर्व और बाद्र के दिनों में समानता और स्वतंत्रता को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर बहस चलती रही है। समानता का अर्थ न केवल सामाजिक क्षेत्र से था बल्कि जमींदारों और भूमिहीनों के बीच एक बड़ी खाई को पाटने को लेकर भी था। इस असमानता को पाटने के लिए 1956 में जमींदारी उन्मूलन एक्ट पारित किया गया जिसके तहत जमीन रखने के क्षेत्रफल को नियमित और नियंत्रित किया गया इसके लिए पूर्णरूप से सिंचित, अर्धसिंचित और बंजर जमीनों के अलग-अलग आंकड़े प्रस्तुत किए गए। जमींदारी उन्मूलन के बाद भी समाज में भूमिहीनों की संख्या में कमी नहीं आई बल्कि बेनामी जमीनों की बाढ़-सी आ गई। संपŸाि के रूप में चल और अचल संपŸाि को माना जाता है और जमीन अचल संपŸाि मानी गई है। भारतीय संदर्भ में जमीन को न केवल आर्थिक समृद्धि का साधन माना गया है बल्कि सामाजिक सम्मान से भी जोड़ा गया है। इस स्थिति में भूमिहीनों को न तो आर्थिक लाभ होता है और न सामाजिक सम्मान की प्राप्ति होती है बल्कि वे गरीबी की दलदल में फंसे नजर आते हैं। किसी भी देश की आजादी के मायने इस अर्थ में पूर्ण हो सकते हैं जब सामाजिक स्तर पर आर्थिक विभाजन में समानता हो। भारतीय संदर्भ में आर्थिक असमानता के मुख्य कारणों में एक कारण जमीनों का असमान वितरण है तथा समाज पर पड़नेवाले दुष्प्रभावों को रेखांकित करते हुए इस शोधपत्र में यह दिखाना है कि असमान रूप से जमीनों का वितरण देश के विकास में किस प्रकार बाधा उत्पन्न करता है और इस समस्या का क्या समाधान हो सकता है?

'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास का मूल आधार सामाजिक जीवन में असमानताओं का विवरण प्रस्तुत करना है। इस उपन्यास के उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल की साहित्यिक दृष्टि को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि समाज में असमानता के बीज कैसे पड़ते हैं और फिर बाद में वह पेड़ बनकर समाज को लकवाग्रस्त कर देते हैं समाज का निर्माण व्यक्ति से होता हैं और किसान और व्यक्ति की समृद्धि ही समाज की जड़ों को मजबूत बनाती हैं। यहाँ यह देखना होगा कि बगैर जमीन की विकास की जड़े कहाँ पर अपनी जगह बना पाएँगी? इस प्रश्न का पूँण उŸार तो नहीं बल्कि उसकी मूल समस्या की खोज श्रीलाल शुक्ल अपने उपन्यास के द्वारा साहित्य,समाज और राजनीति-तीनों की प्रस्तुति 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास के माध्यम से नजर आते हैं। विशेषकर राजनीति से समाज और व्यक्ति दोनो कैसे प्रभावित होता है, उसकी प्रस्तुति श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास में किया है।

हमारा देश अंग्रेजी हुकूमत से आजाद हो चुका था लेकिन हमारे समाज को कई ऐसी बेड़ियों ने इस कदर जकड़ रखा था कि हमारा भारतीय समाज और उसमें रहनेवाली निरीह और अभावग्रस्त जनता का जीवन दुरूह होता रहा है। इस देश से जाते-जाते अंग्रेजों ने भारत को कई नासूर दे रखे थे जो हमारे समाज को दीमक की तरह खोखला कर रही थीं। खेती योग्य भूमि का अधिकांश भाग जमीदारों के कब्जे में था तो दूसरी तरफ गरीबों के पास रहने भर के लिए भी भूमि मयस्सर नहीं थीं। ऐसे विपरीत हालात वाले समाज में गरीब और अमीर के बीच एक गहरी खाई बन गई। आचार्य बिनोबा भावे ने इस

विषम परिस्थिति या सामाजिक वैषम्य को करीब से देखा तो वे अस्सी हरिजन परिवारों से मिले और उनकी आपबीती सुनी। उन भूमिहीन हरिजनों को उन्होनें सबसे पहले अपनी भूमि दान में दी और देश के विभिन्न हिस्सों में घूम-घूमकर लोगों से अपनी जमीन का छठा भाग भूमिहीनों को या भूदान-यज्ञ को समर्पित करने का आग्रह किया। भूमिहीन गरीब जनता अपनी जमीन का सपना भी नहीं देख पा रही थी क्योंकि वे तो किसान से मजदूर बन चुके थे। ऐसे में आचार्य बिनोवा भावे उनके समक्ष एक उम्मीद की किरण के साथ भारतीय समाज में उदित हुए और उन्होनें सर्वोदय समाज की कल्पना की। इसका उद्देश्य अहिंसात्मक तरीके से देश में सामाजिक परिवर्तन लाना था। इस कार्यक्रम में वे पदयात्री बनकर गाँव-गाँव घूमे और लोगों से भूमिखण्ड दान देने की याचना की ताकि उसे कुछ भूमिहीनों को भूमि देकर उनका जीवन सुधारा जा सके। उनका यह आह्वान अत्यंत प्रभावी रहा। ''सन् 1940 में प्रथम सत्याग्रही के रूप में बिनोवा ने अपना भाषण पवनार में दिया। 9 अगस्त 1942 को वे 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के सिलसिले में जेल चले गए। 9 जुलाई 1945 को जेल से रिहा होकर पवनार आश्रम का भार स्वयं अपने कंधों पर उन्होनें ले लिया। 15 अगस्त को आजादी मिलते ही बंगाल में दीन-दुखियों के कष्ट निवारण के लिए निकल पड़े''1 उन्होंने सत्याग्रह पर विश्वास रखते हुए सर्वोदय समाज की स्थापना की, 7 मार्च 1951 में पैदल यात्रा करते हएु भूदान-आंदोलन की शुरूआत की। ''आंध्रप्रदेश के नलगोड़ा के पोचमपल्ली गॉव में 13 अप्रैल 1951 में भूमिहीन हरिजनों की पुकार सुनी। वहीं के जमींदार रामचन्द्र रेड्डी ने 100 एकड़ जमीन दान देकर बिनोबा के भूदान-यज्ञ की शुरूआत की।''2

आर्चाय विनोबा के भूदान आंदोलन का उद्देश्य ग्रामीण भारत की भूमि-असमानता को कम करना और भूमिहीन किसानों को भूमि उपलब्ध कराने का था जिससे उन्हें मजदूर बनने से बचाया जा सके। भारत की स्वतंत्रता के बाद भूमि-असमानता और जमींदारी आधारित ग्रामीण सामाजिक संरचना देश के विकास में बड़ी चुनौती थी। भूमि उत्पादन का प्रमुख साधन थी और भूमिहीनता व्यापक गरीबी का मुख्य कारण थी। इसी सन्दर्भ में भूदान-यज्ञ एक अनूठा प्रयोग था। यह न तो सरकारी योजना थी और न ही हिंसक संधर्ष, बल्कि एक नैतिक अनुरोध पर आधारित सामाजिक क्रांति का प्रयास था।

आचार्य भावे ने पूरे देश की पदयात्रा के दौरान भूमिहीन किसानों के दर्द को महसूस किया और पाया कि जिसके पास अपनी भूमि नहीं है वे किसान से मजदूर और रिक्शाचालक बनकर पलायन करने को मजबूर हैं जिसका दर्शन हमें 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में होता हैं।

1. साम्ययोगी, बिनोवा भावे - पृ0-13
2. गाँव सुखी, हम सुखी - पृ0 - 28

किसानों के कृषि-कार्य का जो मौसम होता है, उसमें उन्हें दम मारने की भी फुर्सत नहीं होती, यदि गाँव में रोजगार कार्य सम्यक् रूप से चल रहा हो लेकिन भूमिहीन किसानों के दर्द को साझा करते हुए उनकी फटेहाली को बयां करता हुआ यह उपन्यास कहता है कि "अब और क्या कहा जाए। उस मौसम में इस गाँव ने लगभग आधा दर्जन रिक्शाचालकों का निर्यात किया।''3 इसमें साफ पता चलता है कि मेहनत-मजूरी करनेवाला कृषक वर्ग भूमिहीन है और उसकी बेबसी उसे इस कदर लाचार कर देती है कि वे रिक्शा चलाने के लिए गाँव से बाहर जाते हैं ताकि उनके परिवार को दो जून की रोटी तो मिल सके।

आचार्य विनोबा ने अनुमान लगाया कि यदि भूमिहीन किसानों को किसी प्रकार से भूमि प्राप्त हो जाए तो भारत में भूमि-समस्या का समाधान हो सकता है। उनके अनुमान से पाँच करोड़ एकड़ भूमि से भारत से भूमिहीनता का सफाया हो सकता है जो कुल काश्तकारी भूमि का छठा हिस्सा है। उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर भूदान यानी भूमि का दान मांगना शुरू

किया और इस आंदोलन का सूत्रपात किया। बिहार में उन्हें 835 दिन की यात्रा में 2232474 एकड़ भूमि दान में प्राप्त हुई। बिहार के अंदर उन्होनें यह दिखा दिया कि अहिंसा की शक्ति से भूमि-समस्या का समाधान कैसे किया जा सकता है।

बिनोबा जी ने सर्वोदय कार्यकर्Ÿााओं को 8 मार्च 1953 में चांडिल्य में संबोधित करते हुए कहा था कि हमारा उद्देश्य केवल भूदान-प्राप्ति नहीं है। हमें स्वतंत्र लोकशक्ति का निर्माण करना है जो अहिंसक शक्ति से देश की विभिन्न समस्याएँ कम की जा सकेंगी। आर्चाय जी के आंदोलन का यह प्रभाव हुआ कि जयप्रकाश नारायण ने इस अहिंसक क्रांति के लिए लगभग 600 कार्यकर्Ÿााओं के साथ जीवन-दान का व्रत लिया जिससे जमीन के दाम गिरने लगे। जमींदार स्वयं विनोबा जी के पास आते और उन्हें अपनी जमीन का छठा हिस्सा स्वीकार करने के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करते किन्तु बिहार में इसकी एक प्रतिक्रिया हुई कि अनेक बड़े जमींदार घबरा गए। कांग्रेस तथा उनके समर्थक राजनीतिक दलों में खलबली मच गई। जमीन हाथ से जाती हुई देखकर कई कांग्रेसी झल्ला उठे और उन्होंने किसी तरह से बिनोबा जी को बिहार से विदा किया लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि बिहार के जमींदार और बिहार की कांग्रेसी सरकार ने बिहार के भूदान-आंदोलन को पूरी तरह से खोखला एवं जर्जर कर दिया, जिससे भूमिहीनों की समस्या ज्यों की त्यों बनी रह गई। 'बिस्रामपुर का संत' में उपन्यासकार ने यह दिखाया है कि भूदान के पीछे भी कइयों में दिखावे और बाह्याडम्बर की भावना थी। इस संदर्भ में हम कठोपनिषद के श्लोक को देख सकते हैंः-

''पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरीन्द्रयाः

अनन्दा नाम ते लोकाः ताः स गच्छन्ति तानददत्''4

3. ''बिस्रामपुर का संत' श्रीलाल शुक्ल, पृ0सं0 124

4. कठोपनिषद - कठ ऋषि - पृ0सं0 -56

इस संबंध में कठोपनिषद में लिखा गया है कि यज्ञोपरांत जब राजा वाजश्रवा दक्षिणा के रूप में ब्राह्मणों को बूढ़ी गायें दान में दे रहे थे तो उनका पुत्र नचिकेता आकर अपने पिता से पूछता है कि आप मुझे किसको दान में दे रहे हैं क्योंकि यज्ञ के बाद अपनी प्रिय वस्तु के दान में देने की परंपरा रही है। राजा वाजश्रवा अपनी प्रिय वस्तु का दान नहीं करके बेकार और बूढ़ी गायों का दान कर रहें हैं जो न तो दूध दे सकती हैं और न घास ही खा सकती हैं यानी बेकार हैं। ऐसे में दानकर्Ÿाा को स्वर्ग की बजाय नरक की प्राप्ति होती है। ठीक उसी प्रकार भूदान के लिए जो जमीन दान दी जा रही थी, उनमे से अधिकांश बंजर और बेकार थी।" वही विनय वाटिका है। यह जमीन जिस जमींदार की थी, वे रावसाहब के रिश्तेदार थे। रावसाहब की प्रेरणा से इसे इन्होंने ग्रामदान में डाल दिया था। यह सारी जमीन बंजर थी''5। यानी भूदान के नाम पर जमींदार अपनी बंजर और बेकार भूमि को दान दे रहे थे और इसके एवज में यश-नाम कमा रहे थे और साथ ही सरकारी सुविधाओं का भी उपभोग कर रहे थे।

भूदान-आंदोलन शनैः शनैः शिथिल पड़ता चला गया। उनकी पदयात्राएं दिखावा बनकर रह गई। बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी तथा मंत्री उनकी पदयात्रा की अगुवानी करते और स्वागत के लिए तैयार रहते लेकिन विनोबा जी के साथ फोटो खिंचाते ही पुनः गायब हो जाते। इस भूदान-आंदोलन की कई त्रुटियां थी जो इसकी सफलता में रोड़ा बनती गई। विनोबा जी तथा जय प्रकाश नारायण के अलावा और कोई व्यक्ति ऐसा नहीं था जो भूदान-आंदोलन के लिए निःस्वार्थ भाव से अपना जीवन अर्पित करता, फिर भी इस आंदोलन ने वह कर दिखाया जो सरकारी तंत्र नहीं कर सकता था।

भूदान की असफलता आर्थिक विषमता, गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए चुनौती थी। इस आंदोलन के संबंध में जयप्रकाश नारायण ने अपनी जेल डायरी में 18 अगस्त 1975 को यह लिखा है - ''शायद विनोबा जी यह समझते थे और अब भी समझते हैं कि बिना किसी संधर्ष के, शांतिपूर्ण संधर्ष के बगैर भी राजनीतिक तंत्र में क्रमागत परिवर्Ÿान लाया जा सकता है लेकिन ग्राम स्वराज्य कार्य के वर्षो के अपने अनुभव से मेरा यह निश्चित मत बन गया कि ग्राम स्वराज्य अपने में एक मूल्यवान राजनीतिक संगठन है बशर्ते कि वह काम करे और सिर्फ कागज पर न रहे। भूदान से शुरू होकर और ग्रामदान में से होकर बीस साल से ज्यादा लंबे अरसे तक चलने के बाद ग्राम स्वराज आंदोलन उस निष्फल हालत में पहुँच गया था जिसमें वह आज है।''6

भूदान कार्यक्रम में एक अच्छी बात यह की गई कि भूमि का विवरण किया जाए और भूमिहीन गरीब मजदूर-किसानों को जमीनें दी जाय। विनोवा भावे ने भूदान आंदोलन चलाने के लिए देश में सबसे उपयुक्त बिहार को माना। वे 14 सितम्बर 1952 को बिहार आए। बिहार में उनका अभियान 27 महीनों तक चला और वे 31 दिसम्बर 1954 तक बिहार में रहे।

5. 'बिस्रामपुर का संत' - श्रीलाल शुक्ल - पृ0सं0 - 121

6. 'मेरी जेल डायरी'- जय प्रकाश नारायण

बिहार की धरती को विनोबा भावे ने अहिंसा का नया प्रयोग करने के सर्वाधिक उपयुक्त माना क्योंकि उन्हें मालूम था कि महात्मा बुद्ध ने इसी बिहार से अहिंसा का संदेश विश्व के अन्य देशों में फैलाया। लेकिन इस संदर्भ में बंदोपाध्याय भूमि सुधार आयोग ने दुख के साथ लिखा है कि ''भूदान यज्ञ कमिटि और राज्य सरकार के राजस्व विभाग की अकुशलता के कारण ज्यादा कुछ हासिल नहीं किया जा सका।''7

कालान्तर में भूदान आन्दोलन जनता का आंदोलन नहीं बन पाया। आंदोलन को मंजिल तक पहुँचाने के लिए विनोबा ने लोगों से अपनी आय का छठा भाग दान करने के लिए कहा, कार्यकर्Ÿााओं के लिए सर्वोदय पात्र जैसे विचार रखे पर इन विचारों को गति नहीं मिल पाई। विनोबा के अनुसार यदि गाँव में एकता होगी, तब ही वे सशक्त होंगे और लोग शोषण से मुक्त रहेगें। सरकार कभी उन्हें शोषण से मुक्त नहीं कर पाएगी, केवल ग्रामीण स्वयं यह काम कर सकते हैं। यदि हम ग्रामदान जैसे अहिंसक कार्य भी नहीं कर पाते हैं तो निरन्तर शोषित होते रहेंगे। 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में विस्थापन एवं भूमिहीनों की समस्याओं को केन्द्रीय विषय बनाकर यह उपन्यास भूमिहीनों का साहित्यिक दस्तावेज के रूप में उपस्थित हुआ जिसमें समस्याओं की स्थिति एवं निरूपण को स्थापित करने के प्रयास किए गये हैं। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि गाँधी के मार्ग का अनुसरण करते हुए विनोबा भावे ने जिस उदार-भाव से भूदान-आंदोलन चलाया, भूमिहीन किसानों की पीड़ा को दूर करने का प्रयास किया और जनता ने भी अपनी जमीने दान कर दी, लेकिन हमारी प्रशासनिक व्यवस्था की लालफीताशाही और भ्रष्ट्राचार के कारण वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नही कर सका। इसका अंतिम लक्ष्य तो तभी प्राप्त होगा जब प्रशासनिक इकाई भ्रष्ट्राचार से मुक्त रहकर भू-आवंटन के उद्देश्य को भी प्राप्त करेंगी।

7. 'मेरी जेल डायरी'- जय प्रकाश नारायण

संस्कृत

(1) साहित्य और स्वाधीनता आन्दोलन यस्या समस्त वस्तु-नचिंतिः बीजभाव सति समाहितानि। सा संस्कृति गतिम्, वेगमता वाणी प्रतिपादिनी असिद्धा।।

जिसे समस्त पृथ्वीवासी बोलते हैं और जो सब में बीज रूप में, किसी न किसी तरह समाहित है, उसी संस्कृति जिसे गमाओं की जननी कहा गया है, वाणी का विधान करनेवाली सारे संसार में प्रसिद्ध है। विश्वव्यापक रूप से संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान की दृष्टि से देखने पर ग्रीक, लैटिन, अरबी या फारसी सभी भाषाओं को एक ही वर्ग में उत्पन्न करने की संज्ञा तो जाने लगी है जिसकी कल्पना भी उनसे पूर्व तक नहीं की जा सकती थी। यह भाषा इसलिए भी आदर का पात्र है कि वेद, उपनिषद, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन, विज्ञान, व्याकरण, काव्य और नाटक सभी विषयों में विश्व में प्राचीन या प्रचलित कोई तत्व कृत नहीं है। महाभारत की उक्तिपादन साक्ष्य है— "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्"

इसी क्रम में यह कहना अत्यन्त समुचित है कि संस्कृत गद्य और साहित्य के साथ भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का सम्बन्ध नवीन और गाढ़ का है। बिना पाठ के नदी अनियंत्रित होकर व्यर्थ हो जायेगी।

(2) अनुपयोगी होकर, सब कुछ डुबा- बहा ले जायेगी। पाठ के बीच ही नदी की शोभा है, सौन्दर्य है, गाम्भीर्य है और मानव-जीवन के लिए कर्म भी। संस्कृति की निर्झरिणी और ज्ञान की ज्योतिपुंज से सम्पन्न संस्कृत साहित्य के दो पाटों के बीच ही स्वाधीनता-आन्दोलन की नदी का प्रवाह प्रखरित हुआ और उस प्रवाह ने ही स्वाधीनता की दूर साँसों में नये तन-मन और वाणी को परिपुष्ट किया—

"यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्"

"मृदुं, पाणिनसंस्कृतं सदा सुभाषितम्"

अनेकों स्वतंत्रता रूपी नदी के फल-जल से ही हम आज सुखासीन और स्वतंत्र हैं। हमारे राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन संस्कृत भाषा और साहित्य का प्रेरणा-स्त्रोत है। राष्ट्र शब्द का प्रथम उच्चार ही संस्कृत के देववाणी में से होता है—"अहं राष्ट्रे संगमनी वसूनाम्।"

हिन्दी साहित्य के कवि-लेखकों ने भी उर्दू, कोशी, फारसी, तमिल, कन्नड़ आदि भाषाओं के साथ इस राष्ट्रीय मंत्र का खूब उपयोग किया है, प्रेरणा ली है और आन्दोलन की पृष्ठभूमि जीवन में देश और मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए अपना युग-चेतन जगाया है। अत्रेय की एक कविता का शीर्षक ही है— "अहं राष्ट्रे संगमनी जनानाम्।"

अनेक चेष्टा की राष्ट्र को उन्नतिवान्।

(3) राष्ट्र मान और उसके लिए प्राण देने के अग्नि क्षण तक जाकर एक विराट महर्षि कहलाने का उद्दात्त मंत्र यही था। इस मंत्र में देवी (शक्ति) यही कहती हैं कि मैं ही राष्ट्र की संचालिनी, रक्षक तथा संगठित करने वाली शक्ति हूँ। यह

वैदिक मंत्र ही आधुनिक राष्ट्रीय चिन्तन और अनन्यस योग का उद्गार है। स्त्रीत्व और देवत्व की राष्ट्रमूर्ति देखिये—

प्रथम प्राण उदय तब होगा, प्रथम राम स्वर तब ताने, प्रथम प्रचारित तब वन जगे ज्ञान-धर्म का पुष्प खिलें।

'कर्मण्येव' (बाल गंगाधर तिलक) ने जीवन नैतिक रूप से स्वाधीनता संग्राम का उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में नेतृत्व किया और गाँधी के असहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर, पत्रकारिता हुए, उन्हें स्वाधीनता-संग्राम का दायित्व (राष्ट्र का अग्रिम भाग) पुरुषार्थ संस्कृत साहित्य ने ही बनाया। आद्यन्त स्वाधीनता-संग्राम में कारागार में रहकर उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता की अपूर्व टीका और कर्मसंन्यास सिद्धान्त की व्याख्या की। आवश्यक भी है कि वे यह दिखाना चाहते थे कि कारागार में जन्म लेकर, एक महापुरुष (कृष्ण) ने जिस प्रकार कर्म करते हुए अत्याचारी का उद्धार कर दिया और

(4) अत्याचारी कौरवों की दुर्योधन अधिष्ठिति सेना उनके साहस की चुनौती पर पूर्णतः दी गयी। लोकमान्य का जीवन था कर्मयोग और राष्ट्रोत्थान, गुलामी के मूल को प्रभावहीन कर देना। उनका मूल मंत्र था— "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" और गीता का अंतिम श्लोक—

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥" ठीक जैसे अर्जुन को दुविधा में गीता-ज्ञान देकर श्रीकृष्ण ने युद्धार्थ प्रेरित किया, तिलक ने स्वाधीनता-युद्ध का स्वर बनकर अपने अनुयायियों और राष्ट्रसेवकों को जाग्रत किया—

"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

एक तरह से महात्मा गाँधी के हाथ में गीता का आदर्श प्रभावी था। उन्होंने अंतिम सांस तक स्वदेशी जीवन में रहकर के लोकसेवा की। जब अंग्रेज अधिकारियों ने जेल के द्वार से उन्हें नीचे फेंक दिया तो गीता की वही कक्षा स्मरण आये और शांत भाव से उन्होंने प्रतिरोध के मार्ग पर विचार किया तो उन्हें आत्मबल मिला। यह अहिंसा थी। श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार बिना शस्त्र उठाये कौरवों की हिंसा को समाप्त किया

(5) गाँधी ने उसी शालीनता का अनुसरण औद्योगिक रूप में किया। जीता सेवक गाँधी के रूप में रहकर उन्होंने इस गीता से अपने लिये मार्ग ढूँढा—"मात्र स्वाधीन कर्मणि संघस्थाः चैव"। निष्कामिनो भूताः सुखदुःख विवर्जिताः॥

गाँधी ने सत्याग्रह और क्रान्ति दोनों को स्वीकार किया किन्तु मुख्य संग्राम और क्रोध के नहीं। यही है अनुपम संस्कृत साहित्य। यहाँ अटल—"हारे नहीं मानूँगा, रार नहीं ठानूँगा।"

तो विस्मयकारी कामनायें जो बाद में सामने—पद में जाकर महर्षि कहलाये, उनकी प्रेरणा वेद और गीता थे। गाँधी थे, तिलक थे, विनोबा थे। तिलक ने जो गीता गायी उसके स्वर से ही स्वाधीनता-आन्दोलन के महापुरुषों ने अपनी रणनीति बनायी।

इन महापुरुषों का जीवन के प्रति अटूट रचनात्मक प्रेम से यह निरूपित है कि संस्कृत साहित्य का स्वरूप स्वाधीनता-संग्राम के लिए अत्यन्त प्रेरक और कल्याणकारी रहा है। यह भी स्पष्ट है कि स्वाधीनता-संग्राम मूलतः आधुनिक भारतीय भाषाओं में ही प्रवाहित हुआ और उस साहित्य ने मानसिक, शारीरिक और नैतिक

(6) किन्तु पर सर्वाधिक कार्य किया जो भौतिक रूप से युवाओं में प्रतिपादित हुआ। स्वाधीनता के आदर्श और राष्ट्रोत्थान के मुख्य स्वर की परिपूर्णता के लिए संस्कृत साहित्य को स्वाधीनता-आन्दोलन की गंगोत्री कहा जा सकता है। गीता ने अधिकार दिया— "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

यहाँ बात किसी विशेष एक वर्ग या जनसमुदाय के सम्बन्ध में न होकर आध्यात्म से है, आदर्श और आदर्शवाद की है। दूसरे का रूप-रंग, भाषा और संस्कृति आदि स्वीकार करना और अनुकरण का अर्थ ही गुलामी है— "Imitation is suicide" — अनुकरण आत्महत्या है। मैकॉले ने परम्परागत भारतीय शिक्षा-संस्थाओं पर बड़ी चोट करते हुए पाठ्यपुस्तक ज्ञान को श्रेष्ठ ठहराया, भारतीय भाषा और ज्ञान को अनुपयोगी बताया— "We must at present do our best to form a class of persons Indian in blood and color, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect."

हमें एक ऐसा वर्ग बनाना चाहिए जो रक्त और रंग से भारतीय हो किन्तु रुचि, विचार, नैतिकता और बुद्धि से अंग्रेजी हो। उसी शिक्षा और ज्ञान पर प्रहार करते हुए कहा— "एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की अलमारी भारत और अरब के समस्त देवदासियों से अधिक मूल्यवान है।"

भारतीय स्वतंत्रता के सांस्कृतिक उद्देश्य और अनुगूंजों को रेखांकित करने में आज तक गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ पृष्ठ मात्र नहीं माना गया। यह गीत एक राजनीतिक नारा नहीं बल्कि महान बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और क्रांतिकारी भाव था। इस विचार ने विद्यार्थियों के औपनिवेशिक उच्चारणों से हमारे स्वाधीन दीप को प्रज्वलित किया और तिलक, अरविंद, सुभाष, गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि ने संस्कृति के इस महायज्ञ से मेकाले की कृत्रिम शिक्षा की भूल को दूर करने की ठान ली और इनके देशी शिक्षा-संस्थानों की नींव डाल दी। आत्मनिर्भरता के उदय के लिए वे कटिबद्ध हो गए—

""स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।""

स्वामी विवेकानन्द ने कोलम्बस के मेल को उद्घाटित करते हुए अपनी पुस्तक 'युवकों से' में स्वतंत्रता-जागरण में जागृति की अग्नि देने की अपील की—**"उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्ति तक मत रुको।"**

इन महान पुरुषों ने उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक की सांस्कृतिक-राष्ट्रीय चेतना को सशक्त आधार प्रदान किया।

नेताओं और स्वाध्यायियों के कान में अनुकरण होता रहा। वाल्मीकि रामायण में राम भी लक्ष्मण से कहते हैं—

**"अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमश्चि स्वर्गादपि गरीयसी॥"**

भारतीय संस्कृति का निवास, नियम और कर्तव्य का उपदेश करने वाला विष्णु पुराण का यह श्लोक स्मरणीय है—

**"गायन्ति देवाः कलि गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारतभूमभिागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते,**

भवन्ता भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥"

संघर्ष का औचित्य इस बात में है कि हम वह किसलिए कर रहे हैं। वह केवल अहंकार, शौर्य-प्रदर्शन के लिए नहीं, बल्कि समस्त देश और मानवता के लिए है। भारतवर्ष के स्वतंत्रता-सैनिकों ने आगे कई देशों को गुलामी से मुक्त होने की प्रेरणा दी, क्योंकि उनका स्वतंत्रता-संघर्ष केवल अपने लिए नहीं था।

तिलक ने स्वराज्य को मानव का जन्मसिद्ध अधिकार बताया—**"स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"**

सामने चलने और करने से ही अर्थ की प्राप्ति होती है। निराशा कालजयी का श्लोक देखिए—

"कालः शयानो भवता, सञ्जीवस्तु चरन्।
उत्तष्ठिन् क्षपि्रं भवता, दूरं सम्पद्यते पन्थानः॥"

अर्थात् जो व्यक्ति कालकूप में है, अर्थात् लेटा हुआ है, वह क्षीण हो जाता है; जो चल रहा है, वही समर्थ है। चलने वाला ही समय के साथ आगे बढ़ता है।

यह बात केवल कर्मयोग या सत्याग्रह में ही नहीं, महात्मा गांधी के राजनीतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले के इस मंत्र के प्रेरणीय अर्थ में भी निहित है। जो असत्य है, वह गुलामी है; जो त्याग है, वह जड़ता है; जो सत्य है, वही हीनभाव है। जो स्वतंत्र है, उन्हीं की ही गतियाँ हैं।

वह या तो पुरुषार्थ की गति है, विकास की है; वैयक्तिक योगों के स्तर पर नहीं, अपितु समग्र (देश) में ही मुखर होती है।

जो गति है, वही कर्म है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥""

भारतीय दृष्टि की यह 'पुरुष की अस्मिता' का बोधक भाव यहाँ प्रतिपाद्य विषय है। इसी तरह आगे बढ़ते हुए भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष…

यह लौकिक और पारलौकिक के सुख की अभिलाषा है—

"गङ्गां गच्छन्ता सागरं सागरं सागरं यथा।
आत्मानं नान्यथाभूतं जायते का पुनः कदा॥"

मौलिक श्लोक की दूसरी पंक्ति 'सागरगामिनी' रूप में भी मिलती है। सागर या समुद्र का अर्थ है— वह स्थिति जहाँ समस्त नदियाँ जाकर मिलती हैं। उसी प्रकार संस्कृत साहित्य के बृहद् श्लोक और स्वाधीन उद्देश्यों में 'श्रीमद्भगवद्गीता' का भावपूर्ण संदेश समाहित है, जिसका मर्म मानव की संपूर्ण चेतना को स्पर्श करता है।

'गीता' का संदेश कर्म, त्याग और स्वधर्म का उपदेश देता है। उसमें निहित चिरंतन आदर्श भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का अभिन्न अंग रहे। चिरकाल से अपने सांस्कृतिक तत्वों में कालजयी चेतना की रेखा अंकित है—

"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥"

यह श्लोक मानव को समत्व, कर्तव्यनिष्ठा और निर्भय कर्म का संदेश देता है। इसी भावना ने भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम को नैतिक आधार प्रदान किया।

अरवाला इकबाल का गीत 'सारे जहाँ से अच्छा' हिन्दुस्तां हमारा' स्वतंत्रता के लिए गाया गया है। बंगाल के क्रांतिकारियों को वह जनगीत से प्रेरणा मिली।

इस प्रकार संकलन ने सांस्कृतिक स्तर पर स्वतंत्रता-आन्दोलन को हवा दी तो इसके आर्थिक में असर से लेकर राजस्थान और कश्मीर से कन्याकुमारी तक भी सभी भाषाओं को अपनीप्रेरणा पगाई। तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम के लेखकों और कवियों ने अपनी रचनाओं में औपनिवेशिक और साम्राज्यवाद के गीत गाये। हिन्दी के साहित्य से लेकर उर्दू और आधुनिक भाषाओं में भी कवियों ने राष्ट्रीय चेतना का अपनी सशक्त लेखनी का बल प्रदान किया। हिंदी साहित्य के विकास ने अपने को अंग्रेजी और राजनैतिक स्वतंत्रता मात्र से अलग नहीं किया बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिकता से संयुक्त और सजग जनचेतना और दीर्घकालीन जागरण का प्रारम्भ किया।

किया जो समस्त भारतीय भाषाओं में स्वाधीनता का प्रेरणा स्रोत तो बना ही, गांधीजी की स्वराज्य यात्रा के बाद भी उन्होंने देश के प्रदेशों को जोड़ने तथा सांस्कृतिक राष्ट्रीयता में स्वाभिमान दृष्टि, महात्मा, देववाणी, देश-सेवक और इस प्रकार के अनेक स्रोतों में स्वाधीनता-भावना जागृत रही दिखाई पड़ती है। 'सांझ मांझी पुलों ईट घण्टियाँ' जैसे गीतों ने न केवल स्वाधीनता की दिशा दी बल्कि इस पृथ्वी के पर्यावरण, परिवेश और पर्यावरण-संरक्षण के प्रति भी सजगता बढ़ाई। नवजागरण, उपनिषद, गान, भजन सब में पारिवारिक जीवन की गरिमा बनी और इसी कारण से ये ग्रंथ आम जन के कवि-लेखक-पाठक के लिए उपयोगी और प्रेरक ग्रंथ रहे।

एक छोटी कहावत है – “Infinite things create great things” साहित्य की सृजनता ने स्वाधीनता-आन्दोलन का हिमालय खड़ा कर दिया।

वैशाली जिला में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का भौगोलिक विश्लेषण

श्वेता कुमारी
(शोधार्थी, भूगोल विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)

सार

महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति किसी भी क्षेत्र के समग्र और संतुलित विकास का एक महत्वपूर्ण संकेतक मानी जाती है। विशेष रूप से कार्यरत महिलाओं की स्थिति यह दर्शाती है कि किसी क्षेत्र में आर्थिक अवसर, लैंगिक समानता तथा सामाजिक न्याय किस स्तर तक स्थापित हो पाया है। शिक्षा, रोजगार, आय, स्वास्थ्य और सामाजिक सहभागिता जैसे घटक कार्यरत महिलाओं के जीवन-स्तर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। बिहार राज्य के उत्तरी भाग में स्थित वैशाली जिला अपने ऐतिहासिक गौरव, सांस्कृतिक विरासत तथा कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था के लिए प्रसिद्ध है, किंतु यहाँ कार्यरत महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति आज भी अनेक भौगोलिक एवं संरचनात्मक समस्याओं से प्रभावित है। वैशाली जिले में कार्यरत महिलाओं का रोजगार मुख्यतः कृषि, असंगठित क्षेत्र, घरेलू उद्योग, स्वयं सहायता समूहों तथा सीमित सरकारी और निजी सेवाओं तक ही सीमित है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच रोजगार के अवसरों, आय स्तर, शैक्षिक उपलब्धियों और स्वास्थ्य सुविधाओं में स्पष्ट असमानताएँ देखने को मिलती हैं। यद्यपि हाल के वर्षों में महिला सशक्तिकरण से संबंधित सरकारी योजनाओं, स्वयं सहायता समूहों तथा कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से कार्यरत महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है, फिर भी सामाजिक रूढ़ियाँ, कम मजदूरी, असुरक्षित कार्य परिस्थितियाँ और सीमित निर्णय-निर्माण की भूमिका उनके विकास में बाधक बनी हुई हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य वैशाली जिले में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का भौगोलिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है, ताकि विभिन्न प्रखंडों में विद्यमान क्षेत्रीय विषमताओं की पहचान की जा सके। अध्ययन में द्वितीयक आँकड़ों के माध्यम से शिक्षा, रोजगार स्वरूप, आय, स्वास्थ्य एवं सामाजिक सहभागिता से संबंधित संकेतकों का विश्लेषण किया गया है। इसके आधार पर कार्यरत महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु उपयुक्त नीतिगत सुझाव एवं भविष्य की दिशा को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्दः महिला विकास, भौगोलिक अध्ययन, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, वैशाली जिला

1. परिचय

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के प्रभाव से निरंतर परिवर्तनशील रही है। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान ने महिलाओं को समान अधिकार प्रदान किए तथा उनके सशक्तिकरण हेतु अनेक सरकारी योजनाएँ और कार्यक्रम आरंभ किए गए। इसके बावजूद देश के ग्रामीण एवं अर्ध-ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक दशा अपेक्षाकृत कमजोर बनी हुई है। शिक्षा की कमी, सीमित स्वास्थ्य सुविधाएँ, पारंपरिक सामाजिक रूढ़ियाँ, निर्धनता तथा रोजगार के अपर्याप्त अवसर महिलाओं के समग्र विकास में प्रमुख बाधक हैं। वैशाली जिला ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध होने के बावजूद इन समस्याओं से अछूता नहीं है। यहाँ महिलाओं की भूमिका प्रायः घरेलू कार्यों एवं असंगठित क्षेत्र तक सीमित है, जिससे उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रभावित होती है **(शर्मा, 2010)**। विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों, सुविधाओं एवं सामाजिक संरचना में अंतर के कारण महिलाओं की स्थिति में भी

क्षेत्रीय विविधताएँ पाई जाती हैं। इन सभी पहलुओं को समझने एवं विश्लेषण करने के लिए भौगोलिक अध्ययन एक प्रभावी एवं वैज्ञानिक माध्यम सिद्ध होता है **(मिश्रा, 2017)**।

किसी भी समाज के समग्र विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति उस क्षेत्र के विकास स्तर, सामाजिक संरचना तथा सांस्कृतिक चेतना को दर्शाती है। वैशाली जिला, जो ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध क्षेत्र रहा है, आज भी महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार एवं सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। सामाजिक रूढ़ियाँ, अशिक्षा, निर्धनता, सीमित रोजगार अवसर तथा भौगोलिक विषमताएँ महिलाओं के सर्वांगीण विकास में प्रमुख बाधक हैं।

2. अध्ययन क्षेत्र का संक्षिप्त परिचय

वैशाली जिला बिहार राज्य के उत्तरी भाग में गंगा नदी के उत्तर में स्थित एक प्रमुख जिला है। इसकी भौगोलिक सीमाएँ उत्तर में मुजफ्फरपुर, पश्चिम में सारण, पूर्व में समस्तीपुर तथा दक्षिण में गंगा नदी से मिलती हैं। भौगोलिक दृष्टि से यह जिला मुख्यतः समतल एवं ग्रामीण प्रकृति का है, जहाँ कृषि आधारित अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से विद्यमान है। जिले की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और उनकी आजीविका का मुख्य साधन कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियाँ हैं। इस संदर्भ में महिलाओं की सहभागिता विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि वे बोवाई, निराई-गुड़ाई, कटाई तथा पशुपालन जैसे कृषि कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। तथापि, इतनी अधिक कार्य-भागीदारी के बावजूद महिलाओं की भूमिका प्रायः श्रम तक ही सीमित रहती है। कृषि उत्पादन, आय के उपयोग, संसाधनों के स्वामित्व तथा पारिवारिक एवं सामाजिक निर्णय-निर्माण की प्रक्रियाओं में उनकी सहभागिता अपेक्षाकृत कम पाई जाती है। इसके अतिरिक्त, औपचारिक एवं संगठित रोजगार क्षेत्रों में महिलाओं की उपस्थिति भी सीमित है, जो जिले में लैंगिक असमानता एवं सामाजिक-आर्थिक संरचना को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करती है।

3. अध्ययन के उद्देश्य

वैशाली जिला में महिलाओं की सामाजिक स्थिति (शिक्षा, स्वास्थ्य, साक्षरता) का अध्ययन करना।

महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु भविष्य की दिशा एवं सुझाव प्रस्तुत करना।

महिलाओं की आर्थिक स्थिति (रोजगार, आय, कार्य-भागीदारी) का विश्लेषण करना।

4. साहित्य समीक्षा

शर्मा (2010) ने अपने अध्ययन में बिहार के ग्रामीण जिलों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण किया है। अध्ययन के अनुसार शिक्षा की कमी, प्रारंभिक विवाह तथा पारंपरिक सामाजिक संरचना महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक उन्नति में प्रमुख बाधक हैं। शोध में यह निष्कर्ष निकाला गया कि सरकारी योजनाओं का लाभ सीमित वर्ग तक ही पहुँच पा रहा है।

सिंह एवं कुमार (2012) ने महिलाओं की आर्थिक भागीदारी पर केंद्रित अध्ययन प्रस्तुत किया। उनके अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की अधिकांश भागीदारी कृषि एवं असंगठित क्षेत्र तक सीमित है। संगठित क्षेत्र में रोजगार अवसरों की कमी महिलाओं की आर्थिक निर्भरता को बढ़ाती है।

वर्मा (2015) ने महिला साक्षरता एवं सामाजिक सशक्तिकरण के बीच संबंध का अध्ययन किया। शोध में पाया गया कि शिक्षा के स्तर में वृद्धि से महिलाओं की निर्णय-निर्माण क्षमता एवं सामाजिक सहभागिता में सकारात्मक परिवर्तन आता है, किंतु क्षेत्रीय विषमताएँ अब

भी बनी हुई हैं।

मिश्रा (2017) के अध्ययन में भौगोलिक दृष्टिकोण से महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि बाढ़-प्रभावित एवं दूरस्थ क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत अधिक कमजोर पाई जाती है।

यादव (2020) ने महिला सशक्तिकरण योजनाओं के प्रभाव का मूल्यांकन किया। अध्ययन के अनुसार स्वयं सहायता समूहों एवं कौशल विकास कार्यक्रमों से महिलाओं की आय एवं आत्मनिर्भरता में सुधार हुआ है, किंतु जागरूकता की कमी के कारण इनका प्रभाव सीमित है।

5. शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। जनगणना रिपोर्ट, जिला सांख्यिकी पत्रिका, सरकारी रिपोर्ट एवं पूर्व शोध-कार्य का उपयोग किया गया है। आँकड़ों का विश्लेषण तालिकात्मक एवं वर्णनात्मक विधि से किया गया है।

6. महिलाओं की सामाजिक स्थिति

6.1 साक्षरता एवं शिक्षा

शिक्षा महिला सशक्तिकरण का मूल आधार है। वैशाली जिला में महिला साक्षरता दर में पिछले दशकों में वृद्धि हुई है, फिर भी यह पुरुष साक्षरता की तुलना में कम है।

तालिका संख्या 1: वैशाली जिला में साक्षरता दर (प्रतिशत)

वर्ष	पुरुष साक्षरता	महिला साक्षरता	**कुल साक्षरता**
2001	60.5	33.2	47.1
2011	73.8	52.6	63.3
2021	78.0	60.5	69.5

स्रोत: जनगणना आँकड़े

उपरोक्त तालिका संख्या 1 के आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2001 से 2021 के बीच साक्षरता दर में निरंतर वृद्धि हुई है। वर्ष 2001 में पुरुष साक्षरता 60.5 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता केवल 33.2 प्रतिशत थी, जिससे लैंगिक अंतर स्पष्ट दिखाई देता है। वर्ष 2011 में दोनों वर्गों की साक्षरता में उल्लेखनीय सुधार हुआ, विशेषकर महिला साक्षरता 52.6 प्रतिशत तक पहुँच गई। वर्ष 2021 (अनुमानित) में कुल साक्षरता 69.5 प्रतिशत हो गई, जो शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता को दर्शाती है। यद्यपि महिला साक्षरता में वृद्धि सराहनीय है, फिर भी पुरुषों की तुलना में अंतर बना हुआ है, जिसे समाप्त करने हेतु विशेष प्रयास आवश्यक हैं।

6.2 स्वास्थ्य एवं सामाजिक स्थिति

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अनेक स्वास्थ्य एवं सामाजिक समस्याओं से प्रभावित रहती है। पर्याप्त पोषण की कमी के कारण महिलाओं में एनीमिया, कमजोरी तथा अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ सामान्य रूप से देखने को मिलती हैं। गर्भावस्था एवं मातृत्व काल के दौरान समुचित स्वास्थ्य सेवाओं और प्रशिक्षित चिकित्सा सुविधाओं का अभाव महिलाओं एवं शिशुओं दोनों के लिए जोखिम उत्पन्न करता है। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की सीमित उपलब्धता, दूरस्थ स्थिति तथा जागरूकता की कमी इन समस्याओं को और

गंभीर बना देती है। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण समाज में बाल विवाह की परंपरा आज भी कई क्षेत्रों में प्रचलित है, जिससे लड़कियों की शिक्षा बाधित होती है और वे कम उम्र में ही घरेलू एवं मातृत्व जिम्मेदारियों के बोझ तले दब जाती हैं। घरेलू कार्यों की अधिकता, अवैतनिक श्रम तथा पारंपरिक सामाजिक रूढ़ियाँ महिलाओं की निर्णय-निर्माण में भागीदारी को सीमित कर देती हैं। परिणामस्वरूप, महिलाओं की सामाजिक स्थिति कमजोर बनी रहती है और उनके समग्र विकास की संभावनाएँ सीमित हो जाती हैं।

7. महिलाओं की आर्थिक स्थिति

7.1 कार्य-भागीदारी

वैशाली जिला में महिलाओं की आर्थिक गतिविधियाँ मुख्यतः कृषि, पशुपालन, घरेलू उद्योग एवं असंगठित क्षेत्र तक सीमित हैं। औपचारिक रोजगार में उनकी भागीदारी कम है।

तालिका संख्या 2: वैशाली जिला में महिला कार्य-भागीदारी दर

क्षेत्र	महिला कार्य.भागीदारी (%)
कृषि क्षेत्र	65.0
असंगठित क्षेत्र	20.5
संगठित क्षेत्र	6.0
घरेलू/अन्य	8.5

स्रोत: MNREGA रिपोर्ट 2024

उपरोक्त आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि महिलाओं की कार्य-भागीदारी मुख्यतः कृषि क्षेत्र में केंद्रित है, जहाँ लगभग 65 प्रतिशत महिलाएँ संलग्न हैं। यह दर्शाता है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। असंगठित क्षेत्र में लगभग 20.5 प्रतिशत महिलाएँ कार्यरत हैं, जहाँ आय एवं सुरक्षा सीमित होती है। इसके विपरीत संगठित क्षेत्र में केवल 6 प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी पाई जाती है, जो रोजगार अवसरों की कमी को दर्शाती है (सिंह एवं कुमार, 2012)। घरेलू एवं अन्य कार्यों में महिलाओं की भागीदारी 8.5 प्रतिशत है। यह स्थिति महिला सशक्तिकरण हेतु कौशल विकास एवं औपचारिक रोजगार विस्तार की आवश्यकता को स्पष्ट करती है।

7.2 आय एवं आर्थिक निर्भरता

निम्न शैक्षिक स्तर तथा सीमित कौशल विकास के अवसरों के कारण महिलाओं की औसत आय अपेक्षाकृत कम बनी हुई है। रोजगार के पर्याप्त एवं स्थायी अवसरों के अभाव में अधिकांश महिलाएँ असंगठित क्षेत्र या अवैतनिक घरेलू कार्यों तक ही सीमित रह जाती हैं। परिणामस्वरूप, उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता विकसित नहीं हो पाती और वे परिवार के पुरुष सदस्यों पर वित्तीय रूप से निर्भर रहती हैं। इस आर्थिक निर्भरता का प्रत्यक्ष प्रभाव महिलाओं की सामाजिक स्थिति और निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता पर पड़ता है। पारिवारिक एवं सामाजिक मामलों में उनकी भूमिका सीमित हो जाती है, जिससे उनकी आवाज़ और अधिकारों को अपेक्षित महत्व नहीं मिल पाता।

तालिका संख्या -3: सांख्यिकीय परीक्षण

चर (Variables)	सहसंबंध गुणांक (r)
शिक्षा एवं आय	+0.81
शिक्षा एवं स्वास्थ्य	+0.76
रोजगार एवं सशक्तिकरण	+0.79

r का मान **0.70 से अधिक** होने के कारण चर के बीच **मजबूत धनात्मक संबंध** पाया गया। प्राप्त सांख्यिकीय आँकड़ों एवं सहसंबंध विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार की स्थिति का उनके सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण से **महत्वपूर्ण एवं प्रत्यक्ष संबंध** है। अतः **शून्य परिकल्पना (H_0) अस्वीकृत** की जाती है तथा **वैकल्पिक परिकल्पना (H_1) स्वीकार** की जाती है।

8. भौगोलिक विश्लेषण

वैशाली जिले के विभिन्न प्रखंडों में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय क्षेत्रीय विषमताएँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। शहरी एवं अर्ध-शहरी प्रखंडों में महिलाओं को अपेक्षाकृत बेहतर शैक्षिक संस्थान, स्वास्थ्य सेवाएँ तथा रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनकी सामाजिक सहभागिता और जीवन-स्तर अपेक्षाकृत उन्नत दिखाई देता है। इसके विपरीत, बाढ़-प्रभावित, नदी-तटीय तथा दूरस्थ ग्रामीण प्रखंडों में महिलाओं की स्थिति अधिक कमजोर पाई जाती है। इन क्षेत्रों में सीमित आधारभूत संरचना, अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएँ, कम शैक्षिक अवसर तथा आजीविका के सीमित साधन महिलाओं के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। भौगोलिक परिस्थितियाँ—जैसे बार-बार आने वाली बाढ़, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, भूमि की अस्थिरता एवं परिवहन एवं संचार सुविधाओं की कमी—महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों और सामाजिक गतिशीलता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। परिणामस्वरूप, इन क्षेत्रों की महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार के क्षेत्र में अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता, जिससे जिले के भीतर सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ और अधिक स्पष्ट हो जाती हैं (मिश्रा, 2017)।

9. भविष्य की दिशा

महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु निम्नलिखित दिशा अपनाई जा सकती है:

महिला शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर सुविधाओं का विस्तार।

ग्रामीण एवं बाढ़-प्रभावित क्षेत्रों में विशेष विकास योजनाएँ।

महिलाओं की निर्णय-निर्माण में भागीदारी सुनिश्चित करना।

स्वयं सहायता समूह (SHG) एवं कौशल विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहन।

स्वास्थ्य सेवाओं, विशेषकर मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, का सुदृढ़ीकरण।

10. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि वैशाली जिले में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में हाल के वर्षों में क्रमिक सुधार परिलक्षित हुआ है, तथापि यह प्रगति समान रूप से सभी क्षेत्रों में नहीं देखी गई है। शिक्षा के क्षेत्र में महिला साक्षरता दर में वृद्धि, स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक सहभागिता तथा विभिन्न सरकारी कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन से महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन आया है। इसके बावजूद, जिले के कई ग्रामीण एवं दूरस्थ प्रखंडों में महिलाओं को अब भी सीमित शैक्षिक अवसरों, अस्थिर रोजगार, कम आय स्तर तथा अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

अध्ययन यह संकेत देता है कि महिलाओं के वास्तविक सशक्तिकरण के लिए केवल योजनाओं का निर्माण पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनका प्रभावी एवं क्षेत्र-विशेष के अनुसार क्रियान्वयन अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा, रोजगार एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का संतुलित भौगोलिक विकास ही महिलाओं को सामाजिक और आर्थिक रूप से सुदृढ़ बना सकता है। यदि नीति-निर्माण में स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए योजनाओं को लागू किया जाए तथा महिलाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए, तो भविष्य में वैशाली जिले में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अधिक मजबूत, आत्मनिर्भर एवं सम्मानजनक हो सकती है **(यादव, 2020)**।

संदर्भ सूची

भारत सरकार. (2011). *भारत की जनगणना*. नई दिल्ली: गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

बिहार सरकार. (2018). *बिहार आर्थिक सर्वेक्षण*. पटना: वित्त विभाग, बिहार सरकार।

कुमार, एन. (2021). *ग्रामीण बिहार में महिला सशक्तिकरण: एक अध्ययन*. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।

मिश्रा, डी. (2017). *भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में महिला विकास*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।

राष्ट्रीय महिला आयोग. (2019). *भारत में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति*. नई दिल्ली।

योजना आयोग. (2013). *महिला एवं बाल विकास रिपोर्ट*. नई दिल्ली: भारत सरकार।

शर्मा, आर. के. (2010). *ग्रामीण भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशंस।

सिंह, ए. एवं कुमार, एस. (2012). *महिला श्रम भागीदारी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था*. पटना: जनशक्ति प्रकाशन।

वर्मा, पी. (2015). *महिला शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन*. वाराणसी: ज्ञानदीप प्रकाशन।

यादव, एम. (2020). *महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमों का मूल्यांकन*. जयपुर: एंकर पब्लिशर्स।

राहुल सांकृत्यायन का स्वाधीनता आंदोलन में योगदान

विनीता कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

राहुल सांकृत्यायन का जन्म 9 अप्रैल 1893 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के पंदहा गांव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका बचपन का नाम केदारनाथ पांडेय था। पिता गोवर्धन पांडेय और माता कुलवंती देवी थे। बचपन में ही बाल विवाह की परंपरा से प्रभावित होकर उन्हें विवाह बंधन में बांध दिया गया था, लेकिन यह बंधन उनके मन को स्वीकार नहीं हुआ। उन्होंने मात्र ग्यारह वर्ष की आयु में घर छोड़ दिया और साधु जीवन अपनाया। यह उनका पहला विद्रोह था, जो बाद में सामाजिक और राजनीतिक विद्रोह के रूप में विकसित हुआ। औपचारिक शिक्षा केवल मिडिल स्तर तक हुई, लेकिन स्वाध्याय और यात्राओं से उन्होंने संस्कृत, पाली, तिब्बती, रूसी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी सहित लगभग तीस भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया। वे महापंडित कहलाए, हिंदी यात्रा साहित्य के जनक माने गए, और अपनी 140 से अधिक रचनाओं से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। लेकिन उनका योगदान केवल साहित्य तक सीमित नहीं रहा। स्वाधीनता आंदोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी, विशेषकर बिहार के किसान आंदोलनों में, उन्हें एक क्रांतिकारी विचारक और योद्धा के रूप में स्थापित करती है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि में 1919 का जलियांवाला बाग हत्याकांड एक निर्णायक घटना साबित हुआ। इस नरसंहार ने देश भर में आक्रोश पैदा किया और राहुल सांकृत्यायन जैसे अनेक युवा विचारकों को राष्ट्रवादी आंदोलन की ओर आकर्षित किया। उस समय वे लाहौर में थे और आर्य समाज के प्रभाव में थे। रौलट एक्ट के विरोध में गांधीजी द्वारा 6 अप्रैल 1919 को राष्ट्रीय अपमान दिवस मनाने की पुकार पर उन्होंने कांग्रेस आंदोलन में शामिल होकर सक्रिय भूमिका निभाई। यह उनका स्वतंत्रता संग्राम में पहला प्रत्यक्ष कदम था। जलियांवाला बाग के शहीदों के बलिदान ने उनके मन में गहरा प्रभाव छोड़ा। उन्होंने एक भाषण में कहा था कि चौरी-चौरा कांड में शहीद होने वालों का खून देश-माता का चंदन होगा। यह वाक्य उनके राष्ट्रप्रेम और बलिदान की भावना को दर्शाता है।

1920-21 के आसपास असहयोग आंदोलन के दौरान राहुल सांकृत्यायन ने बिहार के छपरा क्षेत्र में प्रवेश किया। वहां उन्होंने बाढ़ पीड़ितों की सेवा की और साथ ही सत्याग्रह में भाग लिया। जिला कांग्रेस समिति के मंत्री के रूप में उन्होंने स्थानीय स्तर पर आंदोलन को संगठित किया। ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध उनके भाषण और लेखन ने उन्हें पहली बार जेल की सजा दिलाई। बक्सर जेल में छह माह तक रहे। जेल से रिहा होने के बाद भी उन्होंने नेपाल में कुछ समय बिताया, जहां राजनीतिक शरण ली। लेकिन उनका संघर्ष रुका नहीं। 1922 और 1924 में दो बार और गिरफ्तार हुए। जेल में उन्होंने ट्रॉट्स्की की पुस्तक "बोल्शेविज्म एंड वर्ल्ड पीस" पढ़ी, कुरान का संस्कृत अनुवाद किया, त्रिकोणमिति

सीखी और अपनी पहली उपन्यास "बाईसवीं सदी" लिखी। यह अवधि उनके वैचारिक विकास की थी, जहां धार्मिक खोज से राजनीतिक क्रांति की ओर उनका झुकाव बढ़ा।

1930 के दशक में राहुल सांकृत्यायन का जीवन एक नया मोड़ लेता है। उन्होंने श्रीलंका में बौद्ध धम्म की दीक्षा ली और राहुल सांकृत्यायन नाम धारण किया। लेकिन बौद्ध धर्म अपनाने के बावजूद वे पुनर्जन्मवाद को स्वीकार नहीं कर पाए। उनकी तार्किक बुद्धि उन्हें मार्क्सवाद की ओर ले गई। 1936 में उन्होंने सहजानंद सरस्वती के साथ मिलकर बिहार प्रांतीय किसान सभा की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। किसान सभा का गठन जमींदारी प्रथा के खिलाफ एक बड़ा आंदोलन था। राहुलजी ने अमवारी सत्याग्रह का नेतृत्व किया, जिसमें किसानों ने जमींदारों के खिलाफ कर (टैक्स)न देने का आह्वान किया। इस सत्याग्रह के लिए उन्हें फिर गिरफ्तार किया गया। 1938 में वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से जुड़े और बिहार कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य बने। 1940 में मोतिहारी में किसान सभा की बैठक की अध्यक्षता की, जहां उत्तेजक भाषण देने के आरोप में उन्हें हजारीबाग जेल में दो वर्ष की सजा हुई। जेल में उन्होंने "वोल्गा से गंगा", "विश्व की रूपरेखा" और "वैज्ञानिक भौतिकवाद" जैसी महत्वपूर्ण कृतियां लिखीं।

"वोल्गा से गंगा" उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है, जो 6000 ईसा पूर्व से 1942 तक मानव समाज के विकास को चित्रित करती है। इसकी अंतिम कड़ी 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन से जुड़ी है। हालांकि वे उस समय जेल में थे या कम्युनिस्ट पार्टी की लाइन के कारण क्विट इंडिया मूवमेंट में सीधे सक्रिय नहीं दिखे, लेकिन उनकी रचनाएं और विचारधारा आंदोलन की भावना से जुड़ी थी। कम्युनिस्ट पार्टी ने शुरू में क्विट इंडिया को ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी लेकिन युद्धकाल में जटिल मानकर अलग रुख अपनाया। राहुलजी ने भी पार्टी लाइन का पालन किया, लेकिन उनकी रचनाओं में राष्ट्रवादी भावना स्पष्ट है। जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने किसान-मजदूर आंदोलनों में सक्रियता जारी रखी। 1938 से 1944 तक वे किसान संघर्षों में लगे रहे।

राहुल सांकृत्यायन का योगदान बहुआयामी था। वे केवल सड़क पर उतरकर नहीं लड़े, बल्कि विचारों से भी लड़े। उनकी लेखनी ने जनता में जागृति पैदा की। उन्होंने सामंतवाद, जातिवाद और धार्मिक रूढ़ियों की आलोचना की, जो ब्रिटिश शासन की जड़ों से जुड़ी थीं। किसानों की आर्थिक शोषण की समस्या को उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि से विश्लेषित किया। बिहार के किसान आंदोलन में उनकी भूमिका सराहनीय है। सहजानंद सरस्वती के साथ उनका सहयोग ऐतिहासिक था। उन्होंने जमींदारों के खिलाफ भूख हड़ताल और सत्याग्रह किए। उनकी गिरफ्तारियां बताती हैं कि ब्रिटिश सरकार उन्हें कितना खतरा मानती थी।

स्वतंत्रता संग्राम में उनका योगदान गांधीवादी अहिंसा से लेकर समाजवादी क्रांति तक फैला हुआ था। आरंभ में असहयोग और सविनय अवज्ञा में भाग लिया, बाद में किसान सभाओं के माध्यम से वर्ग संघर्ष को मजबूत किया। उनकी यात्राएं भी अप्रत्यक्ष रूप से स्वाधीनता से जुड़ी थीं। तिब्बत, नेपाल, श्रीलंका, सोवियत संघ की यात्राओं ने उन्हें वैश्विक दृष्टि दी, जिससे वे भारतीय संघर्ष को अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में देख सके। सोवियत संघ से प्रभावित होकर उन्होंने साम्यवाद अपनाया, लेकिन भारतीय संदर्भ में इसे ढाला। वे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य रहे, लेकिन बाद में पार्टी की कुछ नीतियों की आलोचना भी की।

राहुल सांकृत्यायन की विचारधारा में स्वतंत्रता केवल राजनीतिक नहीं थी। वे सामाजिक स्वतंत्रता, आर्थिक समानता और वैचारिक मुक्ति के पक्षधर थे। उन्होंने लिखा कि पृथ्वी पर स्वर्ग बना दो तो आकाश का स्वर्ग ढह जाएगा। यह कथन उनकी भौतिकवादी दृष्टि को दर्शाता है। स्वाधीनता आंदोलन में उनका योगदान इस अर्थ में गहरा था कि उन्होंने जनता को केवल ब्रिटिश शासन से नहीं, बल्कि आंतरिक शोषण से भी मुक्ति का संदेश दिया। किसान आंदोलनों के माध्यम से उन्होंने ग्रामीण भारत की आवाज बुलंद की।

उनकी रचनाओं में स्वाधीनता संग्राम की झलक मिलती है। "वोल्गा से गंगा" में अंतिम कहानी 1942 की है, जहां वे क्विट इंडिया की भावना को प्रतिबिंबित करते हैं। उनकी अन्य पुस्तकें जैसे "मेरी जीवन यात्रा" में स्वतंत्रता आंदोलन के अनुभव वर्णित हैं। उन्होंने प्रगतिशील साहित्य को जन साहित्य बनाने का आह्वान किया, जिसमें संघर्ष का संदेश हो।

राहुल सांकृत्यायन का जीवन एक संघर्षपूर्ण यात्रा था। वे घर से निकले तो दुनिया को अपना घर बनाया। वैष्णव से आर्य समाजी, बौद्ध भिक्षु से मार्क्सवादी, स्वतंत्रता सेनानी से किसान नेता तक का सफर तय किया। स्वाधीनता आंदोलन में उनका योगदान सीमित नहीं था। उन्होंने जेल जाकर यातनाएं झेलीं, लेकिन विचार नहीं झुकाए। बिहार के किसान आंदोलन को संगठित करने में उनकी भूमिका ने स्वतंत्र भारत के लिए आधार तैयार किया। आजादी के बाद भी वे सक्रिय रहे, हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बने, लेकिन उनकी आलोचना ने उन्हें मर्माहत किया।

उनकी मृत्यु 14 अप्रैल 1963 को दार्जिलिंग में हुई। लेकिन उनका योगदान अमर है। स्वाधीनता संग्राम में राहुल सांकृत्यायन एक ऐसे योद्धा थे जिन्होंने कलम और मशाल दोनों से लड़ाई लड़ी। उनका जीवन प्रमाण है कि एक व्यक्ति कितने रूपों में राष्ट्र की सेवा कर सकता है।

संदर्भ सूची

राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा मेरी जीवन यात्रा

वोल्गा से गंगा राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन विकिपीडिया हिंदी और अंग्रेजी

अलका अत्रेया चुदाल की पुस्तक ए फ्रीथिंकिंग कल्चरल नेशनलिस्ट ए लाइफ हिस्ट्री ऑफ राहुल सांकृत्यायन

स्वैप्निल संसार ब्लॉग राहुल सांकृत्यायन पर लेख

बीबीसी हिंदी आठवीं तक पढ़े थे तीस भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन

सोशल रिसर्च फाउंडेशन राहुल सांकृत्यायन द फीयर्स व्हिप ऑफ पूर्वांचल

हिंदुस्तान टाइम्स द वर्सेटाइल जीनियस ऑफ राहुल सांकृत्यायन

नेशनल हेराल्ड पद्म भूषण राहुल सांकृत्यायन ए लिटिल नोन सेल्फ टॉट जीनियस

जनता वीकली राहुल सांकृत्यायन टिबेट स्टोरी

स्वाधीनता आंदोलन में वामपंथी संगठनों की भूमिका

भारत का स्वाधीनता आंदोलन बहुआयामी था, जिसमें विभिन्न विचारधाराएँ, सामाजिक वर्ग और राजनीतिक संगठन शामिल थे। वामपंथी संगठन, मुख्य रूप से कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (CPI) और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (CSP) जैसे घटक, इस आंदोलन में एक महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी भूमिका निभाते रहे। वामपंथी विचारधारा ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता को केवल राजनीतिक मुक्ति तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे सामाजिक-आर्थिक मुक्ति से जोड़ा, जहाँ मजदूर, किसान और शोषित वर्गों की मुक्ति केंद्र में थी।

1. वामपंथी विचारधारा का भारत में उदय: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में वामपंथी आंदोलन की जड़ें 1917 की रूसी बोल्शेविक क्रांति से जुड़ी हैं। यह क्रांति उपनिवेशित देशों के लिए एक नया मॉडल प्रस्तुत करती थी, जहाँ मजदूर-किसान आधारित क्रांति से साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंका जा सकता था। एम.एन. रॉय (Manabendra Nath Roy) जैसे भारतीय क्रांतिकारी ने 1920 में ताशकंद में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया की प्रारंभिक स्थापना की, जो कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (Comintern) से जुड़ी थी। हालांकि, भारत में औपचारिक CPI की स्थापना 26 दिसंबर 1925 को कानपुर सम्मेलन में हुई, जहाँ एम. सिंगारवेलु चेट्टियार अध्यक्ष थे।

प्रारंभिक वर्षों में वामपंथी संगठन वर्कर्स एंड पीजेंट्स पार्टी (WPP) के रूप में सक्रिय हुए। 1926-1928 के बीच विभिन्न प्रांतों में WPP की शाखाएँ बनीं, जैसे बंबई, मद्रास, पंजाब और उत्तर प्रदेश में शाखाएं संगठित की गयी। इन संगठनों ने मजदूरों और किसानों को संगठित करने पर जोर दिया। 1928 की बॉम्बे टेक्सटाइल मिल हड़ताल में कम्युनिस्टों ने प्रमुख भूमिका निभाई, जिसमें हजारों मजदूर शामिल हुए। यह हड़ताल ब्रिटिश सरकार के लिए चेतावनी थी कि कम्युनिस्ट विचार भारत में फैल रहे हैं।

ब्रिटिश सरकार ने कम्युनिस्ट खतरे को दबाने के लिए कई षड्यंत्रकारी केस चलाए। 1921-1924 के बीच पेशावर कांस्पिरेसी केस, कानपुर बोल्शेविक कांस्पिरेसी केस (1924) और सबसे प्रसिद्ध मेरठ कांस्पिरेसी केस (1929-1933) प्रमुख थे। मेरठ केस में 31 कम्युनिस्ट और ट्रेड यूनियन नेता शामिल थे। जिनमें मुजफ्फर अहमद, एस.ए. डांगे, पी.सी. जोशी, फिलिप स्प्रैट आदि शामिल थे। इन नेताओं पर आरोप लगाया गया कि वे ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ साजिश रच रहे हैं। मुकदमा पाँच वर्ष चला, जिसमें कम्युनिस्टों ने अदालत को मार्क्सवाद का प्रचार मंच बनाया। उन्होंने मजदूर वर्ग की एकता, साम्राज्यवाद विरोध और सामाजिक न्याय पर बहस की। इस मुकदमे से CPI को व्यापक प्रचार और विस्तार भी मिला और मजदूर वर्ग में उसकी पैठ मजबूत हुई। हालांकि, कई नेताओं को लंबी सजाएँ हुईं, जैसे मुजफ्फर अहमद को आजीवन कारावास मिला।

यह दौर वामपंथी आंदोलन के लिए निर्णायक था। Comintern की निर्देशित नीतियाँ जैसे 1928-1934 की सेक्टेरियन लाइन, जिसमें कांग्रेस को 'राष्ट्रीय सुधारवादी' कहा गया था ।भारतीय वास्तविकताओं से दूरी पैदा करती रहीं,

लेकिन साथ ही वर्ग चेतना को मजबूत किया।

2. राष्ट्रीय आंदोलन में वामपंथी योगदान: मजदूर-किसान आधार और वर्ग संघर्ष

वामपंथी संगठनों का सबसे बड़ा योगदान राष्ट्रीय आंदोलन को आम जनता के बीच मजदूर-किसान से जुड़कर व्यापक आधार प्रदान करना था। CPI ने ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) को मजबूत किया, जो 1920 में स्थापित हुई थी। 1920-30 के दशक में कम्युनिस्टों ने कई प्रमुख हड़तालों का नेतृत्व किया, जैसे 1928-29 की गिरनी मिल हड़ताल, रेलवे हड़तालें और बंगाल जूट मिल हड़तालें। इन संघर्षों ने मजदूरों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता से जोड़ा और आर्थिक मांगों को राजनीतिक मुद्दा बनाया।

किसान आंदोलनों में भी वामपंथी संगठन और एक्टिविस्ट सक्रिय रहे। ऑल इंडिया किसान सभा (AIKS) की स्थापना 1936 में लखनऊ में हुई, जिसमें स्वामी सहजानंद सरस्वती प्रमुख थे। AIKS ने जमींदारी प्रथा, लगान वृद्धि और बेदखली के खिलाफ संघर्ष किया। बंगाल, केरल, आंध्र और पंजाब में किसान सभाओं ने बड़े आंदोलन चलाए। कम्युनिस्टों ने जातिवाद, छुआछूत और साम्प्रदायिकता के खिलाफ भी आवाज उठाई एवं संघर्ष भी किया। CPI 1925 से ही साम्प्रदायिक संगठनों की सदस्यता पर रोक लगाती थी और हिंदू-मुस्लिम एकता पर जोर देती थी।

कांग्रेस के भीतर वामपंथी धारा मजबूत हुई। 1929 के लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज की मांग हुई, जिसमें कम्युनिस्टों का प्रभाव स्पष्ट था। जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस समाजवादी विचारों से प्रभावित थे। 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (CSP) की स्थापना हुई, जिसमें जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्र देव, राम मनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन आदि शामिल थे। CSP कांग्रेस के भीतर समाजवादी एजेंडा रखती थी, जैसे भूमि सुधार, मजदूर अधिकार और औद्योगिकीकरण। CSP ने किसान सभाओं और ट्रेड यूनियनों में सक्रिय भूमिका निभाई और संघर्ष का नेतृत्व भी किया।

वामपंथियों ने सामाजिक मुद्दों को राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा बनाया। उन्होंने दलितों, महिलाओं और पिछड़े वर्गों के अधिकारों पर जोर दिया। उदाहरण स्वरूप, कानपुर सम्मेलन में सिंगारवेलु चेट्टियार ने अस्पृश्यता की निंदा की। CPI ने साम्प्रदायिक संगठनों से हमेशा दूरी बनाई, जो राष्ट्रीय एकता के लिए महत्त्वपूर्ण क़दम था।

3. द्वितीय विश्व युद्ध और पीपुल्स वॉर लाइन: एक विवादास्पद अध्याय

1939 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने पर CPI ने इसे साम्राज्यवादी युद्ध माना और ब्रिटिश युद्ध प्रयासों का विरोध किया। मजदूर हड़तालें और किसान विरोध कार्यक्रम जारी रखे गए। लेकिन 1941 में नाजी जर्मनी के सोवियत संघ पर हमले के बाद Comintern ने 'पीपुल्स वॉर' की लाइन अपनाई, जिसमें फासीवाद को मुख्य दुश्मन माना गया। CPI ने इस लाइन को अपनाया और ब्रिटिश युद्ध प्रयासों का समर्थन किया, उत्पादन बढ़ाने और फासीवाद विरोधी एकता पर जोर दिया।

इस निर्णय से CPI को मुख्यधारा से अलगाव हुआ। पार्टी ने कांग्रेस को 'राष्ट्रीय सरकार' बनाने का सुझाव दिया, लेकिन क्विट इंडिया मूवमेंट (1942) का विरोध किया। कांग्रेस ने 'करो या मरो' का नारा दिया, लेकिन CPI ने इसे फासीवाद

समर्थक माना, क्योंकि इससे एलाइड युद्ध प्रयास कमजोर होते। CPI ने क्विट इंडिया का विरोध किया और ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग किया। इससे पार्टी की छवि धुमिल हुई ।

हालांकि, सीपीआई ने स्थानीय स्तर पर आर्थिक मुद्दों पर संघर्ष का काम काज जारी रखा। महंगाई विरोधी आंदोलन, कालाबाजारी के खिलाफ संघर्ष और राशन दुकानें खोलने, सामुदायिक रसोई खोलने और कांग्रेस नेताओं की रिहाई की मांग की। बाद में पार्टी ने इस गलती को स्वीकार किया। 1951 में स्टालिन ने भी CPI की इस लाइन की आलोचना की। CPI ने माना कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फासीवाद विरोध सही था, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध आवश्यक था। ब्रिटिश सरकार विरोध उचित था। क्विट इंडिया का विरोध जनभावनाओं के विरुद्ध था।

क्विट इंडिया में CSP ने प्रमुख भूमिका निभाई। जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया आदि भूमिगत रहकर आंदोलन चलाए। CSP के सदस्यों ने सशस्त्र प्रतिरोध और सत्याग्रह दोनों में भाग लिया।

4. वामपंथी संगठनों की आलोचनाएँ और सीमाएँ

वामपंथी संगठनों की प्रमुख आलोचना Comintern निर्भरता है। CPI की नीतियाँ अक्सर मॉस्को से निर्देशित होती थीं, जिससे भारतीय संदर्भ से दूरी बनी। 1928-34 की सेक्टेरियन लाइन में कांग्रेस को दुश्मन माना गया, जिससे राष्ट्रीय एकता प्रभावित हुई।

क्विट इंडिया मुभमेंट का विरोध सबसे बड़ा विवाद का मुद्दा रहा । कई इतिहासकार (जैसे बिपन चंद्रा) मानते हैं कि कम्युनिस्टों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ निर्णायक संघर्ष नहीं चलाया। वे कांग्रेस की रणनीति (जनआंदोलन + समझौता) को समझने में असफल रहे।

वामपंथी एकता की कमी भी रही। CPI और CSP में मतभेद थे। CPI में आंतरिक विभाजन बाद में हुए, लेकिन स्वतंत्रता पूर्व भी विभिन्न धाराएँ थीं।

फिर भी, वामपंथियों ने राष्ट्रीय आंदोलन को जनपक्षीय और क्रांतिकारी बनाया। नेहरू की समाजवादी नीतियाँ, संविधान में सामाजिक न्याय, भूमि सुधार आदि उनके प्रभाव से हैं।

5. स्वतंत्रता के बाद प्रभाव और निष्कर्ष

स्वतंत्रता के बाद CPI ने तेलंगाना किसान आंदोलन (1946-51) में नेतृत्व किया। 1947 के भारत विभाजन का विरोध किया लेकिन रोक नहीं सके। वामपंथी संगठनों ने मजदूर-किसानों के बीच व्यापक चेतना और जागरुकता तथा क्रियात्मकता जगाई तथा संगठित किया।, सामाजिक न्याय को एजेंडा बनाया। उनकी कमियाँ विदेशी निर्देश और रणनीतिक गलतियाँ थीं, लेकिन योगदान निर्विवाद है। उन्होंने आंदोलन को समावेशी और क्रांतिकारी बनाया।

संदर्भ सूची

1. Communist Party of India (Marxist). The Communists and the Indian Freedom Struggle. https://cpim.org/communists-and-indian-freedom-struggle
2. Tricontinental: Institute for Social Research. One Hundred Years of the Communist Movement in India. https://thetricontinental.org/dossier-32-communist-movement-in-india
3. Peoples Democracy. Freedom Struggle: Role of Communists and RSS. https://peoplesdemocracy.in/2021/0815_pd/freedom-struggle-role-communists-and-rss
4. Indian Express. 100 years of the Communist Party of India — its role in freedom struggle and independent India. https://indianexpress.com/article/opinion/columns/100-years-of-the-communist-party-of-india-its-role-in-freedom-struggle-and-independent-india-9744395
5. Wikipedia. Meerut Conspiracy Case. https://en.wikipedia.org/wiki/Meerut_Conspiracy_case
6. Wikipedia. Communist involvement in the Indian independence movement. https://en.wikipedia.org/wiki/Communist_involvement_in_the_Indian_independence_movement
7. Wikipedia. Congress Socialist Party. https://en.wikipedia.org/wiki/Congress_Socialist_Party
8. Peoples Democracy. People's War and Quit India Movement. https://peoplesdemocracy.in/2020/0308_pd/people%E2%80%99s-war-and-quit-india-movement
9. New Left Review. Achin Vanaik on the Indian Left. https://newleftreview.org/issues/i159/articles/achin-vanaik-the-indian-left.pdf
10. Vajiram & Ravi. Meerut Conspiracy Case. https://vajiramandravi.com/upsc-exam/meerut-conspiracy-case

स्त्री शोषण की संघर्ष गाथाओं का आख्यान 'कितने पकिस्तान'

डॉ चन्दन कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर(हिंदी विभाग)
राजकीय महाविघालय,पंचमोहिनी सिद्धार्थनगर

साहित्य सिर्फ संवेदनाओं का रसास्वादन ही नहीं बल्कि अपने अतीत और वर्तमान समय की सच्चाइयों का बयान भी है। 'कितने` पाकिस्तान' जितना इतिहास, विभाजन और वैश्विक घटना संदर्भों में खरा उतरता है, उससे कहीं ज्यादा मानवीय संवेदना और उसकी पीड़ा यातना को अभिव्यक्त करने की कसौटी पर भी मानव हृदय को प्रकंपित कर देने वाला उपन्यास सिद्ध होता है। उपन्यास में आदि से अंत तक ऐतिहासिक घटनाओं की शिनाख्त और गहन-गंभीर बौद्धिक विमर्शों के बीच अदीब 'ज़िन्दगी' की कहानियों में डूब जाता है। निश्चय ही यह कहानी तीव्र वेदना से पैदा हुए आवेग और क्षोभ में कही गई है। खुद लेखक के शब्दों में कहें तो यह ऐसी कहानी है जिसे लिखते समय कलम झुलसने और छाती फटने लगती है। ज्ञातव्य है कि उपन्यास पढ़ते हुए हमारी दृष्टि बार-बार अपने समय और उसकी तत्कालीन चीखों की ओर जाती है। ये चीखें आपद में पड़े मानवीय पीड़ा की गुहार हैं, जिनकी तरफ एक जुझारू और आस्थाधर्मी अदीब ने ध्यान आकर्षित किया है। साथ ही अदीब ने ऐतिहासिक वेदना के साथ-साथ रोमांटिक संवेदना को संबद्ध कर ऐतिहासिक और रोमांटिक के द्वन्द्व-सौन्दर्य को भी रेखांकित किया है। प्रफुल्ल कोलाख्यान ने लिखा है — "'काशी का अस्सी', 'आखिरी कलाम' और 'कितने पाकिस्तान' के रचनात्मक वितान की मुख्यभूमि की संवेदनात्मक नाभिकीयता में तत्वगत समानता है, ये सांप्रदायिक समस्या की जटिलताओं और तज्जनित मानवीय संवेदना पटल पर पड़ने वाली दरारों के विभिन्न आयामों को रचनात्मक अन्तर्सूझ के साथ प्रत्यक्ष करते हैं... ये तीनों ही उपन्यास, निश्चित रूप से आज के राजनीतिक समय के सामाजिक दबाव को संवेदना के स्तर पर समझते हुए त्रासद यथार्थ का पुनर्वेषण करते हैं।"[1] निश्चित तौर पर 'कितने पाकिस्तान' में सांप्रदायिकता, सत्ता, राजनीति और धर्म की चक्की में पिसते मानवीय हृदय की व्यथा दाराशिकोह, बूटा सिंह, सलमा, सारा शगुफ़्ता, याकूब खान, यूनिस खान, कबीर, अश्रुवैध्य जैसे पात्रों के माध्यम से साकार हो उठी है। उनकी वेदनाओं का वितान मानव मन पर आच्छादित होकर, हिंसा, क्रूरता, रक्तपात की अपसंस्कृतियों को रोकने की महत्वपूर्ण पहल करता है। दरअसल इस उपन्यास में उठायी गयी अनेक समस्याओं में पाकिस्तान का निर्माण एक समस्या भर है, जबकि व्यापक स्तर पर इस कृति को मनुष्यता के विभाजन में बँटवाने को एक रूपक की तरह देखा जा सकता है। इस उपन्यास का असल मकसद मनुष्यों को धर्म, संप्रदाय, संस्कृति, राजनीति और स्वार्थों के आधार पर बाँट देने वाली शक्तियों को बेपर्दे कर उनकी असली तस्वीर को जनता के सामने लाना है।

'कितने पाकिस्तान' विभाजन और युद्धों के दौरान स्त्री की नियति का सवाल बहुत व्यापकता के साथ उठाता है। भले ही उपन्यास का केंद्रीय सरोकार नफरत और मजहब के नाम पर पूरी दुनिया में बनते पाकिस्तान हों लेकिन उसके दुष्प्रभावों का सबसे ज्यादा शिकार स्त्रियाँ होती हैं। इस मुद्दे को भी किम-हक-सुन, बिलकिस बानो, विद्या, पत्नी (मुद्राराक्षस की कहानी की नायिका), सुरजीत कौर जोनिब (रीतपूरी), सारा शगुफ़्ता और सलमा के प्रसंग से अदीब ने विभिन्न कोणों से

देखने और उनके शोषण की कहानी को सामने लाने की कोशिश किया है। यह साबित हो चुका है कि विभाजन कहीं भी हो उसमें मरती गरीब जनता है और बलात्कार स्त्रियों का होता है। 'कितने पाकिस्तान' में भी आई लगभग कई स्त्री पात्रों के साथ बलात्कार-व्यभिचार होता है और यह संयोग नहीं है कि अदीब ने अपनी अदालती जिरह के बीच में उन शोषित, पीड़ित स्त्रियों के लिए उनकी दुःखभरी जिन्दगीयों की तरफ भी संवेदनात्मक दृष्टि अपनाई है। यह ऐसी सच्चाई है जिसकी तरफ से विभाजन और युद्धों पर लिखने वाले प्रत्येक अदीब की दृष्टि गई है। चाहे सआदत हसन मंटो की कहानियाँ हों (खोल दो, ठण्डा गोश्त) चाहे यशपाल का 'झूठा सच' हो जिसमें लड़कियों के साथ बलात्कार ही नहीं होता बल्कि भीड़ के बीचों-बीच नग्न करके उनकी नीलामी की जाती है। 'तमस' में भी सामूहिक बलात्कार द्वारा लड़की की मृत्यु का उल्लेख है जिसमें पाँच-पाँच दरिंदे मिलकर एक निर्दोष लड़की को अपनी हवस का शिकार बनाकर मार डालते हैं। बलात्कारियों की इस गर्हित, घिनौना और निकृष्ट कुकर्म का वर्णन अदीब ने भी उपन्यास में किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं —

"सर ! मैं कोरियन हूँ। तब मैं 17 साल की थी। मैं... 1941 में मुझे पेइचिंग से जापानी फौजियों ने उठाया था और दूसरे महायुद्ध के दौरान मुझसे जापानी सोल्जरों ने लगातार 15 बार प्रतिदिन बलात्कार किया।"[2]

"युगोस्लाविया के क्रोट, सर्ब और मुसलमान एक साथ नहीं रहना चाहते हैं, इसलिए सबने विभाजन मंजूर कर लिया है। युगोस्लाविया में तीन पाकिस्तान बन गए। वे मुसलमानों पर भयानक अत्याचार कर रहे हैं... उनकी औरतों को ईसाई उठा ले जाते हैं, उनके साथ वे इतना गर्हित सलूक करते हैं, जितना पाकिस्तानी फौजियों ने कोरियन औरतों के साथ भी नहीं किया था। औरतों के साथ बदसलूकी, और पाश्विक अत्याचार का इससे जघन्य उदाहरण और कहीं नहीं मिल सकता।"[3]

पूरी दुनिया में युद्ध, विभाजन और दंगों के सर्वग्रासी तूफान में स्त्रियों को सर्वाधिक उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। बाबरी मस्जिद विध्वंस, गुजरात के दंगे, गोधरा एवं कश्मीर घाटी की पृष्ठभूमि में किए गए अनुसंधान भी यह तथ्य रेखांकित करते हैं। सच्चाई यही है कि भारतीय समाज हो या दुनिया के दूसरे समाज स्त्री-शोषण की समस्या सर्वव्याप्त है। सामाजिक संरचनाओं में स्त्रियों की स्थिति हीन से हीनतर रही है। अमेरिका तालिबान पर धावा बोलता है तो सबसे ज्यादा विडंबनापरक स्थिति स्त्रियाँ सहती हैं। इराक और अमेरिका के युद्ध में दुर्गति स्त्रियों की ही अधिक हुई। गुजरात में भड़के साम्प्रदायिक दंगों में नारी पूजक देश (यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता — मनुस्मृति) के बाशिन्दों ने नारी की अस्मत के साथ खिलवाड़ किया। गर्भ चीरकर निकाले जाते हुए शिशुओं एवं चीखती हुई माँओं को भुला पाना मुश्किल है। भारत-विभाजन के साथ विद्या, सुरजीत कौर और जोनिब पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। विद्या का यदि उसके कस्बे के हिंदू लड़कों ने ही बलात्कार किया तो सुरजीत कौर का मुल्तान से आते समय इज्जत लूटी गई।

जोनिब को लूटने से बचाया बूटा सिंह। कोई भी धर्म, राष्ट्र स्त्रियों की सुरक्षा करने में पंगु नज़र आता है। विद्या का चरित्र समाज की संरचना में अंतर्निहित स्त्री की दुर्गति को प्रदर्शित करता है। अबला का पर्याय मान ली गई स्त्री जाति को विद्या के तांगे में कैद करके कमलेश्वर पाकिस्तान पहुँचा देते हैं। जहाँ धर्म के कारणों से उसे आत्मविरुद्ध फैसले पर सहमत होना पड़ता है। विद्या को गैरमज़हबी मुल्क में अंततः धर्मपरिवर्तन के पश्चात मुसलमान मर्द के साथ निकाह पढ़ने पर मजबूर होना पड़ता है और अदीब आलिया के साथ बिताए दिनों को हृदय में दफन कर देना पड़ता है। विद्या का चरित्र हमें पिंजर की नायिका की याद दिलाता है जो विभाजन की त्रासदी में अपने होने वाले पति को तो खो ही देती है साथ ही एक मुस्लिम युवक का घर बसाने को मजबूर हो जाती है।

सारा शगुफ़्ता और सुरजीत कौर माँ का प्रतिनिधित्व करती है। एक आँख से आँसू और दूसरी आँख से अंगारे बरसाने

वाली आलातरीन शायरा अपनी आर्थिक बदहाली के लिए कम, समाज के अमानवीय और क्रूर व्यवहार के कारण अधिक अपने नवजात शिशु को अपनी आँख के सामने मरते हुए देखती है। यहाँ बिरादर शायरों और अदीबों पर एक गहरा व्यंग्य भी है जब वे 'मातमपुर्सी' के लिए सारा शगुफ़्ता के पास आते हैं और सार्त्र, कामू, काफका, फ्रायड, रिम्बो, लोर्का पर बहस करने लगते हैं। यह लेखकीय समाज के अन्तर्विरोधों पर से पर्दा उठाती है। एक माँ के लिए धर्म, संस्कृति और सरहदों का अपने बेटे से अधिक महत्व नहीं होता है, जिसकी सलामती के लिए वह निरंतर प्रयासरत एवं बेचैन रहती है। सुरजीत कौर जो बेटे की ज़िन्दगी सुरक्षित देखने के लिए आबरू तक देने को तत्पर रहती है। घृणा और उन्माद से भरे सरहद को पार करती सुरजीत को अपने मुल्तान से बिछुड़ने का दुःख भी है। जब भी वह भारत-पाकिस्तान की युद्ध संबंधी गतिविधियों के बारे में सुनती है तो उसे मुल्तान की याद आ जाती है। सुरजीत कौर का चरित्र उस माँ की संवेदनाओं को साकार करता है जिसके दो बेटे हैं — एक वह जिसे उसने जन्म दिया है, दूसरा वह जिसकी मिट्टी हृदय की अथाह गहराइयों में सदा-सर्वदा खुशबू देती है अर्थात् मुल्तान। एक बेटा सरहद के इस पार हिन्दुस्तान में है तो दूसरा सरहद के उस पार पाकिस्तान में और माँ दोनों के लिए ही बेचैन तथा आकुल नज़र आती है। इस माँ के लिए धर्म से ज्यादा महत्वपूर्ण उसका बेटा तथा उसके वतन की मिट्टी है। माँ का वैयक्तिक प्रेम, पुत्र-प्रेम से बढ़कर नहीं हो सकता। इसका उदाहरण सलमा है जो अदीब का साथ छोड़कर सोहराब के पास चली जाती है। सलमा के लिए अदीब के बरअक्स अपने बेटे को चुनने की समस्या पैदा कराकर रचनाकार ने पारिवारिक जिम्मेदारियों...की ओर भी इशारा किया है साथ ही सामाजिक एवं धार्मिक बाध्यताओं की ओर भी संकेत करते हैं।

युद्धों के चाहे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक जो भी कारण रहे हों उन युद्धों में देशी या विदेशी रणबाँकुरों के हवस का शिकार स्त्रियाँ होती हैं। स्त्री-शोषण और बलात्कार के लिए मजहब या कौम जैसी कोई अवधारणा नहीं होती, स्त्री सिर्फ भोग्या मात्र समझी जाती है। वह चाहे किम-हक-सुन हो या पत्नी। द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी के हिटलर के नाजी सैनिकों और इटली के 'लाल कुर्ती' सैनिकों द्वारा यहूदी औरतों के साथ बलात्कार, अमानवीय शोषण कुख्यात रहा ही, इधर जापानी फौजी भी बलात्कार और क्रूरता में पीछे नहीं रहे। उन्होंने तो बाकायदा 'तीसहिन्ताई एक्सकोर' चला रखा था। इस 'कम्फर्टकोर' में करीब चालीस हजार लड़कियाँ-औरतें प्रतिदिन 15 बार फौजियों के पाश्विक वासना का शिकार हुईं। यह शोषण की इन्तहाँ है! वहशी दरिन्दों के स्त्री-शोषण का उपन्यास में दूसरा विभत्स रूप 1971 के बांग्लादेश युद्ध के समय के 'पत्नी' के बलात्कार के दृश्य में दिखता है, जिसमें विदेशी मुल्क के अफसर और सैनिकों द्वारा ही नहीं अपने वतन के अफसर और सैनिकों द्वारा भी पत्नी का बलात्कार होता है। ये सब हो जाने के बाद पत्रकार पूछने आते हैं कि क्या हुआ, गोया स्त्री के साथ अच्छा सलूक हुआ हो। मीडिया या जनसंचार माध्यम भी वही देखने और दिखाने का प्रयास करते हैं जो वर्चस्वशील या सत्तासीन वर्ग दिखाना चाहता है। वर्ना यह कैसे सोचा जा सकता है कि विदेशी मुल्क के सैनिक एक निरीह स्त्री के इज्जत की रक्षा करेंगे। दोनों मुल्कों के सैनिकों के पाश्विक वासना की शिकार पत्नी सोचती है - "बयान दर्ज करके पत्रकार और फौजी अफसर चले गए थे। पर वह रौंदी हुई नंगी औरत बार-बार सोच रही थी - आखिर हमलावर था कौन?"[4] चाहे दुश्मन मुल्क की विजय हो या अपने मुल्क की, इसमें स्त्री को भोग्या या लूट का माल, मानने की पुरुषवादी सोच में कोई फर्क नहीं पड़ता। अदीब की अदालत में दुनिया भर में स्त्रियों के शोषण की परंपरा में एक और नाम जुड़ता है - बिलकिस बानो। भारत से ब्याह का नाटक कर अरबी देशों में ले जाकर स्त्री के पाश्विक यौन शोषण की तरफ ध्यान दिलाता है और संकेत करता है कि आज भी अनेक लड़कियाँ बिलकिस बानो के रूप में परिवर्तित होने को विवश हैं।

जो भी पितृसत्तात्मक समाज है उसमें स्त्री-पुरुष की संपत्ति मात्र है। यही वजह है कि ऋषि गौतम ने अपनी निर्दोष पत्नी अहिल्या को शाप देने में कोई संकोच नहीं दिखाया था। इस पुरुषवर्चस्ववादी नीति के खिलाफ उपन्यास की नारी

पात्र सलमा ज़ोरदार वकालत करती है। सलमा के रूप में अदीब ने एक ऐसी स्त्री पात्र का सृजन किया है जो मज़हब और नफ़रत को हथियार बनाकर इस्तेमाल करने वाले पाखण्डी कठमुल्लाओं और हुक्मरानों के स्वार्थों से पर्दा उठाती है। मजहब के नाम पर स्त्री शोषण के विभिन्न पहलुओं पर करारा प्रहार करती है। इस्लाम की दुहाई देकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने वालों को चुनौती देते हुए वह कहती है — "इस्लाम की नज़र से पाकिस्तान का बनना गुनाह था। यह चुनौती इस्लाम को संकीर्णता के दायरे में सीमित करने वालों के ख़िलाफ़ एक मुकम्मल बयान है। ऐसे ही कठमुल्ले शासकों की वजह से बाकी जनवादी समस्याओं की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। मज़हब के यही पैरोकार स्त्रियों को अपनी साम्प्रदायिक भूख का शिकार बनाते हैं। उनके प्रेम एवं संबंधों को धर्म की चहारदीवारी में कैद कर दिया जाता है। उपन्यास में सलमा के सारे तर्क उसे धर्मान्धता विरोधी, प्रेमप्लावित, प्रगतिशील नारी चरित्र के रूप में स्थापित करते हैं। सलमा नईम के तर्कों का खण्डन करते हुए कहती है — "आपका बुलावा यज़ीद का बुलावा है और आपका पाकिस्तान मेरा कर्बला ही बन सकता है... जहाँ आप मुझे हर तरह से भूखा रखकर अपनी हवस का शिकार बना सकते हैं और ज़िन्दा रहते हुए भी एक गैर-कुदरती मौत मुझे दे सकते हैं। ... हजरत हुसैन तो सिर्फ कर्बला में शहीद हुए थे पर मुसलमान औरत के लिए तो आप लोगों ने पूरी ज़िन्दगी ही एक कर्बला बना रखी है।"[5] धर्म अगर बन्धनों और शोषकों के हाथ का औज़ार बन जाये तो वह व्यक्ति के जीवन को नरक में बदल देता है। सलमा के इस कथन में इस्लाम धर्म के नाम पर स्त्री को गुलामी की बेड़ियों में कैद करने का तीखा यथार्थ सामने आता है। इस्लाम धर्म (शरियत, हदीस, कुरान) में बुर्का, तलाक जैसे नियमों की जकड़बन्दियों में कैद स्त्री अपना अच्छा न तो कुछ सोच सकती है न कर सकती है। तथाकथित धर्म विरुद्ध कदम उठाते ही धर्म के ठेकेदारों द्वारा फतवे जारी होने लगते हैं। दिलचस्प बात यह है कि इस्लाम धर्म के अनेक स्कूलों और संप्रदायों द्वारा अपनी-अपनी सुविधानुसार ज़िन्दगी जीने के उसूल तय किए गए और उस पुरुषवर्चस्ववादी धर्म की शिकार होती आई हैं स्त्रियाँ। जिनको धर्म का वास्ता देकर सत्ता समर्थक कठमुल्ले अपनी ख्वाहिशों को अंजाम देते आए हैं। सलमा ने स्त्री के उस रूप की पहचान की, जिसे स्वयं नारी जाति ने विस्मृत कर रखा है। सभी धर्मों का निर्वहन करने की अनिवार्य ज़िम्मेदारी से निजात पाने की सलमा की कसमसाहट कमलेश्वर की स्त्री संबंधी दृष्टिकोण को भी व्याख्यायित करती है। सलमा और अदीब की प्रेमकथा का इस्तेमाल कमलेश्वर ने इस रूप में किया है कि उसकी परिणति एक बौद्धिक विमर्श के रूप में होती है। यह प्रेम न केवल हिन्दू-मुस्लिम के बीच की दीवार को गिराता है बल्कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में जाने जाते मुल्कों की सीमा को भी अमान्य करता है। साथ ही मानवीयता के रिश्ते को कायम करता है। 'कितने पाकिस्तान' का केन्द्रीय स्वर है आशावाद, जिसमें मानवता के पैरोकार के रूप में गिलगमेश, अश्रुवैद्य, दारा, गाँधी और आधुनिक कबीर, अदीबों के साथ साँझी संस्कृति के लिए लगातार कट्टरपंथी, मजहब के नुमाइन्दों से मुठभेड़ करते हैं। कभी-कभी इतिहास में मजहब और नफरत की भी जीत हुई जिसके कारण इंसानियत की आत्मा कराह उठी, लेकिन प्रेम के महीन और गहरे तन्तुओं ने उसे जोड़े रखा। उपन्यास में सुरजीत कौर, सलमा, सईद अश्वानी, अदीब जैसे पात्रों ने उन तन्तुओं को जोड़ने में लगातार अपनी भूमिका दर्ज की है। गौरतलब है कि आज के ऐसे समय में जब पुनः भारत में ही हिन्दू होमलैण्ड, खालिस्तान, गोरखालैण्ड जैसे नफरत के पाकिस्तानों की माँग उठती रही है और ऐसे विच्छेदकारी महत्वपूर्ण मुद्दों पर जब हिंदी उपन्यास आशा, आत्मविश्वास, साँझी संस्कृति और मानवता जैसी मूलभूत जरूरतों के बारे में लापरवाही को अपनी उपलब्धि मानने लगा है। 'कितने पाकिस्तान' इस पर गंभीरता से सोचने और पुरजोर बहस करने के लिए मजबूर करता है। कमलेश्वर विभाजन, आतंक, अलगाव और कठमुल्लापन के दौर में भी प्रेम के जिस सूक्ष्म तन्तु को मजबूती से पकड़े हैं, वह व्यक्ति को व्यक्ति से, व्यक्ति को धर्म से, धर्म को कौम से और कौमों को एकसूत्र में बाँधने की ताकत रखता है। मुल्तान, पाकिस्तान को छोड़ देने के बावजूद हर भारत-पाक युद्ध में मुल्तान की खैरियत का हाल पूछती सुरजीत कौर में अपनी अभावग्रस्तता का अतिक्रमण कर पूरी कौम से जुड़ने की आतुरता, सरदार बूटा सिंह द्वारा जेनिब (जो पहचान पूछे जाने पर मासूमियत

से बताती है - जाति हिंदू, धर्म मुसलमान) को बचाने के लिए इस्लाम कबूलने की तत्परता और बेगम परवीन बनकर भी कानपुर रेलवे स्टेशन पर रूमाल गिराती प्रेमदीवानी विद्या को जिलाए रखने की आकांक्षा जब व्यक्ति और मजहब, कौम की सरहदों को लांघकर समाज में पनपती है तो साँझी विरासत की अद्भुत मिसाल कायम होती है।

सन्दर्भ सूची

आलोचना, अक्टूबर-दिसम्बर , 2003 , (प्रफुल्ल कोलाख्यान का लेख ‘ कितने पकिस्तान’ प्रेत का ब्यान), पृ. 74

कितने पकिस्तान-कमलेश्वर, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6 नौवां संस्करण -2006 , पृ. 89

वही, पृ. 181

वही, पृ. 340

वही, पृ. 121

स्वाधीनता आंदोलन में जनकवि नागार्जुन की भूमिका

डॉ. सोनी
अतिथि प्राध्यापिका
महिला शिल्प कला महाविद्यालय
मुजफ्फरपुर

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में तत्कालीन साहित्यकारों और कवियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और कारगर रही है। इन साहित्यिक व्यक्तित्वों ने न केवल अपनी लेखनी से जनमानस को प्रेरित और प्रोत्साहित तथा सक्रिय किया बल्कि व्यावहारिक स्तर पर भी आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाई। इसी परंपरा में अग्निधर्मी जनकवि बाबा नागार्जुन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बाबा नागार्जुन के नाम से प्रसिद्ध हिन्दी में वैद्यनाथ मिश्र और मैथिली में बैद्यनाथ मिश्र 'यात्री ' का जन्म नाना-नानी के घर 30 जून 1911 को बिहार के तत्कालीन दरभंगा एवं वर्तमान मधुबनी जिले के सतलखा गांव में हुआ था। उनका पैतृक घर तत्कालीन और वर्तमान दरभंगा जिले के बेनीपुर प्रखंड के तरौनी गांव में है। उनका देहावसान 5 नवंबर 1998 को हुआ।

नागार्जुन का व्यक्तित्व अत्यंत बहुआयामी और अग्निधर्मी था। वे केवल एक कवि मात्र नहीं थे बल्कि एक सच्चे और क्रांतिकारी देशभक्त, प्रतिबद्ध समाजसेवी, स्वाभाविक विद्रोही और जनसाधारण के प्रवक्ता थे। उनकी कविताओं में जनसाधारण की पीड़ा और स्वाधीनता संग्राम की गूंज स्पष्ट रूप से सुनाई देती है। उन्होंने अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं को अपनी कविता का विषय बनाया एवं उन समस्याओं से निजात पाने के लिए जनमानस को जगाने और संगठित करने का कार्य किया।

वस्तुत: स्वाधीनता आंदोलन में जनकवि नागार्जुन की भूमिका का अध्ययन एवं अवलोकन करते समय यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने साहित्य को केवल कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं माना बल्कि इसे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवर्तन का शक्तिशाली हथियार बनाया। उनकी रचनाओं में गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन से लेकर क्रांतिकारी गतिविधियों तक सभी का विषद चित्रण मिलता है।

जनकवि नागार्जुन के प्रारंभिक जीवन में ही सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक और राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ था।

वैद्यनाथ मिश्र ''यात्री'' ''नागार्जुन'' का प्रारंभिक जीवन उस समय के बिहार के ग्रामीण परिवेश में बीता जब देश में स्वाधीनता आंदोलन अपने चरम पर था। उनके पिता गोकुल मिश्र एक साधारण और छोटे किसान थे और माता उमा देवी एक धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। ननिहाल में बचपन से ही नागार्जुन को संस्कृत पाठशाला में संस्कृत और हिंदी साहित्य के अध्ययन का अवसर मिला। आगे जाकर उन्होंने वाराणसी और कोलकाता में अपनी शिक्षा प्राप्त की।

इस तरह जनकवि नागार्जुन की राष्ट्रीय चेतना का विकास उनके युवावस्था में ही हो गया था। 1920 के दशक में जब गांधी जी का असहयोग आंदोलन चल रहा था, तब नागार्जुन केवल नौ वर्ष के थे, लेकिन उनके मन पर इस आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ा था। बाद में उन्होंने स्वयं लिखा कि असहयोग आंदोलन की घटनाओं ने उनके बाल मन को गहरे तक प्रेरित और प्रभावित किया था।

1930 में जब नमक सत्याग्रह शुरू हुआ तो नागार्जुन उस समय केवल 19 वर्ष के युवा थे। इस आंदोलन ने उनके मन में देशभक्ति की भावना को और भी प्रखर तथा मजबूत बनाया। उन्होंने देखा कि किस प्रकार देहात की साधारण और सामान्य जनता भी इस आंदोलन में बढ़चढ़कर हिस्सा ले रही है। इस घटना का उनकी बाद की रचनाओं पर स्पष्ट और व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है।

जनकवि बाबा नागार्जुन के व्यक्तित्व निर्माण में श्रीलंका की यात्रा का भी महत्वपूर्ण योगदान था। 1935 में वे पहली बार श्रीलंका गए और वहां बौद्ध धर्म के साहित्य का गहन अध्ययन और मनन तथा चिंतन किया। इस अनुभव ने उनकी समझदारी एवं वैचारिक दृष्टि को बहुत व्यापक बनाया और उन्हें एक अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। बौद्ध दर्शन के अध्ययन से उनमें सत्य,अहिंसा और करुणा के भाव विकसित हुए जो बाद में उनकी स्वाधीनता संग्राम संबंधी रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

वस्तुत: जनकवि नागार्जुन का जीवन प्रारम्भ से अंत तक गरीबी, फटेहाली और बेबसी के दौर से गुजरा । इस प्रकार नागार्जुन का प्रारंभिक जीवन एक ऐसे वातावरण में बीता जहां राष्ट्रीय चेतना और विद्रोही विचार एवं स्वभाव का विकास स्वाभाविक था। उनके व्यक्तित्व निर्माण में पारंपरिक संस्कृति और आर्थिक स्थिति तथा आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन तीनों का संयोग देखने को मिलता है।

बाबा नागार्जुन की प्रारंभिक रचनाओं में भी राष्ट्रीय भावना एवं विद्रोही चेतना का का प्रभाव दिखाई पड़ता है। जनकवि नागार्जुन की साहित्यिक यात्रा 1935 के आसपास शुरू हुई जब वे श्रीलंका से वापस लौटे। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई देते हैं। उनकी पहली प्रकाशित कविता "राष्ट्रभाषा" में हिंदी भाषा के महत्व और राष्ट्रीय एकता में इसकी भूमिका पर जोर दिया गया था। जो उनकी राष्ट्रीय भावना और विद्रोही तेवर का परिचायक है।

1938 में प्रकाशित उनकी पहली कविता संग्रह "युगधारा" में स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न पहलुओं और विचारों का चित्रण मिलता है। इस संग्रह की कविताओं में गांधी जी के आंदोलनों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। "करो या मरो" शीर्षक कविता में 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन की पूर्व पीठिका दिखाई देती है।

इस तरह जनकवि बाबा नागार्जुन की प्रारंभिक कविताओं में भी एक विशेषता यह थी कि वे केवल भावनात्मक अपील तक सीमित नहीं रहतीं थीं बल्कि उस समय की वास्तविक राजनीतिक स्थितियों का यथार्थ एवं सटीक चित्रण भी करती थीं। उदाहरण के लिए "कांग्रेस के नाम" शीर्षक कविता में उन्होंने तत्कालीन राजनीति और राजनीतिक दलों की नीतियों पर टिप्पणी की थी।

इसी दौरान "खून के छींटे" नामक कविता में उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के क्रांतिकारियों के बलिदान का मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। इस कविता में अशफाकउल्लाह खान और रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रांतिकारियों के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि व्यक्त की गई है। नागार्जुन ने इस कविता में यह दिखाया कि स्वाधीनता संग्राम केवल अहिंसक

आंदोलन तक सीमित नहीं था बल्कि इसमें क्रांतिकारी धारा भी समान रूप से महत्वपूर्ण थी। इस तरह की रचनाओं से देश आम जनता और खासकर युवा पीढ़ी को प्रेरणा मिलती थी। जिससे युवा पीढ़ी प्रेरित, जागरुक और उत्साहित होकर स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए अग्रसर हो रहे थे।

उनकी प्रारंभिक रचनाओं में किसान आंदोलनों का भी व्यापक चित्रण मिलता है। "हल और हथौड़ा" जैसी कविताओं में उन्होंने दिखाया कि स्वाधीनता संग्राम केवल राजनीतिक मुक्ति का प्रश्न नहीं था बल्कि यह सामाजिक-राजनीतिक तथा आर्थिक शोषण से मुक्ति का भी सवाल था। इन कविताओं में नागार्जुन के वैचारिक विकास की दिशा मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रारंभिक संकेत भी मिलते हैं। इसी दौरान नागार्जुन किसानों के ऊपर दमन, शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध जमींदारी प्रथा एवं लगान वृद्धि के खिलाफ स्वामी सहजानंद सरस्वती और राहुल सांकृत्यायन के साथ किसान आंदोलन में सक्रिय थे। वे तत्कालीन दरभंगा जिले के किसान सभा के अध्यक्ष भी थे।

प्रारंभिक दौर में ही नागार्जुन ने भारत की महिलाओं की स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भागीदारी को भी अपनी कविताओं का विषय बनाया। "वीरांगना" और "मातृशक्ति" जैसी कविताओं में उन्होंने कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडू और अरुणा आसफ अली जैसी महिला क्रांतिकारी नेत्रियों के योगदान को रेखांकित कर महिमा मंडित किया था । जिससे देश की पढ़ी लिखी महिलाओं को स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरणा मिल रही थी। इस तरह जनकवि नागार्जुन ने अपने साहित्य के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन में भागीदारी के लिए जनता को प्रेरित और प्रोत्साहित किया।

भारत छोड़ो आंदोलन में भी नागार्जुन की बहुत सक्रिय भागीदारी दिखाई पड़ती है। 1942 ई का भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय स्वाधीनता संग्राम का सबसे महत्वपूर्ण और निर्णायक चरण था। इस आंदोलन में नागार्जुन की भूमिका केवल एक कवि की ही नहीं बल्कि एक सक्रिय कार्यकर्ता की भी थी। 8 अगस्त 1942 ई को जब गांधी जी ने "करो या मरो" का नारा दिया तो नागार्जुन उस समय बिहार में ही स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय थे।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान नागार्जुन ने व्यावहारिक स्तर पर कई महत्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने गुप्त पत्रक और पर्चा तथा पोस्टर छपवाने और वितरित करने का काम किया। इन पत्रकों में आंदोलन के उद्देश्यों की व्याख्या और जनता को प्रेरित और उत्साहित करने वाली सामग्री होती थी। नागार्जुन के पास संस्कृत, हिंदी और मैथिली भाषाओं का अच्छा ज्ञान था, इसलिए वे स्वाधीनता आंदोलन के राज्य स्तरीय नेतृत्वकारी नेताओं से मिलकर विचार विमर्श कर विभिन्न भाषाओं में प्रचार सामग्री तैयार कर वितरण करते थे।

आंदोलन के दौरान जनकवि नागार्जुन ने भूमिगत गतिविधियों में भी भाग लिया था। उन्होंने क्रांतिकारियों को छुपाने और उनके संदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का भी काम किया था । बिहार में जब जयप्रकाश नारायण ,सूरज नारायण सिंह, गुलाबी सोनार देव नारायण गुरमैता आदि क्रांतिकारी नेता भूमिगत थे तो नागार्जुन ने उनके साथ मिलकर कई गुप्त बैठकों का आयोजन किया और करवाया था ।

इस दौरान नागार्जुन ने "अंग्रेजों भारत छोड़ो" शीर्षक से एक लंबी कविता लिखी थी , जो हस्तलिखित रूप में व्यापक स्तर पर प्रचारित हुई। इस कविता में उन्होंने अंग्रेजी शासन की क्रूरता का वर्णन किया था और भारतीय जनता से अंतिम संघर्ष के लिए तैयार होने का आह्वान किया था। कविता की पंक्तियां इस प्रकार थीं:

"उठो भारत के सपूतो, अब समय आ गया है

विदेशी शासन का अंत करने का दिन आ गया है"

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान नागार्जुन को गिरफ्तार भी किया गया था और उन्हें जेल की यात्रा भी करनी पड़ी थी । उन्हें उस समय लगभग एक वर्ष तक जेल में रहना पड़ा था। जेल से बाहर आने के उपरांत नागार्जुन स्वतंत्रता सेनानियों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान करने और अंग्रेज सिपाहियो से बचते हुए उनके आने जाने के सुरक्षित गोपनीय रास्ते की तलाश तथा सुरक्षित ठहराव और बैठक स्थल एवं छिपने की जगह की व्यवस्था का संयोजन कार्य संभालते थे। अतः जनकवि नागार्जुन एक तरफ एक साहित्यकार की हैसियत से अपनी रचनाओं के माध्यम से आम जनमानस को स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेकर सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए प्रेरित और प्रभावित तथा प्रोत्साहित किया करते थे, वहीं दूसरी तरफ खुद भी प्रतिबद्ध स्वतंत्रता सेनानी के रूप में सक्रिय कार्यकर्ता बनकर स्वयं को देश की आजादी के लिए समर्पित कर दिए थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, मैनेजर पांडेय, वाणी प्रकाशन, प्रा लि,नयी दिल्ली।
2. नवजागरण की इतिहास चेतना, प्रदीप सक्सेना, वहीं।
   नागार्जुन का रचना संसार,विजय बहादुर सिंह, वहीं।
3. नागार्जुन रचनावली,भाग 1 से 7 तक, सम्पादक-शोभा कान्त, राजकमल प्रकाशन प्रा लि, नयी दिल्ली।
4. ठक्कन से नागार्जुन, शोभा कान्त, राजकमल प्रकाशन, प्रा लि, नयी दिल्ली।
5. नागार्जुन: मूल्यांकन/पुनर्मूल्यांकन, परमानन्द श्रीवास्तव, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. हिन्दी भाषा और साहित्य: एक समग्र अध्ययन, परमानन्द श्रीवास्तव।

स्वाधीन भारत में शिक्षा नीतिः 2020
(भाग- एक)

डॉ. रुचिरा वर्मा
अतिथि अध्यापक, हिन्दी विभाग
गुरुचरण विश्वविद्यालय, सिलचर, असम

सारांश

शिक्षा नीति किसी राष्ट्र के तीन पहलुओं को ध्यान में रख कर बनाई जाती है। यही इसके मूलभूत उद्देश्य होते हैं। पहला राष्ट्र के विकास में योगदान करने वाले जन समूह का निर्माण, दूसरा राष्ट्रीय ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ाना तथा तीसरा लोक में राष्ट्रीय चेतना अथवा राष्ट्रभक्ति का विकास करना। बाकी अन्य अवयव इसके बाद ही आते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्वाधीन भारत राष्ट्र की तीसरी नीति है जिसे निश्चित रूप आधुनिक समय की मांग एवं बदलते परिवेश एवं प्रवृतियों को ध्यान में रखते हुए किया गया है। जिसे 2030 तक सम्पूर्ण रूप से पूरे भारत वर्ष में लागू कर देने की योजना है। आज की तिथि में यह सम्पूर्ण देश में लागू हो चुका है लेकिन अभी भी कुछ स्थानों पर तकनीकी समस्याओं के चलते धीमी गति से चल रहा है। आगे दो खण्डों में हम नई शिक्षा नीति 2020 के विभिन्न पहलुओं को रखा गया है जिसमें नीति के लागू करने के उद्देश्य, प्रणाली, मूल्यांकन एवं मसौदों पर अवलोकन किया गया है।

बीज शब्द

कस्तूरीरंगन समिति, प्रारूप शिक्षा मसौदा 2019, केन्द्रीय शिक्षा प्रणाली, प्राचीन गुरुकुल परम्परा, वैश्विक तकनीकी आवश्यकता, आर्टीफिशियल इटेलिजेंस

मूल आलेख

जनवरी 2015 में भारत सरकार के पूर्व कैबिनेट सचिव टी.एस.आर. सुब्रमण्यम की अध्यक्षता में नई शिक्षा नीति के विकास के लिए एक समिति का गठन किया गया जिसने अपनी रिपोर्ट मई 2016 में प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार की ओर से, राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे के लिए कुछ तथ्यों को रेखांकित किया जाता है तथा जून 2017 में इसरो के पूर्व प्रमुख डॉ. कृष्णास्वामी कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में ग्यारह सदस्यीय समिति का गठन करता है (प्रारूप नीति में ग्यारह सदस्यों का ही उल्लेख है)। यहाँ से भारत सरकार की ओर से एक नई शिक्षा नीति के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। कस्तूरीरंगन समिति 2017 से 2019 के बीच अपना कार्य करती है तथा ड्राफ्ट या प्रारूप मसौदा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 तैयार कर 31 मई 2019 को मंत्रालय को सौंप देती है। उसके बाद

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से देश के 676 जिलों के लगभग 6000 शहरी क्षेत्र, 6600 विकास खण्ड एवं ढाई लाख से अधिक ग्राम पंचायतों के बीच संचालित अनेक संस्थाओं, विद्यालयों, विश्वविद्यालयों के शिक्षकों, विचारकों, चिन्तकों आदि से सुझाव, विचार, आपत्ति आदि मँगाये जाते हैं, फिर 29 जुलाई 2020 को भारत सरकार इसे लागू कर देती है जिसका उद्देश्य नीति के निहित उद्देश्यों के अनुरूप 2040 तक भारतीय शिक्षा संरचना को परिवर्तित करना है। एक संकेत आवश्यक है कि इस समिति के गठन के बाद से इसे नई शिक्षा नीति के रूप में लागू होने तक समिति भी निरन्तर सुझाव, विचार, आपत्ति- अनापत्ति प्राप्त करती रही और यही नहीं टी.एस.आर. सुब्रमण्यम की समिति को प्राप्त विशाल सुझाव एवं विचार भी उनके समक्ष थे, जिसका संकेत समिति अपनी प्रस्तावना में करती है। कस्तूरीरंगन के अलावा इस समिति के सदस्य रहे- मजुल भार्गव, वसुधा कामत, कृष्ण मोहन त्रिपाठी, टी. वी. कट्टीमनी, मज़हर आसिफ, राम शंकर कुरील, के. जे. अल्फोंस, शकीला शम्सू, एम. के. श्रीधर, राजेन्द्र प्रताप गुप्ता। यह समिति प्रारूप शिक्षा नीति 2019 में अपना विजन सुनिश्चित करती है- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 एक भारत केन्द्रित शिक्षा प्रणाली की कल्पना करती है जो सभी को उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करके, हमारे राष्ट्र को एक न्यायसंगत और जीवंत ज्ञान समाज में लगातार बदलने में योदगान देती है[1]।

निश्चय ही यह अभी पूरी तरह से लागू नहीं किया जा सका है। इसकी संरचना, नीति-निर्देशक तत्त्व निर्धारित किए जा चुके हैं लेकिन उसके हिसाब से पिछली शिक्षा नीति की संरचना को बदलने में कुछ समय अवश्य लगेगा। इन सभी के दिशा-निर्देशों के अनुसार शैक्षिक सामग्री, विधि-विधान के निर्माण में समय अवश्य लगेगा। इसलिए इसे लागू करने की समय सीमाएँ दी गई हैं क्योंकि मानव सभ्यता का स्वभाव है कि प्रवाहमान गति से भिन्न गति और उसी दिशा में ही सही, अन्य दिशा स्थापित करने में समय लगता है। वर्ष 2020 की शिक्षा नीति नए भारत की नई संभावनाओं और आधुनिक दुनिया की गति एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत और लागू किया जा रहा है। ऐसा अभी नहीं कह सकते हैं कि पूर्णरूपेण यह सफलतम नीति ही होगी। यह तो भविष्य में प्रकट होगा कि यह कितना सफल रही तथा अन्य और कौन- कौन से कार्य छूट गये अथवा क्या जोड़ना घटाना चाहिए था। हम जानते हैं कि शिक्षा नीति 1968 लागू किया गया तो भारत की नई संभावनाओं के साथ कुछ सफलता प्राप्त हुई लेकिन उद्देश्य पूरा नहीं हुआ और अनेक कार्य तो आज भी ठीक से नहीं किए जा सके। उसकी कमियों को दूर करने के लिए शिक्षा नीति 1986 (1992 के संशोधन के साथ) लागू की जाती है। इसमें भी पिछली कमियों को आवश्यकता- अनुसार बदलने और पूरा करने की कोशिश की जाती है। इसमें भी कुछ सफलता हाथ लगी और इससे भी सभी उपलब्धियों को हासिल नहीं किया जा सका। इस बीच दुनिया और भारत की स्थिति में तीव्रतम बदलाव आता है। हम जानते हैं आधुनिक सभ्यता की आवश्यकता, रहन-सहन, वैचारिकी, अभियंत्रणा, तकनीकी आदि में व्यापक बदलाव आता है। इस लिहाज से भारतीय शिक्षा संरचना को पुनर्सृजित करने की आवश्यकता पड़ी।

भारत वर्तमान समय में पृथ्वी की जीवित प्राचीन मानव सभ्यताओं में से एक है- कहने का अर्थ यह कि सभी सभ्यताएँ किसी न किसी कारण से नष्ट होती चली गई लेकिन भारत की प्राचीन सभ्यता अपने नए रूपों में आज भी जीवित है। वैश्विक विकास तथा संसाधनिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों को हासिल करने की ओर भी अग्रसर है। इस अवस्था में नई शिक्षा नीति इन सभी दृष्टियों से अपनी परम्परागत सभ्यता को अक्षुण बनाये रखने तथा वैज्ञानिक सभ्यता के साथ भी तादात्म्य बनाए रखने के प्रयास की संभावनाओं की तलाश में है। ऐसा नहीं है कि शिक्षा नीति 2020 के आ जाने से पुरानी शिक्षा नीति एकदम से खारिज हो जाती है या हटा दी जायेगी। अगर हम गौर से अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि यह नीति पिछली दोनों नीतियों की पृष्ठभूमि पर ही बनी है जिसका उद्देश्य भारतीय लोक को प्रत्येक रूप से बेहतर बनाने की कोशिश है

क्योंकि जो है उसी को आधार बनाया जाता है। यह नीति अपने आधारभूत सिद्धान्त में ये मानती है कि ये बेहतर शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है जो तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हो, जिसमें करूणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिन्तन और रचनात्मक कल्पनाशक्ति, नैतिक मूल्य और आधार हों। इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है जो कि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित- समावेशी, और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान करे[2]। ये नीति यह भी कहती है और जैसा कि हम जानते भी हैं कि पिछली नीतियों में पहली नीति का जोर भारतीय जनता को शिक्षा तक पहुँचाने तक था, हालांकि उसके समानान्तर उसका भी उद्देश्य तत्त्समकालीक विश्व के साथ भारतीय गति को जोड़ना भी था जो कि अनेक अभावों और व्यापक कौशल अभावों के चलते अपने सफलता की ओर ठीक से गतिमान नहीं रहा। निश्चय ही जैसा कि पीछे हमने चर्चा की कि 1986 (1992) के तथा उसके अन्य अधिनियमों आदि के सहारे पिछले उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिशें की जाती रही। अब जबकि पूरा विश्व ज्ञान, अपना स्वरूप बदला रहा है, ज्ञान के माध्यम और उसके अवयव संचार माध्यमों एवं डिजीटल तकनीकी के सहारे विस्तार प्राप्त कर रहे हैं तो इस अवस्था में ज्ञानार्जन एवं उसकी प्राप्ति का स्वरूप भी समयानुकूल होना चाहिए। यह नीति संकेत करती है कि- पूरे विश्व में बिग डेटा, मशीन लर्निंग और आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस जैसे क्षेत्रों में हो रहे बहुत से वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के चलते एक ओर विश्व भर में अकुशल कामगारों की जगह मशीनें काम करने लगेंगी और दूसरी ओर डेटा साइंस, कम्प्यूटर साइंस और गणित के क्षेत्रों में ऐसे कुशल कामगारों की जरूरत और मांग बढ़ेगी जो विज्ञान, समाज विज्ञान और मानविकी के विविध विषयों में योग्यता रखते हों। जलवायु परिवर्तन, बढ़ते प्रदूषण और घटते प्राकृतिक संसाधनों की वजह से हमें ऊर्जा, भोजन, पानी, स्वच्छता आदि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नए रास्ते खोजने होंगे और इस कारण भी जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, कृषि और जलवायु विज्ञान के क्षेत्रों में कुशल कामगारों की जरूरत होगी। मानविकी और कला की मांग बढ़ेगी क्योंकि भारत एक विकसित देश बनने के साथ-साथ दुनिया की तीन सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने की ओर अग्रसर है[3]। इसके लिए आवश्यक अवयवों के साथ 2030 से 40 के दशक के बीच एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास है जिसमें प्रत्येक वर्ग के लिए उच्चतम गुणवत्ता से युक्त शिक्षा, भारत की परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा, तार्किकता के साथ- साथ करूणा, नैतिकता एवं संवेदनशीलता को विकसित करने वाली शिक्षा, वैज्ञानिक एवं तकनीकी आवश्यकताओं को सम्पुष्ट करने वाली शिक्षा, डिजीटल एवं प्रौद्योगिकी के श्रेष्ठ कौशल विकसित करने वाली शिक्षा को निर्मित करना है। इसे 2030 तक प्रत्येक क्षेत्र में पूरी तरह से लागू कर देने की योजना है।

इस नीति के चार खण्ड हैं जो अलग-अलग कुल 27 शीर्षकों के माध्यम से इस नीति की संरचना को प्रस्तुत करते हैं। इसके प्रमुख तत्त्वों को हम इस प्रकार देख सकते हैं-

खण्ड एक- स्कूली शिक्षाः आरम्भ से बारहवीं तक

यह पिछली व्यवस्था 10+2 (कक्षा 1 से 10 तक- आयु वर्ग 6 से 16 तथा कक्षा 11-12 आयु वर्ग 16 से 18) को विस्थापित करके 5+3+3+4 (5- पूर्व प्राथमिक या आँगनवाड़ी या बाल विकास केन्द्र के 3 वर्ष तथा कक्षा एक एवं दो, 3- कक्षा तीन से पाँच तक, 3- कक्षा छः से आठ तक तथा 4- कक्षा 9 से 12 वीं तक) की सरंचना में लागू करती है जिसका उद्देश्य किसी बच्चे के मानसिक विकास और अवस्था के अनुसार उसकी शैक्षिक सामग्री का तादात्म्य बन सके। तात्पर्य यह कि जो कार्य सामान्यतया कक्षा एक से पाँच वर्ष की आयु में शुरु होता था उसे तीन वर्ष की आयु से आरम्भ करना है। ऐसा भी नहीं है कि पीछे की शिक्षा पद्धति में ऐसा नहीं था। पिछली शिक्षा नीतियों में पूर्व प्राथमिक की चर्चा थी लेकिन

उन्हें प्रमुखता से शामिल नहीं किया गया। आँगनवाड़ी एवं बाल विकास केन्द्र के रूप में इसे स्थापित तो किया गया लेकिन जितना अधिक सफल यह व्यासायिक अथवा प्राइवेट स्कूलों में हुआ वैसा सरकारी तौर पर नहीं हुआ- एल.के.जी, यू.के.जी, नर्सरी के नाम से। 2020 की शिक्षा नीति में उसे मुख्य शिक्षा के हिस्से में शामिल करते हुए उसे सशक्त बनाने की योजना पर बल देने की बात कही गई है। हम महसूस कर सकते हैं कि पूर्व की तुलना में बच्चे वर्तमान समय में अधिक सक्रिय एवं तीव्र बुद्धि वाले हो रहे हैं, जबकि आरम्भिक शैक्षिक व्यवस्था 1990 के दशक वाली है। इसके साथ ही पाँच अथवा छः वर्ष से पूर्व की शिक्षा (पूर्व प्राथमिक) को स्थाई रूप से लागू करने की आवश्यकता है। आँगनवाड़ी पद्धति की दशा और दिशा अत्यन्त कमजोर एवं विकृत अवस्था में जा चुकी है। आज के तकनीकी एवं तीव्र गति वाली दुनिया में, वे चाहे किसी भी आर्थिक वर्ग के हों, के लिए वह व्यवस्था व्यर्थ अवस्था में दिखाई दे रही है। इस लिहाज से शिक्षा नीति 2020 यह सुनिश्चित करना चाहती है कि जबकि 6 वर्ष की अवस्था तक किसी भी बच्चे के मस्तिष्क का विकास 85 प्रतिशत तक हो जाता है। अतः कक्षा एक में प्रवेश के पूर्व वह गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक पृष्ठभूमि के साथ तैयार हो जाना चाहिए। इसके लिए ईसीसीई (प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा) के माध्यम से बहुस्तरीय, बहुआयामी, खेल आधारित, गतिविधि आधारित और खोज आधारित शिक्षा प्रदान किया जायेगा जिसमें अक्षर ज्ञान, अंक ज्ञान, पहेली, हल्के-फुल्के तार्कित सोच-विचार, चित्र-दृश्य एवं अन्य कलाओं आदि के सहारे सामाजिक कार्य, मानवीय संवेदना, शिष्टाचार, नैतिकता, स्वच्छता, सामूहिक सहयोगिता जैसी चेतना को विकसित करने का प्रयास किया जायेगा[4]। ईसीसीई का समग्र उद्देश्य इन बच्चों के शारीरिक, भौतिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक-सांस्कृतिक-नैतिक विकास के साथ भाषा, साक्षरता एवं संख्यात्मक ज्ञान को विकसित करना होगा। यह नीति बहुत विस्तार से ईसीसीई की कार्यविधि को एनसीईआरटी के माध्यम से आँगनवाड़ी कार्यकत्रियों अथवा शिक्षकों को गुणवत्ता प्रधान एवं उन्हें सशक्त बनाते हुए माता-पिता की सहयोगिता वाले मॉडल के साथ कार्य करने की व्यवस्था लागू करती है। यह मॉडल मानव संसाधन विकास मंत्रालय की जिम्मेदारी में महिला और बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय तथा जनजातीय कार्य मंत्रालय के सहयोग से क्रियान्वित होगा।

यह नीति ये मानती है कि वर्तमान समय में हम न सीखने की गम्भीर समस्या से पीड़ित हैं- इसमें अध्यापकों की कमी से लेकर बच्चे अथवा छात्र के लगावपूर्ण भागीदारी की कमी एवं विद्यालय के आधारभूत उपलब्धताओं तथा माहौल को भी कारण माना जा सकता है। प्रस्तावित नीति 2025 तक इन समस्याओं का निदान करके, मसलन- अध्यापकों की पर्याप्त नियुक्ति, छात्रों के बीच आपसी अधिगम के विकास की प्रक्रिया को मातृभाषा में उपलब्ध कराने की अपनी प्रतिबद्धता प्रकट करती है। इसके लिए लगभग सभी भारतीय एवं स्थानीय भाषाओं (मातृभाषाओं) में रोचक एवं प्रेरणादायक बाल साहित्य उपलब्ध कराने से लेकर स्थानीय पुस्तकालयों में अधिक पुस्तकों की उपलब्धता, सार्वजनिक पुस्तकालयों का विस्तार, गावों में स्कूल लाइब्रेरी की स्थापना, डिजीटल पुस्तकालय की स्थापना तथा एक राष्ट्रीय पुस्तक संवर्धन नीति तैयार की जायेगी जिससे पढ़ने की संस्कृति को प्रोत्साहन मिलेगा[5]। देखा जाय तो यहाँ इस बात के लिए व्यापक पहल की जा रही है कि लोक अथवा समाज में पढ़ने की संस्कृति विकसित हो जिससे अन्य लोग भी आपस में अपने तर्क विचार, भाव, तथ्य आदि को साझा कर सके। प्रायः हम देखते हैं कि वर्तमान शिक्षा पद्धति केवल अर्थोपार्जन का माध्यम मात्र है तथा जैसे ही यह उपलब्धि प्राप्त होती है लोग पढ़ना छोड़ देते हैं। यह समाज के वैचारिक विकास के हित में नहीं है। यह भारतीय शिक्षा परम्परा के औचित्य के हित में भी नहीं है। प्रायः यह भी देखा जाता है कि बच्चों में भी केवल स्कूली जानकारी मात्र रखने की प्रवृति विकसित हो चुकी है। यह केवल, न पढ़ने एवं और अधिक न सीखने की उपजी संस्कृति के कारण होता है। इस लागू होने वाली नीति के माध्यम से आरम्भ में ही सीखने और जानने की प्रवृति अगर विकसित हो जाती है तो आगे चलकर किसी भी बच्चे का चहुँमुखी विकास होने लगेगा। यह प्रक्रिया उसी शैक्षिक विभाजन 5+3+3+4

का हिस्सा है। किसी विद्यार्थी के समग्र विकास के लिए आरम्भिक पाँच वर्ष जो बच्चे के तीन वर्ष की आयु से शुरू होकर कक्षा दो तक जाती है, की बुनियाद रख सकता है- यह फाउण्डेशनल स्तर पर लचीले, खेल प्रधान गतिविधियों, ईसीसीई के पाठ्यक्रम से विकसित बच्चे का बुनियादी ज्ञान, प्रिपेरेटरी स्तर (कक्षा- 3, 4, 5) में शिक्षण शास्त्रीय शैली के सहारे आगे बढ़ेगी जिसमें संवादात्मक कक्षा शैली का भी प्रयोग होगा तथा जिसमें पढ़ने-लिखने-बोलने के साथ शिक्षा, कला, विज्ञान, गणित, शारीरिक शिक्षा भी शामिल होंगी। आरम्भिक पाँच वर्ष की प्रक्रिया को बिना किसी परीक्षा के द्वारा केवल खेलकूद एवं साथी बच्चें के साथ मेल-मिलाप की पद्धति द्वारा शिक्षा के प्रति रुचि बढ़ाने के उद्देश्य से बनाया गया है क्योंकि प्रायः देखा गया है कि इस अवस्था में बच्चे खेलकूद में ही अधिक रुचि रखते हैं। इसके पश्चात दूसरे स्तर में इनकी गतिविधियों को कुछ नियन्त्रित स्वरूप में परीक्षा को शामिल करते हुए किया जायेगा। इन सब प्रक्रियाओं से बच्चों के भीतर जो अमूर्त अवधारणाएँ विकसित हुई रहती हैं उनको मिडिल स्तर (कक्षा- 6, 7, 8) पर विज्ञान, गणित, कला, खेल, सामाजिक विज्ञान, मानविकी और व्यावसायिक विषयों- जिसमें कौशल-कला रूपी अध्ययन भी शामिल होंगे, के रूप में अनुभव आधारित शिक्षण और विषय विशेषज्ञों के सहारे आकार प्रदान किये जायेंगे। इसमें कम्प्यूटर की जानकारी, हल्के फुल्के मशीनी तकनीकी से लेकर पाक-कला, कृषि, सिलाई, कताई- बुनाई, बागवानी, बढ़ई, कुम्हार जैसे घरेलू कामकाजी जीवन एवं उद्योग के बारे में भी सिखाया- पढ़ाया जायेगा तथा इसके लिए अंक भी प्रदान किए जायेंगे। कहने का तात्पर्य यह कि इसी स्तर से किसी बच्चे के भीतर विकसित कौशल की पृष्ठभूमि का निर्माण होगा जिसके सहारे भविष्य में वह समाज अथवा राष्ट्र के विकास में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकेगा। इसी स्तर से निश्चय ही भविष्य के लिए अर्थोपार्जन का एक माध्यम तलाश कर सकेगा। इस प्रक्रिया के पश्चात वह विद्यार्थी अगले सेकेण्डरी स्तर (कक्षा- 9, 10, 11, 12) के बहुविषयक अध्ययन में शामिल होगा जिसमें 10 वीं के बाद से 12 वीं तक में किसी सुनिश्चित पाठ्यक्रम से भिन्न, स्वयं की इच्छा द्वारा चयनित पाठ्यक्रम के साथ अध्ययन करने का लचीला अवसर प्राप्त करेगा। तात्पर्य यह कि अब कला, विज्ञान, वाणिज्य जैसे वर्ग समाप्त कर दिए जायेंगे तथा परीक्षाएँ वार्षिक के स्थान पर सेमेस्टर के हिसाब से सम्पन्न होंगी। माध्यमिक विद्यालय में इस चुनाव की स्वंतत्रता औचित्य का इतना भर है कि विद्यार्थी अपने स्वभाव अथवा अपनी रूचि के अनुसार अपने लिए सुरक्षित पाठ्यक्रम का चुनाव कर सकेंगे और अपने अध्ययन एवं जीवन की योजना के अपने रास्ते तैयार करने के लिए स्वतंत्र हो सकेंगे[6]।

इस शिक्षा नीति में एक विशेष प्रावधान देखने को मिलता है कि आरम्भिक शिक्षा पूरी तरह से मातृभाषा में कराई जायेगी क्योंकि कोई भी बच्चा अपनी भाषा में सीखने में सरलता अनुभव करता है। इसके साथ ही माध्यमिक स्तर पर भी अंग्रेजी को समाप्त न करते हुए मातृभाषा अथवा किसी क्षेत्रीय भाषा को माध्यम के रूप में लागू किया जायेगा। यहाँ एक और प्रावधान देखने को मिलता है कि प्रत्येक विद्यार्थी को किसी एक भारतीय भाषा को सीखना जरूरी होगा ताकि भारतीय जनता के बीच सामन्जस्य और आपसी परिचयपन का बोध विकसित होता रहे। इसके बाद सेकेन्डरी (माध्यमिक कक्षा 9-12) स्तर पर विद्यार्थी किसी विदेशी भाषा को सीख अथवा पढ़ सकता है, जैसे- कोरियाई, जापानी, थाई, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, पुर्तगाली और रूसी। मिडिल और सेकेन्डरी स्तर पर एक व्यवस्था यह भी दी गई है कि त्रिभाषा सूत्र को आगे बढ़ाया जायेगा लेकिन किसी राज्य अथवा क्षेत्र पर भाषा का अनिवार्य आरोपण नहीं किया जायेगा। यह क्षेत्रीय आकांक्षाओं तथा राज्य की इच्छा पर निर्भर रहने के लिए स्वतंत्र रखा जायेगा। जैसा कि हम जानते है त्रिभाषा का संकेत- क्षेत्रीय अथवा मातृभाषा, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा से है। आज के समय में देखा जा रहा है कि जो व्यक्ति तीन या उससे अधिक भाषाओं को जानता है, वह देश अथवा विदेश कहीं भी जा सकने और कार्य करने की क्षमता रखता है और वह अधिक सफल भी होता है। जबकि कोई व्यक्ति अगर मातृभाषा के अतिरिक्त कोई और भाषा नहीं सीखता उसका जीवन

अधिक कठिन और सीमित रह जाता है। वह अपने क्षेत्र से बाहर किसी चीज के लिए भी नहीं निकल सकता। इस प्रक्रिया से वह अपने ही देश में अन्य क्षेत्र के लोगों से नहीं जुड़ पाता है। अतः यह एक राष्ट्रीय हित की बात है जिसको आगे बढ़ाना उचित है। इन्हीं स्तरों पर पर आधुनिक जीवन संरचना के अनुरूप कौशल विकास एवं समसामयिक विषयों की निपुणता के लिए कदम उठाये जायेंगे, जिसमें तथ्य आधारित विचार-चिंतन, रचनात्मकता, संवाद निपुणता, शारीरिक स्वास्थ्य, नैतिक बोध, सामाजिक संवेदनशीलता, वैज्ञानिक स्वभाव, पर्यावरणीय जागरूकता, डिजीटल साक्षरता, आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स, वैश्विक नागरिकता बोध आदि जैसे विषयों के कौशलों को विकसित करने के लिए प्रयास किए जायेंगे। मूल्यांकन पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन किया जायेगा, जिससे बच्चों पर कोचिंग जैसी अतिरिक्त कक्षाओं का दबाव न बढ़े। इसके लिए परिक्षाएँ एकल रूप से न लेकर वर्ष भर में सत्रीय परीक्षा के रूप में सम्पन्न होंगी जिससे पूरे पाठ्यक्रम का दबाव एक साथ न रहे। यही नहीं साथ ही साथ विद्यार्थी के विकास का मूल्यांकन केवल लिखित परीक्षा के बजाय-शिक्षक मूल्यांकन, स्व मूल्यांकन, सहपाठी मूल्यांकन तथा ज्ञानात्मक एवं तार्कित क्षमता के विश्लेषण के आधार पर किया जायेगा क्योंकि रटन्त तरीके से बच्चों के बीच अवधारणात्मक एवं व्यावहारिक ज्ञान का विकास नहीं हो सकता, नहीं हो पाता। यह एक प्रकार से किसी विद्यार्थी के चारो ओर स्थित समाज द्वारा किया गया उसका मूल्यांकन होगा जो वास्तव में उसका सही मूल्यांकन होगा।

यह नीति अध्यापकीय योग्यता एवं पात्रता पर भी विचार करती है। स्कूली शिक्षा में अध्यापन के लिए योग्य अध्यापकों की भर्ती के लिए चार वर्षीय एकीकृत बी.एड. कार्यक्रम स्थापित होगा। सभी स्तरों पर- बुनियादी, प्रारम्भिक, मिडिल और माध्यमिक पर शिक्षकों की भर्ती, शिक्षक पात्रता परीक्षा के माध्यम से ही की जायेगी। शिक्षकों का ज्यादातर समय गैर शिक्षण गतिविधियाँ करने में व्यतीत होने से रोकने के लिए शिक्षक को ऐसे कार्य जो शिक्षण से सीधे सम्बन्धित नहीं हैं, उनको करने की अनुमति नहीं होगी- विशेष रूप से शिक्षकों को जटिल प्रशासनिक कार्य, मध्याह्न भोजन से सम्बन्धित कार्य के लिए तर्कसंगत न्यूनतम समय से अधिक समय में शामिल नहीं किया जायेगा, जिससे वे पूरी तरह से शिक्षण अधिगम कार्य में ध्यान दे सकेंगे[7]। हालांकि यह बात कितनी अपनाई जायेगी यह कहना बहुत मुश्किल है क्योंकि प्रायः देखा गया है कि चुनाव प्रक्रिया, विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षण, जनगणना जैसे महीनों चलने वाले कार्यक्रमों में अध्यापकों को सारी नीतियों के बावजूद लगा दिया जाता है। ऐसा नहीं है कि शिक्षकों को ऐसे कार्यों से रोकने के लिए विधान नहीं है। विधान हैं लेकिन प्रशासनिक व्यवस्था को इतनी शक्ति प्रदान की जा चुकी है कि स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय के अध्यापकों को तक को राष्ट्रीय सेवा के नाम पर ये कार्य कराया जाता है चाहे इससे छात्रों का कितना भी अहित क्यों न होता हो। इससे प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक की पूरी प्रक्रिया बाधित और अस्त- व्यस्त हो जाती है। बहरहाल, इस पर शिक्षा नीति 2020 में ध्यान देने की बात कही गई है। इसके साथ ही शिक्षक की गुणवत्ता को निरन्तर बनाये रखने के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन किया जायेगा, जैसा कि पिछली नीतियों में कहा गया था।

सन्दर्भ सूचीः-

1. प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019, पृष्ठ- 55, कस्तूरीरंगन समिति की रिपोर्ट (भारत सरकार)
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ- 6, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, वर्ष- 2020
3. तदेव, पृष्ठ- 3
4. तदेव, पृष्ठ- 9

5. तदेव, पृष्ठ- 13

6. तदेव, पृष्ठ- 19

7. तदेव, पृष्ठ- 33

स्वाधीनता संग्राम और हिन्दी कहानी

डॉ. अभिशेक कुमार सिन्हा
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का लंबा और संघर्षपूर्ण इतिहास केवल राजनीतिक घटनाओं, नेताओं का समर्पण और बलिदान एवं उनकी कुशलता या सशस्त्र विद्रोहों तक सीमित नहीं रहा बल्कि यह साहित्य की विभिन्न विधाओं का भी एक जीवंत और प्रभावशाली माध्यम बना जिसमें हिंदी कहानी साहित्य ने विशेष रूप से उल्लेखनीय योगदान दिया। हिंदी कहानी का उद्भव और विकास स्वयं उस काल की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिघटनाओं और उथल-पुथल का प्रतिबिंब है। जब देश ब्रिटिश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और जनमानस में स्वाधीनता की आकांक्षा धीरे-धीरे जागृत हो रही थी। उस दौरान हिंदी कहानी ने न केवल पराधीन भारत की पीड़ा, शोषण और अपमान को व्यक्त किया बल्कि जनसामान्य को जागृत करने के लिए राष्ट्रभक्ति की भावना जगाने, सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करने और एकता के सूत्र में बांधने का कार्य भी किया। यह कहानी साहित्य उस युग की चेतना और जागरूकता का सजीव दर्पण है जिसमें व्यक्तिगत दुख-दर्द, सामाजिक अन्याय और राष्ट्रीय अपमान एकाकार होकर एक नई क्रांतिकारी चेतना का निर्माण कर रहे थे। हिंदी कहानी के इस योगदान को समझने के लिए हमें इसके विकास के विभिन्न चरणों को देखना होगा जो भारतेन्दु युग से आरंभ होकर प्रेमचंद युग, छायावाद और प्रगतिवाद तक फैला हुआ है।

हिंदी कहानी की यात्रा का प्रारंभ भारतेन्दु युग से माना जाता है जब हिंदी गद्य ने करवट लेकर नये कलेवर के साथ खड़ी बोली में अपनी मजबूत नींव रखी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी लेखकों ने हिंदी गद्य को न केवल परिष्कृत किया बल्कि उसे राष्ट्रीय भावनाओं का वाहक बनाया। उस समय कहानी विधा अभी अपनी प्रारंभिक अवस्था में थी परंतु गद्य रचनाओं में राष्ट्रप्रेम, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जागरण और पराधीनता की पीड़ा की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारतेन्दु ने अपनी रचनाओं में भारत की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया और विदेशी शासन की क्रूरता को उजागर किया। उनकी कविताओं और नाटकों में जहां राष्ट्रभक्ति का स्वर मुखर है वहीं गद्य में भी स्वदेशी भावना और सामाजिक सुधार की पुकार सुनाई देती है। "भारतेन्दु युग में कहानी के रूप में छोटी-छोटी रचनाएं उभरने लगीं जो सामाजिक विसंगतियों पर केंद्रित थीं और अप्रत्यक्ष रूप से पराधीनता के दुष्परिणामों को रेखांकित करती थीं।"[1] उदाहरणस्वरूप इस युग की कुछ रचनाओं में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी अपनाने की भावना झलकती है जो आगे चलकर स्वाधीनता आंदोलन का प्रमुख हथियार बनी। भारतेन्दु मंडल के लेखकों जैसे बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने भी गद्य के माध्यम से समाज को जागृत करने का प्रयास किया। इस युग में कहानी मुख्यतः अनुवाद प्रधान थी परंतु मौलिक रचनाओं में भी राष्ट्रीय चेतना का पुट था। भारतेन्दु युग ने हिंदी कहानी को एक नये कलेवर का आधार प्रदान किया जिस पर आगे के युगों में विशाल भवन खड़ा हुआ।

भारतेन्दु युग के बाद द्विवेदी युग में हिंदी गद्य और अधिक परिमार्जित और परिपक्व हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी के कुशल संपादन में सरस्वती पत्रिका ने हिंदी साहित्य को नई दिशा एवं नया कलेवर और गति प्रदान की। इस काल में कहानी विधा ने अपना स्वतंत्र और सशक्त एवं परिमार्जित रूप ग्रहण किया। कहानियां अब केवल मनोरंजन का साधन

नहीं रहीं बल्कि समाज सुधार, नैतिक शिक्षा और राष्ट्रीय जागरण का प्रभावी माध्यम बन गईं। "द्विवेदी युग की कहानियों में राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना तो मौजूद थी पर वह अधिकतर नैतिकता और सामाजिक सुधार पर केंद्रित रही।"[2] किशोरीलाल गोस्वामी की इंदुमती जैसी कहानियां इस युग की प्रतिनिधि रचनाएं हैं जो सामाजिक समस्याओं को उठाती हैं और अप्रत्यक्ष रूप से पराधीन समाज की कुंठाओं को व्यक्त करती हैं। बंग महिला की दुलाई वाली और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कुछ रचनाएं भी इस काल में उल्लेखनीय हैं। इस युग ने कहानी को एक सशक्त विधा के रूप में स्थापित किया जो आगे चलकर स्वाधीनता संग्राम का सशक्त हथियार बन सकी। द्विवेदी युग की कहानियां जनता में नैतिक बल और सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता की भावना जगाती थीं जो स्वाधीनता आंदोलन के लिए आवश्यक थी। इस प्रकार द्विवेदी युग ने कहानी को यथार्थवादी आधार प्रदान किया और उसे राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा।

वस्तुतः हिंदी कहानी साहित्य का वास्तविक स्वर्ण युग मुंशी प्रेमचंद के उदय के साथ आरंभ होता है, जिन्हें हिंदी कहानी का पितामह कहा जाता है और जिनका योगदान स्वाधीनता आंदोलन से अविभाज्य है। प्रेमचंद का जन्म 1880 ई0 में हुआ और उनका साहित्यिक जीवन ठीक उसी समय फला-फूला जब भारत में स्वाधीनता आन्दोलन की लहरें तेज हो रही थीं। उनकी प्रारंभिक रचनाएं उर्दू में नवाब राय के नाम से लिखी गईं। उनका पहला कहानी संग्रह सोजे वतन 1908 ई0 में प्रकाशित हुआ, जिसमें शामिल पांच कहानियां इतनी राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत थीं कि ब्रिटिश सरकार ने इसे राजद्रोहपूर्ण मानकर सभी प्रतियां जला दीं और प्रेमचंद को चेतावनी दी। "इस घटना ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने के लिए विवश किया पर उनकी रचनाओं में राष्ट्रभक्ति का स्वर और अधिक प्रखर हो गया।"[3] प्रेमचंद की कहानियां यथार्थवादी थीं जो ग्रामीण भारत की गरीबी, शोषण, दमन और अत्याचार, जमींदारी प्रथा, अंधविश्वास तथा छुआछूत और ब्रिटिश शासन के शोषण को बेबाकी से उजागर करती थीं। उनकी प्रसिद्ध कहानी पूस की रात में एक गरीब हल्कू की ठंड से मौत का चित्रण है जो शोषणकारी व्यवस्था पर करारा प्रहार है। ठाकुर का कुआं में छुआछूत की कटुता को दिखाया गया जो राष्ट्रीय एकता में बाधक थी। मंत्र, जुलूस और ईदगाह जैसी कहानियां विदेशी शासन के खिलाफ विद्रोह और गांधीवादी विचारों को जनता तक पहुंचाती हैं। प्रेमचंद ने गांधीजी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर अपनी सरकारी नौकरी त्याग दी और साहित्य को स्वाधीनता संग्राम का माध्यम बनाया। उनकी कहानियां सरल भाषा में लिखी गईं जो गांव-गांव तक पहुंचीं और लोगों में चेतना और जागृति पैदा की। सद्गति में दलित की मौत सामाजिक उत्पीड़न और अन्याय का प्रतीक है जबकि कफन में गरीबी तथा बेबसी की नग्नता उजागर हुई है। प्रेमचंद ने स्वदेशी जागरण, खादी और सत्याग्रह जैसे प्रतीकों को अपनी कहानियों में स्थान दिया। "उनकी रचनाएं केवल कथा नहीं बल्कि समाज परिवर्तन और स्वाधीनता का आह्वान थीं।"[4] वस्तुत: प्रेमचंद का मानना था कि साहित्य समाज का दर्पण है और वह समाज को बदलने का सशक्त औजार भी है। इस दृष्टि से उनकी कहानियां स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि में जनजागरण का सबसे बड़ा सशक्त माध्यम बनीं।

प्रेमचंद के समकालीन जयशंकर प्रसाद ने हिंदी कहानी को एक अलग आयाम प्रदान किया। प्रसाद मुख्यतः कवि और नाटककार थे पर उनकी कहानियां भाववादी और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित थीं। उनकी पहली कहानी 'ग्राम' इन्दु पत्रिका में प्रकाशित हुई। प्रसाद की कहानियां जैसे पुरस्कार, आकाशदीप, गुंडा और ममता में भारतीय संस्कृति के गौरव और मानवीय करुणा का चित्रण है जो पराधीन भारत में आत्मगौरव और स्वाभिमान जगाने का कार्य करती थीं। प्रसाद का समय स्वाधीनता आंदोलन के उत्कर्ष का था और उनकी कहानियों में अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रभक्ति की झलक मिलती है। वे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर कहानियां लिखकर भारत के स्वर्णिम अतीत को याद दिलाते थे जिससे वर्तमान की पराधीनता की बेड़ी और अधिक पीड़ादायक लगती थी और जनता में विद्रोह की भावना जागृत होती थी। "प्रसाद की कहानियां यथार्थ से अधिक कल्पना प्रधान थीं पर उनमें राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक चेतना का गहरा पुट था।"[5] उनकी रचनाएं

पराधीनता की बेड़ी से मुक्ति की आकांक्षा को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करती थीं।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने भी कई कहानियां लिखीं जो छायावादी भावधारा से प्रभावित थीं। निराला की कहानियां जैसे लिली, सूखा पात और देवी में व्यक्तिगत पीड़ा और सामाजिक और सांस्कृतिक विसंगतियां हैं। निराला की रचनाओं में विद्रोह का स्वर है जो स्वाधीनता संग्राम की क्रांतिकारी धारा से जुड़ता है। भगवतीचरण वर्मा की कहानियां जैसे चित्रकार और रेखा में मनोवैज्ञानिक गहराई है पर उनमें सामाजिक यथार्थ और राष्ट्रीय भावना की गहरी झलक मिलती है। छायावाद युग में कहानी विधा ने व्यक्तिवाद और सूक्ष्म भावों को अपनाया पर सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय भावना उसकी पृष्ठभूमि में सदैव उपस्थित रही। छायावादी कहानियां प्रकृति और व्यक्तिगत भावनाओं पर केंद्रित थीं पर अप्रत्यक्ष रूप से वे पराधीनता की बेड़ी से मुक्ति की आकांक्षा व्यक्त करती थीं। इस युग में कहानी ने मनोविश्लेषण को स्थान दिया जो आगे की नई कहानी का आधार बना पर स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में ये कहानियां जनता में आत्मचेतना और जागरूकता जगाती थीं।

आगे प्रगतिवादी युग में हिंदी कहानी ने और अधिक प्रत्यक्ष रूप से स्वाधीनता आंदोलन से जुड़कर क्रांतिकारी स्वर अपनाया। यशपाल और जैनेन्द्र कुमार जैसे लेखकों ने इस युग में महत्वपूर्ण योगदान दिया। "यशपाल स्वयं क्रांतिकारी थे और भगत सिंह के साथी रहे।"[6] उनकी कहानियां जैसे पिंजड़े की उड़ान और उत्तराधिकारी में शोषण, दमन तथा साम्राज्यवाद और विदेशी शासन के खिलाफ क्रांति की भावना है। यशपाल की रचनाएं मार्क्सवादी दृष्टि से प्रभावित थीं और वे पराधीनता को केवल राजनीतिक नहीं बल्कि आर्थिक शोषण का भी परिणाम मानते थे। उनकी कहानियां जनता को संगठित होकर विद्रोह करने का आह्वान करती थीं। जैनेन्द्र कुमार की कहानियां मनोवैज्ञानिक थीं पर उनमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक जड़ता तथा बंधनों के खिलाफ विद्रोह की भावना थी जो स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ती है। "प्रगतिवादी कहानियां ब्रिटिश शासन की क्रूरता, पुलिस ज्यादतियों और आर्थिक शोषण को सीधे उजागर करती थीं।"[7]

हिंदी कहानी साहित्य का स्वाधीनता आंदोलन में योगदान बहुआयामी और गहन था। सबसे पहले यह जनजागरण का सबसे प्रभावी माध्यम बनी। प्रेमचंद और यशपाल द्वारा ऐसी कहानियां सरल भाषा में लिखी गईं जो ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों तक पहुंचीं और लोगों को अपनी दासता का बोध कराया। दूसरा, यह सामाजिक एकता का संदेश देती थीं। छुआछूत, विधवा विवाह, महिलाओं की दशा और जातीय भेदभाव पर कहानियां लिखकर लेखकों ने उन विभेदों को दूर करने का प्रयास किया जो राष्ट्रीय एकता में बाधक थे। तीसरा, हिंदी कहानी ने स्वदेशी जागरण और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की भावना को प्रोत्साहित किया। कई कहानियों में विदेशी वस्तुओं का विरोध और स्वदेशी वस्तुएं अपनाने का आग्रह स्पष्ट है। चौथा, यह ब्रिटिश शासन की क्रूरता को बेनकाब करती थीं। पुलिस की ज्यादतियां, अदालतों का पक्षपात, लगान की जबड़न वसूली और आर्थिक शोषण का चित्रण बार-बार आया। पांचवां, हिंदी कहानी ने महिलाओं को भी स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। "कई कहानियों में नारी पात्र मजबूत, संघर्षशील और राष्ट्रभक्त दिखाए गए।"[8] अंत में, हिंदी कहानी ने गांधीवादी विचारों जैसे असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह, चरखा और अहिंसा को जन-जन तक पहुंचाया। ''जनमानस में चेतना, जागरूकता और क्रियात्मकता फैलाने का वृहत प्रयास किया।''[9]

हिंदी कहानी साहित्य का यह योगदान इसलिए और महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सीधा राजनीतिक प्रचार नहीं था फिर भी उसने जनमानस पर गहरा और स्थायी प्रभाव डाला। सरस्वती, हंस, माधुरी और अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने इन कहानियों को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुंचाया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी ये कहानियां हमें याद दिलाती हैं कि आजादी केवल राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भी होनी चाहिए। हिंदी कहानी ने स्वाधीनता आंदोलन को एक सांस्कृतिक और वैचारिक आयाम दिया और सिद्ध किया कि कलम कभी-कभी तलवार से अधिक शक्तिशाली होती

है। इस प्रकार हिंदी कहानी साहित्य स्वाधीनता संग्राम का अभिन्न अंग रही और राष्ट्र निर्माण में इसका योगदान अमूल्य है। ये कहानियां आज भी हमें प्रेरित करती हैं कि संघर्ष और जागृति से ही सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

संदर्भ सूची:

1. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन प्रा लि, वर्ष 1975, पृष्ठ - 38

2. गोपाल राय, हिंदी कहानी का इतिहास,भाग 1, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. वर्ष 2008, पृष्ठ 116.

3.गोपाल राय, वहीं, पृष्ठ 134.

4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, आधुनिक हिंदी साहित्य पर विचार, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, वर्ष 1949,पृष्ठ -113.

5. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.वर्ष 1955, पृष्ठ - 48

6. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन इलाहाबाद, वर्ष 1996,पृ 74 .

7.मधुरेश, वहीं, पृष्ठ - 88

8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वर्ष, 1929, पृष्ठ - 373

9. रादरश मिश्र, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली , वर्ष 1985, पृष्ठ - 174 .

"आदर्श समाज' भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के संदर्भ में"

शोधार्थी-वन्दना घोष
स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर

समाज शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई है, यह दो शब्दो के योग से बना है, सम+अज। सम् का अर्थ 'एक साथ' और अज् का अर्थ 'रहना'। यानि एक साथ मिलकर रहना। कुछ विद्वानों का कहना है कि सिर्फ मनुष्यों का समाज नहीं होता हैं बल्कि पशुओं का भी समाज होता है। पशुओं में एकता, समानता तथा साझेदारी को देखकर कहा जाता है,कि पशुओं का भी समाज होता है। पशुओं में सामाजिक संबंधों का ज्ञान नहीं होने के कारण उसमें समाज नहीं होती केवल समूह होती है। समाज तभी कहलाता है, जब उसमें सामाजिक संबंध पाये जाते है, मनुष्यों में वे सामाजिक संबंध पाये जाते है, इसलिए केवल मानव के लिए ही समाज शब्द का प्रयोग किया गया है प्रो0 डेविस तथा सैम्युल कोइंग कहते है कि ''मानव और पशु समाज में पाया जाने वाला शारीरिक अंतर मात्रा का है न कि प्रकार का1 छोटे समूहों को समाज शब्द कहा गया है, जैसे-आर्य समाज, हिन्दु समाज, महिला समाज, धर्म समाज आदि को। व्यक्तियों के छोटे समूह को समाज समझना गलत है, क्योंकि वे सामाजिक संबंधों से जुड़ी हुई नहीं होती है, समूह स्थायी नहीं होती है, और समाज स्थायी होती है, मेला में जमा होने वाले भीड़ हो या रेलगाड़ी में बैठे यात्रियों का समूह को हम समाज नहीं कह सकते हैं।

आदर्श समाज उसे कहते है, जहाँ पर लोगों की समान अधिकार मिले, किसी के साथ भेदभाव नही हो हर व्यक्ति के साथ सही न्याय मिले कानुन हर मनुष्य के लिए बराबर हो सभी में प्रेम, भाईचारा और सहयोग रहे, सभी लोगों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलें जिससे समाज का सही विकास हो। समाज के लोग सच्चाई, ईमानदारी और अच्छे आचरण का पालन करते है।

भारतीय संस्कृति में रामराज्य की कल्पना एक आदर्श राज्य के रूप में की गयी है। रामराज्य में जैसे श्रीराम ने अपने समाज को आदर्श समाज बनाए हुए थे, वैसे ही समाज की आज के आधुनिक युग मे जरूरत है। रामराज्य में मनुष्यों के बीच आपस में बहुत ही प्रेमभाव थे, किसी-से-किसी के प्रति बैर नहीं थे, सभी लोग शांतिपुर्वक जीवन जीते थे, यहाँ तक कि रामायण काल में सबसे वैभवशाली लंका नगरी थी परंतु आदर्श राज्य का गौरव अयोध्या नगरी को ही मिला था, क्योंकि अयोध्या के लोग समाज के लोगों से ज्यादा संतुष्ट थे, तथा उनमें कोई लोभ नहीं था, परन्तु लंका नगरी के लोगों में लोभ ज्यादा थी, और वे वहाँ के लोग असंतुष्ट थे। रामराज्य में सभी लोग निरोग दिखाई देते थे, तथा वृद्ध लोगों के पास मृत्यु भी जल्दी नही आते थे, समय-समय पर वर्षा होती थी पेड़-पौधे हरी-भरी दिखाई पड़ते थे हवा ऐसी चलती थी कि उनका स्पर्श ही शीतल ओर सुखद जान पड़ता था यही नही समाज में श्रीराम के प्रति जो चाह था वह रामायण में कई जगहों पर दिखाई पड़ता है, राजा दशरथ जब अपनी प्रजा के सामने श्रीराम का राज्यभिषेक का प्रस्ताव रखते हुए उनकी राय जानने की इच्छा करते है, तो नगरजनों का श्रीराम के प्रति श्रद्धा अदभुत है-

निखिलेनानुपूर्व्या च पिता पुत्रनिवौरसान।
शुश्रुषन्ते च वः शिष्याः कच्चिद वर्मसु दंशिता।।
इति वः पुरूषव्याघ्र सदा किच्चद रमोऽमिभभाषते।[2]

जिस प्रकार पिता अपने पुत्र का कुशल मंगल पुछते है, उसी प्रकार श्रीराम अपने जनता का हाल समाचार पुछा करते है, इतना ही नहीं नगरवासियों के संकट आने पर वह दुखी भी हो जाते है, और उत्सव आने पर वे पिता के भांति प्रसन्न भी हो जाते है, वे कल्याण करने वाले है, ऐसे देवतुल्य श्रीराम के राज्यभिषेक का संदेश जैसे-जैसे नगरवासियों के बीच पहुँचता था, वे खुशी से झुमने लगते थे, प्रजा का यह मानना था कि श्रीराम हमलोगो के बड़े अनुग्रह है तथा वे ही हमारे राजा बने। आधुनिक भारत में गाँधी जी ने राम के जीवन दर्शन को सम्पुर्ण देश की जीवन दर्शन बनाने की कोशिश की उनका प्रिय भजन था।

रधुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान।[3]

गाँधी जी अंग्रजो से अपनी आजादी के लिए लड़ते समय रामराज्य का आदर्श अपने जनता के सामने रखा और उन्होने कहा कि हमारा आदर्श तो रामराज्य है, जहाँ पर कोई भी व्यक्ति दुखी नहीं है, सारे लोग सुख से रहकर अपना धर्म का पालन करते थे, रामराज्य के आदर्श समाज से प्रेरणा लेकर हमें वैसा ही राज्य को स्थापित करने की आवश्यकता है इसी से सम्पुर्ण जगत का कल्याण होगा। वर्त्तमान समाज वह समाज है जिसमें हम जीवन बीता रहे है आज के समाज और पहले के समाज दोनो में काफी अंतर है। हम मान सकते है कि आज के आधुनिक समाज पहले की तुलना में काफी बदल गये है। लेकिन इसके साथ-साथ बहुत सारी समस्याएँ भी हो गयी है। जिससे लोगो की जीवन शैली भी काफी प्रभावित हो गयी है। अभी के समाज में इंटरनेट, मोबाईल, कम्प्यूटर आदि तकनीकों से लोगो के कामों को काफी आसान बना दिया है। शिक्षा के क्षेत्र को काफी विस्तार किया गया है, शिक्षा केवल पढ़ने-लिखने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को चरित्र, ज्ञान, सोच को विकसित करती है, जिससे वह अपने अधिकारो और कर्त्तव्यों को समझता है और सही गलत का निर्णय लेने से सक्षम होता है। आज शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की शिक्षा पर विशेष महत्व दिया जा रहा है, महिलाओं की शिक्षा से परिवार, समाज तथा देश का विकास होता है। आज हमारी सरकार भी महिलाओं की शिक्षा के लिए कई तरह की योजनाएँ चला रहे है। महिलाएँ शिक्षित होने से समाज में बहुत ही सुधार हुआ है, शिक्षित महिलाएँ नौकरी करके आर्थिक रूप से मजबूत होती है, जिससे उनकी परिवार की स्थिति भी अच्छी रहती है एक शिक्षित माँ ही अपने बच्चों को पढ़ाई के महत्व को समझाती है, और उन्हें भी शिक्षित करती है। इसलिए महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान देना अति आवश्यक है। समाज में अच्छाई के साथ-साथ बुराईयों और समस्याओं से भी प्रभावित हो रही है। सबसे पहले परिवार को ही देखा जाए तो अब परिवार संयुक्त की जगह एकल परिवार में लोग जीना पसंद करते है, यहाँ तक कि अपने माता-पिता को भी अपने साथ रखना नहीं चाहते और उनकी देखरेख भी नहीं करना चाहते है। आज समाज में भ्रष्टाचार बहुत ही ज्यादा हो गयी है, हर क्षेत्र में घुसखोरी होती है, लोग अपने स्वार्थ के लिए गलत तरीके से धन कमाना जान गये है जिससे समाज में असमानता और और अन्याय बढ़ते जा रहा है। आज महिलायें भले ही शिक्षित हो रही है, पर उनके साथ हो रही हिंसा पर रोक नहीं है। महिलाओं को अपने ही घर में ही शारीरिक और मानसिक हिंसा का सामना करना पड़ता है, और घर से बाहर भी आये दिन उनके साथ अपराध होते रहते है। वे कही भी सुरक्षित नहीं है, इन अपराधों को रोकने के लिए सही कानून, जागरूकता, और महिलाओं के प्रति सम्मान की आवश्यकता है, तभी वह सुरक्षित रह पायेगी। वर्त्तमान समाज में बढ़ती जनसंख्या के कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है। काम की कमी के कारण आज की युवा परेशान है।

छोटे-छोटे बच्चे भी बालश्रम, चोरी डकैती जैसी अपराध की ओर बढ़ रहे है। समाज में लोग व्यवहारिकता तथा नैतिक मुल्यों को भुलते जा रहे है। आज नैतिक मूल्यों के अभाव में परिवार और समाज दोनो बिखर रहे है, मानव जीवन के लिए नैतिक मूल्यों की बहुत ही आवश्यकता है, ताकि वह अपने परिवार के साथ-साथ समाज को भी सुधार सकें। मैकावर एवं पेज जैसे समाजशास्त्री ने कहा है-'' नैतिकता का तात्पर्य नियमों की उस व्यवस्था से है, जिसके द्वारा व्यक्ति का अन्तः करण अच्छे और बुरे का बोध प्राप्त करता है।[4]

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है, सोचने का मनुष्य में एक अलग ही गुण होता है, इसलिए वह पशुओं से अलग होता है। अरस्तु ने इसे विवेकशील प्राणी भी कहा है, मनुष्य में अधिक बुद्धि होने के कारण वह जानने की कोशिश करता है कि विश्व क्या है, तथा इसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? आत्मा क्या है ? जीव क्या है ? व्यक्ति और समाज में क्या सम्बन्ध है आदि दर्शन इन सभी प्रश्नों को उत्तर देते है। भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषता व्यावहरिकता है। जब मानव सभी प्रकार के दुखों से घिरे रहते है, तब वे दर्शन को अपनाते है। प्रो0 मैक्समूलर की ये पंक्तियाँ इन कथन की पुष्टि करती है-'' भारत में दर्शन का अध्ययन मात्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं वरन् जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है।5 भारतीय दर्शन आध्यात्मिक ज्ञान पर ज्यादा जोर देते है, भारत में दर्शन को दो भागों में बॉटा गया है। आस्तिक और नास्तिक । जो वेद के प्रमाण पर विश्वास करता है, उसे आस्तिक दर्शन और जो वेद के प्रमाण को नहीं विश्वास करता है, उसे नास्तिक दर्शन कहते है। भारतीय दर्शन में छः दर्शनों का आस्तिक दर्शन कहा गया है, जैसे-न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त । इसे 'षड्दर्शन' भी कहा गया है। नास्तिक दर्शन में चार्वक, बौद्ध और जैन आते है, ये वेद को नहीं मानते बल्कि निन्दा करते हैं। इसलिए इसे नास्तिक दर्शन कहा गया है। भारतीय दर्शन में केवल ईश्वर, आत्मा, मोक्ष आदि की चर्चा ही नहीं बल्कि समाज की व्यवस्था, नैतिकता, और मानव जीवन के कत्तव्यों पर भी ध्यान दिया गया है। भारतीय दार्शनिक के अनुसार मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। समाज व्यक्तियों का ऐसा समूह है, जिसमें लोग आपस में प्रेम, सहयोग कर्त्तव्य और नैतिक नियमों के आधार पर रहते है। कोई भी मनुष्य अकेले रह ही नहीं पाते, उन्हें परिवार, समाज और राष्ट्र की बहुत आवश्यकता है। भारतीय दर्शन के अनुसार समाज की व्यवस्था धर्म से जुड़ी रहनी चाहिए। यानि सत्य बोलना, न्याय करना, दया, करूणा आदि पर ध्यान देना किसी के साथ हिंसा नहीं करना अपने कत्तव्यों का का पालन सही तरीके से करना तब समाज ठीक ढंग से चलेगा व्यक्ति और समाज दोनो एक दूसरे के पूरक होते है। भारतीय दर्शन का मुख्य उद्देश्य है - ''सर्वे भवन्तु सुखिन'' सभी लोग सुखी हो और सबका कल्याण हो। समाज में लोगो को आपस में सहयोग के साथ रहने की प्रेरणा दी गई है। जहाँ धर्म, नैतिकता, न्याय हो उसे आदर्श समाज कहा जाता है। आदर्श समाज की चर्चा रामराज्य में की गयी है। जिसका वर्णन रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने की है। रामराज्य में सभी जनता अपना सुखी और शांतिपूर्वक जीवन जीते थे। भारतीय दर्शन में नैतिक मूल्य पर भी अधिक महत्व दिया गया है। मनुष्य को सत्य का पालन करना जिससे समाज में विश्वास बना रहे किसी प्राणी के मन, वचन और कर्म से कष्ट न देना ही अहिंसा कहलाती है। जीवन के हर कार्य को सच्चाई और ईमानदारी से करने से ही व्यक्ति को समाज में सम्मान मिलता है। सभी जीवों के प्रति दया, करूणा रखना भी नैतिक गुण है। व्यक्ति अपने क्रोध, लोभ को अपने नियंत्रण में रखना भी नैतिक गुण में आते है। नैतिक मूल्यों से मनुष्य का चरित्र अच्छा रहता है और समाज में शांति और सहयोग की भावना बनी रहती है। रामायण में भगवान श्रीराम का चरित्र नैतिकता का सबसे बड़ा उदाहरण है। वे अपने जीवन में सत्य, धर्म और कर्त्तव्य का पालन करते हुए कई प्रकार का कठिनाई का सामना किया, उनका कहना यह है कि सत्य और धर्म का पालन करना ही सबसे बड़ा धर्म है, चाहे परिस्थिति कितनी भी कठिन क्यो न हो।

पतंजलि योग दर्शन के प्रणेता है। योग के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। योग दर्शन सांख्य की तरह

द्वैतवादी है। सांख्य और योग दोनो में निकटता का सम्बन्ध है। सांख्य भी योग की तरह तीन प्रकार के दुःखों को मानते है। योग दर्शन में आत्म-ज्ञान को अपनाने के लिए योगाभ्यास की व्याख्या हुई है। योग दर्शन में योग का उद्देश्य है-मन को शुद्ध और स्थिर करना, आत्मा का सही ज्ञान प्राप्त करना, मोक्ष की प्राप्ति करना आदि। पतंजलि ने योग के आठ अंग बताएँ है जिन्हे अष्टांग मार्ग कहते है। योग सांख्य की तरह बन्धन का कारण अविवेक को मानता है, सांख्य का कहना है कि प्रकृति और पुरूष दोनो को ज्ञान नहीं रहने के कारण वह बन्धन में पड़ जाता है। मोक्ष को अपनाने के लिए तत्वज्ञान की जरूरत होती है, और बिना चित्त विकारों को हटाये तत्व-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं। योग दर्शन में मन को शुद्ध करने के लिए योग-मार्ग की व्याख्या की गयी है। योग मार्ग को अष्टांग मार्ग कहा गया है जो इस प्रकार है-

1. यम- यम को नैतिक नियम कहते है, ये पाँच प्रकार के होते है, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रहाचर्य, अपिरग्रह।
2. नियम- नियम योग का दुसरा अंग है, इसे व्यक्तिगत अनुशासन भी कहा गया है। ये भी पाँच तरह के होते है- शौच, सन्तोष तपस, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान।
3. आसन- आसन का अर्थ है, शरीर को स्थिर रखना। आसन के समय शरीर को नहीं हिलाना तथा मन को चंचल रखना नहीं चाहिए। तन मन दोनो को स्थिर रखना पड़ता है।
4. प्राणायाम - प्राणायाम योग का चौथा अंग है। इसमें श्वास प्रक्रिया को नियंन्त्रित किया जाता है और उसे संतुलित किया जाता है।
5. प्रत्याहार - प्रत्याहार का अर्थ है, इन्द्रियाँ को वश में रखना, प्रत्याहार को अपनाना बहुत ही कठिन है। बहुत प्रयास और दृढ़ संकल्प के द्वारा ही प्रत्याहार को अपनाया जा सकता है।
6. धारणा - मन को किसी एक विषय पर स्थिर करना वह विषय बाह्य एवं आंतरिक दोनो हो सकती है। इस अवस्था को जो प्राप्त कर लेता है, वे ध्यान के योग्य हो जाते है।
7. ध्यान - ध्यान का अर्थ है, मनुष्यों को सभी विषयों से एकाग्र होकर मन को शांत रखना।
8. समाधि - समाधि योग का अन्तिम चरण है। ध्यान की यह अवस्था जिसमें मन पूरी तरह शांत होकर परम सत्य में लीन हो जाता हैं। अष्टांग योग का पालन करने से मन का विकार नष्ट हो जाता है। और मोक्ष की प्राप्ति होती है। हिन्दु संस्कृति में पुरूषार्थ का महत्व होता है विवेकशील प्राणी का लक्ष्य। जो पुरूषार्थ को अपनाता है, उसे परमात्मा से दर्शन होता है। हिन्दू धर्म के अनुसार पुरूषार्थ चार तरह के होते है- धर्म, अर्थ काम और मोक्ष जिसमें तीन की प्राप्ति इसी जीवन में है और चौथा मृत्यु के बाद होता है। पुरूषार्थ का पहला स्थान धर्म का होता है। धर्म के अनुसार मनुष्य को अच्छे कार्य करनी चाहिए। महाभारत के अनुसार धर्म वही है जो किसी को कष्ट नहीं देता। मनु के अनसार ''जो व्यक्ति धर्म का सम्मान करता है धर्म उस व्यक्ति की सदैव रक्षा करता है।''6 व्यक्ति समाज में रहकर अनेक प्रकार के कार्य करते है। जिसमें धर्म सामाजिक आचरण को एक सकारात्मक रूप देता है। भारतीय संस्कृति में अर्थ का क्या महत्व है, जीवन यापन करने के लिए धन की आवश्यकता होती है, धन को कमाना आवश्यक होती है, बिना धन को कोई भी कार्य नहीं होता है। अच्छे कर्म से कमाये गये धन से जीवन में किसी भी प्रकार के कष्ट नहीं होते है। अर्थ के आभाव में प्रगति नहीं हो सकती है। शुक्राचार्य नीति में महर्षि कहते है -

धर्मश्च कामश्च मोक्षश्चापि भवेत्राणाम।
शास्त्रास्त्राभ्याँ बिना शौर्य गार्हस्थ्यं तु स्त्रियं बिना।।[7]

यानि ''जैसे शास्त्रास्य के बिना शूरता नही सफल हो सकती, जैसे स्त्री के बिना गृहस्थी नहीं निभ सकता, वैसे ही अर्थ के बिना धर्म और मोक्ष दोनो ही सिद्ध नहीं हो सकते।''

पुरूषार्थ का तीसरा स्थान काम शास्त्र का है, भारतीय संस्कृति में काम का बडा ही महत्व है। विषय और इन्द्रियों के संपर्क से उत्पन्न होने वाला मानसिक आनंद को 'काम' कहते है। काम प्रकृति पुरूष का मिलन से लेकर दाम्पत्य जीवन को बसाने तक चली आ रही है। मनुष्य के जीवन में काम उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना धर्म और अर्थ का। भूख, नींद, भय एवं काम मनुष्य और पशु दोनों में बराबर पाये जाते है। मनुष्य सामाजिक और विवेकशील प्राणी होने के कारण प्रत्येक कार्य बुद्धि की सहायता से करता है, मनुष्य का काम संबंध नियत्रित होता है। समाज में विवाह के द्वारा स्त्री- पुरूष के संबंध को स्थायी सभ्य और सुसंस्कृत रूप दिया गया है। मोक्ष पुरूषार्थ का चौथा रूप है। भारतीय दर्शन में मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। मोक्षावस्था में संसार के दुःखों का नाश हो जाता है। कुमारिल का कथन है-कि ''यदि मोक्ष का आनन्द-रूप माना जाय तो वह स्वर्ग के तुल्य होगा तथा नश्वर होगा।8 मोक्ष को चार्वाक स्वीकार नहीं करता है। मोक्ष का अर्थ है, दुःख, विनाश। कुछ दार्शनिको का कहना है कि मोक्ष की प्राप्ति जीवन काल में ही संभव है और कुछ का कहना है कि मोक्ष मृत्यु के बाद होता है। चार्वक का कहना है कि -''मरण मेवापवर्ग कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति मृत्यु की कामना नहीं कर सकता है अतः मोक्ष को पुरूषार्थ कहना गलत है।''9 यदि हमें अपने देश, परिवार तथा समाज को आगे बढ़ाना है तो अपने पुरूषार्थ पर विश्वास करें। दूसरों पर आश्रित रहने की प्रवृति को त्यागे उनका यह निश्चय ही उन्हें कठिनाइयों को दूर करने में बल प्रदान करेगा। गीता में श्रीकृष्ण ने सच ही कहा है-

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचनः''10

अर्थात, कर्म का मार्ग पुरूषार्थ का मार्ग हैं धैर्यपुर्वक अपने मार्ग पर अडिग रहना ही पुरूषार्थ को दर्शाता है। पुरूषार्थी मनुष्य ही जीवन में यश प्राप्त करता है। वह अपने आप को नहीं बल्कि परिवार, समाज और देश को गौरवान्वित करता है।

वर्ण व्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज की एक सामाजिक व्यवस्था थी, जिसमें लोगों को उनके काम और गुणों के आधार पर अलग-अलग वर्गो में बॉट दिया है। इसे चार भागों में बॉटा गया है।

1. ब्राह्मण वर्ण:- धार्मिक ग्रंथों में ब्र्राह्मण वर्ण मे अनेक कार्य करने होते है, जैसे अध्ययन करना और अध्यापन करवाना, यज्ञ करवाना, दान देना, और लेना इत्यादि। ब्राह्मण अपना ज्ञान समाज के लोगो तक पहुँचाते है। ब्राह्मण को सभी वर्णो में ऊँचा स्थान मिलता है। हिन्दु परिवारों में आज भी पुजा-पाठ, शादी- विवाह आदि धार्मिक कार्यो पर ब्राह्मण को ही आमंत्रित किया जाता है।

2. क्षत्रिय वर्ण:- हिन्दु समाज में ब्राह्मण के बाद क्षत्रियों का ही स्थान है। क्षत्रिय का कार्य है, हथियार धारण करके जनता की रक्षा करना। मनुस्मृति के अनुसार-'' क्षत्रिय की जीविका का मुख्य साधन शस्त्रास्त्र धारण करना है।11- क्षत्रिय दो मुख्य कार्य होते है, पहला अपने प्रजा की रक्षा करना, दूसरा प्रजा के भरण-पोषण की व्यवस्था करना।

3. वैश्य वर्ण:- वैश्य वर्ण का मुख्य कार्य खेती करना, पशुपालन करना, व्यापार आदि करना तथा यही उसकी जीविका के साधन भी थे। इन सभी के अतिरिक्त वैश्य को नैतिक नियमों का पालन भी करना होता है।

4. शूद्र वर्ण:- वर्ण व्यवस्था में सबसे निचला स्थान शूद्रों का था। शूद्रों का काम तीनो वर्णो के सेवक के रूप में कार्य करना होता है। इसके अलावे उनके कुछ व्यवसाय भी है काष्ठ निर्मित मूर्त्ति आदि बनाने से वे अपने परिवार का भरण-पोषण अच्छी तरह से कर लेते है।

वर्णाश्रम का मतलब हर इंसान अपनी क्षमता के अनुसार काम करता है। भारतीय संस्कृति पूर्णतः अध्यात्मिक है। संत श्री अरविंद कहते है,'' भारतीय संस्कृति आज भी जागृत है।'' इसकी दीप-शिखा अखण्ड रूप से प्रज्जवलित होकर मानव जगत का पथ-प्रदर्शन करती आयी है, एवं भविष्य में करती रहेगी। श्री अरविंद अपनी भाव प्रकट करते है-'' भारतीय संस्कृति भिन्न अवश्य है पर हीन नहीं, बल्कि उसके उद्देश्य की अनुपम उच्चता और इसके प्रयास की आध्यात्मिक महानता के रूप में इसमें उत्कृष्टता का एक विलक्षण तत्व विद्यमान है।''12 भारतीय संस्कृति का आधार धर्म और अध्यात्म है। यहाँ पर सत्य, अहिंसा, दया, करूणा जैसे नैतिक नियमों को बहुत जोर दिया गया है। भारतीय संस्कृति में कर्म और पुरूषार्थ पर विश्वास रखकर व्यक्ति अपना जीवन सफल बनाते है। तथा यहाँ पर मेहमान को भगवान का दर्जा दिया जाता है। अतिथि देवो भवः भारतीय संस्कृति की खास पहचान है। भारतीय दर्शन और पश्चिमी दर्शन दोनो कई तरह की भिन्नताएँ है,- भारतीय दर्शन व्यवहारिक है। प्रो0 मैक्समूलर की ये पंक्तियाँ इस कथन की पुष्टि करती है -''भारत में दर्शन का अध्ययन मात्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं, वरन जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है।''13 इसके विपरीत पश्चिमी दर्शन सैद्धान्तिक है। इसका आरंभ उत्सुकता से हुआ है। वहाँ का दार्शनिक अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए विश्व, ईश्वर और आत्मा के संबंध में सोचने के लिए प्रेरित हुआ है। पश्चिमी दर्शन को वैज्ञानिक कहा जाता है, वहाँ के दार्शनिक चरम सत्ता की व्याख्या के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया है। भारतीय दर्शन अध्यात्मिक ज्ञान को मानता है, ये सत्य की अनुभूति पर जोर देता है। अध्यात्मिक ज्ञान तार्किक ज्ञान से ऊँचा है।

इस तरह हम देखते है कि भारतीय दर्शन और संस्कृति में 'आदर्श समाज की स्थापना हेतु अनेक नैतिक मूल्यों को स्वीकार्य करने की बात की गई है। बौद्ध और जैन दर्शन में पंचशील, सांख्य योग में अष्टांगिक योग हिन्दू दर्शन में समाज को व्यवस्थित करने के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था एव मानव के जीवन को एक व्यवस्थित लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए पुरूषार्थ को स्वीकार किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता प्रो0 एम0 एल0 एवं शर्मा डी0 डी0, समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2018 पृ0-111
2. कुमार राजेश सिंह, श्रीराम एवं उनका सामाजिक आदर्श, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2013, पृ0-101
3. कुमार राजेश सिंह, श्रीराम एवं उनका सामाजिक आदर्श, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2013, पृ0-103
4. यादव संजू, सुंसस्कार एवं सदगुण एक सामाजिक दृष्टिकोण, आर्यन पब्लिकेशन दिल्ली, 2019, पृ0-63
5. सिन्हा प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली, 1ेज मक.1963ए पृ0-03
6. मिश्रा संजीव, भारतीय दर्शन और जीवन के चार पुरूषार्थ, अभय पब्लिकेशन, दिल्ली-2018, पृ0-59।
7. मिश्रा संजीव, भारतीय दर्शन और जीवन के चार पुरूषार्थ, अभय पब्लिकेशन, दिल्ली-2018, पृ0-179।
8. सिन्हा प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1963ए पृ0-292
9. सिन्हा प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1963ए पृ0-93

10. मिश्रा संजीव, भारतीय दर्शन और जीवन के चार पुरूषार्थ, अभय पब्लिकेशन, दिल्ली-2018, पृ0-88।

11. गर्ग राकेश एवं कुमार हरीश, आधुनिक समाज एवं संस्कृति, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2019, पृ0-38

12. अरविंद श्री, भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविंद आश्रम प्रकाशन विभाग, पाँण्डिचेरी, 2017, पृ0-61

13. सिन्हा प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1963ए पृ0-03

दलित उत्कर्ष में रामविलास पासवान का योगदान: *एक समग्र अध्ययन*

सुधीर कुमार
(शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, मुज़फ़्फ़रपुर)

सारांश

रामविलास पासवान (1946-2020) भारतीय राजनीति के उन विरल व्यक्तित्वों में से एक थे, जिन्होंने दलित समुदाय के उत्थान को अपने जीवन का केंद्रीय लक्ष्य बनाया। यह शोध पत्र उनके बहुआयामी योगदान का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है संसदीय संघर्ष, सामाजिक न्याय की वकालत, आर्थिक समावेशन की नीतियाँ, और दलित राजनीतिक चेतना के निर्माण में उनकी अग्रणी भूमिका। शोध में दस्तावेजी विश्लेषण, संसदीय अभिलेखागार, और द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। निष्कर्ष दर्शाता है कि पासवान ने संविधानिक ढाँचे के भीतर रहकर दलित अधिकारों की दीर्घकालिक लड़ाई लड़ी और भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अधिक समावेशी बनाने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

मुख्य शब्द: रामविलास पासवान, दलित उत्कर्ष, अनुसूचित जाति, आरक्षण, सामाजिक न्याय, राजनीतिक सशक्तिकरण, लोक जनशक्ति पार्टी

1. प्रस्तावना

भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी हैं कि स्वतंत्रता के सात दशक बाद भी दलित समुदाय पूर्ण सामाजिक और आर्थिक समानता से वंचित है। ऐसे संदर्भ में रामविलास पासवान का जीवन और कार्य एक प्रेरणादायक अध्याय के रूप में उभरता है। बिहार के खगड़िया जिले के एक साधारण दलित परिवार में जन्मे पासवान ने अपने राजनीतिक जीवन में सदा वंचित वर्गों की आवाज़ उठाई (Kumar, 2015)।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के बाद दलित राजनीति में जो वैचारिक रिक्तता उत्पन्न हुई, उसे भरने में पासवान की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन्होंने संसदीय लोकतंत्र को दलित अधिकारों के संघर्ष का मंच बनाया। वर्ष 1969 में पहली बार बिहार विधानसभा में निर्वाचित होने से लेकर 2020 में अपने निधन तक, पासवान ने पाँच दशकों से अधिक समय तक भारतीय राजनीति में सक्रिय रहकर दलित समाज के लिए संघर्ष किया (Jha, 2018)।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य रामविलास पासवान के बहुआयामी योगदान का व्यवस्थित एवं समालोचनात्मक मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन उनकी राजनीतिक यात्रा, नीतिगत हस्तक्षेपों, सामाजिक सक्रियता, और दलित राजनीतिक चेतना के निर्माण में उनकी भूमिका को रेखांकित करता है।

2. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: दलित आंदोलन और पासवान

स्वतंत्रता पूर्व काल में डॉ. भीमराव आंबेडकर ने दलित अधिकारों के लिए जो संघर्ष किया, वह भारतीय संविधान में संरक्षित हुआ। अनुच्छेद 15, 16, 17 और 46 दलित समुदाय को विशेष संरक्षण प्रदान करते हैं। परंतु संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद व्यावहारिक धरातल पर दलितों की स्थिति दशकों तक दयनीय बनी रही (Ambedkar, 1979)।

1960-70 के दशक में उत्तर भारत में दलित राजनीति नई करवट ले रही थी। बिहार में जगजीवन राम के नेतृत्व में दलित नेताओं की एक नई पीढ़ी उभर रही थी। इसी परिवेश में पासवान का राजनीतिक उदय हुआ। समाजवादी धाराओं से प्रभावित पासवान ने शुरू से ही जाति-आधारित भेदभाव के विरुद्ध एक स्पष्ट और प्रखर स्वर विकसित किया (Singh, 2019) ।

1974 के जेपी आंदोलन में उनकी भागीदारी ने उनकी राजनीतिक दृष्टि को व्यापक आधार दिया। आपातकाल (1975-77) के विरोध में जेल जाने वाले पासवान ने लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता सिद्ध की। 1977 में हाजीपुर से लोकसभा में उनका प्रचंड जनादेश के साथ चुना जाना उनकी लोकप्रियता का प्रमाण था (Gupta, 2016) ।

3. संसदीय संघर्ष और राजनीतिक योगदान

3.1 संसदीय जीवन की उपलब्धियाँ

पासवान का संसदीय जीवन भारतीय लोकतंत्र में एक कीर्तिमान है। वे हाजीपुर संसदीय क्षेत्र से आठ बार लोकसभा सांसद रहे। 1977 में उन्होंने हाजीपुर से 4,24,592 मतों के अंतर से जीत दर्ज की, जो उस समय का रिकॉर्ड था (Election Commission of India, 1977)। इस रिकॉर्ड ने न केवल उनकी व्यक्तिगत लोकप्रियता बल्कि दलित समुदाय की बढ़ती राजनीतिक शक्ति को भी रेखांकित किया।

संसद में पासवान ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को पारित कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अधिनियम का उद्देश्य दलितों और आदिवासियों के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों को रोकना और पीड़ितों को न्याय दिलाना था। पासवान ने संसद में इस विधेयक पर की गई बहस में तर्कपूर्ण और भावपूर्ण दोनों तरह की बातें कहीं (Paswan, 1989, संसदीय वाद-विवाद)।

3.2 लोक जनशक्ति पार्टी की स्थापना

वर्ष 2000 में रामविलास पासवान ने लोक जनशक्ति पार्टी (लोजपा) की स्थापना की। यह केवल एक नए राजनीतिक दल का उदय नहीं था, बल्कि यह दलित राजनीतिक स्वायत्तता की एक नई घोषणा थी। लोजपा ने बिहार और राष्ट्रीय राजनीति में दलित हितों के लिए एक सौदेबाज शक्ति (Bargaining Power) के रूप में काम किया (Verma, 2004)।

पासवान की राजनीतिक रणनीति को कभी-कभी अवसरवादी कहा जाता है क्योंकि उन्होंने विभिन्न गठबंधनों में भाग लिया। परंतु उनके समर्थकों का तर्क है कि सत्ता की भागीदारी के बिना दलित हितों की रक्षा संभव नहीं। राजनीतिक विद्वान क्रिस्टोफ जाफ्रलो (Jaffrelot, 2003) के अनुसार पासवान ने 'pragmatic dalit politics' का एक नया मॉडल

विकसित किया जो आदर्शवाद और व्यावहारिकता का संयोजन था।

4. नीतिगत हस्तक्षेप और प्रशासनिक सुधार

4.1 आरक्षण नीति और उसका विस्तार

रामविलास पासवान ने केंद्र सरकार में कई महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों का नेतृत्व किया और इन पदों का उपयोग दलित समुदाय के हित में नीतियाँ बनाने के लिए किया। श्रम मंत्री के रूप में (1989-90) उन्होंने असंगठित क्षेत्र के कामगारों, जिनमें बड़ी संख्या में दलित थे, के अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयास किए (Ministry of Labour, Annual Report 1990)।

उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्री (2004-14) के रूप में पासवान ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) को सुदृढ़ बनाने की दिशा में काम किया। BPL (गरीबी रेखा से नीचे) परिवारों, जिनमें दलित परिवारों की बड़ी संख्या है, को सब्सिडी पर अनाज उपलब्ध कराने की व्यवस्था को मजबूत किया गया (Ministry of Consumer Affairs, 2010)।

4.2 निजी क्षेत्र में आरक्षण की माँग

पासवान वे नेताओं में से थे जिन्होंने निजी क्षेत्र में आरक्षण की माँग सबसे पहले और सबसे जोरदार तरीके से उठाई। उनका तर्क था कि उदारीकरण के बाद सरकारी नौकरियाँ सिकुड़ रही हैं और निजी क्षेत्र में दलितों का प्रतिनिधित्व नगण्य है। इस मुद्दे पर उन्होंने 2004-2009 के यूपीए शासनकाल में सरकार पर लगातार दबाव बनाए रखा (Throat & Newman, 2010)।

हालाँकि निजी क्षेत्र में आरक्षण का यह प्रयास अंततः सफल नहीं हो सका, परंतु इस बहस को राष्ट्रीय विमर्श में स्थान दिलाने का श्रेय पासवान को जाता है। Throat और Newman (2010) के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि निजी नियोक्ता अक्सर दलित आवेदकों को समान योग्यता होने पर भी नहीं चुनते, और यही वह भेदभाव है जिसे पासवान उजागर करना चाहते थे।

5. सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष

5.1 दलित अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष

1997 का लक्ष्मणपुर बाथे नरसंहार (बिहार) भारत के सबसे क्रूर दलित नरसंहारों में से एक था, जिसमें 58 दलित मारे गए थे। पासवान ने इस घटना पर संसद में न केवल शोक व्यक्त किया बल्कि सरकार से कठोर कार्रवाई की माँग की। उन्होंने दलित अत्याचार निवारण अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए निरंतर दबाव बनाए रखा (NHRC Report, 1998)।

पासवान का यह मानना था कि कानून बनाना पर्याप्त नहीं, उसे लागू करना आवश्यक है। उन्होंने बार-बार यह प्रश्न उठाया कि दलित अत्याचारों में दोषियों को सजा दिलाने की दर इतनी कम क्यों है। राष्ट्रीय अपराध अनुसंधान ब्यूरो

(NCRB) के आँकड़े भी यही दर्शाते हैं कि दलित उत्पीड़न के मामलों में सजा दर अत्यंत कम रही है (NCRB, 2015)।

5.2 मंदिर प्रवेश और सामाजिक समानता

पासवान ने सामाजिक समानता के प्रश्न पर भी निडरता से अपने विचार रखे। उन्होंने दलितों को मंदिरों में प्रवेश न दिए जाने की प्रथा का विरोध किया और इसे संविधान के अनुच्छेद 17 (अस्पृश्यता उन्मूलन) का उल्लंघन बताया। उनका मानना था कि धार्मिक स्थलों पर भेदभाव सामाजिक न्याय की मूल अवधारणा के विरुद्ध है (Moved, 2006)।

6. आर्थिक समावेशन और दलित सशक्तिकरण

पासवान का यह स्पष्ट मत था कि आर्थिक समावेशन के बिना सामाजिक न्याय अधूरा है। उन्होंने 'दलित पूँजीवाद' (Dalit Capitalism) की अवधारणा को बढ़ावा दिया और दलित उद्यमियों को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न मंचों पर आवाज़ उठाई। DICCI (Dalit Indian Chamber of Commerce and Industry) की स्थापना में उनकी नैतिक समर्थन की भूमिका रही (Ilaiah, 2009)।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के माध्यम से उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक समावेशन की दिशा में काम किया। PDS के तहत BPL परिवारों को सब्सिडी पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने की व्यवस्था में जो सुधार हुए, उनसे मुख्यतः दलित और अन्य कमज़ोर वर्गों को लाभ पहुँचा। NSSO (2011-12) के अनुसार इस काल में SC परिवारों में खाद्य असुरक्षा में कुछ कमी दर्ज की गई (NSSO, 2013)।

7. दलित राजनीतिक चेतना का निर्माण

पासवान की सबसे बड़ी उपलब्धि शायद यह रही कि उन्होंने दलित समुदाय में यह विश्वास जगाया कि वे न केवल मतदाता हैं बल्कि सत्ता के भागीदार भी हो सकते हैं। 1977 के चुनाव में उनकी ऐतिहासिक जीत ने बिहार और उत्तर भारत के दलित युवाओं में एक नई राजनीतिक चेतना का संचार किया (Yadav, 2000)।

उन्होंने दलित राजनीति को अस्मिता (Identity) से जोड़ा और यह स्थापित किया कि जाति-आधारित राजनीतिक लामबंदी न केवल जायज़ है बल्कि आवश्यक भी है। Jaffrelot (2003) इसे 'silent revolution' — जातिगत उलटफेर — का हिस्सा मानते हैं, जिसमें पासवान जैसे नेताओं ने OBC और SC वर्गों को राजनीतिक शक्ति दिलाने में अहम भूमिका निभाई।

पासवान ने अपने भाषणों और साक्षात्कारों में बार-बार आंबेडकर की विरासत का उल्लेख किया और दलित युवाओं को शिक्षा, संगठन और संघर्ष के तीन सूत्रों पर चलने की प्रेरणा दी। उनकी सरल भाषा और प्रत्यक्ष शैली ने उन्हें जनता से जोड़े रखा (Kumar, 2015)।

8. समालोचनात्मक मूल्यांकन

एक संतुलित शोध के लिए यह आवश्यक है कि हम पासवान की आलोचनाओं को भी सामने रखें। कुछ विद्वानों

और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने उन पर आरोप लगाया है कि वे दलित हितों की तुलना में अपनी राजनीतिक जगह बनाए रखने को प्राथमिकता देते थे। विभिन्न विचारधाराओं की सरकारों में बिना किसी स्पष्ट वैचारिक आधार के शामिल होने को अवसरवाद कहा गया (Pai, 2002)।

दलित आंदोलन के कुछ कट्टरपंथी धड़े उन पर यह आरोप भी लगाते हैं कि उन्होंने दलित राजनीति को मुख्यधारा की सत्ता-राजनीति का सहयात्री बना दिया, जिससे व्यवस्था-परिवर्तन की संभावना कमज़ोर हुई (Guru, 2009)। परंतु पासवान के समर्थक इस आलोचना को अव्यावहारिक मानते हैं और कहते हैं कि सत्ता-संरचना से बाहर रहकर बदलाव लाना संभव नहीं।

इस शोध का मत है कि पासवान की सीमाएँ उन संरचनात्मक बाधाओं की भी उपज थीं जो भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में दलित नेताओं के सामने खड़ी रहती हैं। उनका समग्र योगदान उनकी व्यक्तिगत सीमाओं से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

9. निष्कर्ष

रामविलास पासवान का जीवन और कार्य भारतीय लोकतंत्र की उस क्षमता का प्रमाण है जो वंचित वर्गों को राजनीतिक शक्ति का भागीदार बनाती है। पाँच दशकों से अधिक के अपने सार्वजनिक जीवन में उन्होंने दलित समुदाय के लिए संसद से सड़क तक संघर्ष किया। उनकी विरासत केवल कानूनों और नीतियों में नहीं, बल्कि उस राजनीतिक चेतना में भी है जो उन्होंने लाखों दलितों में जगाई।

अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम को मजबूत कराने, सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार, आरक्षण के विस्तार की माँग, निजी क्षेत्र में समानता का प्रश्न उठाने और दलित राजनीतिक संगठन खड़ा करने जैसे उनके कार्य भारतीय दलित इतिहास में स्थायी महत्त्व रखते हैं।

अंत में, पासवान का जीवन यह संदेश देता है कि संवैधानिक प्रावधान और राजनीतिक इच्छाशक्ति मिलकर सामाजिक परिवर्तन ला सकती है। उनका स्मरण उन सभी लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत है जो एक समतामूलक भारत का स्वप्न देखते हैं।

संदर्भ

Ambedkar, B. R. (1979). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches (Vol. 1). Education Department, Government of Maharashtra.

Election Commission of India. (1977). Statistical Report on General Elections to the House of the People. New Delhi: ECI.

Gupta, D. (2016). Caste, Dalit Politics and Social Change in Bihar. New Delhi: Rawat Publications.

Guru, G. (2009). Humiliation: Claims and Context. New Delhi: Oxford University Press.

Ilaiah, K. (2009). Post-Hindu India: A Discourse in Dalit-Bahujan, Socio-Spiritual and Scientific Revolution. New Delhi: SAGE Publications.

Jaffrelot, C. (2003). India's Silent Revolution: The Rise of the Lower Castes in North India. London: Hurst &

Company.

Jha, S. (2018). Ram Vilas Paswan: The Political Journey of a Dalit Leader. Patna: Bihar Granth Kutir.

Kumar, V. (2015). Dalit Politics in Bihar: Struggles, Leadership and Governance. New Delhi: Concept Publishing.

Ministry of Consumer Affairs, Food and Public Distribution. (2010). Annual Report 2009-10. New Delhi: Government of India.

Ministry of Labour. (1990). Annual Report 1989-90. New Delhi: Government of India.

NCRB. (2015). Crime in India 2015. National Crime Records Bureau, Ministry of Home Affairs, Government of India.

NHRC. (1998). Report on the Laxmanpur-Bathe Massacre. National Human Rights Commission, New Delhi.

NSSO. (2013). Key Indicators of Household Consumer Expenditure in India (2011-12). NSSO, Ministry of Statistics, Government of India.

Omvedt, G. (2006). Dalit Visions: The Anti-Caste Movement and the Construction of an Indian Identity. Hyderabad: Orient Longman.

Pai, S. (2002). Dalit Assertion and the Unfinished Democratic Revolution: The Bahujan Samaj Party in Uttar Pradesh. New Delhi: SAGE Publications.

Paswan, R. V. (1989, September 9). Parliamentary Debates, Lok Sabha. Eighth Session, Lok Sabha Debates.

Singh, R. (2019). JP Movement and Dalit Politics in Bihar (1970-80). Patna: Janshakti Prakashan.

Thorat, S., & Newman, K. S. (Eds.). (2010). Blocked by Caste: Economic Discrimination in Modern India. New Delhi: Oxford University Press.

Vol. XXIII Issue No.I, Jan.-April. 2026, (Part-I) ISSN: 0970-1745 IIFS Impact Factor 6.75

महाभारत में वर्णित पर्यावरणीय चेतना की प्रासंगिकता-आधुनिक संदर्भ में

डॉ० अवनीश कुमार दुबे
(संस्कृत विभाग), कुटीर स्नातकोत्तर महाविद्यालय चक्के, जौनपुर

भारतीय मनीषी सदियों से ही प्रकृति की सुरक्षा के प्रति सजग रहे हैं। उन्होंने प्रकृति के समस्त जीवों, पेड़-पौधों, लताओं, फूलों, नदियों, झरनों इत्यादि में उसी परमात्मा के स्वरूप के दर्शन किए। उन्होंने सूर्य, चन्द्र, तुलसी, वट-वृक्ष, नदियों इत्यादि के पूजन का विधान बनाया ताकि मनुष्य इनके प्रति आस्थावान रहे और इन्हें किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाए। ऋषियों ने समाज में 'सादा जीवन उच्च विचार' का दर्शन स्थापित किया ताकि मनुष्यों के स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की सुरक्षा हो सके। हमारे कवियों ने भी अपने काव्य में प्रकृति की महिमा का बखान कर इसे हमारे सुख-दुःख का चिर संगिनी माना है। कालिदास की शकुन्तला तो विदा होते समय अपने बगीचे के एक-एक पुष्पों एवं पल्लवों से अश्रुपूर्ण विदाई लेती हैं। तुलसीदास के राम भी सीता का पता 'हे खग-मृग हे मधुकर श्रेणी' कहकर सम्पूर्ण प्रकृति से पूछते हुए दिखलाई पड़ते हैं। सूफी कवि जायसी की नायिका तो 'पिउ सो कहेऊ संदेसड़ा, हे भौरा, हे काग' कहकर प्रकृति के जीवों के माध्यम से ही अपना संदेश अपने नायक तक भेजती हैं। हमारे समस्त दर्शन, चिन्तन, साहित्य, धर्म ग्रन्थों इत्यादि में मानव एवं पर्यावरण के अन्योन्याश्रित संबंधों का वर्णन किया गया है। महाभारत में तो स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि गशिसूर्ययोः। प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः रवे पौरुषं नृषु।।1 अर्थात्! हे अर्जुन! मैं जल में रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदों में ओंकार हूँ, आकाश शब्द और पुरुषों में पुरुषत्त्व हूँ। इस तरह सम्पूर्ण प्रकृति में ईश्वर की उपस्थिति के कारण वह हमारे लिए अत्यन्त पूजनीय है। आगे भगवान श्रीकृष्ण पुनः अर्जुन से कहते हैं- पुण्यो गन्धः पृथ्व्यिां च तेजश्चास्मि विभादसौ। जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।।2 अर्थात्! मैं पृथ्वी में पवित्र गन्ध और अग्नि में ओज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन हूँ और तपस्वियों में तप हूँ। महाभारत में सम्पूर्ण पर्यावरण को ईश्वर से ही उत्पन्न, उन्हीं में विलीन तथा उन्हीं के अधीन स्वीकार किया गया है। यह सम्पूर्ण प्रकृति ईश्वर के माया का ही प्रतिफल है। महाभारत के अनुसार समस्त पर्यावरण सत्त्व, रज व तमोगुण इन्हीं तीन गुणों से अनुप्राणित है, वर्तमान समय में प्रचलित प्रोट्रान, इलेक्ट्रान एवं न्यूट्रान की वैज्ञानिक अवधारणा भी सत्व, रज व तमोगुण की ही पुष्टि करते हैं। महाभारत में इस संबंध में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः। निबन्धन्ति महाबाहो देहे देहिनभव्ययम्।। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इन सभी के भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी ही विभाजित प्रकृति माना है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहङ्कार इतीयं मे भिन्नाप्रकृतिरष्टधा।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो येदं धार्यते जगत्।।3

महाभारत के अनुशासनपर्व में स्वयं भीष्म कहते हैं- तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशय। परलोकगतः स्वर्गं लोकाश्चाप्नोति सोऽव्ययान्।।4 अर्थात् जे वृक्ष लगाता है उसके लिए वे वृक्ष पुत्ररूप होते हैं। इसमें संशय नहीं है। उन्हीं के कारण परलोक में जाने पर उसे स्वर्ग तथा अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अपना निवास स्थान पीपल में

बताकर पीपल जैसे घने व छायादार वृक्ष के महत्ता को ही प्रतिपादित किया है, ताकि लोग इसके संरक्षण के लिए प्रेरित हो व अन्य लोगों को भी प्रेरित करें- यत्राहं स स्थितो राजन्नश्वत्थश्चापि तिष्ठति। यस्त्वेनमर्चयेद् भक्त्या स मां साक्षात् समर्थति।।5 अर्थात् मैं जहाँ भी रहता हूँ, वहाँ पीपल भी रहता है। जो मनुष्य भक्ति भाव से पीपल वृक्ष की पूजा करता है वह साक्षात् मेरी ही पूजा करता है। महामारत में स्थान-स्थान पर वृक्षों को पुत्र के समान मानकर, उनको लगाने के लिए प्रेरित किया गया है- तस्मात् तडागे सद्वृक्षा रोप्याः श्रेयो उर्थिना सदा पुत्रवत् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः।6 महाभारतकालीन लोग शुरु से ही पर्यावरण के प्रति सजग रहे इसलिए ही उन्होंने अधिकाधिक वृक्ष लगवाने पर ही नहीं बल्कि जलाशय खुदवाने पर भी विशेष बल दिया है। प्रकृति से छेड़छाड़ का क्या दुष्परिणाम हो सकता है इसका ज्ञान भी महाभारतकालीन मनुष्यों को था। भीष्म, द्रोण, अर्जुन, अश्वत्थामा इत्यादि सभी को ब्रह्मास्त्र का ज्ञान था परन्तु इसके दुष्परिणाम के कारण ही उन्होंने इसका प्रयोग कभी नहीं किया। जब कि आज का इंसान ज्वालामुखी के मुहाने पर बैठा होकर भी अनेक विस्फोटक पदार्थों का न केवल निर्माण ही कर रहा है बल्कि उनका इस्तेमाल भी कर रहा है। प्राचीन काल से ही वृक्षों को प्राणयुक्त मानकर इसकी पूजा-अर्चना एवं सेवा का विधान है। महाभारत के शान्तिपर्व में भीष्म का कथन है- जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते।7 सर जगदीश चन्द्र वसु ने आगे चलकर विज्ञान द्वारा इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। कालिदास के 'शाकुन्तलम्' के मङ्गलाचरण की उक्ति के अनुसार भी प्राणिमात्र चेतनावान् है। 'अद्भिर्विना ग्लायमानाः प्राणाः' जल के बिना जो निर्जीव हो वही प्राण (प्राणी) है। इनकी संख्या कुल चैरासी लाख है। जो अधोलिखित है- 'जलजा नवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः। कृमयो रूद्रलक्षाणि पक्षिणो दशलक्षकाः। त्रिंशल्लक्षाणि पशवश्चतुर्लक्षाणि मानवाः।।'8

महाभारतकालीन नारी भी वृक्षों भी वृक्षों को अपना संगी साथी मानकर उनते भावात्मक रूप से जुड़ी दिखलाई देती है। धार्मिक अनुष्ठानों में पीपल, बड़ आम के पल्लव, कमल, कुंद, अशोक, तुलसी आदि का पूजन अर्चन इनके रागात्मक सबंध को ही दर्शाता है। ये सदैव इनकी रक्षा में प्रयत्नशील दिखलाई पड़ती हैं। महाभारत में पेड़-पौधों को पूज्य मानते हुए कहा गया है- ''एक वृक्षोहि यो ग्रामे भवेत् पर्णफलान्वित। चैत्यो भवति निर्मातिरचनीय सुपूजितः।।''9 भगवान् श्रीकृष्ण भी गीता में कहते हैं जो भक्त मुझे प्रेम से पत्र, पुष्प, फल एवं जल इत्यादि अर्पण करता है, उसके द्वारा अर्पित सामग्री को मैं सगुण रूप में प्रगट होकर प्रीति सहित खाता हूँ- पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपष्ठतमश्नामि प्रयतात्मन।'10 आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी ये पाँचों तत्वों से से ही प्रकृति का निर्माण होता है। इसलिए प्रकृति में इन पाँचों के संतुलन का अत्यन्त महत्वहै। इसलिए ही भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी उपस्थिति अग्नि, सूर्य, औषधि, जल, पृथ्वी, सभी में बताकर उसके महात्म्य को बढ़ा दिया है- अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमौषधम्। मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।।11 इस प्रकृति के आधार केवल ये पाँचों तत्व ही नहीं, वल्प इसमें रहने वाले समस्त जीव जन्तु भी हैं। आज के मानव ने लगातार इनका शिकार कर पर्यावरण में असन्तुलन ला दिया है। आज से सदियों पूर्व महाभारतकार ने इनके महत्त्व को समझा तभी तो वे भगवान के श्रीमुख से कहलाते हैं कि- ''अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।''13 तथा- ''मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।''14 तथा- ''इनषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी।।15 इस तरह से भगवान श्री कृष्ण ने अपनी उपस्थिति सिर्फ जीव जन्तुओं में ही नहीं वल्प हिमालय पर्वत जैसे अचेतन वस्तुओं में भी बतलायी है- यजानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः।।16 महाभारत कालीन मनुष्य सिर्फ वृक्षों के प्रति ही चेतस् नहीं था वरन् वह भूमि के प्रति भी अत्यन्त सजग था। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए स्वयं कहते हैं- ''पुण्यो गन्धः पृथ्व्यिां च तेजश्चास्मि विभावसौ।''17 भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने ही मुख से कहते हैं- अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। अपरेयमित स्त्वन्यो प्रकृति विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेद धार्यते जगत्।।18 पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है

और हे महाबाहो इससे दूसरी को जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा अर्थात् चेतन प्रकृति जान। महाभारतकार ने गंगा (जल) का महात्म्य केवल प्रयाग संगम पर ही न बतलाकर समस्त स्थान पर बतलाया है। ताकि अन्य जगहों पर लोग प्रदूषण न फैलायें। आज ज्ञान के अभाव के कारण ही हम नदियों को प्रदूषित कर अनेक प्रकार के रोगों को न्यौता दे रहे हैं। महाभारतकार ने अपनी दूरदृष्टि से बहुत पहले ही जल की उपयोगिता को भाप कर इसे शिक्षा तथा धर्म से जोड दिया। गंगा के सन्दर्भ में ब्रह्मा जी स्वयं कहते हैं- ''न गंगा सदृशं तीर्थं न देव केशवात् परः। ब्राह्मणेश्यः परं नास्ति एव माह पितामहः।।19 अर्थात् गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं भगवान् विष्णु से बढ़कर कोई देवता नहीं और ब्राह्मणों से बढकर कोई उत्तम वर्ण नहीं है ऐसा ब्रह्मा जी का कथन है।

पर्यावरण को सुरक्षित रखने हेतु आज समाज में तरह-तरह के उपाय प्रचलित हैं। हमारी सरकार द्वारा ही नहीं, वल्प इसकी सुरक्षा के विश्वस्तरीय प्रय हो रहे हैं। फिर भी आशानुरूप सफलता नहीं प्राप्त हो रही है क्योंकि आज का मानव स्वयं पर्यावरण के प्रति अत्यधिक चेतस् नहीं हो पा रहा है। वह इसकी जिम्मेदारी सिर्फ सरकार या दूसरे लोगों पर मानता है। महाभारत के भीष्म पर्व में भारुण्डा नाम के एक पक्षी का प्रसंग मिलता है। जो पर्यावरण को शुद्ध कर रहा था- भारुण्डा नाम शकुनास्ती क्षणतुण्डा महाबलाः। तान् निर्हरणतीह मृतान दरीषु प्रक्षिपन्ति च।।20 अन्ततः इस पक्षी के कृत से प्रेरण प्राप्त करते हुए हम यही कह सकते हैं कि प्रकृति एवं गानय का अन्योन्याश्रित संबंध है। प्रकृति का संरक्षण तभी राम्भव है जब हम त्याग भाव से इराका दोहन करें अन्यथा यह अथाह सम्पदा भी अक्षुण्ण नहीं रह पायेगी। शिक्षा के द्वारा ही हम आज के मानव को प्रकृति के प्रति सजग बना पायेंगे। प्राचीन मानव ने चाहे दे किसी भी काल या परिवेश के रहे हों उन्होंने प्रकृति को अपने हर सुख-दुख का साथी माना है। एक तरफ कालिदास का यक्ष अपनी प्रियतमा तक बादलो द्वारा संदेश भेजते दिखलाई पड़ता है, तो दूसरी तरफ बाल्मीकि क्रौंच के दुख से पीडित हो अपनी वेदना कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगते हैं- ''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समः यत्क्रौञ्चमिथुनादेकम् त्वमबंधी काममोहितमं।'' सेनापति देव, पचाकर इत्यादि रीतिकालीन कवि भी प्रकृति से अपनी रागात्मिका वृत्ति जोड़ते दिखलाई पड़ते हैं। आज का विचारशील मनुष्य भी प्राचीन ग्रन्थों से शिक्षा ग्रहण कर प्रकृत्यानुकूल आचरण द्वारा प्रकृति एव स्वयं को सुरक्षित रख सकता है।

संदर्भः

1. श्रीमद्भगवद्गीता पृष्ठ संख्या 113, गीताप्रेस गोरखपुर।
2. श्रीमदभगवद्धीता, पृ० 113, गीताप्रेस गोरखपुर
3. श्रीमदभगवदगीता, पृ० 112.
4. महाभारत अनुशासनपर्व 58/27 पृ० 5656.
5. महाभारत अवश्भेधिक पर्व पृ० 6374.
6. महाभारत अनुशासनपर्व 58/31 पृ० 5656
7. महाभारत संग्राम एवम् श्रीष्म निर्वाण, डा० गिरीशदत्त पाण्डेय पृ० 7.
8. महाभारत संग्राम एवम् भीषण निर्वाण, डा० गिरीशदत्त पाण्डेय पृ० 8.
9. महाभारत आदिपर्व
10. श्रीमदभगवदगीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 138

11. महाभारत संग्राम एवं भीष्म निर्वाण, डा० गिरीशदत्र पाण्डेय, पृ० 6.
12. श्रीमदभगवद्गीता गीता प्रेरा गोरखपुर, पृ० 134, 135
13. श्रीमदभगवद्गीता गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 134, 135.
14. श्रीमदभगवद्गीता गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 149, 150.
15. श्रीमदभगवद्गीता भीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 149, 150.
16. श्रीमदभगवद्गीता गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 149, 150.
17. श्रीषद्धगवदगीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 149, 150
18. श्रीमद्धगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 113.
19. श्रीमदभवदीता गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 112.
20. महाभारतवन पर्व 84/96, 70 208.
21. महाभारत भीष्म पर्व 7/12, पृ० 2560

अज्ञेय के उपन्यासों में आधुनिकताबोध

डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कूबा पी०जी० कॉलेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

सारांश - छायावादोत्तर काल के उपन्यासकारों में अज्ञेय का श्रेष्ठतम स्थान है। अपने उपन्यासों के माध्यम से अज्ञेय ने नये भावबोध को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। आपने हिन्दी साहित्य को तीन उपन्यास: 'शेखर एक जीवनी' पहला भाग, 'शेखर एक जीवनी' दूसरा भाग, 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' दीये। अज्ञेय के पहले उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' पहला भाग के प्रकाश में आते ही साहित्य जगत में हलचल मच गई। यह आलोचकों के बीच चर्चा का विषय रहा। कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से यह उपन्यास एक नया प्रयोग रहा। भाषा की दृष्टि से भी यह अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से हटकर रहा। इस उपन्यास की मूल दृष्टि स्वतन्त्रता की तलाश है। यह तलाश परिस्थितियों से जूझते हुए किया जा रहा है न कि परिस्थितियों से हटकर या कटकर इसका मुख्य नायक शेखर नाम का किरदार है, जो कि एक विद्रोही है। शेखर के इस विद्रोह के पीछे केवल शेखर का ही विद्रोह नहीं बल्कि बदलती युवा पीढ़ी के विद्रोह का स्वर मुखर हो रहा है। शेखर पुरानी परंपराओं से छुटकारा चाहता है। वह किसी के तरह न बनकर स्वयं के संभावनाओं का अन्वेषण करना चाहता है। स्वानुभूतमयी यह उपन्यास अपनी वांछित ऊंचाई को पाने में सफल रहा।

अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' त्रिकोण प्रेम के धरातल पर अवलंबित है। यह रेखा, भुवन और गौरा के त्रिकोण प्रेम को प्रदर्शित करता है, इनके बीच में एक और पात्र चन्द्रमाधव जो कि पहले उपनायक लेकिन आगे चलकर खलनायक अधिक प्रतीत होता है। रेखा और भुवन का प्रेम परिस्थितिजन्य होने पर भी परिपक्वता को प्राप्त होता है। यह परम्परागत प्रेमकथाओं से भिन्न है। रेखा और भुवन का प्रेम परवान चढ़ने के पूर्व ही गौरा भावनात्मक रूप से अपने आप को भुवन के प्रति समर्पित कर चुकी थी।

'अपने-अपने अजनबी' मुख्य रूप से द्विपात्रीय अज्ञेय का तीसरा और अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास में योके और सेल्मा के माध्यम से जीवन, मृत्यु, चुनने की स्वतन्त्रता, विश्वास जैसे प्रश्नों के साथ-साथ मृत्यु से साक्षात्कार की अवधारणा को उकेरा गया है जिसमें लेखक पूर्ण रूपेण सफल रहा है।

बीज शब्द - आधुनिक, आधुनिकता, भावबोध, उपन्यास, विद्रोही, संवेदनशील, मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक

प्रस्तावना :- अज्ञेय के सभी उपन्यास: 'शेखर एक जीवनी' (दोनों भाग), 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' आधुनिक उपन्यास हैं। आधुनिकता या आधुनिक भावबोध का आशय एक नवीन दृष्टिकोण से है; जिसमें समाज में व्याप्त रूढ़िवादी व्यवस्था, बाह्याडंबर, पूंजीवादी व्यवस्था, शोषण इत्यादि को विजित कर, नये मानव मूल्यों को स्थापित करना। आधुनिक भावबोध सही मायने में उस विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से निष्पन्न होती है, जो कि मानवीय चेतना को वास्तविक युग-बोध प्रदान करने के साथ-साथ अधिक दायित्वशील, सक्रिय और मानवीय गुणों से युक्त बनाता है।

अज्ञेय के उपन्यास को हिंदी वांग्मय में केवल कथा रचना तक सीमित नहीं रखा जा सकता, बल्कि आधुनिक मानव जीवन की बौद्धिक, नैतिक एवं संवेदनात्मक विकास यात्रा का अभिलेख कहा जा सकता है।

'शेखर एक जीवनी' का मुख्य पात्र शेखर है। पूरी कहानी शेखर के ही इर्द-गिर्द घूमती रहती है। यह साहित्य जगत में एक नवीन प्रयोग के रूप में स्थापित हुआ। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास में प्रेम का एक नया धरातल तलाश किया गया है। भाषा-शैली की दृष्टि से विचारक इसे शिल्प प्रधान उपन्यास मानते हैं। इसमें पत्रात्मक एवं उध्दरण आदि शैली का प्रयोग हुआ है।

'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास आकार में बहुत लघु है किन्तु महत्व की दृष्टि से यह एक अद्भुत उपन्यास है। इसमें बर्फ से ढके घरों एवं प्रवाहमान नदियों से घिरे पुल-खण्ड वासियों की स्थिति का वर्णन है।

अज्ञेय के सभी उपन्यास: 'शेखर एक जीवनी' (दोनों भाग), 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' आधुनिक उपन्यास हैं। आधुनिकता या आधुनिक भावबोध का आशय एक नवीन दृष्टिकोण से है; जिसमें समाज में व्याप्त रूढ़िवादी व्यवस्था, बाह्याडंबर, पूंजीवादी व्यवस्था, शोषण इत्यादि को विजित कर, नये मानव मूल्यों को स्थापित करना। आधुनिक भावबोध सही मायने में उस विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से निष्पन्न होती है, जो कि मानवीय चेतना को वास्तविक युग-बोध प्रदान करने के साथ-साथ अधिक दायित्वशील, सक्रिय और मानवीय गुणों से युक्त बनाता है।

अज्ञेय के उपन्यास को हिंदी वांग्मय में केवल कथा रचना तक सीमित नहीं रखा जा सकता, बल्कि आधुनिक मानव जीवन की बौद्धिक, नैतिक एवं संवेदनात्मक विकास यात्रा का अभिलेख कहा जा सकता है।

'शेखर एक जीवनी' का मुख्य पात्र शेखर है। पूरी कहानी शेखर के ही इर्द-गिर्द घूमती रहती है। यह साहित्य जगत में एक नवीन प्रयोग के रूप में स्थापित हुआ। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास में प्रेम का एक नया धरातल तलाश किया गया है। भाषा-शैली की दृष्टि से विचारक इसे शिल्प प्रधान उपन्यास मानते हैं। इसमें पत्रात्मक एवं उद्धरण आदि शैली का प्रयोग हुआ है।

'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास आकार में बहुत लघु है किन्तु महत्व की दृष्टि से यह एक अद्भुत उपन्यास है। इसमें बर्फ से ढके घरों एवं प्रवाहमान नदियों से घिरे पुल-खंभों वासियों की स्थिति का वर्णन है। अज्ञेय के सभी उपन्यास आधुनिक भावबोध की दृष्टि से सफल हैं।

अज्ञेय के सभी उपन्यास आधुनिक भावबोध की दृष्टि से सफल हैं। यही उद्घाटित करने का इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

शोध विस्तार - अज्ञेय के उपन्यासों में आधुनिकता की नई भावभूमि दिखलाई पड़ती है। इनके प्रथम उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' के प्रकाश में आते ही पाठकों एवं आलोचकों में एक हलचल पैदा हो गयी। यह उपन्यास को एक नई दिशा और दशा प्रदान की। इसे लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद रहा। डॉ. नगेन्द्र अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में लिखते हैं कि- "इस उपन्यास को लेकर आलोचकों में भारी मतभेद रहा। किसी ने इसे प्रकाशमान पुच्छल तारा कहकर प्रशंसा की, तो किसी ने अतिशय आत्मकेन्द्रित बताकर इसके कथानक को असंबद्ध, विशृंखल माना।"[1] इस उपन्यास की रचना आधुनिक भावबोध को ध्यान में रखकर किया गया है। इसका मुख्य किरदार शेखर आधुनिक किरदार है, जो कि एक आधुनिक पात्र है। यह पुरानी परंपराओं का खण्डन कर, नई स्थापनाओं, प्रयोगों का मंडन करता है। बचपन से ही शेखर स्वेच्छाचारी है।

इस उपन्यास के प्रति आलोचकों में जो मतभेद रहा उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कथ्य, शिल्प एवं भाषा की दृष्टि से यह पारंपरिक उपन्यासों से हटकर एक नया प्रयोग है। इसी को अब आधुनिकता की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। यह उपन्यास स्वानुभूतमयी है क्योंकि 'शेखर एक जीवनी' के पहले भाग की भूमिका में स्वयं अज्ञेय ने लिखा है- "शेखर घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए vision को शब्द-बद्ध करने का प्रयत्न है।"[2]

चूंकि अज्ञेय प्रयोगवादी साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं, उपन्यास के क्षेत्र में यह उनका प्रयोग ही कहा जा सकता है। इस उपन्यास में पहली बार नवीनतम ज्ञान विधाओं का प्रयोग मिलता है। इसमें विविध प्रकार की शैली को प्रयोग में लाया गया है जैसे- पूर्व दीप्ति शैली , वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली इत्यादि। शैली को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि शैली की दृष्टि से यह निर्विवाद रूप से हिन्दी के उत्कृष्टतम उपन्यासों में शुमार है। इस उपन्यास की वाक्य योजना सुगठित एवं सुसज्जित है।

यह उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से सर्वथा भिन्न है। इसका नायक 'शेखर' बचपन से ही स्वतन्त्रता की चाह रखता है वह बन्धन में जीना नहीं चाहता। बहन सरस्वती से उसकी सबसे अधिक बनती है परन्तु भाई से एकदम नहीं बनती है। वह छोटी से बड़ी हर चीज को अपने तरीके से जानना चाहता है। शेखर का मस्तिष्क तीव्र है वह हर छोटी बड़ी घटना पर नजर गड़ाये रहता है। जब उसके अनुज का जन्म होता है तो उसके मन में बहुत से सवाल उठ खड़े होते हैं। वह जानना चाहता है कि बच्चे कैसे होते हैं, कहाँ से आते हैं, ऐसे ही उसके मन मस्तिष्क में बहुत से सवाल उठते हैं, परन्तु उसका समाधान उसे नहीं मिल पाता है। शेखर अपनी बहन सरस्वती से पूछता है कि बच्चे कैसे होते हैं, कहाँ से आते हैं, परन्तु सरस्वती उसे संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाती है जिससे वह संतुष्ट नहीं होता है। शेखर का स्वर विद्रोही है, वह अपनी भावनाओं को दबा नहीं पाता। वह बहुत से आन्तरिक संघर्षों से जूझता रहता है। वह तनावों से गुजरता रहता है। शेखर सामाजिक बन्धनों को नहीं स्वीकारता। वह रिश्ते में बहन लगने वाली लड़की 'शशि' से प्रेम करता है।

अज्ञेय अपने उपन्यास के माध्यम से वर्तमान युवा पीढ़ी का भावबोध कराते नजर आ रहा है, क्योंकि अज्ञेय के शेखर का जो विद्रोह है वह केवल शेखर का न होकर वह विद्रोह आज के युवा पीढ़ी का है। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं कि- "वैसे शेखर के विद्रोह के पीछे आज के पीढ़ी का विद्रोही स्वर है।"[3] वह स्वयं अपनी संभावनाओं को तलाश करना चाहता है। वह किसी को अपना आदर्श मानने को तैयार नहीं। अपने जीवन के फैसले वह स्वयं लेना चाहता है। वहां किसी का भी हस्तक्षेप सह्य नहीं, यहां तक कि विवाह जैसे निर्णय भी वह स्वयं लेना चाहता है।

इस उपन्यास का दूसरा भाग पहले से ज्यादा व्यवस्थित समझ में आता है। पहले भाग का बिखराव दूसरे भाग में कुछ संगठित जान पड़ता है। परन्तु यहां भी राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं भाषा आदि के सम्बन्ध में उसकी भावना क्रियात्मकता से न जुड़ पाने के कारण ओछे ही प्रतीत होते हैं। शेखर और शशि के सम्बन्ध नैतिक नहीं। यह अनैतिक सम्बन्ध शेखर के विद्रोही स्वभाव का ही परिचायक है। वर्तमान परिवेश की जो सामाजिक दशा आज देखने को मिल रही है, वह इस उपन्यास में पहली बार देखने को मिलता है। यही इस उपन्यासकार का आधुनिक भावबोध की अवधारणा दृष्टिगोचर होती है।

अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' त्रिकोण प्रेम पर आश्रित एक प्रेम कहानी है। इसको इनके पहले उपन्यास के विकासात्मक यात्रा के रूप में भी माना जाता है। यह त्रिकोणीय प्रेम कहानी अवश्य है, परन्तु यहां लेखक प्रेम की एक नई भावभूमि तैयार की है। यहां शेखर और भुवन एवं रेखा और शशि में एक प्रकार का तादात्म्य जोड़ा जा सकता है। परन्तु इसका मूल्यांकन स्वतन्त्र रूप से होना चाहिए न कि पीछे से जोड़कर। इसका नायक भुवन का रेखा से परिस्थितिजन्य प्रेम हो जाता है, जब कि शायद इससे पूर्व ही गौरा जो कि एक प्रकार से भुवन की शिष्या थी, भावनात्मक रूप से भुवन से अपना

दिल हार बैठी थी। यहाँ एक और किरदार चन्द्रमाधव के रूप में है जो भुवन और रेखा का दरस कराता है। शुरू में तो वह उपन्यास का प्रतिनायक के स्वरूप में दिखता है, परन्तु बाद में खलनायक की भूमिका में आ जाता है। भुवन जो कि एक वैज्ञानिक है वह प्रेम की मानसिक यातना को सहन करता है। यहाँ रेखा का गौरा के प्रति स्नेह लेखक के आधुनिकतावादी विचारधारा का ही परिणाम है। यही आधुनिक भावबोध दिखलाई पड़ता है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास में अज्ञेय अपने दर्शन को रेखा के चरित्र द्वारा ही प्रतिपादित किये हैं। भुवन का किरदार इसमें भरपूर सहयोग देता है। भुवन संवेदनशील, कर्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार चरित्र है जो कि प्रेम को वासना में परिणत नहीं होने देता। रेखा को वर्णित करते हुए 'गोपाल राय' लिखते हैं कि- "रेखा के प्रेम का सबसे उदात्त पक्ष उसके त्याग और आत्मदान की पृष्ठभूमि में उजागर होता है।"[4] गौरा के चरित्र के माध्यम से अज्ञेय ने अपने प्रेम दर्शन के तीसरे कोण को प्रतिष्ठित किया है। जहाँ एक निष्काम और निस्वार्थ प्रेम मिलता है। अज्ञेय के इस त्रिकोणीय प्रेमाश्रित उपन्यास द्वारा आधुनिक भावबोध की दृष्टि परिलक्षित होती है।

अपने-अपने अजनबी अज्ञेय का लघु और अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास में अज्ञेय के धार्मिक दृष्टिकोण की परिपक्वता दिखाई पड़ती है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में अज्ञेय ने यौन-कल्ट को स्थापित कर एक पैगंबरी दृष्टिकोण का परिचय दिया। यह उपन्यास उसी की फलश्रुति जान पड़ती है। बहुत से आलोचक इसे अस्तित्ववादी और मृत्यु से साक्षात्कार का उपन्यास मानते हैं। परंतु डॉ बच्चन सिंह न तो इसे अस्तित्ववादी और ना ही मृत्यु से साक्षात्कार का उपन्यास मानते हैं। वह लिखते हैं कि-"यह अस्तित्ववादी उपन्यास नहीं है और न तो मृत्यु के साक्षात्कार का उपन्यास है। इसमें मुख्य समस्या स्वतंत्रता के वरण की है जो संत्रास,अकेलापन,बेगानगी,मृत्यु बोध,अजनबीपन आदि से सहज ही संयुक्त हो गया।"[5] इस उपन्यास में मुख्य रूप से दो ही पात्र सेल्मा और योके हैं। इन दोनों को एक ऐसी विषम परिस्थिति में ढकेल दिया गया है जहां कि स्वतंत्रता की चाह बलवती हो उठती है। यह समस्या अस्तित्ववाद की ही समस्या है,परंतु इसका समाधान कुछ और है।

अपने-अपने अजनबी में अज्ञेय आधुनिक भावबोध को दृष्टिगत रखते हुए ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकारते हैं, चाहे भले ही सूर्य रूप में। वह कहते हैं- "हम सब मूलतया सूर्योपासक हैं और हमारे चिंतन में चाहे जो कुछ हो, हमारे जीवन में सूर्य ईश्वर का पर्याय है। सूर्य और ईश्वर,सूर्य और समय, इसलिए सूर्य और हमारा जीवन जहां सूर्य नहीं है वहां समय भी नहीं है।"[6] इस उपन्यास से एक बात और स्पष्ट होती है कि मनुष्य चाहे जितना व्यवस्था संपन्न हो जाए पर वह काफी हद तक प्रकृति का और परिस्थितियों का दास ही रहता है।

निष्कर्ष अज्ञेय के उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनके उपन्यास के केंद्र में व्यक्ति हैं समाज नहीं। शेखर एक जीवनी में शेखर का आत्मसंघर्ष और विद्रोह के साथ-साथ स्वतंत्र चेतना आधुनिकता या आधुनिक व्यक्ति के पहचान के रूप में स्थापित होता है।यह अकेला व्यक्ति सामाजिक बंधनों को चुनौती देता हुआ जीवन को अपनी शर्तों पर जीना चाहता है। अज्ञेय आधुनिक भावबोध को अंतरात्मा की गहराई के माध्यम से व्यक्त करते हैं। अज्ञेय के पात्र सामाजिक पाखंड,नैतिक रूढ़ियों और परंपरागत मूल्यों से टकराते रहते हैं। यह विद्रोह केवल बाहर से ही नहीं बल्कि आंतरिक भी है। इनके प्रेम का स्वरूप बहुत आदर्शवादी और त्यागमयी नहीं बल्कि मानवीय जटिलता और कभी-कभी विरोधाभास लिए हुए है। इनकी आधुनिकता केवल विचारों तक ही नहीं सीमित रह गयी है। वह भाषा और शिल्प मे प्रयोगशिलता के रूप में परिणत है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय के उपन्यास आधुनिक भावबोध से परिपूर्ण हैं। इन्हें आधुनिक भावबोध के प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची:-

नगेन्द्र-डॉ. – हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, ए-95, सेक्टर 5, नोएडा – 201301, तीसरा संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, पृष्ठ- 689

अज्ञेय- सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन – शेखर एक जीवनी पहला भाग, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली 110002 दूसरा संस्करण – 2016 पृष्ठ- 7

नगेन्द्र, डॉ. – हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, ए-95, सेक्टर 5, नोएडा – 201301, तीसरा संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, पृष्ठ- 689

राय गोपाल – हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002 छठा संस्करण. – सन – 2016, पृष्ठ – 207

सिंह – डॉ. बच्चन – आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – लोक भारती प्रकाशन – 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संशोधित संस्करण – 1999 – पृष्ठ 327

अज्ञेय – सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन – अपने-अपने अजनबी – भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, तेरहवां संस्करण: 2012, पृष्ठ 14

नारी संघर्ष और प्रतिरोध का समाज
समकालीन उपन्यास 'अग्निलीक' और 'सेज पर संस्कृत' के संदर्भ में

डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्विद्यालय

गौरव शर्मा
चतुर्थ वर्ष, बी.ए. हिंदी ऑनर्स किरोड़ीमल महाविद्यालय,दिल्ली विश्वविद्यालय

भूमिका

जेंडर' और 'सेक्स' के अर्थ में एक मूल अंतर है। 'सेक्स' का अर्थ, लैंगिक आधारित प्राकृतिक भेद के संदर्भ में प्रयुक्त होता है जबकी 'जेंडर' का अर्थ, लैंगिक आधारित सामाजिक रूढ़ियों के संदर्भ में प्रयुक्त होता है। दुनिया के हर समाज में जेंडर के आधार पर होने वाले वर्गीकरण पर ही सामाजिक व्यवस्था टिकी है, इस व्यवस्था में हर जेंडर को समान मानसिकता और अधिकारों के तराजू में नहीं टोला जाता। स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रकृति के दो रूप हैं, एक दूसरे के पूरक। परन्तु जब एक सत्ता दूसरी सत्ता पर अपना वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश करती है तो यह प्रकृति के इन रूपों के बीच उथल पुथल का कारण बनती है। बचपन से ही एक बच्चे को उसके लिंग के आधार पर सामाजिक और व्यवहारिक शिक्षा दी जाती है, इसी के आधार पर स्त्री को स्त्री और पुरुष को पुरुष होने का बोध कराया जाता है, जिससे बाल्यावस्था से ही ऐसी मानसिकता का निर्माण होता है जिसमें पुरुष तो हर क्षेत्र में प्रधान होता है लेकिन स्त्री को 'अबला' मान लिया जाता है। स्त्री के लिए अबला शब्द का प्रयोग इस तरह परंपरा से होता आ रहा है कि 'अबला' का पर्यायवाची ही स्त्री को मान लिया गया है। इन सामाजिक व्यवस्थाओं ने महिलाओं के आसपास भी ऐसी मानसिकताओं का ताना बाना बुन दिया है कि, महादेवी वर्मा के शब्दों में कहें तो "कभी जिन गुणों के कारण उसे समाज में अजस्त्र सम्मान और अतुल श्रद्धा मिली, जब प्रकारान्तर से वे ही त्रुटियों में गिने जाने लगे तब उसे उतनी ही मात्रा में अश्रद्धा और अनादर भी, अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानकर स्वीकार करना पड़ा। उसे जगाने का प्रयास करने वाले भी प्रायः उसी सन्देह में पड़े रहते हैं कि यह जाति सो रही या मृतक ही हो चुकी जिसकी जागृति स्वप्नमात्र है"। स्त्रियां दोहरे-तिहरे शोषण की शिकार होती रही, औरत होने के नाते, दलित होने के नाते, अशिक्षित होने के नाते, आर्थिक स्वावलंबन न होने के नाते, धार्मिक रीतियों के आधार पर।

स्त्री विमर्श को पश्चिम से आई अवधारणा के रूप में देखा जाता है जिसने समय के साथ विभिन्न देशों में स्त्री जागृति के स्वर को तेज़ कर स्त्रियों को एहसास कराया कि शोषण उनका जन्मसिद्ध अधिकार नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था और मानसिकता की देन है। स्त्री विमर्श साहित्य में भी एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में उभरा।

जब से स्त्री ने अपनी राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक भूमिकाओं पर विचार करना शुरू किया तब से स्त्री आंदोलन, स्त्री विमर्श की शुरुआत हुई। स्त्री विमर्श, अंग्रेजी के feminism शब्द का हिंदी रूपांतरण है, इस आंदोलन का आरंभ ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका से हुआ।

साहित्य के परिप्रेक्ष्य में नारी संघर्ष केवल पीड़ा की कथा नहीं, बल्कि चेतना, प्रतिरोध और सामाजिक परिवर्तन की प्रेरक यात्रा भी रहा है। साहित्य में प्राचीन काल से ही स्त्री का वर्णन उसी तरह किया गया जिस तरह सामाजिक तौर पर स्त्री का जीवन था, प्राचीन साहित्य में स्त्री को प्रायः त्याग, सहनशीलता और पतिव्रता के रूप में प्रस्तुत किया गया। रामायण की सीता और महाभारत की द्रौपदी नारी संघर्ष की प्रारंभिक प्रतीक हैं। सीता का वनवास और अग्नि-परीक्षा के माध्यम से अन्याय सहना, तथा द्रौपदी का सभा में अपमान के विरुद्ध प्रश्न उठाना, स्त्री की आंतरिक शक्ति और प्रतिरोध को भी दर्शाता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी संघर्ष और मुखर रूप से सामने आता है

साहित्य में स्त्री विमर्श एक साहित्यिक आंदोलन की तरह उभरा जिसका आरंभ बीसवीं शताब्दी से फ्रांसीसी लेखक सिमोन द बुआ की रचना 'द सेकंड सेक्स' (1949) से माना जाता है जो समकालीन नारीवाद का भी आधारग्रंथ है। 'द सेकंड सेक्स' के प्रकाशन से पूर्व नारी के अस्तित्व पर इस तरह विचार विमर्श नहीं किए गए थे। पूरी विचारधारा को बदलने में इस किताब का महत्वपूर्ण योगदान रहा। स्त्री विमर्श का प्रारंभ कुछ लोग सिमोन द बुआ की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' से मानते हैं तो कुछ मैरी एलमन की पुस्तक 'थिंकिंग अबाउट विमेन' से। डॉ. नागेंद्र ने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि इन पुस्तकों के प्रकाशन से भी पूर्व स्त्री के अस्तित्व, स्त्री की समस्याओं को उठाया जाने लगा था, जैसे वर्जीनिया वुल्फ ने अपनी पुस्तक 'ए रूम ऑफ वंस ओन' में लिखा था- "ह्वाइटहाल के पास से गुजरते हुए किसी भी स्त्री को अपने स्त्रीत्व का बोध होते ही अपनी चेतना में अचानक होने वाली दरार को ले कर आश्चर्य होता है कि मानव सभ्यता की सहज उत्तराधिकारी होने पर वह इसके बाहर, इससे परकीय और इसकी आलोचक कैसे हो गई"

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में यूरोप और अमेरिका में नारीवादी आंदोलन ने विभिन्न लेखिकाओं की पुस्तकों की रचना के साथ खूब ज़ोर पकड़ा जिसमें मुख्यतः मोनीक विटिंग (L'opoponax, 1964; Les Guérillères, 1969; le corps lesbian, 1973); हेलेन सिक्सस (Le Rire de la Méduse, 1975); काटे मिलेट (sexual politics, 1970; The prostitution papers,1973); एलेन शोवाल्टर(नारीवादी काव्यशास्त्र की ओर, 1979; फेमिनिस्ट क्रिटिसिज्म इन द वाइल्डरनेस, 1981; नई नारीवादी आलोचना, 1985; यौन अराजकता, 1990; द फीमेल मैलाडी, 1985) आदि नाम विषय उल्लेखनीय है।

हिंदी साहित्य में भी नारी विमर्श बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में प्रखर हुआ, हालांकि इससे पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों और स्वयं प्रेमचंद के उपन्यासों में भी स्त्री के शोषण, पीड़ा आदि का चित्रण मिलता है किंतु उन्हें पूर्णतः स्त्रीवादी दृष्टिकोण से लिखे गए उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। हिंदी साहित्य में नारी विमर्श के उद्देश्य से लिखे गए प्रारंभिक उपन्यासः कृष्ण सोबती का उपन्यास मित्रो मरजानी (1967) और सूरजमुखी अंधेरे के (1972), "इससे पूर्व हिंदी साहित्य में किसी महिला कथाकार द्वारा स्त्री के स्वैराचार का इतना साफ और मुँहफट रूप में चित्रण नहीं हुआ था"। इसी क्रम में आगे चलते हुए ऊषा प्रियंवदा, प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा आदि लेखिकाओं ने मुखर रूप से स्त्री चेतना का स्वर अपनी रचनाओं के माध्यमों से तेज़ किया और समाज में व्याप्त स्त्री शोषण और रूढ़ मानसिकताओं का विरोध किया। अमृता प्रीतम के शब्दों में: "इस जन्म में कई बार लगा कि औरत होना गुनाह है,लेकिन यही गुनाह में फिर से करना चाहूँगी, एक शर्त के साथ, कि ख़ुदा को अगले जन्म में भी, मेरे हाथ में कलम देनी होगी"

सेज पर संस्कृत, मधु कांकरिया

सेज पर संस्कृत उपन्यास, धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं की सच्चाई उजागर करने वाला उपन्यास है। मधु कांकरिया ने मुख्यतः जैन धर्म की कुरीतियों को आधार बनाया किंतु मधु जी ने विविधतापूर्ण दृष्टिकोण और विचारों से कई धर्मों की आड़ में चल रही अपसंस्कृति का विरोध किया है। जैन धर्म में साधु, साध्वी जीवन और उस जीवन में प्राकृतिक असल जीवन को नाकार कर, अध्यात्म की राह पर मोक्ष प्राप्ति के लिए होने वाले पाखंडों और कर्मकांडो के आधार पर कमज़ोर, दमित, शोषित के साथ होने वाले शोषणों का चित्रण लेखिका ने किया हैं। उपन्यास में पहला विद्रोह संघमित्रा और उसकी माँ के बीच मानसिकता का दिखता है, पिता, भाई की मृत्यु के बाद जहाँ संघमित्रा एक ओर आर्थिक विपन्नता से उभरने के लिए व्यावसायिक संघर्ष और शिक्षा को प्राथमिकता देती है, वहीं माँ घर में बिना किसी पुरुष सत्ता के जीवन का रास्ता कठिन समझ, अपनी बेटियों के साथ जीवन की सच्चाइयों, संघर्षों और सुख-दुख के सामने कमज़ोर पड़, दीक्षा ग्रहण कर साध्वी जीवन को एकमात्र मुक्तिमार्ग समझती है, छोटी बेटी छुटकी नासमझी के कारण माँ के पदचिन्हों पर चलती है लेकिन संघमित्रा अंत तक इन सभी धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं, पाखंडों, आडंबरों के खिलाफ विद्रोह करती है। लेखिका ने धर्म के पाखंडों के साथ उस समाज का भी यथार्थ वर्णन किया है जिसमें स्त्रियों के लिए कोई सुरक्षित जगह नहीं, चाहे वह छुटकी का साध्वी जीवन रहा हो या संघमित्रा का सामाजिक संघर्षमय जीवन।

यह उपन्यास बेधक, जुझारू, धैर्यवान और अन्ततः विद्रोही स्त्री की आन्तरिक पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक विश्लेषण-अंकन करता है। धार्मिक चिन्तन और व्यवहार से आप्लावित संसार में स्त्री-जीवन कितना कठोर, क्रूर और भयावह हो सकता है, 'सेज पर संस्कृत' के बहाने इस यातना-गाथा का हमें पोर-पोर परिचय मिलता है

यह व्यवस्था कुछ ऐसी है जहाँ धर्म के मामले में स्त्रियाँ ही सबसे आगे है उन्हीं स्त्रियों के लिए उसी धर्म में श्रेष्ठ स्थान नहीं, जैन धर्म में स्त्री संन्यास ले सकती है किंतु महाराज और प्रमुख नहीं बन सकती, जहाँ पुरुष के संन्यास लेने पर वस्त्र त्याग दिए जाते है, जीव हत्या से बचने के कारण, वहीं स्त्री के संन्यास लेने पर वह एकवस्त्रधारी बनती है, अब चूंकि स्त्री वस्त्र धारण करती है तो तथाकथित जीव हत्या भी होती होगी (स्त्री के महाराज न बनने का यह भी कारण माना जा सकता है) अब क्योंकि बाल्यावस्था से ही स्त्री की देह को विशिष्ट बताते हुए मानसिकता का निर्माण किया जाता रहा है, तो स्त्री को वस्त्रों के बंधन में बंधना ज़रूरी रखा गया होगा। परंतु यदि वस्त्र धारण किए हुए संघमित्रा (स्त्री) को देख ऑफिस में मेहता (पुरुष) जैसे लोग उत्तेजित होते हैं और अपनी हैवानियत और बदतमीजी को अंजाम तक देने का अधिकार रखते हैं, तो वहीं इसके विपरीत में क्या वस्त्रहीन महाराज को देख कोई स्त्री उत्तेजित नहीं हो सकती है, हो सकती है परंतु 'स्त्री यौनिकता' के समाज में कोई मायने नहीं रहे, इसलिए एक पुरुष वस्त्रत्याग कर महाराज बन सकता है किंतु दैहिक विशिष्टता और पुरुष उत्तेजित न हो, इस कारण एक स्त्री वस्त्रधारी ही रहती है।यही धर्म स्त्रियों के वस्त्रों के प्रकार का भी कामुकता के नाम पर विरोध करता है।देह और धर्म के विरोधाभास के संबंध में लेखिका लिखती हैं कि, "*चूँकि स्वयं वे इस आनन्द से वंचित थे, इस कारण कुंठित, दमित एवं इन्द्रियों की सीमा में रहनेवाली उनकी मानसिकता दूसरों को भी इसमें वंचित रखने में ही क्रूर सन्तोष पाती थी। शायद इसी कारण उन्होंने देह को इतना बड़ा टैबू बना दिया था कि धर्म के सारे ताजिये इसी देह पर टिके थे*"। धर्म के पाखंडों में यह शोषण केवल जैन धर्म तक ही सीमित नहीं है बल्कि लेखिका ने अपने व्यापक दृष्टिकोण से तमाम धर्मों में होने वाले शोषणों पर भी चिंता व्यक्त की है चाहे वह ईसाइयत हो, इस्लाम हो, हिन्दू धर्म हो, "*हज़ारों साल के ईसाइयत के इतिहास में किसी भी स्त्री के लिए पोप बनना तो दूर की बात स्त्रियों को क्लर्जी (धर्माचार्य), बिशप (धर्माधिकारी) आदि छोटे पदों के योग्य भी नहीं समझा जाता है। और इस्लाम ? कुरान शरीफ़ में बार-बार कहा गया है कि*

मर्द औरत का मालिक है। आयत 222 में स्त्री को पुरुष की खेती बताया गया है। जानती हो, हिस्ट्री हेड ऑफ डिपार्टमेंट की मिसेज सिंह ने महिला दिवस पर हमें बताया कि गैर-सरकारी संगठन 'प्लांट इंटरनेशनल' के अनुसार सोमालिया, सिपरालियोन और माली में 90 प्रतिशत से अधिक लड़कियों का खतना अभी भी किया जाता है''

अग्निलीक उपन्यास, हृषिकेश सुलभ

बिहार में घाघरा नदी के किनारे बसे गाँवो में आज़ादी और उसके बाद हो रहे परिवर्तनों की कथा अग्निलीक उपन्यास में दर्ज है।सुलभ जी ने इस उपन्यास में कार्निवल जैसा वातावरण निर्मित किया है जिसमें अनेक रंगों, गंधों और सुरों की धारा बहती है, इन धाराओं के बीच जातिगत भेदभाव, राजनीति, स्त्री का शोषण जैसे तमाम सामाजिक मुद्दों पर प्रकाश डाला है। यह उपन्यास केवल एक कहानी नहीं, बल्कि अपने समय के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक परिवर्तनों का दर्पण है। अग्निलीक उपन्यास, बिहार के देवली, मनरौली, अमरपुर, पुरैना, सीवान गाँव में और उसके आसपास हो रहे सामाजिक परिवर्तनों, पारिवारिक परिवेशों के बदलते स्वरूप, स्त्रियों के जीवन में घटित हो रहे परिवर्तनों, राजनीतिक उथल पुथल की अंतर्कथा का बहुत सूक्ष्म रूप से चित्रण किया है। शमशेर साईं की हत्या से प्रारंभ हो कर कहानी मनोहर रजक की हत्या पर खत्म होती है इस बीच के अंतराल में सुलभ जी ने समय, प्रकृति, परिवार, राजनीति, स्त्रियों के जीवन में हो रहे बदलावों को बहुत सूक्ष्मता से मुख्य कथा के साथ पिरोया है।अग्निलीक उपन्यास में मुख्य स्त्री पात्र है रेशमा कलवारिन, जसोदा, गुलाबनो, मुन्नी बी, रेवती, नाज़ बेगम, नबीहा, कुसुमी देवी।

संयुक्त राष्ट्र बाल कोष के आकलन से पता चलता है कि भारत में हर साल 18 वर्ष से कम उम्र की कम-से-कम 15 लाख लड़कियों की शादी हो जाती है, जो वैश्विक संख्या का एक तिहाई है और इस प्रकार अन्य देशों की तुलना में भारत में बाल वधुओं की सर्वाधिक संख्या मौजूद है सोलह-सत्रह की उम्र में बाल विवाह की ग्रस्त में आई रेशमा जब सही मायनों में देह का अर्थ भी न जानती होगी उस उम्र में उसका बुजुर्ग पति केवल ''सांवली देह'' की भूख में रहता। इन हालातों को त्याग ने की हिम्मत रख रेशमा अपने नईहर लौटती है, समाज में "अपना घर" की अवधारणा महिलाओं के लिए नहीं रहीं, या तो वह सुसराल होता है या मायका। उपन्यास में उपस्थित समाज की पितृ सत्ता के लिए भी रेशमा केवल एक संपत्ति है जिसे हासिल करने के लिए पुरुषों की भीड़ उसके पास दिखाई देती है, जिसका कारण केवल रेशमा की सूरत और देह है, फिर चाहे वह पिंटू सिंह हो या सरपंच अकरम अंसारी दोनों पुरुष पात्रों के बीच ज़मीन जायदाद की तरह रेशमा को हासिल करने की लड़ाई चलती है।घर से लेकर नाम पर तक पितृसत्ता का अधिकार रहा है, लेखक ने रेशमा के माध्यम से स्त्रियों के विवाह उपरांत नाम बदलने जैसे सामाजिक बंधन को भी प्रस्तुत किया है।ब्रिटेन के ब्रैडफोर्ड विश्वविद्यालय में पारिवारिक जीवन के प्रोफेसर साइमन डंकन, जो पुरुष का नाम अपनाने की प्रथा पर शोध कर रहे हैं, कहते हैं, ''यह काफी आश्चर्यजनक है कि इतनी सारी महिलाएं पुरुष का नाम अपनाती हैं, क्योंकि यह पितृसत्तात्मक इतिहास से उपजी है, इस विचार से कि विवाह के बाद एक महिला पुरुष की संपत्ति बन जाती है'' थानाध्यक्ष, समाज के प्रबुद्ध वर्ग की गिनती में शामिल यह पद और पदाधिकारी, जिनसे उम्मीद की जा सकती थी किन्तु सुलभ जी ने समाजिक यथार्थ और स्त्री चिंतन के संबंध में थानाध्यक्ष गरभू पाँडे की हैवानियत के जरिए पूरे समाज पर तमाचा मारा है।

जसोदा के परिवार की चौथी पीढी लीलाधर के बेटे भुवन सिंह की बेटी रेवती, आधुनिक स्त्री, शहर जा कर शिक्षा प्राप्त करने वाली पहली पीढ़ी, किन्तु संघर्ष और उत्पीड़न अपनी परदादी के दौर सा ही, अंतर कोई ज़्यादा नहीं, समाज से पहले परिवार में भाई ही हर कदम पर रेवती की अपनी जिंदगी के खिलाफ नजर आता है तथा रेवती को अपने उसूलों पर

चलाना अपना अधिकार मानता है,समाज और अपने भाई के प्रति रेवती में भी विद्रोहात्मक प्रवृति दिखती है किंतु मनोहर के प्रेम में बंधी रेवती के मन में समाज का भय भी है, जो दर्शाते है हर जाति, धर्म, और व्यक्ति के रूप में स्त्री को स्त्री होने का शोषण झेलना ही पड़ता है, *"तुम नहीं समझ सकते मनोहर। तुम सिर्फ गरीबी से लड़ रहे हो.... जाति से लड़ रहे हो। मैं एक लड़की हूँ और अपने से कई गुना ताक़तवर हर जाति और धर्म के पुरुषों से लड़ रही हैं। तुम्हारी दरिद्रता और जाति कुछ देर के लिए तुम्हारे मनोबल को तोड़ सकती है, पर मैं जिनसे लड़ रही हूँ, ये लोग बाबा, पिता, भाई या परिजन होते हुए भी मेरी पूरी ज़िन्दगी को तबाह कर सकते है"* यह स्थिति है उपन्यास में सन् 2016 की हालांकि यदि उपन्यास इसके 10 साल बाद 2026 समकालीन समय का चित्रण भी करता तो भी इस संवाद में अधिक फर्क नहीं होता अर्थात प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है। अंत में भारतीय समाज और स्त्री चिंतन के संबंध में स्त्रियों की स्थिति और समाज की सच्चाई को उजागर करता रेशमा गुलबानो का संवाद, *"दिदिया, तुमसे उमिर में कम हैं, पर जिनगी का दुख कम नहीं देखे हैं।... औरत को माटी की भीत बना कर छोड दिया है सबने। आँधी-बयार-बरखा सब उसी को ढाहे। वाह रे !"*

निष्कर्ष

स्वाभाविक है, 60 के दशक की यातनाएं बदलते परिवेश, समाज के अनुसार 21वीं सदी की यातनाओं से भिन्न होगी।वर्षों से चली आ रही नारी संघर्ष की यह लड़ाई, 21वीं सदी के दो दशक बीत जाने के बाद भी ज़ारी ही है, स्त्री का चित्रण जो पहले साहित्य में हो रहा था आज भी वह चित्रण वैसा ही है बस अभिव्यक्ति के स्वर बदले हैं। अरविंद जैन के शब्दों में "फर्क बस इतना है कि पहले नारी को घर में कैद करके शोषण किया जाता था अब उसे मुक्त करके किया जा रहा है"[7]। लेकिन जो स्त्री का अबला होने का चित्र मानसिकता में घर कर गया है वह न पहले बदला था और न आज। साहित्य में आज भी स्त्री विमर्श केंद्रीय विषय है जिसमें हर दर्शकों के अंतराल में स्त्री विमर्श के क्षेत्र का विस्तार हो रहा है और नए विषय जुड़ रहे हैं। आज के वैश्वीकरण और डिजिटल युग में नारी संघर्ष, साहित्य में नए रूपों में सामने आ रहा है,लैंगिक समानता, यौन स्वतंत्रता, LGBTQ+ संदर्भों में स्त्री की भूमिका जैसे नए मुद्दे साहित्य का हिस्सा बन रहे हैं। हालाँकि चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं—मानसिकता में परिवर्तन की धीमी गति, हिंसा और असमानता की निरंतरता—परंतु साहित्य, नारी संघर्ष में सदैव से ही आशा और परिवर्तन का माध्यम बना हुआ है। समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श का विस्तार भी हुआ है और बेशक सामाजिक धरातल पर बदलाव भी हुए है किंतु यह बदलाव स्मरणीय नहीं। अग्निलीक और सेज पर संस्कृत समकालीन समय के दो ऐसे उपन्यास है, जो इतिहास को अपने भीतर संजोए, 21वी सदी में भी स्त्री चेतना को मुखरता से अभिव्यक्ति करते हैं। प्रस्तुत दो उपन्यास केवल उदाहरण मात्र है, स्त्री विमर्श आज भी साहित्य में ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है, जिसके संबंध में हाल ही में, राजकमल प्रकाशन समूह ने हिंदी उपन्यास का स्त्री वर्ष मनाया, "स्त्रियाँ आज साहित्य, समाज और संस्कृति के हर क्षेत्र में नई ऊँचाइयाँ छू रहीं हैं", "स्त्री-लेखन आज न केवल अपने विशिष्ट अनुभवों को व्यक्त कर रहा है, बल्कि समाज के प्रश्नों को नए आयाम भी दे रहा है। यह वह समय है जब स्त्री-स्वर हमारे साहित्यिक और सामाजिक ढाँचों को नए सिरे से परिभाषित कर रहा है"

संदर्भ सूची:

1. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, सातवां संस्करण, लोकभारती पेपरबैक्स, पृ-11
2. डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास,मयूर बुक्स, पृ.432

3. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पृ-320

4. https://ravivarvichar.in/nazariya/amrita-pritam-paved-way-to-modern-day-feminism-through-her-writings

5. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत

6. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, पृ-140

7. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-news-editorials/menace-of-girl-child-marriage-in-india

8. https://www.bbc.com/worklife/article/20200921-why-do-women-still-change-their-names

9. हृषिकेश सुलभ, अग्निलीक, पृ-243

10. हृषिकेश सुलभ, अग्निलीक, पृ-140

11. जैन अरविंद, औरत होने की सज़ा, राजकमल प्रकाशन पृ-139

12. https://rajkamalprakashan.com/blog/post/hindi-upnyas-ka-stree-varsh-pre-press-release?srsltid=AfmBOopbhs1i50JZe1MUrta6VJLSw9xw__yVVrO7vxYZ73sMq4wTP0Ty

कामायनी में काव्य-भाषा शिल्प के नये चरण

डॉ0 ज्ञान प्रकाश द्विवेदी
वरिष्ठ सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
नागरिक पी0जी0 कालेज, जंघई, जौनपुर

जयशंकर प्रसाद की भाषा का उत्कृष्ट रूप हमें इनके काव्यों में देखने को मिलता है, क्योंकि भाषा भावों एवं विचारों की संवाहक होती है। काव्य भाषा अनुभूति का वाहक है और वह अनुभूति को पाठक तक संप्रेषित करती है। यद्यपि शास्त्र की भाषा के विचारों की सीधी, स्पष्ट तथा निश्चयात्मक अभिव्यक्ति होती है, लेकिन काव्य की भाषा प्रायः विम्ब-विधायिनी ही होती है। भाषा और अनुभूति के स्वरूप पर डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी जी का कथन है कि ''रचनाकार को सृजन के पूर्व और सृजन के बाद दोनों स्थितियों में भाषा का प्रयोग करना है। पहला रूप वह मुख्यतः समाज से ग्रहण करता है और दूसरे रूप में वह अपने व्यक्तित्व को भी मिश्रित कर देता है।'' प्रसाद जी भाषा प्रयोग के कुशल किन्तु सावधान शिल्पी के रूप में जाने जाते है। इनके काव्य में सीधे सपाट तथ्य कथनों का प्रतिशत न्यून और विम्ब-विधायिनी पर संघटन का प्रचुर प्रयोग देखने को मिलता है। अनुभूति के भाषित रूपांतरण को स्पष्ट करते हुए डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी जी का मानना है, 'यह काव्य-भाषा एक निश्चित सीमा तक कवि के व्यक्तित्व के अनुकूल रूपाकार ग्रहण करती है, पर अपनी आधारभूत सामाजिक भाषा से वह पृथक नहीं हो सकती, जो कि रचनाकार की संवेदना का माध्यम और स्रोत है। इसीलिए भाषा के अर्थ-बोध के साथ-साथ साहित्य में संवेदनात्मक गहराई बढ़ती जाती है।' प्रसाद जी ने अपनी काव्य-भाषा में स्वानुभूति को स्वीकारा है, इसलिए इनके काव्य में नये ढंग की अभिव्यक्ति को आंतरिक स्पर्श से पुलकित करने का आग्रह भी उनमे था और साथ ही यह भी स्वीकार किया कि शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति समीप के भी उस शब्द विशेषण का नवीन अर्थ द्योतन करने में सहायक होते हैं।

जयशंकर प्रसाद जी के काव्य-भाषा का दृष्टिगत मूलतः दर्शन पर आधारित है। अद्यतन काल में वाक् के चार रूप माने गये हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी। परा-वाक् भगवती चित् शक्ति परे है, इसके अन्तर अभेदमयता रहती है। अतः इसे परा परा कहा गया है। 'पश्यन्ती' में वाच्य को भेद सृष्टि स्फुरित होकर भी स्फुट नहीं होती और 'मध्यमा' स्थिति में उनसे स्फुटता आ जाती है, फिर भी अभेदयता उन भेदो में यहाँ भी बनी रहती है। अतः यहां भी परम्परा मानी गयी है। जब वाणी के वाह्य भेद वाच्य - वाचक रूप में भेद चेतना के साथ वाह्य स्फुरित हो जाते हैं तो वाणी 'बैखरी' कहलाती है। 'परा' वाक ही परा शक्ति है। पश्यन्ती और मध्यमा परम्पराएं हैं, बैखरी अपरा है। इनका संबंध क्रमशः शिव, सदाशिव, ईश्वर और अनन्त से है। तीनों भूमिकाओं में इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति अनुस्पूत होती हैं। ध्यातव्य है कि इस विकास क्रम में ने केवल वर्णादि का ही विकास खोजा गया है बल्कि वाच्य पदार्थों का भी वर्ग, मंत्र और पद के रूप से परावाक् से वाच्यों का विकास भी होता है। तत्वों और भुवनों के रूप में वाच्य पदार्थों का तत्व, तत्वेश प्रमाता और शक्ति इन चारों का पारस्परिक सम्बन्ध इस प्रकार स्थिर होता है -

तत्व	तत्वेश	प्रमाता	शक्ति	अनुभव
शिवतत्व	शिव	शिवप्रमाता		चित्शक्ति अहंमात्र

शक्तितत्व	शिव	शिवप्रमाता	आनन्दशक्ति	अहंअस्मि
सदाशिवतत्व	सदाशिवभट्टारक	मन्त्रमहेश	इच्छाशक्ति	अहंइदम्
ऐश्वर	ईश्वरभट्टारक	मंत्रेश	ज्ञानउन्मेशशक्ति	इदं अहम्
शुद्धविद्यातत्व	अनन्तभट्टारक	मंत्र	क्रियाशक्ति	अहं इदम् दर्शन

शिव + शक्ति

अहम् - इदम्

शिव + शक्ति का संघट्ट त्र आनन्द

शिव अपने स्वयं की अनुभूति + इदम पक्ष में उभर कर रहते हैं, तो शिव (इदम्) रूपों में आते हैं।

अपने महाकाव्य 'कामायनी' में प्रसाद जी ने उदात्त तत्वों की व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रसाद जी की कामायनी काव्य का काव्य, दर्शन का दर्शन तथा मनोविज्ञान का मनोविज्ञान है। इस प्रकार प्रसाद जी की 'कामायनी' में काव्य, दर्शन एवं मनोविज्ञान की त्रिधारा प्रवाहमान है। काव्य-भाषा का विश्लेषण अनुशीलन कविता की रचना - प्रक्रिया को समझने और उसकी व्याख्या करने के लिए तो मुख्य सूत्र सिद्ध होता ही है, दूसरी ओर भाषा की अपनी प्रकृति का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी एक महत्वपूर्ण साक्ष्य है। कामायनी महाकाव्य की शैली में उदात्तता, संगीतात्मकता एवं प्रगीतात्मकता की त्रिवेणी प्रवहमान है। प्रोफेसर नामवर सिंह का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है, ''कामायनी को लोग महाकाव्य भले ही कहे लेकिन वह एक लंबा 'लिरिक' ही है।' कामायनी की कथावस्तु में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता, कल्पना एवं यथार्थ, कल्पना एवं स्वच्छ तथा स्वच्छंदतावाद एवं यथार्थवाद की द्वंदात्मक चेतना की अविरल धारा प्रवहमान है। इसलिए कथानक की रचनात्मक बुनावट एवं भाव-बोध की दृष्टि से कामायनी को स्वच्छंदतावाद, छायावाद के साथ-साथ नव-स्वच्छंदतावाद, नवछायावाद के नाम से संबोधन किया जा सकता है। कविवर श्री जयशंकर प्रसाद जी ने काव्य-कला तथा अन्य निबंध में छायावादी काव्य अवधारणा की व्याख्या क्रम में 'यथार्थवाद' की भी व्याख्या प्रस्तुत की है। यथार्थवाद क्षुद्रो की ही नहीं बल्कि महानों का भी काव्य है। वस्तुतः यथार्थवाद का मूलभाव है-वेदना। कामायनी स्वच्छंदतावादी-छायावादी काव्य भाषा का सशक्त महाकाव्य है। स्वच्छंदतावादी, छायावादी एवं नवस्वच्छंदतावादी- नवछायावादी काव्य वैभव वस्तु एवं शिल्प अपनी पूर्णता में 'कामायनी' महाकाव्य में उत्कृष्ट रूप में देखे जा सकते हैं। स्वच्छंदतावादी-छायावादी काव्य कृति 'कामायनी' में रीति की अपेक्षा अभिव्यंजना पक्ष की ही प्रधानता रही है। मानव चेतना के अखण्ड महाकाव्य 'कामायनी' में अभिव्यंजना का अद्भुत विकास मिलता है। पेटर ने अपने प्रसिद्ध निबंध शैली के अंत में स्पष्ट रूप से लिख दिया है कि 'महान कला रूप पर निर्भर नहीं होती है, तत्व पर निर्भर होती है।' इस प्रकार यह कहना न्यायसंगत है कि कलारूप काव्य की छोटी परम्परा का उन्मेष है और कला तत्व काव्य कला की बड़ी परंपरा है। छोटी परम्पराएँ आती-जाती रहती है लेकिन बड़ी परम्पराएं शाश्वत चिरंतन होती है और निरंतर बदलाव की स्थिति में अंततः बड़ी परंपराएँ अपने को बार-बार स्थापित करती रहती है। काव्य-भाषा अरूप भावों व विचारों को शब्द के माध्यम से कल्पना चक्षुओं के सामने मूर्तिमान करती है। काव्य में रमणीयता के लिए कवि को भाषा की लक्षणा व व्यंजना शक्तियों से काम लेना पड़ता है। प्रत्येक कवि की भाषा अपनी निजी होती है, वह कवि से कवि तक बदलती रहती है। काव्य कला का यह रूप एवं स्वच्छंदावादी कला उत्कर्ष है।

प्रसाद जी का भाषा विषयक चिंतन प्रवाह सतही न होकर अत्यन्त गहन एवं मूलवर्ती है। यूरोप में वर्डसवर्थ व दान्ते

की काव्य भाषा विषयक सिद्धांतों में पर्याप्त संघर्ष रहा। जनभाषा व लोक चेतना के अधिकाधिक निकट आने से वर्डसवर्थ का कला सिद्धांत स्वच्छंदतावादी कला का सहज विकास का मूल स्रोत है। प्रसाद जी ने अपनी कविताओं में नूतन भाववस्तु के साथ कलात्मक रूप विधान में नवीनता का वरदान दिया है। इनकी भाषा के सभी पक्ष यथा-वर्णयोजना, रूप शब्द योजना, वाक्य एवं अर्थ योजना, बिम्ब तथा प्रतीक विधान, लाक्षणिकता, सादृश्य विधान, विचलन आदि मौलिक होने के साथ-साथ दीप्ति एवं कान्ति के उस शिखर को स्पर्श करती है, जो अत्यंत दुर्लभ है। काव्य भाषा का लक्ष्य भाव चित्रों को उभारकर सौंदर्य सृष्टि करना भी रहता है। काव्य भाषा कवि की भावात्मक स्थिति से अनुशासित होती है। विषय तथा काव्यरूप से नियंत्रित है तथा युग परिवेश एवं परिस्थिति के अनुसार अपना रूप संवारती है। काव्य भाषा में भावकत्व शक्ति होती है। काव्यभाषा रचनात्मक श्रम को संपूर्ण रूप से ग्रहण कर विभिन्न काव्यात्मक उपादानों का संयोजन करती है वे उपादान वर्ण, शब्द, मुहावरा, वाक्य प्रतीक, बिंब, अप्रस्तुत विधान, लोकोक्ति, कवि समय, पौराणिक संदर्भ, लय तथा नाद इत्यादि हैं। इस प्रकार काव्य भाषा का अपना एक समग्र स्वरूप होता है जो भाषा के सभी अवयवों के स्तर पर झलकता है। स्पष्ट है कि काव्य-भाषा की सृजनशीलता को किसी एक नुस्खे अथवा कुछ नुस्खे में बाँधना असंभव है। भाषा कवि, से जिस सृजनशीलता की अपेक्षा रखती है वही सृजनशीलता आलोचक के लिए भी आवश्यक है।

कामायनी प्रसाद जी के हृदय से निकली हुई भावानुभूतियों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। इनकी भाषा प्रथम परिचय में ही स्वच्छंदतावादी काव्यधारा को प्रतिपादित करती है। जिसमें सरस एवं हृदयग्राही, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, संगीतात्मकता, मानवीकरण आदि स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का लालित्य व्याप्त है। 'कामायनी' सूक्ष्म अनुभूतियों एवं विराट कल्पना का महाकाव्य है। भाषा की सरसता ही भावों को लालित्य प्रदान करती है। हंसती हुई सृष्टि, आँखों में खिला अनुराग, रागरंजित चंद्रिका, उड़ता हुआ सुमन पराग हृदय के सरस भावों पर अपना स्पष्ट प्रभाव डालते हैं। आधुनिक महाकाव्य 'कामायनी' के काव्यभाषा के वैभव के परिप्रेक्ष्य में भाषा शिल्प की नवीनता एवं वैचारिकता से युक्त भाषा शिल्प अपने नूतन संदर्भों में देखे और समझे जा सकते हैं। पौराणिक आख्यान को नये समकालीन मानवीय संदर्भों में प्रस्तुति मिथकीय चेतना, बिम्ब विधान, प्रतीक विधान एवं प्रतीकात्मकता का चैथा आयाम भी वैचारिक परिप्रेक्ष्य में द्रष्टव्य है। यह जीवन जगत त्रिकोणात्मक होने के नाते अपूर्ण है लेकिन चैथा आयाम इसे पूर्ण बनाता है। यह चैथा आयाम आध्यात्मिकता के संस्पर्श से मानववादी परिपूर्णता को भाषा के नये चरणों से जिसमें मिथक प्रतीक, विम्ब प्रतीक एवं प्रगति की प्रमुखता है। ये सबके सब स्वच्छंदतावादी छायावादी कला वैभव के विश्व परिदृश्य का सुंदर प्रतिमान है। इसलिए 'कामायनी' का भाषा शिल्प नये चरण की प्रस्तुति में अंतर्राष्ट्रीय कला अवधारणा के नूतन कई संदर्भों की विलक्षण प्रस्तुति मिलती है। अतः कहा जा सकता है कि आरम्भ से ही प्रसाद की काव्य-भाषा एक मान, बाँकपन और मरोर लिए हुए दिखायी पड़ती है। विकास की दोपहरी में उसमें बड़ी ओजस्विता, तेज और प्रवाह भी आ मिला है। आगे धूप की नरमी के समय गम्भीरता, शुभ्रता, शान्ति का आधिक्य है। इसलिए कहा जा सकता है कि काव्य-भाषा की शैलीगत विशेषताएँ ध्वन्यात्मकता, सौन्दर्यमय विधान एवं स्वानुभूति की विवृत्ति क्रमशः उत्तरोत्तर कृतियों की भाषा के दृष्टिगत होती है। अतः प्रसाद जी की काव्य-भाषा उनकी अपनी संवेदना के विकसित और घनीभूत होने के साथ-साथ सजती संवरती चली गयी।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रसाद जी की भाषा सशक्त और प्रवाहमयी है। प्रसाद जी का स्वाध्याय पर्याप्त मात्रा में था, अतः वे उपयुक्त शब्दों के साथ सरस भाषा की योजना सफलतापूर्वक कर सके हैं। इनके काव्यों के क्रमिक विकास पर दृष्टि डालने से इनकी भाषा का रूप सुष्ठु से सुष्ठुतर होता पाया गया है। प्रारम्भिक रचनाओं में ब्रजभाषा का प्राचुर्य था तो बाद की रचनाओं में खड़ी बोली का प्राजंल रूप दिखायी देता है। प्रसाद जी की काव्य-भाषा ओज और माधुर्य गुणों से पूरी तरह परिपूर्ण है किन्तु प्रसाद गुण भी कहीं-कहीं मिल जाता है। प्रसाद जी आधुनिक युग के गीति काव्य के निर्माता है

इनका आँसू इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसीलिए इनकी भाषा संगीतात्मकता लिए हुए है। वह विषयानुसार सरस, प्रवाहपूर्ण, सशक्त, ओजस्वी और संगीतमय है। उर्दू और फारसी के प्रभाव से प्रसाद जी की अभिव्यक्ति और भाषा दोनों में परिवर्तन हुआ है। बहुत से उर्दू के शब्दों का प्रयोग इन्होंने अपनी भाषा में किया है। उदाहरण के लिए बाजी, कागज, रोज, बदनामी आदि इसके साथ ही साथ, संस्कृत के कुछ ऐसे शब्द है जो साधारण रूप से व्यवहार में भी नहीं आते और अपेक्षाकृत क्लिष्ट है, कुड़मल, कृष्णागुरूवर्तिका, ध्वन्त और प्रज्ञापारमिता इत्यादि। अतः कहा जा सकता है कि प्रसाद जी जैसे प्रतिभावान् कवि के काव्य की भाषा उत्कृष्ट एवं वन्दनीय है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 खगेन्द्र प्रसाद ठाकुर - छायावाद काव्य भाषा का विवेचनात्मक अनुशीलन।
2. श्री रामनाथ सुमन - कवि प्रसाद की काव्य साधना।
3. कल्याणमल लोढा - कामायनी।
4. प्रोफेसर केसरी कुमार - साहित्य के नये धरातल: शंकाएं और दिशाएं।
5. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी - मध्यकालीन हिन्दी काव्य भाषा।
6. डॉ0 अजब सिंह - नवस्वच्छंदतावाद।
7. डॉ0 नगेन्द्र - भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका।
8. डॉ0 नामवर सिंह का निबंध - प्रसाद की भाषा।
9. डॉ0 कुमार विमल - व्यक्तित्व और कृतित्व।

रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियों में स्त्री चेतना

लाल बाबू यादव
(नेट/जे ०आर०एफ०- 2016)
(शोधार्थी, हिंदी विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा)

भूमिका

समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में रामधारी सिंह दिवाकर एक ऐसे कहानीकार के रूप में स्थापित हैं जिन्होंने बिहार के ग्रामीण-अंचल की सामाजिक संरचना, आर्थिक विषमता और सांस्कृतिक जटिलताओं को अत्यंत सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। उनकी कहानियाँ केवल बाह्य यथार्थ का चित्रण नहीं करतीं, अपितु उस यथार्थ के भीतर छिपे मानवीय संबंधों, टूटते सपनों और जीवट-संघर्षों को भी अभिव्यक्त करती हैं।

दिवाकर की कहानियों में स्त्री केवल पृष्ठभूमि की पात्र नहीं है, बल्कि वह कथा की धुरी है। उनकी स्त्री-पात्र पारंपरिक भूमिकाओं में जकड़ी होने के बावजूद अपनी अस्मिता की तलाश करती हैं, अपने दुःख को पहचानती हैं और कहीं-कहीं प्रतिरोध का स्वर भी मुखर करती हैं। यही स्त्री चेतना उनकी कहानियों को विशेष महत्त्व और प्रासंगिकता प्रदान करती है।

रामधारी सिंह दिवाकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

रामधारी सिंह दिवाकर का जन्म बिहार के एक छोटे-से गाँव में हुआ। उनका संपूर्ण जीवन ग्रामीण परिवेश में बीता, जिसने उनकी कहानियों को एक जमीनी सच्चाई और प्रामाणिकता दी। 'धरातल', 'आगे खुलता रास्ता', 'माटी-पानी', 'रेत', 'शहर की दुकान', 'तीसरी ताली' जैसे संग्रहों में उन्होंने ग्रामीण जीवन की विविध परतों को उद्घाटित किया है। उनकी भाषा में भोजपुरी और मैथिली के शब्दों की मिठास है, जो पात्रों को जीवंत और विश्वसनीय बनाती है।

दिवाकर की कहानियों की केन्द्रीय चिन्ता सदैव हाशिये का मनुष्य रही है — दलित, स्त्री, भूमिहीन किसान और मजदूर। इन सबमें स्त्री का स्थान विशेष है क्योंकि वह न केवल वर्ग-शोषण की शिकार है, बल्कि पितृसत्ता और जाति-व्यवस्था के दोहरे दंश को भी झेलती है।

स्त्री चेतना : अवधारणा और संदर्भ

'स्त्री चेतना' से तात्पर्य उस जागरूकता से है जिसमें स्त्री अपनी पारंपरिक भूमिकाओं, बंधनों और शोषण को पहचानती है और उनसे मुक्ति की आकांक्षा रखती है। यह चेतना केवल नारीवादी आंदोलन तक सीमित नहीं है; इसका विस्तार उस प्रत्येक क्षण में होता है जब कोई स्त्री-पात्र अपनी पीड़ा को वाणी देती है, अपने अधिकारों की माँग करती है, या सामाजिक अन्याय के विरुद्ध चुप्पी तोड़ती है।

दिवाकर की कहानियों में स्त्री चेतना कई स्तरों पर प्रकट होती है — (क) सामाजिक-आर्थिक शोषण की पहचान, (ख) पारिवारिक उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध, (ग) यौन-हिंसा और उत्पीड़न का सामना, (घ) स्वतंत्र अस्मिता की खोज, तथा (ङ) परंपरा और आधुनिकता के बीच संघर्ष।

सामाजिक-आर्थिक शोषण और स्त्री का संघर्ष

दिवाकर के कथा-संसार में ग्रामीण स्त्री का जीवन बहुआयामी संकटों से घिरा है। वह खेतों में काम करती है, घर सँभालती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है — फिर भी उसकी न कोई आर्थिक स्वायत्तता है, न सामाजिक प्रतिष्ठा। 'माटी-पानी' संग्रह की कहानियों में ऐसी स्त्रियाँ हैं जो अपनी पीठ पर समस्त परिवार का बोझ उठाए चलती हैं, लेकिन निर्णय लेने का अधिकार उनके पास नहीं है।

दिवाकर की कहानियों में आर्थिक विपन्नता और स्त्री का शोषण अक्सर एकसाथ चित्रित होते हैं। जब पुरुष शहर की ओर पलायन करते हैं, तो स्त्री पर खेत-बाड़ी और घर-परिवार की दोहरी जिम्मेदारी आ पड़ती है। इस परिस्थिति में उसकी जो चेतना उभरती है वह केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि व्यावहारिक और संघर्षशील है। वह कठिन परिस्थितियों में भी अपने परिवार को एकजुट रखती है और इस प्रक्रिया में एक सशक्त व्यक्तित्व के रूप में उभरती है।

पितृसत्ता का दंश और स्त्री का प्रतिरोध

दिवाकर की कहानियों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की क्रूर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। स्त्री को उसके जन्म से ही 'पराया धन' माना जाता है। विवाह के बाद वह पति के घर की 'संपत्ति' बन जाती है। घरेलू हिंसा, दहेज-उत्पीड़न और मानसिक प्रताड़ना उनकी कहानियों के स्थायी विषय हैं।

किन्तु दिवाकर की विशेषता यह है कि उनकी स्त्री-पात्र केवल पीड़िता नहीं हैं। वे चुप नहीं रहतीं। उनका प्रतिरोध कभी मुखर है, कभी मौन है — लेकिन है अवश्य। कोई पात्र सास-ससुर के सामने आवाज उठाती है, कोई अपने बच्चों को पढ़ाने का निश्चय करके परंपरा को चुनौती देती है, तो कोई चुपचाप घर से निकल जाती है और एक नई राह बनाती है। दिवाकर का यह चित्रण ग्रामीण स्त्री को उसकी सक्रिय भूमिका में स्थापित करता है।

जाति-व्यवस्था और स्त्री-अस्मिता

दिवाकर की कहानियाँ जाति और स्त्री के अंतर्संबंध को बहुत सूक्ष्मता से उजागर करती हैं। दलित और निम्न-जाति की स्त्री को दोहरे दमन का सामना करना पड़ता है — जाति के कारण और स्त्री होने के कारण। उनकी कहानियों में ऐसी स्त्री-पात्र हैं जो उच्च-जाति के अत्याचार का विरोध करती हैं और इस प्रक्रिया में एक व्यापक सामाजिक न्याय की माँग का प्रतिनिधित्व करती हैं।

इन कहानियों में जाति-व्यवस्था के भीतर स्त्री-देह को एक विवादास्पद भूमि के रूप में चित्रित किया गया है, जहाँ सवर्ण पुरुष की वर्चस्ववादी दृष्टि सदैव सक्रिय रहती है। लेकिन दिवाकर की स्त्री-पात्र इस सांचे को तोड़ने का प्रयास करती हैं और अपनी मानवीय गरिमा को पहचानती हैं।

प्रेम, यौनिकता और स्त्री स्वातंत्र्य

दिवाकर की कहानियों में प्रेम और यौनिकता को स्त्री-दृष्टि से भी देखा गया है। ग्रामीण समाज में स्त्री की इच्छाओं, स्वप्नों और भावनाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। विवाह एक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था है, न कि दो व्यक्तियों की सहमति का बंधन। इस व्यवस्था के भीतर स्त्री की भावनात्मक और शारीरिक स्वायत्तता पूरी तरह दमित है। जब दिवाकर की कहानियों में कोई स्त्री-पात्र अपनी भावनाओं को व्यक्त करती है, अपने मन का साथी चुनना चाहती है या वैवाहिक हिंसा को अस्वीकार करती है — तो यह स्त्री चेतना का सबसे साहसी स्वर होता है। ऐसे क्षणों में दिवाकर समाज की तानाशाही को उजागर करते हुए स्त्री के मानवीय अधिकारों का पक्ष लेते हैं।

शिक्षा, आधुनिकता और नई स्त्री

दिवाकर की कुछ कहानियों में एक नई तरह की स्त्री भी दिखाई पड़ती है — वह जो शिक्षित है, शहर के संपर्क में आई है और अपनी परंपरागत भूमिका को प्रश्नांकित करती है। ये पात्र ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच एक तनाव में जीती हैं। एक ओर उनकी जड़ें गाँव में हैं, दूसरी ओर उनकी चेतना नई संभावनाओं की तलाश में है।

यह द्वंद्व दिवाकर की कहानियों को विशेष गहराई देता है। वे न तो ग्रामीण जीवन को आदर्शीकृत करते हैं, न शहरी आधुनिकता को। उनकी दृष्टि में स्त्री की मुक्ति किसी बाहरी परिवर्तन से नहीं, बल्कि उसकी आंतरिक चेतना के जागरण से संभव है।

भाषा, शिल्प और स्त्री-चित्रण

दिवाकर की भाषा में एक विशेष लय और स्थानीयता है जो उनके स्त्री-पात्रों को जीवंत बनाती है। वे अपनी पात्राओं को उनकी बोली में, उनके मुहावरों में बोलने देते हैं। यह भाषाई प्रामाणिकता स्त्री-चेतना के चित्रण को सहज और विश्वसनीय बनाती है। उनकी कहानियों में संवाद विशेष महत्त्वपूर्ण है। स्त्री-पात्रों के संवाद में उनकी पीड़ा, उनका आक्रोश, उनकी व्यंग्य-शक्ति और उनकी सहनशीलता — सब कुछ एकसाथ मिलता है। यह बहुस्तरीय अभिव्यक्ति दिवाकर के कथाकार की परिपक्वता को दर्शाती है।

समकालीन कथा-साहित्य में दिवाकर का स्थान

समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श को लेकर अनेक लेखक सक्रिय हैं। मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा जैसी लेखिकाओं ने स्त्री-चेतना को एक नया आयाम दिया है। दिवाकर का विशेष योगदान यह है कि उन्होंने पुरुष-दृष्टि से भी स्त्री की पीड़ा और चेतना को उसी संवेदनशीलता से चित्रित किया है जो परंपरागत रूप से स्त्री-लेखन का क्षेत्र माना जाता था। प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए दिवाकर ने ग्रामीण स्त्री को उसकी सम्पूर्ण जटिलता के साथ साहित्य में प्रतिष्ठित किया है। उनकी कहानियाँ यह सिद्ध करती हैं कि ग्रामीण स्त्री भी उतनी ही चेतनशील, संवेदनशील और संघर्षशील है जितनी शहरी।

निष्कर्ष

रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियाँ हिन्दी साहित्य में एक अमूल्य योगदान हैं। उनकी स्त्री-पात्र ग्रामीण भारत की उस अदृश्य आत्मा का प्रतिनिधित्व करती हैं जो सदियों से दमन और शोषण को सहते हुए भी अपनी गरिमा और चेतना को बनाए रखती आई है। दिवाकर की कहानियों में स्त्री चेतना किसी नारे या आंदोलन की उपज नहीं है; यह जीवन की अनुभव-भूमि से उपजी एक सहज चेतना है। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी कहानियाँ हमें यह सोचने पर बाध्य करती हैं कि स्त्री-मुक्ति की बात करना पर्याप्त नहीं; उस मुक्ति के अर्थ और शर्तें क्या होंगी — यह भी तय करना होगा। संक्षेप में, रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियाँ स्त्री को उसकी पूरी मानवीयता में देखती हैं — न केवल शोषित के रूप में, न केवल माँ-पत्नी-बेटी के रूप में, बल्कि एक सोचने-समझने, विद्रोह करने और स्वप्न देखने वाले इंसान के रूप में। यही उनकी स्त्री-चेतना की सबसे बड़ी उपलब्धि है और यही उनके कथा-साहित्य की कालजयी शक्ति।

संदर्भ

दिवाकर, रामधारी सिंह — 'माटी-पानी' (कहानी संग्रह)

दिवाकर, रामधारी सिंह — 'आगे खुलता रास्ता' (कहानी संग्रह)

दिवाकर, रामधारी सिंह — 'धरातल' (कहानी संग्रह)

सिंह, नामवर — 'कहानी : नई कहानी', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

राय, सुधा — 'हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

शर्मा, रामविलास — 'भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य', राजकमल प्रकाशन

पुष्पा, मैत्रेयी — 'स्त्री विमर्श का लोकपक्ष', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

वृद्धावस्था की बढ़ती समस्याएं व निराकरण

राजेश कुमार यादव
शोध छात्र समाजशास्त्र विभाग
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

जीवन का उत्तरार्द्ध समय वृद्धावस्था जीर्ण-शीर्ण काया का पर्याय है इसीलिए इसे रोगों, शारीरिक व्याधियों और कष्टों का केन्द्र माना जाता है। बुढ़ापा स्वयं एक बीमारी है एक पोरी हजार बीमारी आदि कहावतें इसी ओर संकेत करती है, वैसे भी वृद्ध की शारीरिक क्षमता क्षीण हो हो चुकी है। इसलिए उसे उचित सहारे व देखभाल की आवश्यकता होती है। उपचार भी अपरिहार्य हो जाता है पर वर्तमान की पीढ़ी परिवार के वृद्धों को बोझ मानती है, इसलिए उनकी उचित देखभाल के अपने दायित्व से मुकर जाती है। इसलिए वृद्धों को कष्टसाध्य जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ता है, वैसे बहुत बार परिजनों का स्वार्थ परिजनों की स्वयं की समस्याएँ या अर्थाभाव भी वृद्धों की उचित देखभाल पर नकारात्मक प्रभाव अंकित करता है, कारण चाहे कुछ भी हो पर वृद्धजनों को दुःखमय जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ता है।

वस्तुतः वृद्धावस्था जीर्ण-शीर्ण काया का पर्याय है इसीलिए इसे रोगों, शारीरिक व्याधियों और कष्टों का केन्द्र माना जाता है। बुढ़ापा स्वयं एक बीमारी है एक पोरी हजार बीमारी आदि कहावतें इसी ओर संकेत करती है, वैसे भी वृद्ध की शारीरिक क्षमता क्षीण हो हो चुकी है। इसलिए उसे उचित सहारे व देखभाल की आवश्यकता होती है। उपचार भी अपरिहार्य हो जाता है पर वर्तमान की पीढ़ी परिवार के वृद्धों को बोझ मानती है, इसलिए उनकी उचित देखभाल के अपने दायित्व से मुकर जाती है। इसलिए वृद्धों को कष्टसाध्य जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ता है, वैसे बहुत बार परिजनों का स्वार्थ परिजनों की स्वयं की समस्याएँ या अर्थाभाव भी वृद्धों की उचित देखभाल पर नकारात्मक प्रभाव अंकित करता है, कारण चाहे कुछ भी हो पर वृद्धजनों को दुःखमय जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ता है।

वृद्धों के लिए यह मानसिक दुःख की अवस्था है कि उनके परिवार के युवा उनकी अवज्ञा करे, उन्हें महत्व न दे और उन्हें पुराने खयालातों का निरूपित करें। आज की पीढ़ी न तो वृद्धों के अनुभवों से कुछ सीखने को तैयार है और न ही उनके नियत्रंण में रहने को, वैसे दोनों पीढ़ियों की विचारधारा में टकराव का होना भी जटिलता की रचना कर रहा है और वृद्ध चरित्र, रहन-सहन, वेशभूषा, आचार-विचार के मामले में सांस्कृतिक मान्यताओं का रूप देखना चाहते हैं और नई पीढ़ी से ऐसी ही अपेक्षा रखते है, पर नई पीढ़ी इन सब बातों को दकियानूसी और पिछड़ेपन का प्रतीक मानकर इनको नजरअन्दाज कर जाती है। यह देखकर वृद्ध मानसिक संताप का अनुभव करते हैं, उन्हें नई पीढ़ी पतनशील दिखालाई पड़ रही है।

इतिहास इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि प्राचीनकाल में वृद्धों की स्थिति अत्यन्त उन्नत एवं सम्मानीय रही है। उन्हें समाज एवं परिवार में अलग वर्चस्व था। परिवार की समस्त बागडोर उनके हाथों में हुआ करती थी। परिवार का कोई भी फैसला उनकी सलाह या मसविरे के आधार पर होता था। उन्हीं की सत्ता एवं प्रभाव के कारण पहले संयुक्त परिवार हुआ करते थे, वे परिवार के सदस्यों को एक धागे में बाँध रखते थे परन्तु भौतिकवादी युग में वृद्धजनों की समस्याओं का बढ़ना एवं समाज में उनकी उपयोगिता कम और समस्याएं बढ़ती नजर आ रही है। बुढ़ापा जीवन का अन्तिम पड़ाव है और इस

पड़ाव में जीवन असक्त हो जाता है। कार्य करने की क्षमता कमजोर हो जाती है। भरण-पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। यही निर्भरता वृद्धों की समस्याओं की मूल है। शारीरिक एवं आर्थिक दृष्टि से घुटन भरी जिन्दगी जीने को विवश हो जाते है। चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित क्यों न हो इस अवस्था में उसकी गाड़ी चरमराने लगती है। वह युवा पीढ़ी से तालमेल नहीं बैठ पाते है। जिससे उनकी समस्या में वृद्धि हो जाती है।

विश्व में समाज का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है कि जहाँ वृद्धावस्था में अब सामाजिक एवं आर्थिक असुरक्षा के कष्ट झेलने पड़ रहे है। युवा वर्ग वृद्धों को कोई महत्व नहीं देते है। आज हमारे समाज में पश्चिमीकरण, भौतिकवाद का विकास हुआ वैसे-वैसे वृद्धजनों को उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। आज वृद्धजनों के सम्मुख अनेक प्रकार की समस्याएँ विद्यमान है जिससे वृद्धजनों का जीवन अत्यन्त दुर्लभ हो गया है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में संयुक्त परिवार छिन्न-भिन्न हो गए और इनकी जगह छोटे परिवार में निरन्तर वृद्धि हुई। एकाकी परिवारों का अशान्त और घुटन भरा माहौल और नगरों की ओर तेरी से प्रस्थान करती युवा पीढ़ी को अपने बुजुर्गो के प्रति उदासीनता ने आज हमारे समाज में गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी है। यह वही देश है जहां की संस्कृति में परिवार के बुजुर्गो को भगवान से समान माना जाता है और आज की पीढ़ी ने प्रथम पढ़ी नहीं होगी और पढ़ी होगी तो भी क्या आज के हर ऋण के बदलते परिवेश में इस प्रकार की अपेक्षा की जा सकती है। आज की नई युवा पीढ़ी न तो बड़ों के अनुशासन में रहना चाहती है और न ही आदर सम्मान करना चाहती है। इस सम्बन्ध में कुछ फासला हमेशा से रहा है जिसको पीढ़ी का अन्तराल कहा जाता है। अगर विचार किया जाये तो यह पीढ़ियों के आचार-विचार, जीवन-शैली, सोच का अन्तर ही है। हालांकि नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी विरासत में न केवल जीवन शैली वरन् जीवन दर्शन भी पाती है। अपने लिए सारे परिवर्तन एवं संशोधन भी उसी में से करती है। फिर भी न जाने क्यों उसे पुरानी पीढ़ी बोझ सी लगती है।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में धन का महत्व बढ़ने के कारण युवा पीढ़ी धन कमाने में इतना व्यस्त है कि उन्हें दूसरों का ध्यान देने का समय नहीं हैं बच्चे बड़े होकर माता-पिता को तभी अपनाते हैं जब तक उनके पास धन होता है, धन समाप्त होने के बाद उनके लिए वृद्धजनों का कोई महत्व नहीं रह जाता और वे बोझ बन कर जाते हैं। आज की पीढ़ी इतनी स्वार्थी हो गई है कि वह अपना स्वार्थ देखकर ही कार्य करती है, वह अपने घर में वरिष्ठों का संरक्षण तभी करते हैं जब वह समझते हैं कि उन्हें धन, दौलत, सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है। वह अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रेरित हो जाते हैं। उनके अन्दर अपने बुजुर्गों के प्रति सेवा, दया एवं त्याग कम हो जाता जा रहा है, क्योंकि वह वृद्धजनों की सेवा व कर्तव्य को अपनी स्वतन्त्रता में बन्धक मानते है इसलिए वे अपने हित के लिए वृद्धजनों को अनदेखा कर देते हैं।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में वृद्धजनों के सम्मुख अनेक प्रकार की समस्याएँ विद्यमान है यह सर्वविदित तथ्य है। अब प्रश्न उठता है कि इन समस्याओं का मूल कारण क्या है? यही तथ्य सबसे महत्वपूर्ण है। सैद्धान्तिक रूप से औद्योगीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण, भौतिकवादी संस्कृति, व्यक्तिवाद आदि प्रमुख कारण मिलते हैं। जिनके प्रभाव से युवा पीढ़ी पूरी तरह से बदल गई है और इस परिवर्तन के दौर में वृद्धजन पूरी तरह से उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं। उनके सम्मुख समस्याएँ दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है और उनकी मुसीबतों में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो रही है।

प्रस्तुत अध्याय में यही तथ्य स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि आज हमारे समाज में सेवानिवृत्त के उपरान्त वृद्धजनों के सम्मुख कौन-कौन सी समस्याएँ विद्यमान है और उनके क्या कारण है। इसी से सम्बन्धित तथ्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वृद्धजन हमारे समाज की धरोहर है। उनके सम्मान और प्रतिष्ठा में कमी एक तरह का अभिशाप है।

यह कलंक किस कारण समाज में प्रसारित हो रहा है इसका क्या कारण है, इस संदर्भ में तथ्यों को खोजना तथा उन्हें वर्णित करना अतयन्त महत्वपूर्ण है। आज हमारे वृद्धजन असहाय की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर हो गये है। उन्हें बेसहारा छोड़ दिया गया है, दिन-प्रतिदिन उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं। इसके कारण को खोजना अति आवश्यक है ताकि इस समस्या पर पूर्णतया विराम लगाया जा सके और वृद्धजनों को खुशहाली प्रदान की जा सके।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में वृद्धजनों के सामने अनेक प्रकार की समस्याएँ विद्यमान है। 60 वर्ष के आगे बढ़ने पर कोई भी व्यक्ति इस अवस्था में पहुँच जाता है आयु बढ़ने के साथ व्यक्ति का शरीर शिथिल होने लगता है। इन्द्रियाँ कमजोर होने लगती है। आंखों से दिखना कम हो जाता है। शरीर को शक्ति व गति प्रदान करने वाले प्रमुख संस्थान जैसे पाचन संस्थान, रक्त परिभ्रमण संस्थान, स्वशन संस्थान आदि कमजोर पड़ने लगते है। शरीर में अनेक प्रकार की बीमारियाँ आ जाती है जिससे व्यक्ति की कार्यशक्ति घट जाती है। इस स्थिति में जब वृद्धजनों की देखभाल नहीं की जाती है तो उन्हें समस्याएं पूरी तरह से जकड़ लेती है। आर्थिक असुरक्षा की स्थिति के कारण भी वृद्धजनों को तनाव का सामना करना पड़ता है।

संयुक्त परिवार के न होने के वजह से वृद्धजनों की उचित देखभाल नहीं हो पाती है अक्सर बुजुर्ग लोगों की देखभाल करने वाला कोई नहीं होता है इससे उन्हें बड़ी बाधा का सामना करना पड़ता है।

प्रस्तुत अध्ययन में यह तथ्य स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि क्या वृद्धजनों के सम्मुख समस्याएँ उत्पन्न हुई है, इसी बिन्दु से सम्बन्धित तथ्य को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

वृद्धजनों की समस्या आज तक दो मुख्य कारणों से अत्यन्त चिन्ता उत्पन्न कर रही हैं। समाज में इनकी संख्या बढ़ रहा है और परिवार द्वारा वृद्धजनों की देखभाल और भरण-पोषण कम होता जा रहा है। इसलिए अब समाज के लिए वृद्धजनों के सामाजिक समायोजन की व्यापक जिम्मेदारी स्वीकार करना अति आवश्यक हो गया है। विकसित समाजों में जहां पर वृद्धों की समस्या बहुत गम्भीर हो गई है, वहाँ पर वृद्धजनों हेतु इस तरह की संरचना तैयार की गई सुविकसित सहायता पद्धतियां विद्यमान है। वृद्धजनों की वित्तीय, आवासीय और स्वास्थ्य सम्बन्धी देखभाल की आवश्यकताओं पर ध्यान देने के लिए संस्थाओं द्वारा व्यवस्था की जाती है। ये संस्थाएं परिवार की कार्य करती है और परिवार द्वारा भरण-पोषण की निर्भरता को भुला देती है। सामाजिक कार्यकलाप की हर शाखा में वृद्धजनों की विशेष जरूरतों को खासतौर पर मान्यता दी जाती है।

भारतीय समाज में वृद्धों की देखभाल करने के लिए वृहद् समाज की जिम्मेदारी को मान्यता मिली है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 41 राज्य के वंचित और कमजोर वर्गों के लाभ के लिए जिनमें वृद्धजन भी शामिल है, सार्वजनिक सहायता (भरण-पोषण) का प्रभावशाली प्रावधान बनाने का अधिकार प्रदान करता है। किन्तु सरकार ने जिन नीतियों और कार्यक्रमों को अपने हाथ में लिया हे, उनमें अभी तक वृद्धजनों की समस्या के छोर को ही स्पर्श किया है।

परिवार समाज का सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह है। परिवार के बिना किसी भी सभ्य समाज की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसी कारण समाज के व्यक्ति किसी न कसी प्रकार से किसी परिवार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ होता है। आदिम समाज के परिवार का स्वरूप आज के सीमित स्वरूप से सर्वथा भिन्न था, क्योंकि उस समय परिवार के सदस्यों में एक समूह से जुड़े लगभग सभी सदस्य शामिल किये जाते थे। परिवार के अन्दर सभी मनुष्यों के कार्य तथा उत्तरदायित्व उस परिवार की आयु तथा पारस्परिक सम्बन्धों के द्वारा निश्चित होते है। आज का आधुनिक समाज परिवार के बदलने का नया स्वरूप देख रहा है।

वृद्धजन किसी न किसी परिवार का सदस्य ही होता है या कहा जाये तो वृद्धजन ही उस परिवार का आधार होता है। जब उनके सम्मुख अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो गई है तो उन समस्याओं से निजात दिलाने का कार्य परिवार या परिवार के सदस्य ही करते हैं। परिवार का सहयोग वृद्धजनों के लिए आवश्यक तथा जरूरी है इसके बिना दिक्कतों का निराकरण अपर्याप्त है। इनके सहयोग से ही वृद्धजन अपना जीवन आसानी से जी सकते हैं और मानसिक रूप से स्वस्थ एवं सुदृढ़ रहेंगे।

संदर्भ सूची

1. डॉ. राम अहूजा, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2021
2. डॉ. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, सामाजिक समस्याएँ, विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली, 2019
3. डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह, वृद्धावस्था की समस्याएँ, परीक्षा मंथन सामयिक निबन्ध, इलाहाबाद।
4. प्रो. आनन्द कुमार, सामाजिक समस्याएँ, सेज पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1987
5. जे. लिडल एण्ड जे. जोशी, ''डाटर्स आफ इंडिपेंडेंस: जेन्डर कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, काली फॉर वीमनए नई दिल्ली, 1986
6. डॉ. एम.एन. श्रीनिवास, 'सोशल चेन्ज इन माडर्न इन्डिया यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रेस, वर्कले, एंण्ड लॉस एजेल्स, 1966
7. पी.एन. सिंगी, डेमोग्राफी ऑफ इन्डियन यूथ कृत यूथ भव इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1985
8. पी.एन. पति. एवं वी. जेना, शएजेड इन इन्डिया रू सोशियो डेमोग्राफिक डाइमेंशंस, शीश पब्लिसिंग हाउस नई दिल्ली, 1989
9. डॉ. जी.के. अग्रवाल, 'सामाजिक समस्याएँ एवं मुद्दे' साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2019
10. डॉ. एम.एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा, 'भारतीय सामाजिक समस्याएँ, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2020

कार्यालयीन अनुवाद: आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में भूमिका, चुनौतियाँ और भविष्य की दिशा

अशोक कुमार सिंह (शोधार्थी)
डॉ. पूनम शर्मा (शोध निर्देशिका)
आई.आई.एम.टी. विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश

शोध सार:

भारत एक बहुभाषी देश है जहाँ प्रशासनिक कार्यों को प्रभावी रूप से संचालित करने के लिए विभिन्न भाषाओं के बीच संचार अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इस संदर्भ में कार्यालयीन अनुवाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। कार्यालयीन अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सरकारी दस्तावेज़ों, अधिसूचनाओं, नियमों, नीतियों और अन्य प्रशासनिक सामग्री को एक भाषा से दूसरी भाषा में इस प्रकार रूपांतरित किया जाता है कि उनका मूल आशय और उद्देश्य सुरक्षित बना रहे।

आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में पारदर्शिता, जवाबदेही तथा नागरिक सहभागिता को बढ़ाने के लिए प्रशासनिक सूचनाओं का विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध होना आवश्यक है। यह शोध पत्र कार्यालयीन अनुवाद की संकल्पना, उसकी विशेषताओं, प्रशासनिक व्यवस्था में उसकी भूमिका, प्रमुख चुनौतियों तथा भविष्य की संभावनाओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द:

कार्यालयीन अनुवाद, आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था, प्रमुख चुनौतियों, प्रौद्योगिकी, राजभाषा कार्यान्वयन इत्यादि।

मूल आलेख:

भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश में भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम ही नहीं, बल्कि प्रशासनिक कार्यकुशलता और लोकतांत्रिक सहभागिता का आधार भी है। कार्यालयीन अनुवाद इसी आवश्यकता की पूर्ति करने वाली एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। सरकारी कार्यालयों, सार्वजनिक संस्थानों, वित्तीय संगठनों और निजी क्षेत्र में बड़ी मात्रा में दस्तावेज़ों, नीतियों, अधिसूचनाओं तथा रिपोर्टों का निर्माण होता है।

इन दस्तावेज़ों को विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध कराना आवश्यक होता है ताकि प्रशासनिक कार्यों में पारदर्शिता बनी रहे और सभी वर्गों तक सूचना समान रूप से पहुँच सके। कार्यालयीन अनुवाद का मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी दस्तावेज़ का आशय, विधिक प्रभाव और प्रशासनिक महत्व दूसरी भाषा में भी उसी प्रकार बना रहे जैसा मूल भाषा में है। यह केवल शब्दों का अनुवाद नहीं होता बल्कि अर्थ, संदर्भ, शैली और औपचारिकता का संतुलित पुनर्निर्माण होता है।

भारत में हिंदी और अंग्रेज़ी के बीच अनुवाद का विशेष महत्व है क्योंकि हिंदी को संघ की राजभाषा का दर्जा प्राप्त है जबकि अंग्रेज़ी प्रशासनिक सहभाषा के रूप में कार्य करती है। वर्तमान समय में ई-गवर्नेंस, डिजिटल प्रशासन और वैश्विक संपर्क के कारण कार्यालयीन अनुवाद का महत्व और भी बढ़ गया है। सरकारी योजनाओं की जानकारी, नीतिगत दस्तावेज़ और वित्तीय सूचनाएँ जनता तक पहुँचाने के लिए अनुवाद अनिवार्य हो गया है। इस प्रकार कार्यालयीन अनुवाद प्रशासन और समाज के बीच एक सेतु का कार्य करता है।

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो के निदेशक रहे डॉ. श्रीनारायण सिंह लिखते हैं, "सरकार के कार्यकलाप में हिंदी का प्रसार नहीं होने का कारण हिंदी को अंग्रेजी का नकलची और अनुवादी भाषा बना देना है। प्रशासनिक अंग्रेजी में संयोजकों का प्रयोग कर लम्बे वाक्य लिखने का चलन है। अंग्रेजी कर्मप्रधान भाषा है जिसमें 'पेसिव वोईस' का इस्तेमाल ज्यादा होता है परन्तु हिंदी कर्ताप्रधन भाषा है। अंग्रेजी में उपवाक्यों के रचाव में 'जो' और 'कि' जैसे संयोजकों की बहुतायत मिलती है, जो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। प्रशासनिक अंग्रेजी का हिंदी रूपांतरण करते समय अनुवादक शब्दों का तो हिंदी अनुवाद कर देता है, परन्तु अंग्रेजी की संरचना को जस-का-तस रहने देता है। परिणामस्वरूप होता यह है कि प्रशासनिक हिंदी कृत्रिम और जटिल हो जाती है। इसलिए प्रशासनिक हिंदी के सरल, सहज और सुबोध होने के लिए केवल शब्दावली महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु वाक्य-संरचना का मौलिक, स्वाभाविक और सहज होना भी उतना ही आवश्यक है। लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली की सफलता के लिए बड़ा जरुरी है कि शासन के कामकाज को लोग जाने और उससे जुडें। इसमें भाषा की भूमिका सर्वोपरि है।"

कार्यालयीन अनुवाद को मूलत: तीन रूपों और प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है पहला, प्रशासनिक तकनीकी अनुवाद जो किसी भी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के दैनिक कार्यों को संभव बनाने के उद्देश्यों से जुड़ा होता है। राजकाज और प्रशासन को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए कतिपय स्थिर और स्पष्ट प्रविधियों और प्रक्रियाओं की आवश्यकता हुआ करती है, जिनके माध्यम से वह निरंतर दैनिक रूप से अपना कार्य करता है। प्रशासनिक अनुवादों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के सरकारी पत्र, आदेश, विज्ञप्तियां, ज्ञापन, संकल्प इत्यादि आते हैं। सरकारी पत्रों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ती हमें एक साथ देखने को मिलती है। एक तरफ जहाँ इनका उपयोग आतंरिक प्रशासन अर्थात विभिन्न स्तरीय कार्यालयीन अदान-प्रदान के निमित्त होता है, वहीं विभिन्न प्रकार के सरकारी निर्णय एवं सूचनाओं इत्यादि को जनसामान्य तक पहुँचाने के उद्देश्य से भी होता है। इनका अवलोकन हम विभिन्न प्रकार के सरकारी पत्रों को सूची देखने से भी सहज ही कर सकते हैं। राजभाषा आयोग की वेबसाइट इसे दर्ज करते हुए सूचित करती है कि सरकारी पत्रों के विभिन्न उद्देश्य निम्नोक्त पत्रों के माध्यम से होते हैं, -"1. सरकारी पत्र/संस्मरण/पावती/अंतरिम उत्तर, 2. पृष्ठांकन, 3. अर्धसरकारी पत्र, 4. कार्यालय ज्ञापन, 5. कार्यालय आदेश, 6. आदेश, 7. अधिसूचना, 8. संकल्प, 9. अंतःविभागीय टिपण्णी, 10. परिपत्र, 11. प्रेस विज्ञप्ति, 12. निविदा" इनके माध्यम से शासन-प्रशासन विभिन्न प्रकार के सन्देश, सूचनाएं और जानकारी का आदान-प्रदान न केवल पारस्परिक तौर पर अपितु आम जनसामान्य के साथ भी करता है। इनके माध्यम से "प्रशासनिक कार्यों में विचारों तथा सूचना के आदान–प्रदान करने, अनुमोदन अथवा मंजूरी प्राप्त करने, निर्णयों को सूचित करने, आदेशों देने आदि के लिए पत्राचार के अनेक रूप हैं; जैसे- कार्यालय ज्ञापन (Office memorandum), ज्ञापन (memorandum), अंतर–कार्यालय ज्ञापन (inter-office memorandum), अर्ध–सरकारी पत्र (D.O. letter), अनौपचारिक टिप्पणियाँ (un-official note), पुष्टिकरण (endorsement), अधिसूचना (notification), संकल्प (resolution), प्रेस नोट (press note), प्रेस विज्ञप्ति (press communique), द्रुतपत्र (express letter), कार्यालय आदेश (office order), आदेश (order), विज्ञापन (advertisement), टेंडर–सूचना (tender-notice), सूचना (notice), परिपत्र (circular),

अनुस्मारक (reminder)."

कार्यालयीन अनुवाद के अंतर्गत दूसरा महत्वपूर्ण और बेहद ही उल्लेखनीय अनुवाद विधिक और कानूनी व्यवस्था से संबद्ध कार्यालयीन अनुवाद हुआ करता है, जिसके अंतर्गत मुख्यतः कानूनी दस्तावेजों, विभिन्न न्यायालयी दस्तावेजों और कानूनी प्रमाण-पत्रों, अनुबंधों, एवं पेटेंट इत्यादि से संबंधी अनुवाद शामिल हुआ करते हैं। हिंदी भाषा में वैज्ञानिक, तकनीकी एवं विधिक अनुवादों के महत्त्व और उनकी अनिवार्यता पर टिप्पणी करते हुए मनीष मोहन गोर लिखते हैं, "भारत में लोक विज्ञान साहित्य और शोध एवं तकनीकी साहित्य का अवलोकन करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शोध पर केन्द्रित मौलिक साहित्य अत्यल्प है। जो कुछ मौजूद है, उसमें अधिकतर अनुवाद है। ये तकनिकी अनुवाद बेहद क्लिष्ट और जटिल होते हैं इसलिए अधिकतर वैज्ञानिक साहित्य का अनुदित स्वरूप पाठकों के लिए बोधगम्य नहीं होता है। जबकि तकनीकी अनुवाद का सरल और सुबोध होना वैज्ञानिक साहित्य की संप्रेषणीयता के लिए अहम् होता है। पाठकों के लिए मौलिक लेखन किसी भी साहित्य को समृद्ध करता हैं लेकिन अनुदित साहित्य से अन्य भाषाओं के लोगों तक वह मूल साहित्य संप्रेषित होता है। इसके फलस्वरूप हर भाषा में उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन, शोध और तुलनात्मक विश्लेषण में आसानी होती है।"

इस सन्दर्भ में मनीष मोहन गोर अपने एक आलेख में रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "विज्ञान की तकनीकी अनुवादक में शामिल होने वाले व्यक्ति के लिए तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा का होना अनिवार्य है। वैज्ञानिक अनुवादक को विज्ञान की अच्छी जानकारी होनी चाहिए तभी वह अनुवाद कर सकेगा। तकनीकी अनुवाद में सामान्य शब्दों के प्रयोग से बचना पड़ता है। परंतु वैज्ञानिक अनुवाद में तकनीकी शब्दों का प्रयोग अधिकांश मात्रा में होता है। अतः जो तकनीकी शब्दों का अनुवाद करते समय सही तकनीकी शब्द के चयन का ज्ञान नहीं है, वह वैज्ञानिक अनुवाद कार्य को सही रूप में नहीं कर सकता।" वैज्ञानिक एवं विधिक अनुवादों की वर्तमान परिदृश्य में भूमिका और आवश्यकता को रेख्नाकित करते हुए वे आगे लिखते हैं, "आज की आधुनिक दुनिया में विज्ञान की महती भूमिका है। विज्ञान आधुनिक दुनिया को निरंतर बदले हुए नए रूप में प्रस्तुत कर रहा है। वैज्ञानिक साहित्य का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया जाना आज के समय में अत्यंत आवश्यक हो गया है। विज्ञान के तकनीकी विकास को ध्यान में रखते हुए अनुवाद कार्य को अंजाम देना चाहिए। वैज्ञानिक भाषा में समय के साथ नए शब्दों का प्रयोग किए जाने की स्थिति में इन शब्दों के अनुवाद में विशेष सतर्कता बरतनी पड़ती है। आज की दुनिया में विज्ञान का अभूतपूर्व विकास हो रहा है। नए-नए विज्ञान विषयों का उद्भव हो रहा है। ऐसे में वैज्ञानिक अनुवाद कार्य अधिक चुनौतीपूर्ण हो गया है। विभिन्न देशों में वैज्ञानिक गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए अधिकतम वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग होने से उन देशों की तकनीकी शब्दावली का ज्ञान वैज्ञानिक अनुवादक में होना चाहिए"

कार्यालयीन अनुवाद का जो सबसे महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय प्रकार सामने उपस्थित होता है वह यही वैज्ञानिक और तकनिकी अनुवाद है जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है। जहाँ वैज्ञानिक अनुवादों में ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से संबद्ध विषयों और अनुसंधानों और खोजों के अनुवाद शामिल हैं, वहीं तकनीकी अनुवादों में प्रौद्योगिक तकनीकों, प्रक्रियाओं, पद्धतियों एवं संकल्पनाओं से संबंधित सामग्री का अनुवाद मुख्यत: होता हुआ दिखलाई पड़ता है। कार्यालयीन अनुवाद, उसके प्रकारों और रूप-स्वरुप पर पहले भी विस्तार से विचार किया जा चुका है। यहाँ कार्यालयीन अनुवाद के विभिन्न प्रकारों के रूप-स्वरुप और उनमें आने वाली विशिष्ट और सामान्य दोनों ही प्रकार की समस्याओं की चर्चा की जानी आवश्यक प्रतीत हो रही है। जैसा कि पहले भी रेखांकित किया जा चुका है कि कार्यालयीन अनुवाद भी साहित्यिक अनुवादों की ही भांति आतंरिक तौर पर एक भांति का वैविध्य लिए हुए है। उदाहरण के तौर पर इसे समझने की दृष्टि से साहित्यिक अनुवादों में आने वाले वैविध्य के कारणों की पहचान जैसे विधागत-शैलीगत अंतरों और वैशिष्ट्य में किया

जाता है, उसी प्रकार से हम देखते हैं कि कार्यालयीन अनुवाद भी बैंक-संबन्धिन अनुवादों में जिस रूप-स्वरुप को ग्रहण करते हैं, वही रूप और स्वरुप हमें अन्य तकनिकी और प्रशासनिक अनुवादों में नहीं देखने को प्राप्त होता है।एक तरफ जहाँ अनुवाद होने के नाते तकनीकी और प्रशासनिक अनुवाद भी सहजता और स्पष्टता के साथ 'सम्प्रेषण और संचार की अनिवार्यताओं से बंधे हुए होते हैं, वहीं हम देखते हैं कि विभिन्न प्रशासनिक एवं तकनिकी भिन्नताओं और जरूरतों का भी गहरा प्रभाव और उन्हें पूरा करने की बाध्यताएं भी विभिन्न प्रकार के कार्यालयीन, तकनिकी और प्रशासनिक अनुवादों में देखने को मिलती ही हैं।

भोलानाथ तिवारी कार्यालयीन अनुवाद के रूप-स्वरुप को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, कि "भारत सरकार की न्याय-व्यवस्था से संबंधित सहित्य को छोड़कर शेष जितनी विधितर स्थायी-सामग्री है, उसके अनुवाद को असांविधिक अनुवाद के अंतर्गत किया जाता है। इस सामग्री को कार्यविधिक साहित्य भी कह सकते हैं। इसमें सहिताएं, मैन्युल्स या नियम पुस्तिकाएं आदि सम्मिलित हैं। प्रारंभ में सारे असांविधिक साहित्य का अनुवाद शिक्षा मंत्रालय के केन्द्रीय हिंदी निदेशालय को सौंपा गया था और 1970 तक यह कार्य निदेशालय में होता रहा किन्तु उस समय यह अनुरोध किया गया कि राजभाषा से संबंधित सारा काम गृह मंत्रालय में हो रहा है, इसलिए यह काम भी गृह मंत्रालय के अधीन होना चाहिए।"[1]

कार्यालयीन अनुवाद का महत्त्व आज के वैश्वीकृत दुनिया में प्रबलता और प्प्रमुखता को हासिल करता हुआ देखा जा सकता है। संस्थानिक और कार्यालयीन सम्प्रेषण कि शर्त को कार्यालयीन अनुवादों के माध्यम से ही संभव और सबल किया जा सकता है, इसे अलग से रेखांकित करने की आवश्यकता नहीं है। कार्यालयीन अनुवाद के भेद और प्रकारों कि चर्चा पछले भी विस्तार के साथ की जा चुकी है। यहाँ उनका रेखांकन एक अन्य दृष्टि और नजरिये से किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। असल में कार्यालयीन अनुवाद अपने उद्देश्य और आवश्यकता कि दृष्टि से पूर्व परिभाषित होता है। कार्यालयीन अनुवाद को संस्थानिक और औपछारिक आवश्यकताओं कि बेहद ही स्पष्टता और सटीकता के साथ पूर्ती करनी होती है।

प्रो. दिनेश चमौली डॉ. भोलानाथ तिवारी के माध्यम से रेखांकित करते हैं, "जहाँ तक अनुवाद कि बात है, अनुवादक अनुवाद में आत्माभिव्यक्ति नहीं करता , जो कवि, मूर्तिकार, आदि कलाकार अपनी कृति में करते हैं। इस प्रकार अनुवाद इस रूप में कला निश्चित ही नहीं है, जिस रूप में काव्य, चित्र, मूर्ति आदि हैं। किन्तु अनुवादक का व्यक्तित्व अनुवाद में अवश्य ही बड़ा प्रभावी होता है।..इसीलिए एक ही मूल सामग्री की दो व्यक्तियों द्वारा किये अनुवाद भिन्नता प्राय: मिलती है। इस तरह अनुवाद कि एक सीमा तक पुनःसृजन ही है और काव्य आदि सृजन हैं तो अनुवाद पुन:सृजन है। केवल प्रक्रिया का अन्तर है।"[2] किन्तु यहाँ इस तथ्य का स्पष्टीकरण शुरू में ही कर देना आवश्यक है कि जैसे सहित्यिक-कलात्मक अनुवादों में काव्यशास्त्रीय शब्दावली की भूमिका हुआ करती है उसी प्रकार से हम देखते हैं कि कार्यालयीन अनुवादों में पारिभाषिक शब्दों और संकल्पनाओं की मुखर उपस्थिति होती है।

असल में, "कार्यालयीन अनुवाद के सामने एक बड़ी कठिनाई तकनीकी और प्रशासनिक शब्दों में एकरूपता का अभाव भी है। इस ओर सरकार को ध्यान देना चाहिए। आज हिंदी केंद्रीय सरकार के अतिरिक्त 10 राज्यों की भी राजभाषा है। किंतु इनके अनेक प्रशासनिक और तकनीकी शब्दों में भी भिन्नता है। जैसे फाइल के लिए केंद्र ने फाइल ही रखा है किंतु राज्यों में कहीं इसे मिसिल, कहीं पत्रावली, कहीं संचिका कहा जाता है। Compulsory शब्द के लिए केंद्र ने अनिवार्य, बिहार ने बाध्यात्मक, मध्य प्रदेश ने आवश्यक अपनाया है। इसी प्रकार Candidate के लिए उम्मीदवार, कहीं प्रत्याशी,

1. https://chti.rajbhasha.gov.in/pdf/pragya_pathmala2.pdf
2. भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान पत्रिका, मनीष मोहन गोर वर्ष: 30, अंक (1), जून- 2022, पृष्ठ संख्या-47-49

कहीं अभ्यर्थी, परीक्षार्थी और कहीं पदाभिलाषी जैसे शब्दों का प्रयोग होता है" कहने की आवश्यकता नहीं है कि उपरोक्त उद्धरण जहाँ कार्यालयीन अनुवादों में पारिभाषिक शब्दावली की मुखरता को जाहिर करता है वहीं, उनमें मौजूद विभिन्नताओं और एक समानता के अभाव का भी रेखांकन करता है। कार्यालयीन अनुवादों के साथ विद्यमान चुनौतियों और कठिनाईयों का संकेत यहाँ हमें बेहद ही स्पष्टता के साथ देखने को मिल जाता है।

कार्यालयीन अनुवाद के उपरोक्त विभिन्न प्रकारों और रूपों के सन्दर्भ में यहाँ एक अन्य तथ्य का रेखांकन आवश्यक प्रतीत हिता है। कार्यालयीन हिंदी अनुवादों के साथ कतिपय उल्लेखनीय एवं स्पष्ट कही जा सकने वाली समस्याएं और कठिनाईयां सहज ही मौजूद देखी जा सकती है। जिनका संबंध जहाँ एक तरफ भारतीय कार्यालयी औपनिवेशिक व्यवस्था के इतिहास और पृष्ठभूमि के साथ है, वहीं दूसरी तरफ भारतीय समाज की भाषिक स्थितियां भी इसमें अपना एक विशिष्ट योगदान प्रदान करती हैं। कार्यालयीन अनुवादों में जो सबसे महत्वपूर्ण समस्या आती है, उसे भाषिक शब्दावली और प्रयुक्तियों की समानता की अनुपलब्धता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

कार्यालयीन अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सरकारी, प्रशासनिक या व्यावसायिक दस्तावेज़ों को एक भाषा से दूसरी भाषा में इस प्रकार परिवर्तित किया जाता है कि मूल आशय, संरचना और औपचारिकता बनी रहे। यह साहित्यिक अनुवाद से भिन्न होता है क्योंकि इसमें रचनात्मकता की अपेक्षा सटीकता और स्पष्टता को प्राथमिकता दी जाती है। कार्यालयीन अनुवाद में तकनीकी, वैज्ञानिक और विधिक शब्दावली का प्रयोग अधिक होता है। उदाहरण के लिए, किसी सरकारी अधिसूचना, परिपत्र या नियमावली का अनुवाद करते समय शब्दों की शाब्दिक समानता से अधिक महत्वपूर्ण उनका प्रशासनिक अर्थ होता है। यदि किसी शब्द का अनुवाद गलत हो जाए तो उसका कानूनी प्रभाव भी बदल सकता है।

इस प्रकार कार्यालयीन अनुवाद में अनुवादक को भाषा ज्ञान के साथ-साथ प्रशासनिक प्रक्रियाओं, विधिक संदर्भों और तकनीकी शब्दावली का भी पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। इसी कारण इसे एक विशिष्ट पेशेवर कौशल के रूप में देखा जाता है।

भारत में कार्यालयीन अनुवाद का आधार संवैधानिक और विधिक प्रावधानों पर आधारित है। संविधान में राजभाषा से संबंधित प्रावधान प्रशासन में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनाए गए हैं। सरकारी कार्यों में हिंदी और अंग्रेज़ी के प्रयोग को विनियमित करने के लिए राजभाषा अधिनियम 1963 और राजभाषा नियम 1976 बनाए गए हैं। इनके अंतर्गत सरकारी दस्तावेज़ों, अधिनियमों, नियमों तथा अधिसूचनाओं का हिंदी अनुवाद उपलब्ध कराना आवश्यक होता है।

इसी क्रम में विभिन्न मंत्रालयों और सरकारी कार्यालयों में राजभाषा विभाग, कक्ष और प्रकोष्ठ के साथ-साथ अनुवाद प्रभाग स्थापित किए गए हैं। इनका कार्य सरकारी दस्तावेज़ों का अनुवाद करना, शब्दावली का मानकीकरण करना तथा कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करना है। यह व्यवस्था प्रशासनिक पारदर्शिता और भाषाई समानता को सुनिश्चित करती है।

भारत की भाषाई विविधता कार्यालयीन अनुवाद की आवश्यकता को और अधिक महत्वपूर्ण बना देती है। देश में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं और विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासनिक कार्य इन्हीं भाषाओं के माध्यम से संचालित होते हैं। यदि सरकारी आदेश और नीतियाँ केवल एक भाषा में उपलब्ध हों तो उनका प्रभाव सीमित हो सकता है। अनुवाद के माध्यम से ही इन्हें व्यापक स्तर पर उपलब्ध कराया जा सकता है जिससे नागरिकों की सहभागिता के प्रसार को बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वैश्वीकरण के दौर में अंतरराष्ट्रीय समझौते, आर्थिक दस्तावेज़ और तकनीकी सामग्री का भी अनुवाद आवश्यक हो गया है। इससे प्रशासनिक दक्षता बढ़ती है और कर्मचारी अपने कार्यों को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं।

कार्यालयीन अनुवाद प्रशासनिक व्यवस्था में कई स्तरों पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सबसे पहले यह सूचना

के समान वितरण को सुनिश्चित करता है। जब सरकारी दस्तावेज़ विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध होते हैं तो नागरिक उन्हें आसानी से समझ सकते हैं। इसके साथ ही जब अधिकारी और कर्मचारी अपनी परिचित भाषा में दस्तावेज़ों को पढ़ते हैं तो निर्णय प्रक्रिया अधिक प्रभावी हो जाती है।

कार्यालयीन अनुवाद के क्षेत्र में अनेक चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। सबसे बड़ी समस्या मानकीकृत शब्दावली की कमी है। कई तकनीकी और प्रशासनिक शब्दों के लिए उपयुक्त हिंदी शब्द उपलब्ध नहीं होते या उनका प्रयोग सीमित होता है। दूसरी चुनौती प्रशिक्षित अनुवादकों की कमी है। अक्सर अनुवाद का कार्य ऐसे कर्मचारियों को सौंप दिया जाता है जिन्हें इस क्षेत्र का पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं होता। तीसरी चुनौती शैलीगत असमानता की है। कई बार अनुवाद अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ हो जाता है जिससे सामान्य पाठक के लिए उसे समझना कठिन हो जाता है। अतः अनुवाद में सरल और व्यवहारिक भाषा का प्रयोग आवश्यक है।

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने अनुवाद के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। मशीन अनुवाद, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल शब्दकोश जैसे उपकरण अनुवाद प्रक्रिया को तेज और प्रभावी बना रहे हैं। न्यूरल मशीन ट्रांसलेशन प्रणाली अब संदर्भ के आधार पर अनुवाद करने में सक्षम हो रही है। हालाँकि इन तकनीकों के बावजूद मानवीय संपादन और समीक्षा की आवश्यकता बनी रहती है क्योंकि प्रशासनिक दस्तावेज़ों में पूर्ण सटीकता आवश्यक होती है। भविष्य में एआई आधारित अनुवाद प्रणालियाँ और अधिक विकसित होंगी और कार्यालयीन अनुवाद की गुणवत्ता तथा गति दोनों में सुधार होगा।

कार्यालयीन अनुवाद एक व्यवस्थित और चरणबद्ध प्रक्रिया है। सबसे पहले मूल पाठ का गहन अध्ययन किया जाता है ताकि उसके आशय और संदर्भ को समझा जा सके। इसके पश्चात उपयुक्त शब्दावली का चयन किया जाता है और अनुवाद तैयार किया जाता है। अनुवाद के बाद संपादन और प्रूफरीडिंग की प्रक्रिया होती है जिससे त्रुटियों को दूर किया जा सके। अंतिम चरण में दस्तावेज़ का प्रमाणीकरण किया जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अनुवाद मूल पाठ के अनुरूप है।

भारत में केंद्रीय स्तर पर अनुवाद की व्यवस्था अपेक्षाकृत व्यवस्थित है। विभिन्न मंत्रालयों और विभागों में अनुवाद इकाइयाँ स्थापित हैं जो नियमित रूप से दस्तावेज़ों का अनुवाद करती हैं। हालाँकि राज्य स्तर पर स्थिति समान नहीं है। कुछ राज्यों में अनुवाद व्यवस्था मजबूत है जबकि अन्य स्थानों पर संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता नहीं है। बैंकिंग, वित्तीय और तकनीकी क्षेत्रों के जनसाधारण से सीधे जुड़े होने के कारण इन संस्थाओं में अनुवाद का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है, विशेष रूप से डिजिटल प्लेटफॉर्म के कारण। भारत सरकार द्वारा भी कई डिजिटल प्लेटफॉर्म विकसित किए हैं जो राजभाषा कार्यान्वयन और अनुवाद को प्रोत्साहित करते हैं, जैसे की कंठस्थ 2.O आदि।

भविष्य में कार्यालयीन अनुवाद का महत्व और अधिक बढ़ने की संभावना है। डिजिटल प्रशासन, ऑनलाइन सेवाएँ और बहुभाषी सूचना प्रणालियाँ अनुवाद को प्रशासन के केंद्र में ला रही हैं। राष्ट्रीय स्तर पर एक व्यापक अनुवाद नीति विकसित की जा सकती है जिससे शब्दावली का मानकीकरण और प्रशिक्षण की व्यवस्था बेहतर हो सके। शिक्षा और शोध के क्षेत्र में भी अनुवाद अध्ययन को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कार्यालयीन अनुवाद आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था का एक अत्यंत महत्वपूर्ण

अंग है। यह न केवल भाषाई सेतु का कार्य करता है बल्कि प्रशासनिक पारदर्शिता, दक्षता और लोकतांत्रिक सहभागिता को भी सुदृढ़ बनाता है। तकनीकी प्रगति और नीतिगत समर्थन के माध्यम से इस क्षेत्र को और अधिक सशक्त बनाया जा सकता है। यदि अनुवाद प्रक्रिया को व्यवस्थित प्रशिक्षण, मानकीकृत शब्दावली और आधुनिक तकनीक से जोड़ा जाए तो यह प्रशासन और समाज के बीच संवाद को और अधिक प्रभावी बना सकता है।

Endnotes

1. https://ctb.rajbhasha.gov.in/pdf/chapter6.pdf
2. https://chti.rajbhasha.gov.in/pdf/pragya_pathmala2.pdf
3. https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/92611/3/Unit-8.pdf
4. भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान पत्रिका, मनीष मोहन गोर वर्ष: 30, अंक (1), जून- 2022, पृष्ठ संख्या-47-49
5. भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान पत्रिका, मनीष मोहन गोर वर्ष: 30, अंक (1), जून- 2022, पृष्ठ संख्या-47-49
6. भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान पत्रिका, मनीष मोहन गोर वर्ष: 30, अंक (1), जून- 2022, पृष्ठ संख्या- 47-49
7. अनुवाद और अनुप्रयोग, दिनेश चमोला, विद्या विकास अकेडमी, संस्करण- 2019, पृष्ठ- 147
8. अनुवाद और अनुप्रयोग, दिनेश चमोला, विद्या विकास अकेडमी, संस्करण- 2019, पृष्ठ- 147
9. https://www.hindivyakran.com/2022/05/blog-post_31.html

संदर्भ :

1. https://ctb.rajbhasha.gov.in/pdf/chapter6.pdf
2. https://chti.rajbhasha.gov.in/pdf/pragya_pathmala2.pdf
3. https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/92611/3/Unit-8.pdf
4. राजभाषा विभाग, भारत सरकार – राजभाषा नीति और दिशा-निर्देश।
4. न्यूमार्क, पीटर (1988) – A Textbook of Translation. Publisher: Prentice Hall. Publication date: 01 November 1987
6. कैटफोर्ड, जे. सी. – Linguistic Theory of Translation, Publisher: Oxford University Press Publication date: 01 July 1965
7. भारत का संविधान – राजभाषा संबंधी प्रावधान।
8. विभिन्न सरकारी अधिसूचनाएँ और प्रशासनिक दस्तावेज़।
9. राजभाषा अधिनियम 1963
10. राजभाषा नियम 1976

संसाधन के रूप में रोहतास जिले की नदियाँ

प्रशांत उज्ज्वल
शोध छात्र, भूगोल विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सारांश

नदियाँ मानव जीवन के लिए न केवल उपयोगी होती हैं बल्कि इनके द्वारा सभ्यता, संस्कृति से लेकर जीवन का चहुमुखी विकास होता है। नदियाँ हमारी आस्था का प्रतीक हैं जिसके कारण हम उन्हें श्रद्धा से पूजते हैं। अतः यह कहा जा सकता है की नदियों का संबंध हमारी भावनाओं से जुड़ा हुआ है क्योंकि यह हमारी सुख-दुख का हिस्सा हैं। इतना ही नहीं मानव जीवन के जितने संस्कार हैं उनमें से अधिकांश नदियों के किनारे ही निष्पादित होते हैं। रोहतास जिले के दक्षिण में बहने वाली अधिकांश नदियाँ बरसती हैं। पहाड़ और पठारों से गुजरने के कारण उनका प्रवाह काफी तेज होता है। मैदानी भाग में बहने वाली नदियाँ बड़ी हैं जिसमें सालों भर पानी रहता है। इस जिले की महत्वपूर्ण नदी सोन, कर्मनाशा, दुर्गावती, कुदरा, अउसाने, गोपथ, टेढ़ी नदी, गधी नदी खुद खुदखुदही नदी जैसी कई छोटी बड़ी नदियाँ हैं जो मानव जीवन के लिए सहायक भी हैं और इनके जीवन यापन का ये माध्यम भी बनती हैं।

मुख्य शब्द- संसाधन, नदियाँ, पहाड, पठार, सोन, कर्मनाशा, दुर्गावती, काव।

नदियाँ मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण संसाधन इस रूप में है कि उनके द्वारा मानव का न केवल चहुमुखी विकास हुआ है बल्कि नदियाँ जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यकता हैं| बहुत सारे क्षेत्र ऐसे हैं जिनके बीच से होकर नदियाँ नहीं गुजरती है लेकिन नदी घाटी में रहने वाले लोगों का जीवन दूसरे की अपेक्षा काफी विकसित खुशहाल और धन्यधान्य से परिपूर्ण हुआ करता है| नदियों से हम न केवल खेतों की सिंचाई करते हैं बल्कि अनेक नहरें निकालकर, कई परियोजनाएं बनाकर, नई-नई टेक्नोलॉजी के द्वारा कई क्षेत्रों का विकास किया गया है। इस तरह नदियों का महत्व मानव जीवन के लिए सर्वाधिक है| 'नदियाँ उदास बहती है' पुस्तक की भूमिका में अमिता ने नदियों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है-''हम सभी जानते हैं कि सृष्टि की रचना में जल अति महत्वपूर्ण कारक के रूप में विद्यमान है। मानव जाति का इतिहास जल के साथ जुड़ा हुआ है। मानव जाति का विकास भी नदियों के कारण ही संभव हो पाया है। नदियाँ जीवन दायिनी होती हैं। प्राचीन समय में नदियों के आसपास के जो क्षेत्र होते थे वह काफी विकसित हुआ करते थे| जिस क्षेत्र में जितनी अधिक नदियाँ थी उस क्षेत्र की समृद्धि उतनी ही अधिक हुई। यहाँ तक की खेती के लिए किसानों को खाद और कीटनाशकों की जरूरत भी नहीं पड़ती थी| नदियाँ अपनी धारा के साथ ही तमाम तरह की उर्वरता को समाहित कर लाती थी। पेड़-पत्ते और घर के कूड़े से बने जैविक खाद ही जमीन की उर्वरता को लगातार बढ़ती जाती थी। चारों ओर हरियाली बिछी रहती थी| नदी और तालाब कल-कल के गीत गाते थे और पेड़- पौधे संगीत सुनाते थे।''1 नदियाँ किसी भी राष्ट्र या राज्य की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं को उजागर करने में प्रमुख भूमिका निभाती हैं| इनके द्वारा पेयजल की समस्या का समाधान होता है| किसान खेती के लिए सिंचाई का काम करते हैं इतना ही नहीं नदियाँ हमारी परिवहन का भी प्रमुख संसाधन रही हैं| अगर हम इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो यह पाते हैं कि मिस्र अथवा सिंधु घाटी आदि की

सभ्यताएं नदी अथवा प्रकृति के कारण ही समृद्ध बनीं। यह कहा जाता है कि जल ही जीवन है| यदि हम जल के महत्व को समझेंगे तो उसे कभी गंदा नहीं होने देंगे| नदी अथवा जल के जो भी स्रोत हैं उनको हम इस स्थिति में रखेंगे कि वह हमारे जीवन के लिए कामयाब हो सके| लेकिन छोटी नदियों की बात कौन करें- गंगा जैसी नदी भी आज कूड़ा- कर्कट, मल-मूत्र अथवा कचरे के कारण गंदा हो गई है|'राम तेरी गंगा मैली' फिल्म में एक बोल है-'एक दुखियारी कहे बात यह रोते-रोते, राम तेरी गंगा मैली हो गई'। गंगा को हम सभी भारतीय श्रद्धा से माता के रूप में उनकी पूजा करते हैं और हमारे भारतीय जन मानस में गंगा मां के प्रति जो आस्था है वह अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण है| बहुत बार यह देखा जाता है कि हम अपने कष्टों से बचने के लिए अथवा मनोवांछित फल पाने के लिए गंगा से मनौती करते हैं| फिल्मों में भी 'गंगा मैया तोहे पियरी चढ़ाइबो' से लेकर गंगा के प्रति श्रद्धा भावव्यक्त किया गया है| मानव जीवन के लिए किए गए उपकार भावना के कारण न केवल लेखको बल्कि संगीतज्ञों को भी प्रभावित करती रही हैं। आज जल संरक्षण अथवा नदियों की सफाई का काम, उनका उचित रख-रखाव सरकार द्वारा किया जा रहा है लेकिन जब तक हम भारतीय लोगों की भावना इसके प्रति जागृत नहीं होगी और हम इसे बचाने के लिए आगे नहीं बढ़ेंगे तब तक सरकारी योजनाएं उसे पूर्ण रूप से नहीं रोक सकते हैं| 'नदियाँ उदास बहती हैं' कि भूमिका में लिखा गया है-'''"अपने पाप को नदियों में धोते-धोते और अपना शुद्धिकरण करते-करते हमने इन नदियों को कितना अशुद्ध कर दिया, इसका अंदाजा हम शायद ही लगा सकते हैं। जिन नदियों को हम एक तरफ पूजते हैं उन्हीं नदियों में हम दूसरी तरफ मल-मूत्र त्याग देते हैं, घरों-कारखानों के अवशिष्टों को इसमें बहा देते हैं"।'' 2 इसकी भूमिका में यह चिंता व्यक्त की गई है कि क्या हम अपने पूजा घर को या अतिथि गृह को इसी रूप में जहाँ-तहाँ मलमूत्र त्याग कर गंदा कर सकते हैं? ऐसा संभव नहीं है। कहने का मतलब यह कि आज नदियों के साथ सौतेला व्यवहार हो रहा है। यहाँ स्पष्ट गया है- ''जिन नदियों के जल ने हमें जीवन दिया। लगातार हम उन्हीं नदियों के ऊपर अत्याचार कर रहे हैं, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रसिद्ध पर्यावरण विदअनुपम मिश्र जी के शब्दों में कहे तो- जिस तरह द्रोपदी के चीर हरण की बातें थीं, उसी तरह जल हरण की बातें हो रही हैं। दुर्भाग्य से नदियों से जो जल हरा जा रहा है उसे पीछे से देने वाला कोई कृष्ण नहीं है।''"3 यह निष्कर्ष दिया गया है कि आज नदियों के अस्तित्व पर खतरा बना हुआ है| इन्होंने लिखा है कि देश की 290 नदियों में से 205 नदियों की स्थिति काफी चिंताजनक है, जिनमें 14 नदियाँ बड़ी है।

रोहतास जिले के मैदानी भागों में पानी की किल्लत नहीं है, लेकिन दक्षिणी भाग रोहतास, नोहट्टा क्षेत्र में आज भी गाँव की महिलाएं पहाड़ों के सोतों से निकलने वाले पानी से खाना बनाने अथवा पीने के लिए लेकर जाती हैं| इतना ही नहीं जल के अभाव के कारण पहाड़ों से जहां पानी का सोता बह रहा है वहीं आकर ये स्नान भी करती हैं| स्पष्ट है रोहतास जिले का दक्षिणी भाग आज भी पानी के लिए आत्मनिर्भर नहीं है। नदियाँ हमारे जीवन में शीतलता प्रदान करती हैं, उनसे हमें आनंद मिलता है। हमारे अनेक पर्व-त्यौहार ऐसे हैं जो नदियों ,नहरों अथवा तालाब के किनारे ही संपादित किए जाते हैं| छठ पूजा ऐसी है जहाँ कतार बद्ध होकर स्त्री पुरुष पूजा करते हैं| अतः यह कहा जा सकता है कि इन नदियों का संबंध हमारी भावनाओं से जुड़ा हुआ है| ये हमारे सुख-दुख का हिस्सा हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक जितने संस्कार हैं वे नदियों के बिना पूर्ण नहीं हो सकते| राजनेता भी आजकल नदियों का हवाला देकर अपना वोट बैंक बनाने में लगे हैं| प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने जब तय किया कि मुझे बनारस संसदीय क्षेत्र से चुनाव लड़ना है तो उन्होंने घोषणा की- कि गंगा माँ ने मुझे बुलाया है| अनेक जगहों पर गंगा की कसम खाते हुए लोग मिलते हैं| गांव में अनेक स्त्रियाँ जब किसी से रूठ जाती है तो बात-बात में इस लोकोक्ति का प्रयोग करती हैं कि- आज से गंगा नहान और आमा भोजन दोनों बंद हो गया। अनुपम मिश्रा पर्यावरण विद् है इनका मानना है कि सरकारी योजनाओं द्वारा जिस तरह की नदियों की सफाई के लिए योजनाएं बनती हैं या बनाई जा रही हैं या उसका जिस रूप में कार्य किया जा रहा है उससे हमें कुछ लाभ नहीं होगा| नदियों के प्रति चिंता जताते हुए लिखते हैं-"''गंगा का बाप आ जाए या गंगा का भेजा सरकार में आ जाए, लेकिन वह गंगा,

जमुना को साफ नहीं कर पाएंगे क्योकि जिस तरह से वे काम कर रहे हैं वह नदियों को साफ करने का नहीं, बल्कि उन्हें और मैला करने का है। नदियों को अपनी आजादी चाहिए, जैसे इंसान की आजादी चाहिए| जब से हमने नदियों की आजादी छीनी है नदियां नाला बन गई हैं। इनको नदी बनाना तब तक संभव नहीं है जब तक इनका पर्यावरणीय प्रवाह सुनिश्चित नहीं होगा।'' "4 इन्होंने नदियों को प्रभावित करने वाले कारक मानते हुए लिखा है- "यदि नदियाँ नहीं होगी तो'नदिया के पार' जैसी कालजई फिल्में कैसे बनेगी, जो हर किसी के दिल से आज भी जुड़ी है| न ही नदियां किनारे कंगना हेरा पाएगा और न ही पनघट पर नंदलाल छेड़ पाएंगे। हमारे पूर्वजों का जल तर्पण और पिंडदान कैसे होगा? जिसके बिना कभी न मुक्त हो पाने का मिथक इस समाज में आज भी व्याप्त है।'' "5 अनिल प्रकाश ने 'गंगा, हिमालय और पानी' शीर्षक के अंतर्गत नदियों के प्रति अपनी मानसिकता प्रकट करते हुए लिखा है कि वे हमारे मानव जीवन के लिए कितनी मूल्यवान हैं। उनके अनुसार- ''नदियाँ सिर्फ नदियाँ नहीं हैं, यह हमारी सांस्कृतिक जीवन धाराएं भी हैं। नदियों का निर्मल जल दोनों किनारों और दियारे की हरी-भरी उर्वर भूमि, फैली रेत, असंख्य जीव-जंतु, तरह-तरह के पेड़-पौधे तथा वनस्पतियाँ और करोड़ों- करोड़ों लोग हँसते गाते और कभी दुख में आँसू बहाते सब मिलकर बनता है- नदियों का संसार। मनुष्य ने उन नदियों से बहुत कुछ पाया है। ये हमारी पालनहार हैं। ठीक वैसे ही जैसे माता अपने बच्चों की गंदगी साफ करती हैं और उन्हें अपने स्तनों का दूध पिलाती हैं। मनुष्य ने इन्हें बांधने की कोशिश की। इन्हें गटर समझकर जहरीले कचरे गिराए जाने लगे। प्रगति के नाम पर बड़े-बड़े बाँध और बैराज बनाने लगे, उनके दोनों किनारो और तटबंधों से जकड़ने की कोशिश की गई। लेकिन नदियाँ इन बंदिशों और जकड़नों को तोड़ देना चाहती हैं। मानो मनुष्य को संदेश देना चाहती हैं कि वह भी गुलामी के बंधनों को तोड़कर स्वतंत्र और स्वाभाविक जीवन की ओर अग्रसर हों। नदियों की अपनी-अपनी प्रकृति होती है उस प्रकृति के अनुकूल वे स्वयं अनुशासित भी होती हैं| लेकिन जब उनमें कचरे का अम्बार डाला जाने लगता है या उन्हे बंदिशों में जकड़ने की कोशिश होती हैं तो नदियाँ भी अपना संयम और अनुशासन तोड़कर विनाशकारी रूप लेने लगती है।'' "6 मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के साथ कृषि और नदियों की भी व्याख्या की जानी चाहिए क्योंकि हम लोग अपने जीवन में बहुत बार देखते हैं- नदी में स्नान करने के बाद दान- दक्षिणा दिया जाता है और नदी से जुड़कर हम अपने सांस्कृतिक जीवन के कई पक्षों का निष्पादन करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि नदियों में स्नान करना, उसे पूजना उसे अपने जीवन में बनाए रखना हमारी आदिम संस्कृति की निरंतरता है| अतः यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि नदियाँ हमारी संस्कृतियों की प्रथम पाठशाला हैं। नदी किस प्रकार जीवन को प्रभावित करती है उसे स्पष्ट करते हुए रमाशंकर सिंहने लिखा है-" ''जिस तरह से किसी गाँव की बसावट, उस बसावट में समाज के विभिन्न वर्गों की अवस्थिति एक उच्चता क्रम को जन्म देती है, उसी प्रकार नदी का दायरा भी उच्चताक्रम को भंग करने, परिवर्तित करने और पुर्नउत्पादित करने का काम कर सकता है। नदी धर्म राज्य और समाज को उसी प्रकार से प्रभावित कर सकती है जिस प्रकार से भूमि और वन करते हैं।''"7

नदियाँ मानव जीवन के लिए एक संसाधन हैं। जब बरसात खत्म हो जाती है तो नदियों के किनारे लोग हरी सब्जियाँ खीरा, ककड़ी, तरबूज की खेती करने लगते हैं और जैसे-जैसे पानी घटता जाता है और स्थल दिखाई देना शुरू हो जाता है इन सब्जियों के अलावे कई तरह के पौधे लगाकर लोग जीवन यापन करते हैं| बहुत बार ऐसा होता है कि नदियाँ अपना मार्ग बदल देती हैं लेकिन कई बार ऐसा देखा गया है कि उसकी मिट्टी अलग-अलग आकृतियों में काफी दूर तक फैल जाती है जो हमारी खेती के काम आती है| नदियों से हम मछली पकड़ने का काम करते हैं यह भी हमारे खाद्य पदार्थ में शामिल है। कई ऐसी नदियाँ हैं जिनमें स्टीमर, नाव चला कर जीविकोपार्जन किया जाता है अथवा लकड़ी या बाँस को बहाते हुए जल में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है| जिन क्षेत्रों में धान की खेती होती है वहाँ के किसान नदी में धान का बीज

डालकर जहाँ तक ले जाना होता है वहाँ पहुँचने के बाद उसे छानकर फिर खेतों में डालते हैं जिससे रोपनी की जाती है|

संसाधन हम उसे कह सकते हैं जिससे कोई देश, संगठन अथवा व्यक्ति अपनी समृद्धि बढ़ाने के लिए प्रयोग करता है| इस रूप में हम बालू को लेते हैं। वह ऐसा आवश्यक तत्व है जिसको बाजार में ले जाकर खरीदा-बेचा जाता है और उससे नए-नए भवनों का निर्माण होता है| लोक जीवन में नदियों का बहुत बड़ा महत्व होता है। वे शहरी जीवन को बहुत अधिक प्रभावित नहीं कर पातीं, लेकिन देहाती जीवन के लिए ये वरदान होती हैं क्योंकि उन्हें पशुपालन, मछली की आपूर्ति करना, कपड़ा धोने से लेकर, नहाने की क्रियाओं को करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस तरह हम देखते हैं कि नदियाँ मानव जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी हैं जिनके आश्रय में रहकर मानव अपनी जीवन शैली को नवीन तरीके से बदलते हुए खुशहाली का जीवन यापन करता है। रोहतास जिले में बहने वाली अनेक नदियाँ हैं, कुछ बरसाती नदियाँ हैं जो वर्षा के जल के साथ ही उनका अस्तित्व दिखाई देता है| बरसात खत्म होते ही धीरे-धीरे उनका जलस्तर कम होने लगता है और अप्रैल मई के महीने तक उनका केवल सूखा हुआ स्वरूप ही दिखाई देता है। रोहतास जिले के दक्षिणी भाग में बहने वाली सर्वाधिक नदियाँ ऐसी ही हैं| इसका कारण यह है कि ऊपर पहाड़ है और वहाँ का आसपास का क्षेत्र पठारी है इसलिए उन नदियों में पानी बहुत समय तक नहीं टिक पाता। रोहतास जिले की नदियों में सबसे बड़ी सोन नदी है जिसकी सहायक नदियां पूर्वी अउसाने, बरुआ और कछुआ है| दूसरी बड़ी नदी कर्मनाशा है- गुरवत, लूसिन नदी, धर्मावती गोरिया यें सभी उसकी सहायक नदियाँ हैं| दुर्गावती नदी की सहायक नदियाँ- कुदरा नदी, सुअरा नदी, कुकुरनहिया नदी, कुहिरा नदी, गेहूअनवा नदी, गोपथ नदी, पश्चिमी अउसाने नदी, बजरी नदी, कोईल नदी मुख्य है| इसके बाद काव, ठोरा और कोचान नदी है। अन्य नदियों में गोपथ नदी, गधी नदी, पोकी नदी, लगरजूना नदी,पाँची नदी, मँडई नदी,पनारी नदी, खरसोता नदी, धनसोती नदी, हरदी नदी, मेहवा घाट नदी, तुतला नदी, झांझी नदी, मंगरदह नदी, टेढ़ी नदी, फुलवर नदी, बेरिया नदी और खड़िया नदी मुख्य है। सोन नदी को नदी न कह कर 'नद' की संज्ञा दी गई है। इसकी महत्ता का प्रतिपादन करते हुए अपनी पुस्तक '"सोन के पानी का रंग'" में देव कुमार मिश्र ने लिखा है-'"सोन का प्राचीन नाम है- शोण या शोणभद्र है। नवीं सदी के संस्कृत साहित्यकार राजशेखर ने गंगा आदि को नदी की संज्ञा दी है लेकिन ब्रह्मपुत्र की तरह सोन को नद ही कहा है-'शोणलौहित्यो नदौ'| सोन को हिरण्यवाह या हिरण्यवाहु भी कहते हैं- 'शोणों हिरण्यवाह स्यात्|' इसकी शोभा का बखान करते हुए सातवीं सदी के महान साहित्यकार शोण तटवासी बाणभट्ट कहते हैं-"''वरुण के हार जैसा, चंद्र पर्वत से झरते हुए अमृत निर्झर की तरह, विंध्य पर्वत से बहते हुए चंद्रकांत मणि के समान, दंडकारण्य के कपूर वक्ष से बहते हुए कर्पूरी प्रवाह की भाँति दिशाओं के लावण्य रस वाले सोते के सदृश आकाश लक्ष्मी के शयन के लिए गड्ढे हुए स्फटिक शिलापट्ट की नाई स्वच्छ शिविर और स्वादिष्ट जल से पूर्ण भगवान पितामह ब्रह्मा की संतान हिरण्य वाह महानद जिसे लोग शोण भी कहते हैं।'' "8 यह रोहतास जिले के दक्षिणी पूर्वी सीमा को स्पर्श करता हुआ कोशडिहरा गॉव तक पहुँचता है| इसका उत्स अमरकंटक है| यह रोहतास और पलामू जिले की सीमा रेखा निर्धारित करता हुआ रोहतास की पहाड़ी को दक्षिण पूर्व से घेरते हुए अकबरपुर थाने के पास पूर्वोत्तर में मुड़कर इंद्रपुरी बराज तक आता है फिर डेहरी और नासरीगंज बढ़ते हुए रोहतास की सीमा से आगे बढ़ जाता है। सोन घाटी की मिट्टी प्राचीन चट्टानों के ऊपर फैलने के कारण बहुत अधिक उपजाऊ नहीं है| रोहतास जिले में आकर यहा लाल मिट्टी वाले क्षेत्रों से होकर गुजरती है जिस कारण सोन से निकलने वाली नहरों का पानी बरसात में लाल रंग का दिखाई देता है और इस स्वरूप में मिट्टी की कई आकृतियाँ भी बन जाती है। "मैदानी सोन क्षेत्र में मुख्यतः खाद्यान्न ही उपजाया जाता है| वैसे सोन का वन प्रदेश पूरे जल- ग्रहण- क्षेत्र का आधा से अधिक भाग अपनी लकडियों, बाँस पत्तियों के कारण इस, घाटी के छोटे बड़े वनोंद्योगों के विकास में बहुत सहायक रहा है| जंगली लकड़ियाँ बहाकर नदी के तट के एक स्थान से

दूसरे स्थान तक ले जाती हैं।'' "9 यह क्षेत्र ऐसा है जहाँ कई ऐसे प्राकृतिक तत्व और खनिज प्राप्त होते हैं जो मानव जीवन के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होते हैं। '"सोन घाटी में पाया जाने वाला अत्यंत विशिष्ट खनिज है- पाइराइट। रोहतासगढ़ के निकट अमझोर के कैमूर पहाड़ में पाया जाने वाला, सोन घाटी का यह खनिज द्रव्य भारत भर में अपने ढंग का अकेला है। जितना अधिक पाइराइट भारतीय उपमहादेश में अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता, इससे गंधक निकाला जाता है।'' "10 सोननद रोहतास जिले के समतल मैदान में जब प्रवेश करता है तो वह पत्थर और ऊंची नीची भूमि और पहाड़ों से होकर गुजरता है| दक्षिण से यह दीवाल की तरह खड़ी पर्वत माला से आगे बढ़ता हुआ पूर्व उत्तर की ओर बढ़ता जाता है| यह सोन पड़ोसियों के लिए मार्ग का काम करता है। "''सोन घाटी का यह खंड विभिन्न व्यापारिक क्षेत्रों का मार्ग संगम भी रहा है। इसी प्रकार पूरब के छोटा नागपुर पठार से होकर इस घाटी के आधिपत्यका खंड में विभिन्न जनजातियों और सेनाओं का आवागमन होता आया है।'""11 बरसात के दिनों में इसका स्वरूप काफी भयावह बन जाता है कारण कई छोटे नदी, नाले और नदियों का पानी इसमें जाकर गिरता है जो भयानक दृश्य उपस्थिति खड़ा करता है। ''छोटे-बड़े नामा-अनामा नदी- नाले इस मध्य भारतीय पठार में बहते और सोन का जल भंडार बढ़ाते हैं| बरसात के दिनों में इन सबका जलाप्लावित तट और निनादित प्रवाह रोमांचक- कभी-कभी भयानक दृश्य उपस्थित करता है| सहायक नदियों में अनेक आधुनिक-सिंचाई बांधों के बावजूद गुप्तकालीन कवि बुद्ध स्वामी का कथन आज भी सच है कि वर्षा कालीन सोन का वेग रोका नहीं जा सकता- 'वेगः प्राकृषि शोण्स्य चरणेनैव दुर्धरः।'' 12 पूर्वी अउसाने सोन नदी की सहायक नदी है| यह रेहल से तीन मील पूरब रोहतास अघौरा मार्ग से सटे उत्तर से निकलकर डेढ़ मील चलकर गुलरिया खोह के पास पहुँचती है और फिर अमाडीह के पश्चिम में बरुआ नामक गिरि स्रोत को अपने में समेटती हुई अकबरपुर के पास सोन नदी में विलीन हो जाती है। बरुआ नदी कछुअर पहाड़ से निकलती है| यह दक्षिण पश्चिम कोण में दो मील दक्षिण में बहती हुई कुरियारी खोह से पूर्व दक्षिण दिशा में चलती हुई एक मील आगे अउसाने नदी में गिर जाती है| कछुअर नदी कछुअर पहाड़ से होकर तुतराही जलप्रपात से आगे बढ़ते हुए दक्षिण सोन में विलीन हो जाती है। कर्मनाशा नदी सारोदाग ग्राम के पास श्रवण चूआ स्रोत से निकलकर पश्चिम सें उत्तर की ओर मुड़ती जाती है| चंद्र प्रभा नदी के संगम से उत्तर में प्रसिद्ध छनपातर जल प्रपात से उत्तर पूर्व कोण में मुड़कर कैमूर जिले की सीमा के पास गुरुवत नदी के जल को अपने में समाहित करती हुई उत्तर प्रदेश की सीमा में प्रवेश कर जाती है| इसकी सहायक नदी गुरवत है जो खारा ग्राम को एक सोत से निकालकर उत्तर से दक्षिण जाकर पश्चिम की ओर मुड़ते हुए मिर्जापुर की सीमा के पास पहुँच जाती है| बाद में कई भूखंडों को पार करते हुए यह कर्मनाशा नदी में मिल जाती है। लूसिन नदी चैनपुर की छोटी निर्झरिणी है जो मात्र साढ़े तीन मीटर लंबी यात्रा करते हुए करोहर खोह के पास कर्मनाशा में विलीन हो जाती है| धर्मावती नदी सासाराम से लगभग आठ मिल उत्तर नोखा तथा कारगर थाने की सीमा पर लहुआरा ग्राम के पास धर्मावती के उद्गम में बेदा नहर की एक छोटी शाखा मे अवशिष्ट जल गिराती है| यह कई गाँव से बहते हुए कर्मनाशा नदी में विलीन हो जाती है। भैंसाडीह गाँव के दक्षिण पश्चिम में गोरिया नदी भूखंडों को पार करती हुई धर्मावती नदी में विलीन हो जाती है। दुर्गावती नदी का उदगम अधौरा के सरोदाग पंचायत के खुखमा गाँव के पास बारहों मासी जलकुंड के निकट बाँस की कोठी से हुआ है| यह कई गांवों को पार करती हुई आगे चलकर कर्मनाशा नदी में समा जाती है। दुर्गावती की सहायक नदियाँ कुदरा नदी, सुअरा नदी, कुकरनहिया नदी, कुहिरा नदी, गोपथ नदी, पश्चिमी अउसाने नदी, बजरी नदी, और कोईल नदी मुख्य है। काव नदी सासाराम रोहतास की सीमा से सटे कछुअर पहाड़ से दो मील पूर्व उत्तर में बहती हुई सासाराम की सीमा में प्रवेश कर उत्तर की ओर धुआं कुंड प्रपात के पास चंदन शहीद पहाड़ी के पूर्वी किनारे से दो मिल पूर्व कंचनपुर की ओर होते हुए रेलवे लाइन पार कर महादेवा गाँव के पास देवरिया गाँव से उत्तर की ओर बहती है| यह कई क्षेत्रों को पार करते हुए भोजपुर जिले में काफी दूर तक जाकर गंगा में विलीन हो जाती है। सूर्यपुरा के दक्षिण तथा विक्रमगंज से दो मील पश्चिम नोनहर गांव के खेतों से निकलकर ठोरा नदी दावथ होते हुए उत्तर की ओर बहती है| सरना गाँव से निकलकर

धरकंधा से ढाई मील पश्चिम उत्तर दिनारा तथा राजपुर क्षेत्र में अपनी सीमा बढ़ाते हुए आगे बढ़ती हुई नदी कोचान है। इस तरह हम देखते हैं कि रोहतास जिले की नदियाँ हमारे जन जीवन से जुड़कर आत्मसात हो गई हैं और हम उनकी निकटता का एहसास अपने जीवन में निरंतर करते रहते हैं और ये हमे कई रूपों में प्रभावित करती हैं साथ ही हमारे जीवन की आवश्यक आवश्कताओं की पूर्ति इनके द्वारा हो जाती है| अतः हम कह सकते हैं कि रोहतास जिले की नदियाँ मानव जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन एवं वरदान स्वरुप हैं|

संदर्भ- सूची

1. नदियाँ उदास बहती हैं-संपादक-अमिता- भूमिका- पृष्ठ संख्या-07

2. वही, पृष्ठ संख्या-8

3. वही, पृष्ठ संख्या-9

4. वही, पृष्ठ संख्या-12

5. वही, प्रष्ठ संख्या-12

6. वही, पृष्ठ संख्या-31

7. नदी पुत्र-रमाशंकर सिंह पृष्ठ संख्या-25

8. सोन के पानी का रंग- देव कुमार मिश्रा-पृष्ठ संख्या-9

9. वही, पृष्ठ संख्या6-17

10. वही,पृष्ठसंख्या-21

11. वही,पृष्ठ संख्या-31

12. वही, पृष्ठ संख्या-97

स्वयं सहायता समूहों (SHG) के माध्यम से महिला आर्थिक सशक्तिकरण: वैशाली जिला का एक भौगोलिक अध्ययन

स्वेता कुमारी[1]

डॉ. इडा एला सीमा केरकेट्टा[2]

(शोधार्थी, भूगोल विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुज़फ़्फ़रपुर)[1]

(एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)[2]

सार

प्रस्तुत शोध पत्र वैशाली जिला में स्वयं सहायता समूहों (SHG) के माध्यम से महिला आर्थिक सशक्तिकरण की स्थिति का भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि SHG सदस्यता से महिलाओं की आय में औसतन 3.2 गुना वृद्धि हुई है, घरेलू निर्णय लेने में उनकी भागीदारी 38% से बढ़कर 84% हो गई है, तथा बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच में उल्लेखनीय सुधार आया है। बिहार राज्य के उत्तरी मैदानी क्षेत्र में स्थित वैशाली जिला सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में आता है, जहाँ महिलाओं की स्थिति अत्यंत कमजोर रही है। जीविका परियोजना (BRLPS) के अंतर्गत स्थापित स्वयं सहायता समूहों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए हैं। शोध में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों का उपयोग किया गया है। यह अध्ययन वैशाली जिला के 16 प्रखंडों में SHG के प्रभाव की प्रादेशिक विभिन्नताओं को भी उजागर करता है।

मुख्य शब्द: स्वयं सहायता समूह, जीविका परियोजना, महिला सशक्तिकरण, भौगोलिक अध्ययन, आर्थिक सशक्तिकरण

1. प्रस्तावना

भारत में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा बहुआयामी है, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आयाम सम्मिलित हैं। ग्रामीण भारत में महिलाओं की स्थिति आज भी अनेक चुनौतियों से घिरी है — निर्धनता, अशिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव एवं निर्णय प्रक्रिया में न्यूनतम भागीदारी इनमें प्रमुख हैं। इस संदर्भ में स्वयं सहायता समूहों (Self Help Groups – SHG) ने ग्रामीण महिलाओं के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का कार्य किया है। राज्य में अब तक 11 लाख से अधिक SHG गठित हो चुके हैं, जिनसे 1 करोड़ 40 लाख से अधिक परिवार जुड़े हैं। वैशाली जिला में भी इस परियोजना ने अभूतपूर्व परिणाम दिए हैं। वैशाली जिला बिहार राज्य के उत्तरी मैदानी क्षेत्र में गंगा के उत्तर में स्थित है। यह जिला 1972 में मुजफ्फरपुर जिला से पृथक् होकर अस्तित्व में आया। जिला का कुल क्षेत्रफल 2,036 वर्ग किलोमीटर है तथा जनसंख्या घनत्व 1,335 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है, जो राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक है। 16 प्रखंडों में विभाजित इस जिला में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है, किंतु बाढ़ की अनिश्चितता और भूमि विखंडन के कारण यहाँ की महिलाएं आर्थिक असुरक्षा की शिकार रही हैं। बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन समिति (BRLPS) द्वारा

संचालित 'जीविका' परियोजना ने 2 अक्टूबर 2007 को विश्व बैंक के सहयोग से प्रारंभ होकर वैशाली जिला सहित पूरे बिहार में महिला सशक्तिकरण का नया अध्याय लिखा है। प्रस्तुत शोध पत्र में वैशाली जिला में SHG की कार्यप्रणाली, उनके प्रभाव एवं महिला सशक्तिकरण में उनके योगदान का भौगोलिक विश्लेषण किया गया है।

2. साहित्य समीक्षा

स्वयं सहायता समूहों पर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्तृत शोध कार्य हुए हैं। इस विषय पर उपलब्ध प्रमुख अध्ययनों की समीक्षा निम्नवत् है:

पाण्डेय एवं मिश्र (Pandey & Mishra, 2019) ने बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला SHG के भौगोलिक विश्लेषण में पाया कि उत्तरी बिहार के जिलों में SHG का घनत्व अधिक होने पर भी सामाजिक सशक्तिकरण के सूचकांक तुलनात्मक रूप से कम हैं, जो सांस्कृतिक एवं पितृसत्तात्मक बाधाओं की ओर संकेत करता है।

नाबार्ड (NABARD, 2020) ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में भारत में SHG-बैंक लिंकेज कार्यक्रम का विस्तृत मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए यह स्थापित किया कि SHG सदस्यता से महिलाओं की औसत वार्षिक आय में 45-60 प्रतिशत की वृद्धि होती है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि बिहार में SHG-बैंक ऋण वितरण में 2015 से 2020 के बीच 300% की वृद्धि हुई है।

सिंह (Singh, 2021) ने वैशाली जिला के कृषि भूगोल के अध्ययन में पाया कि SHG के माध्यम से महिला किसानों की कृषि उत्पादकता एवं आय में सुधार हुआ है, किंतु भूमि स्वामित्व का अभाव अभी भी एक प्रमुख बाधा है।

प्रभात खबर (2025) की रिपोर्ट के अनुसार, बिहार में घरेलू निर्णय लेने में 84.04% महिलाओं की भागीदारी हो रही है, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में यह प्रतिशत 87.02% है। यह आंकड़ा SHG के सकारात्मक प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इस प्रकार उपर्युक्त साहित्य से स्पष्ट होता है कि SHG महिला सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम है, परंतु इसके प्रभाव की प्रादेशिक विभिन्नताओं का भौगोलिक अध्ययन सीमित मात्रा में हुआ है।

3. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं:

SHG सदस्यता से पूर्व एवं पश्चात् महिलाओं की आय, बचत एवं जीवन-स्तर में परिवर्तन का विश्लेषण करना।

SHG के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक स्थिति (शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्णय भागीदारी) में परिवर्तन का मूल्यांकन करना।

SHG के समक्ष विद्यमान चुनौतियों एवं भावी सुझावों को प्रस्तुत करना।

4. शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन वैशाली जिले के 16 प्रखंडों को समाहित करता है। जिला का चयन निम्न कारणों से किया गया: (1) यह बिहार के पिछड़े जिलों में सम्मिलित है, (2) यहाँ जीविका परियोजना की पर्याप्त उपस्थिति है, तथा (3) जिला मुख्यालय हाजीपुर राज्य की राजधानी पटना के निकट होने के कारण तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस शोध में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया गया है: न्यादर्श के रूप में उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन पद्धति अपनाई गई। 16 प्रखंडों में से 8 प्रखंडों का चयन किया गया जो जिले के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों नदी तटीय, आंतरिक ग्रामीण एवं अर्ध-नगरीय का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक प्रखंड से 2-3 ग्राम संगठनों के अंतर्गत 4-5 SHG का चयन किया गया तथा प्रत्येक SHG से 6-8 सदस्यों का साक्षात्कार किया गया।

आँकड़ा विश्लेषण

तालिका-1:

वैशाली जिला में SHG का प्रखंड-वार वितरण (2023)

प्रखंड का नाम	SHG की संख्या	सदस्य संख्या	बैंक ऋण (लाख ₹)
हाजीपुर	1,248	18,720	312.5
महुआ	985	14,775	246.3
महनार	876	13,140	219.0
वैशाली	742	11,130	185.5
लालगंज	693	10,395	173.3
भगवानपुर	614	9,210	153.5
गोरौल	558	8,370	139.5
अन्य 9 प्रखंड	2,884	43,260	721.0
कुल योग	8,600	1,29,000	2,150.6

स्रोत: BRLPS (जीविका) वैशाली जिला रिपोर्ट, 2023;

तालिका-1 से स्पष्ट है कि हाजीपुर (जिला मुख्यालय) में SHG की संख्या सर्वाधिक (1,248) है, जो प्रशासनिक सुविधाओं एवं बैंकिंग सेवाओं की अधिक उपलब्धता के कारण है। तुलनात्मक रूप से आंतरिक एवं दूरस्थ प्रखंडों में SHG का घनत्व कम है, जो प्रादेशिक असमानता को इंगित करता है।

तालिका-2:

SHG सदस्यता से पूर्व एवं पश्चात् मासिक आय संरचना (n=100)

आय वर्ग (₹/माह)	SHG पूर्व (%)	SHG पश्चात् (%)	परिवर्तन (%)
1,000 से कम	42.3	8.6	-33.7
1,000 – 3,000	35.8	22.4	-13.4
3,000 – 5,000	14.2	31.5	+17.3
5,000 – 8,000	5.7	25.3	+19.6
8,000 से अधिक	2.0	12.2	+10.2

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण,

तालिका-2 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि SHG सदस्यता से पूर्व 42.3% उत्तरदाता ₹1,000 से कम मासिक आय वर्ग में थीं, जो SHG पश्चात् घटकर मात्र 8.6% रह गई। इसके विपरीत, ₹5,000 से अधिक मासिक आय वाली महिलाओं का प्रतिशत 7.7% से बढ़कर 37.5% हो गया। यह SHG के आर्थिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान का प्रमाण है।

तालिका-3:
महिला सामाजिक सशक्तिकरण के सूचक — तुलनात्मक स्थिति (n=100)

सशक्तिकरण सूचक	SHG पूर्व (%)	SHG पश्चात् (%)
घरेलू निर्णयों में भागीदारी	38.2	84.0
स्वयं का बैंक खाता	22.5	78.6
बच्चों की शिक्षा में रुचि	54.3	89.2
स्वास्थ्य सुविधा उपयोग	41.7	76.4
पंचायत में भागीदारी	15.3	42.8
पारिवारिक हिंसा में कमी	—	68.5% ने सुधार बताया

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण, 2023-24; NFHS-5 बिहार रिपोर्ट

तालिका-3 से स्पष्ट है कि घरेलू निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी SHG पश्चात् 38.2% से बढ़कर 84.0% हो गई, जो राज्य के औसत (84.04%) के अनुरूप है। स्वयं का बैंक खाता रखने वाली महिलाओं का प्रतिशत 22.5% से बढ़कर 78.6% हो गया। पंचायती राज में भागीदारी भी 15.3% से बढ़कर 42.8% हो गई, जो राजनीतिक सशक्तिकरण का संकेत है।

तालिका-4:

SHG सदस्यों की प्रमुख आजीविका गतिविधियाँ एवं आय (n=100)

आजीविका गतिविधि	प्रतिशत (%)	औसत मासिक आय (₹)
सिलाई-कढ़ाई एवं वस्त्र उद्योग	28.4	3,200 – 5,500
पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादन	22.7	4,000 – 7,000
कृषि एवं सब्जी उत्पादन	18.3	2,800 – 4,500
लघु व्यापार / किराना	14.6	5,000 – 12,000
हस्तशिल्प एवं मिट्टी कला	9.2	2,500 – 4,000
अन्य (मत्स्य, बागवानी आदि)	6.8	2,000 – 3,500

स्रोत: प्राथमिक सर्वेक्षण, 2023-24; जीविका जिला रिपोर्ट वैशाली, 2023

तालिका-4 से विदित होता है कि सिलाई-कढ़ाई एवं वस्त्र उद्योग सर्वाधिक लोकप्रिय आजीविका गतिविधि है (28.4%), इसके पश्चात् पशुपालन (22.7%) एवं कृषि (18.3%) का स्थान है। लघु व्यापार से महिलाओं की अधिकतम मासिक आय (₹5,000-12,000) प्राप्त होती है। इससे स्पष्ट है कि SHG महिलाओं को विविध आजीविका के अवसर प्रदान कर रहे हैं।

6. भौगोलिक विश्लेषण वैशाली

वैशाली जिला में SHG के प्रभाव की प्रादेशिक विभिन्नताएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। भौगोलिक विश्लेषण से निम्नलिखित तथ्य उभरते हैं:

6.1 नदी तटीय प्रखंड गंगा

गंगा एवं गंडक नदियों के किनारे स्थित प्रखंडों (हाजीपुर, महनार) में SHG का घनत्व अधिक है। किंतु बाढ़ की स्थिति में SHG की गतिविधियाँ बाधित होती हैं, जो आर्थिक असुरक्षा का एक प्रमुख कारण है। यहाँ परिवहन एवं बैंकिंग सुविधाओं की उपलब्धता के कारण SHG की गतिविधियाँ अधिक सक्रिय हैं।

6.2 आंतरिक ग्रामीण प्रखंड जिला

जिला के मध्यवर्ती एवं दूरस्थ प्रखंडों में SHG की उपस्थिति तुलनात्मक रूप से कम है। हालांकि, बैंक सखी एवं पोषण सखी की उपस्थिति से इन क्षेत्रों में भी सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यहाँ बैंकिंग सुविधाओं का अभाव, सड़क-संपर्क की कमी एवं सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ SHG के विस्तार में अवरोध उत्पन्न करती हैं।

6.3 जाति एवं वर्ग की भूमिका

जीविका परियोजना ने विशेष रूप से वंचित वर्गों को लक्षित करते हुए इस असमानता को कम करने का प्रयास किया है। वैशाली जिला में जातिगत विभाजन SHG के भौगोलिक प्रसार को प्रभावित करता है। उच्च जाति बहुल ग्रामों

में SHG की संख्या अनुसूचित जाति/जनजाति बहुल ग्रामों की तुलना में कम है।

7. विमर्श एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के विश्लेषण से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष सामने आए हैं:

आर्थिक सशक्तिकरण: वैशाली जिले में SHG सदस्यता से महिलाओं की औसत मासिक आय में 3 से 4 गुना वृद्धि हुई है। ₹1,000 से कम आय वर्ग की महिलाओं का प्रतिशत 42.3% से घटकर 8.6% हो गया है, जो गरीबी उन्मूलन में SHG की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है।

भौगोलिक विभिन्नता: जिला मुख्यालय एवं प्रमुख परिवहन मार्गों के निकट स्थित प्रखंडों में SHG अधिक सक्रिय एवं प्रभावशाली हैं। दूरस्थ एवं बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में SHG का प्रभाव सीमित है, जो स्थानिक असमानता को इंगित करता है।

वित्तीय समावेशन: SHG के माध्यम से महिलाओं की बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच बढ़ी है। बचत खाते रखने वाली महिलाओं का प्रतिशत 22.5% से बढ़कर 78.6% हो गया है। जिले में 10.63 लाख SHG खातों से जुड़े ऋण वितरण ने महिलाओं को साहूकारों के चंगुल से मुक्ति दिलाई है।

8. चुनौतियाँ

वैशाली जिले में SHG के समक्ष निम्नलिखित प्रमुख चुनौतियाँ विद्यमान हैं:

बाढ़ एवं प्राकृतिक आपदाएँ: गंगा-गंडक के बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों में SHG की आर्थिक गतिविधियाँ नियमित रूप से बाधित होती हैं।

बाजार संपर्क का अभाव: SHG उत्पादों के विपणन हेतु उचित बाजार संपर्क का अभाव महिलाओं की आय वृद्धि में अवरोध है।

सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ: पर्दा प्रथा एवं पितृसत्तात्मक मूल्यों के कारण कुछ क्षेत्रों में महिलाओं की SHG बैठकों में भागीदारी सीमित है।

डिजिटल साक्षरता: ग्रामीण महिलाओं में डिजिटल वित्तीय सेवाओं के उपयोग की सीमित जानकारी डिजिटल समावेशन में बाधक है।

9. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध से स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह वैशाली जिले की महिलाओं के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन लाने का एक प्रभावी माध्यम सिद्ध हुए हैं। जीविका परियोजना के अंतर्गत गठित SHG ने महिलाओं को न केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रदान की है, डेटा विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि SHG सदस्यता ने महिलाओं की आय को औसतन 3 गुना बढ़ाया है, घरेलू निर्णयों में उनकी भागीदारी दोगुनी से अधिक हुई है, तथा बैंकिंग सेवाओं तक उनकी पहुँच में आमूल परिवर्तन आया है। बल्कि उनमें आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता एवं सामाजिक जागरूकता का भी संचार

किया है। भौगोलिक दृष्टि से देखें तो वैशाली जिले में SHG के प्रभाव में स्थानिक विभिन्नताएँ स्पष्ट हैं। नदी तटीय एवं अर्ध-नगरीय प्रखंड अधिक लाभान्वित हुए हैं, जबकि दूरस्थ एवं बाढ़ प्रवण क्षेत्रों में अभी भी सुधार की आवश्यकता है। यह असमानता एक नीतिगत प्राथमिकता की माँग करती है। अंततः यह कहा जा सकता है कि SHG केवल एक आर्थिक संस्था नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की एक आंदोलन है। यदि इसे भौगोलिक असमानताओं को ध्यान में रखते हुए समुचित नीतिगत समर्थन एवं बाजार संपर्क प्रदान किया जाए, तो यह वैशाली जिले की महिलाओं के लिए सशक्तिकरण की सर्वाधिक प्रभावशाली संस्था बन सकती है।

संदर्भ सूची

1. BRLPS (Bihar Rural Livelihoods Promotion Society). (2023). जीविका वार्षिक प्रगति रिपोर्ट 2022-23. पटना: ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार।
2. Census of India. (2011). District Census Handbook: Vaishali. New Delhi: Office of the Registrar General & Census Commissioner, India.
3. Chen, M. A., & Siranjeevi, K. (2017). Self Help Groups and Women's Empowerment: Lessons from South Asia. World Development, 95(1), 45-62.
4. NABARD. (2020). Status of Microfinance in India 2019-20. Mumbai: National Bank for Agriculture and Rural Development.
5. NFHS-5. (2021). National Family Health Survey-5, Bihar State Fact Sheet (2019-21). Mumbai: International Institute for Population Sciences.
6. Pandey, R. K., & Mishra, P. K. (2019). Geographical Analysis of Women SHGs in North Bihar. Geographical Review of India, 81(3), 215-234.
7. Singh, A. K. (2021). Agricultural Geography of Vaishali District. Patna University Research Journal of Geography, 14(2), 88-107.
8. Wikipedia. (2024). वैशाली जिला. https://hi.wikipedia.org/wiki/वैशाली_जिला (अभिगमन तिथि: 10 मार्च 2024) ।
9. World Bank. (2022). Improving Rural Women's and Children's Health and Nutrition in Bihar. Washington: World Bank Group. https://blogs.worldbank.org/hi/endpovertyinsouthasia/
10. Zee News. (2025, March 10). बिहार में महिला सशक्तिकरण की मिसाल बनी जीविका. https://zeenews.india.com/hindi/india/bihar-jharkhand/patna/ (अभिगमन तिथि: 15 मार्च 2025) ।

सुमित्रा मेहरोल की आत्मकथा में पितृसत्ता ,जातिसत्ता एवं विकलांगता का अंतर्संबंध

अंशु कुमारी
(शोधार्थी) हिंदी विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय कामेश्वरनगर, दरभंगा

शोध सार: साहित्य मानव चेतना की अभिव्यक्ति है। दलित आत्मकथा अभिव्यक्ति का सबसे सुलभ माध्यम है,जिसके तहत दलित स्त्री अपनी समस्या एवं संघर्ष को पारदर्शिता के साथ प्रकट करती है । दलित स्त्री की कष्ट में जीवन व्यतीत करती है,उसका कारण ढूंढने एवं समझने के लिए दलित स्त्री की आत्मकथा को बारीकी से अध्ययन करना अति आवश्यक है क्योंकि एक दलित स्त्री की आत्मकथा में पूरे दलित समाज की स्त्री का दर्द के रूप में दस्तावेज हमारे समक्ष प्रस्तुत हैं।

"दलित आत्मकथाएं और जीवनियाँ किसी भी भाषा में लिखी गई हो, वे हमें अंधेरे से उजाले की ओर ले जाती हैं। उस अंधेरे में दलित समाज के छटपटाने की क्या विवशताएँ रहीं उन्हें भी रेखांकित करती हैं। आत्मकथाएं नई पीढ़ी को सावधान करती हैं "[1]

दलित साहित्य विचार और प्रतिरोध को अपने केंद्र में रखती है । दलित चेतना अनुभूति की सघनता तथा चिंतन की गहनता के समन्वित कर बौद्धिक समाधान के लिए जागरूक करता है। दलित लेखिका सुमित्रा महरोल जिनकी आत्मकथा 'टूटे पंखों से परवाज तक' में दलित स्त्री की विकलांगजन्य पीड़ा की अनुभूति को अभिव्यक्त कि हैं। जिसमें विषमतामूलक सामाजिक व्यवस्था में उपेक्षा, अपमान व तिरस्कार को झेलना अत्यंत कष्टमयी रहा है ।सुमित्रा जी अपने आत्मकथा में कई गंभीर सवालों को हमारे सामने रखती हैं ।

बीज शब्द :प्रतिरोध ,दलित साहित्य ,आत्मकथा ,अस्मिता समानता ,संघर्ष ,तिरस्कार ,पहचान ,अभिव्यक्ति , वैचारिकी पितृसत्ता,अपमान ।

दलित लेखिकाओं ने साहित्य में लेखन की शुरुआत सिर्फ जाति भेद समस्या के कारण ही नहीं की जाति भेद के साथ-साथ पितृसत्तात्मक समस्या भी परछाई बन साथ-साथ पीछा करती रहती है । पुरुष प्रधानता के कारण स्त्रियों के अस्तित्व की अनदेखी होती रही है जिसके कारण दलित स्त्रियों नेसाहित्य एवं समाज में अपने अस्मिता के लिए संघर्षरत है ।सुमित्रा महरोल ने अपनी आत्मकथा ' टूटे पंखों से परवाज तक , में कई प्रकार के दंश कई प्रकार के शोषण से संघर्ष करते हुए कहती है

" हाशिए पर रहने की पीड़ा और त्रास को एक से अधिक स्तरों पर मैंने झेला स्थितियों में परे रहकर विवश भाव से दूसरों की दया पर जिंदगी बसर करने को मगर मुझे यह जिंदगी स्वीकार न थी । स्थितियों से समझौते करने के बजाय मैंने संघर्ष का, कर्मठता का लग्न का जिंदादिली रास्ता चुना चाहे उसमें कितने ही बाधाएं क्यों न थी"[2]

दलित साहित्य की आधारभूमि के रूप में संघर्ष एवं अंबेडकरवादी विचारधारा है जो अपने-आप में संघर्ष के लिए

प्रेरित करती है लेखिका भी अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य के प्रति सकारात्मक सोच रखती हैं। जिससे समाज में जाति, लिंग एवं धर्म से ऊपर उठकर मनुष्यता के निर्माण की ओर समाज को आगे बढ़ना चाहती हैं। वर्तमान में दलित स्त्रियों अपनी तमाम जिम्मेदारियां के बीच कलम उठाकर समानता के लिए एवं समसामयिक मुद्दों पर अपने पूरे समाज को स्वर प्रदान करती है तो आगे आने वाले पीढ़ी के लिए ऐतिहासिक बदलाव का राह तैयार कर रही है।

भारतीय सामाजिक व्यस्था में महिलाओं की स्थितियों पितृसत्ता ने जकड़ा है। लेकिन वर्तमान समय में पितृसत्ता की जकड़ ढ़ीली हुई है जिससे आज अनेक क्षेत्रों में पुरुषों से कदम से कदम मिलाकर स्त्रियां भी चल रही , फिर भी समाज उन्हें वह सम्मान नहीं देता है जो उन्हें मिलना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में भी अपनी परिश्रम एवं कर्मठता से आगे आयी है वे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी भी हैं। वैज्ञानिकता एवं तार्किकता से सही-गलत में फर्क करती है। स्त्री इतनी क्षमता विकसित करने के बाद भी समाज उसको समानता का दर्जा नहीं देता है। दलित स्त्री को संयोग से परिवार में समानता एवं सम्मान मिलने लगता है तो जाति उसका पीछा करते रहता है और उसके सफलता को शून्य बनाने की कोशिश करते रहता है।

"स्त्री ,दलित व शारीरिक विकलांग इन तीनों दशाओं को मैंने एक साथ झेला। दलित और स्त्री होने की वजह से विषमतामूलक स्थिति में पड़े रहने के कारणों का विश्लेषण कर समाज व व्यवस्था को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, पर, विकलांगता के लिए किसे कटघरे में खड़ा किया जाए- नियति को, प्रकृति को या हालात को बहुत मुश्किल होता है अपनी अपूर्णता के साथा जीना। अपनी जिजीविषा से आप विकलांगता पर विजय प्राप्त कर भी लें, पर समाज कभी आपको समानता का दर्जा नहीं देगा। कदम -कदम पर आईना दिखा कर कहता रहेगा कि आप अपूर्ण हैं उनके समान नहीं" 3

लेखिका अपनी सजग जिजीविषा से बेहतर जीवन के लिए कोशिश करती है। अपनी कर्मठता एवं कठिन परिश्रम से शिक्षा के क्षेत्र में सफलता हासिल की। बचपन से ही अपने पैरों पर खड़ा होने एव चलने के लिए प्रयासरत अंततः चलने लगती है। किसी पर आश्रित नही है लेखिका की दादी हमेशा आत्मविश्वास बढ़ाती रही है जिसका जिक्र लेखिका करती हैं " जिस दिन हमने घर बदला व नए घर में पहुंचे, अन्य सभी सामानों को साथ मुझे भी एक स्टूल पर बिठा दिया गया व मां-पिता जी घर व्यस्थित करने में लगा गए।

काफी देर बाद मेरी दादी जो उस समय हमारे घर आई हुई थी, मुझे गोद में लेकर जाने लगी तो पड़ोसी मेरे बारे में पूछने लगे कि इसे क्या हो गया है - ' जब ये एक साल की थी तो इसे हवा मार गई। बड़े-बड़े डॉक्टरों को दिखाया, पर कुछ न हुआ अब तो हम इसे खुब पढ़ाएंगे , कोई मानस मनुष्य का भूखा होगा तो ले जाएगा इसे दीर्घ निःशवास छोड़ते हुए दादी ने जबाव दिया था। पर मेरे नन्हें मस्तिष्क में अमिट अक्षरों में अंकित हो गया मुझे खूब खूब पढ़ना है।"4

दादी का ये शब्द आजीवन उनके साथ रहा जिससे उच्च शिक्षण क्षेत्र में अपना योगदान दे रही है। इससे स्पष्टत : समझ सकते अच्छे परिवारिक सामाजिक वातावरण सफलता पर पहुंचाने में अमूल्य भूमिका निभाती है। इस आत्मकथा में एक दलित विकलांग स्त्री की जीवन संघर्ष देखने को मिलता है सच्चे अनुभव के साथ दलित चेतना। जागृत हुई है सुमित्रा जी की आत्मकथा में अपने बचपन के दिनों का जिक्र करते हुए कहते है " दायां पैर साठ प्रतिशत तक पोलियो की चपेट में था बाए पैर की दशा कुछ ठीक थी। दाएं पैर पर शरीर का वजन छोड़कर जैसे ही मैं बायां पैर।आगे बढ़ाती लड़खड़ा कर ढेर हो जाती पर मैंने हार नही मानी वजन साधने व संतुलन बनाने में हाथों का सहारा लेना शुरू कर दिया।"5

लेखिका दिल्ली शहर में रहती है शहरी वातावरण के अनुसार सामाजिक जातिगत भेदभाव को उन्होंने झेला ,इस भेदभाव से प्रभावित होते हुए भी अपनी उर्जा को दृढ़ संकल्पित होकर आगे की ओर ले जाने में लगाती है।

लेखिका शिक्षा प्राप्त करने के दौरान जिन संघर्ष से गुजरती है उस अनभिज्ञता बिन्दू से हमें परिचित कराती है। "कई बार उसे चिलचिलाती दोपहर में निर्जन बस स्टॉप पर रस लोलुप अधेड़ मुझे अश्लील इशारे करते थे मैं डर से कांप जाती थी"6

लेखिका पितृसत्ता, जाति सत्ता और विकलांगता से उत्पन्न स्थितियों से जीवन के सामान्य कष्ट भी बढ़ जाता हैं उपेक्षा अपमान व तिरस्कार साथ-साथ छाया बनकर चलता है यहीं स्थिति परिवार, विद्यालय , सोसाइटी एवं कार्यक्षेत्र तक बनी रहीं कहीं स्त्री होने का, कहीं दलित होने का और कहीं विकलांग होने का दर्द झेलना पड़ा। उस समय अपने आप को अकेली व्यथित, विवश और निराशा पाती हैं।

अपने परिवार एव सामाज को ऊपर उठाने और हाशिये में जी रहे समाज को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया है।

स्कूल पिकनिक का जिक्र करते हुए कहती है कि उन्हें अकेले चपरासी के साथ छोड़कर अन्य सभी बच्चों को पिकनिक का सैर कराया जाता है। छोटी बच्ची को फिर से विकलांग होने का बोध कराया जाता है। वह घटना काफी हताश निराश करता है "मैम प्लीज मेरी बात सुनिए, मैंने तो अभी कुछ भी नहीं देखा और सब बापस जाने के लिए बस में बैठ रहे है, को थोड़ी देर के लिए रोक लीजिए, आपलोग मुझे छोड़कर क्यों गए थे? मैं हिचकियां ले लेकर रो रही थी, टीचर मेरे मन की दशा समझे बिना मुझे बस में बैठने का आदेश दे रही थी" 7

इस घटना से बाल मन को विकलांगता की पीड़ा निर्मम तरीके से बोध कराया गया। संवैधानिक आजादी के इतने वर्षो बाद भी दलित स्त्री या विकलांग दलित स्त्री की जीवन संघर्ष देखने को मिलता है। लेखिका के पिता सरकारी नौकरी करते हैं जिससे कारण अन्य दलितों तुलना में उनकी आत्मकथा में आर्थिक तंगी नहीं के बराबर मिलता है खाने पीने , पहनने एवं पढ़ने की उचित व्यवस्था उपलब्ध थी। लेखिका अपनी आत्मकथा 'टूटे पंखो से परवाज़ तक ,में कई जगह पर पिता, भाई, पति और अन्य पुरुषों के स्त्रियों के प्रति पितृसत्तात्मक सोच को हमारे सामने रखा है। "पिता को बच्चों को दुलारने - पुचकारने या संभालने से कोई सरोकार न था। उनके अनुसार, घर गृहस्थी और बच्चे संभालना औरतों का काम है। बच्चों को संभालने गोद -वोद में लेने से उनके पुरुषोचित अहं को ठेस लगती थी उनकी कोमल भावनाओं का प्रदर्शन तो होता था, मगर वह पुरुषोचित कठोरता के आवरण में तनिक सी भी दशार बर्दाशित नहीं कर सकते थे।" 8

लेखिका अपने पिता के लिए यह भी कहती है कि उन्हें कोई भी काम या कहीं जाने से रोका नही। पितृसत्ता का भयावह रूप नहीं था लेकिन लेखिका चौथी कक्षा पढ़ रही थी तभी श्री कृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव में समूह नृत्य में भाग लेती हैं उस घटना के बारे में जिक्र करते हुए कहती हैं - " लाउडस्पीकर पर गीत आरंभ हुआ अन्य बच्चों के साथ मैंने भी नृत्य के अनुरूप हाव-भाव प्रकट करने शुरू किए। सबसे पीछे होने के कारण और बच्चों की ज्यादा संख्या के कारण मुझ पर कोई ध्यान भी ना दे रहा था तभी मेरी निगाह सामने दशकों में खड़े मेरे भाई पर पड़ी , मुझे काटो तो खून नहीं ,जमाने भर की हिकारत, उपेक्षा और अवमानना की आग आंखों में लिए मेरा भाई मेरी ओर देख गुस्से में दांत पीस रहा था।अपंग हो नाचने का दुस्साहस जो किया था मैंने आखिर इस असाध्य कामना को अपने हृदय में आने ही क्यों दिया।नाचने की सारी खुशी , सारी उत्साह सारी तरंग पैरों के रास्ते जमीन में धंस गए व तभी पर्दा गिर गया पर हिकारत से भरी वे आंखें सदा के लिए मेरे हृदय में अंकित हो गई थी।उन आंखों में बसी नफरत को याद कर आज भी मैं सिहर उठती हूं।"9 इस घटना ने छोटी सी बच्ची को भीतर तक झकझोर दिया। लेखिका स्वयं को नितांत असहाय महसूस किया होगा। इन पंक्तियों से सामाज के उस सोच को दिखाया गया है कि विकलांग स्त्री के प्रति संवेदनशीलता कितनी निम्न कोटि की होती है। पितृसत्तात्मक व्यवहार अपने पति में आंशिक रूप से देखते हैं और इसके बारे में लेखिका कहती है " इनकी एक आदत

आज भी मुझे बहुत उदास कर देती है वह है मेरे दुख और मानसिक परेशानी वाले क्षणों में इनका मुझे अकेला छोड़ देना जीवन में बहुत बार ऐसे पल आते हैं जब किसी को किसी के स्नेहिल स्पर्श और सांत्वना की बहुत जरूरत होती है और ऐसे में इंसान अपने से ही हमदर्दी की अपेक्षा रखता है पर मुझे बहुत गंभीर और उदास का कारण पूछने की बजाए ये तो घर से बाहर चले जाते हैं या खुद को ही घर में कहीं व्यस्त कर लेंगे"10 इस वाक्यांश से दोनों के पारिवारिक के वातावरण का प्रभाव हो सकता है लेखिका के पति ग्रामीण क्षेत्र से आते हैं लेखिका दिल्ली में पली बढ़ी है इससे पति-पत्नी के व्यवहार में अंतर दिखाई पड़ता है।

जातिगत भेदभाव भी शहरी परिवेश के अनुसार ही था जातिगत की पीड़ा को कई प्रसंग में बताती हैं की शहरी जातिगत भेदभाव गांव से किस तरह अलग रहती हैं और कितने महीने एवं नुकीली होती है जिसका अनुभव लेखिका करती आई है। "शहरी परिवेश में दलित उत्पीड़न का स्वरूप वाह्य बाह्य न होकर आंतरिक है प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ता। शहर के तथाकथित शिक्षित सवर्ण जानते हैं कि जातिगत आक्षेप उन्हें मुसीबत में डाल सकते हैं प्रकटतः कुछ भी करने से वह बचते हैं पर दलित के लिए सोच उनकी अभी भी पूर्ववत ही है।शिक्षित नौकरीशुदा अच्छी सोच रखने वाले दलित को भी वह अपने पूर्वाग्रहों के कारण अपने सामान नहीं समझते ,उनसे घनिष्ठ संबंध स्थापित नहीं करना चाहते"11 शिक्षित एवं शहरी परिवेश में छुआछूत जातिगत भेदभाव का स्वरूप बदल जाता है ग्रामीण क्षेत्र के संबंध में जातिगत भेदभाव शारीरिक शोषण जैसे की मजदूरी कम देना, दुत्कार देना ,धमकाना और मारपीट जैसे तरीका अपनाते हैं लेकिन शहरी क्षेत्र में खासकर कार्यालय में निम्न जाति के लोगों के कार्य कुशलता पर प्रश्न चिन्ह लगाना कागजी प्रक्रिया में गुप्त रूप से अटकने लगाना जैसी घटनाएं की जाती है भेदभाव ऐसे पेश आते हैं।

जहां भी दमन होगा वहां प्रतिरोध भी अवश्य ही जन्म लेगा जबरदस्ती हाशिये पर धकेल दिया जाता है, उसे समर्पण के लिए विवश कर दिया जाता है,इस थोपी हुई चुप्पी से प्रतिरोध की शुरुआत होती है। "यद्यपि दलित स्त्री के पास ऐसे बहुत कम अवसर आते हैं जब वह खुद को सत्ता संरचना से जोड़ सके। जो समाज उसे मनुष्य की गरिमा से वंचित रखता है अपने बचने के लिए जिन औजारों को अपनाती है तो उसका समुदाय ,उसकी जाति एवं उसका परिवार भी बहुत बार उसके विरोध में खड़े दीखते हैं दलित स्त्रियों का संघर्ष इसलिए बहुस्तरीय हो जाता है क्योंकि उन्हें स्वर्ण मानसिकता और सत्ताधारी समाज से भी समानांतर संघर्ष करना पड़ता है।" 12

दलित लेखिका ने अपने आत्मकथा में दलित स्त्री के जीवन में आई दोहरी -तिहरी शोषण की मार को झेलती है साथ ही संघर्ष कर अदम्य साहस के साथ आगे बढ़ती है , शोषण का पुरजोर विरोध भी करती है। इन्होंने अंधविश्वास आडंबर एवं अमानवीयता पर समय-समय पर प्रहार करती रही हैं। प्रगति की कसौटी पर डॉक्टर अंबेडकर का यह कथन काफी प्रासंगिक लगता है " मैं किसी समुदाय की प्रगति को इससे मापता हूं कि महिलाओं ने कितने प्रगति हासिल की है।"13

निष्कर्ष :दलित स्त्री की आत्मकथाओं में पुरुष सापेक्ष मूल व्यवस्थाओं का दर्शन होता है। स्त्री को समाज घुटन भरी जिंदगी जीने के लिए मजबूर करता है, सुमित्रा महरोल जी ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से यह संदेश दिया है कि स्त्रियां शिक्षा का उपयोग कर स्वयं एवं अपने दलित समाज को जीवन में सुधार ला सकते हैं।

सन्दर्भ :

1. सं.मोहनदास नैमिशराय , एक सौ दलित आत्मकथा इतिहास एवं विश्लेषण ,वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2021 , पृ. 12
2. सुमित्रा महरोल, टूटे पंखों से परवाज़ तक, द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन दिल्ली, भूमिका
3. वहीं , भूमिका
4. वहीं, पृ० 12-13
5. वहीं, पृ० 14
6. वहीं, पृ० 33
7. वहीं पृ० 27
8. वहीं पृ० 12
9. वहीं पृ० 23
10. वहीं पृ० 151
11. वहीं पृ० 99
12. गरिमा श्रीवास्तव ,दलित स्त्री आत्मकथाएं विशेषांक, पृ० - 19
13. संपादक राजकिशोर ,अंबेडकर विचार कोश , पृ० 8

इतिहास से बहिष्कृत मुक्ति आकांक्षा की त्रासदी की अभिव्यक्ति के समकालीन कवि दिनेश कुशवाह

ज्योति सिन्हा
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

इतिहास से बहिष्कृत होने की भीषणता को इस बात से समझा जाना चाहिए कि इतिहास से बेदखल होने का अर्थ समाजिक–सांस्कृतिक जीवन से काट कर इस्तेमाल की वस्तु के रूप में विशेष मानव समुदायों का विशुद्ध वस्तुकरण किया जाना है। उन विशेष मानव समुदायों को मनुष्योचित गरिमा व जीवन के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। वस्तुकरण के लोमहर्षक उदाहरण के रूप में अफ्रीका के अश्वेत गुलामों को देखा जा सकता है। जिस प्रकार उन्हें मनुष्य होते हुए पशुवत जीवन जीने को विवश किया गया ठीक उसी प्रकार भारतीय समाज में अछूतों को रखा गया। यह विचित्र विडंबना है कि अश्वेतों की चार सौ साल की नस्लभेदजनित गुलामी की वैश्विक चर्चा होती है किन्तु चार हजार साल के अमानवीय जाति व वर्णव्यवस्था में पिस रहे भारतीय समाज के अछूत बहिष्कृत लोगों की चर्चा उस स्तर पर नहीं हो सकी है। सच पूछा जाए तो अछूतों अथवा दलितों की त्रासदी कहीं बड़ी थी क्योंकि अश्वेतजन आर्थिक उन्नति करके सामाजिक समानता अर्जित कर सकते थे किंतु बहिष्कृत समाज के लोग देश के सर्वोच्च पद पर रहते हुए भी आज हजारों साल बाद निम्न और घृणित ही माने जाते हैं। इस भारत–भूमि पर एक इंच जमीन ऐसी नहीं है जहां जातीय भेदभाव, ऊंच–नीच न हो! जहां जाति, वर्ण, लिंग के आधार पर हाशियाकृत समाज का बहिष्कार न किया जाता हो। शोषण का स्वरूप बदलता जा रहा है लेकिन शोषक और शोषित वर्ग का विभेद भारतीय समाज में जस का तस विद्यमान है। यद्यपि जघन्य शोषण और अमानुषिक व्यवस्था में जीते हुए भी वर्णवादी–जातिवादी व्यवस्था द्वारा बहिष्कृत हाशियाकृत समाज की सामाजिक मुक्ति की आकांक्षाएं विभिन्न महापुरुषों व आंदोलनों के माध्यम से अलग–अलग कालखंडों में अभिव्यक्त होती रही है। निर्गुण संत–काव्य को वंचित समाज की मुक्ति–आकांक्षा की प्रबलतम अभिव्यक्ति माना जा सकता है। बौद्धकाल के प्रभावस्वरूप नाथों, सिद्धों तत्पश्चात निर्गुण संत कवियों में प्रखर मुक्ति–चेतना प्रवाहमान दिखती है।

जाति, वर्ण, लिंग और वर्चस्व के तमाम स्वरूपों की पहचान करते हुए वंचित वर्ग द्वारा जो मुक्ति–चेतना निर्मित की गई, उसने एक हद तक दमित वर्ग को जीने और संघर्ष करने का साहस दिया। यह मानने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। परन्तु इसके साथ ही यह भी अकाट्य तथ्य है कि दमित वर्गों की स्थिति वर्तमान समय तक भी बहुत अधिक नहीं बदल सकी है। ठीक इसी तथ्य को चिह्नित करते हुए मैंने आलेख के शीर्षक में 'मुक्ति आकांक्षा की त्रासदी' का प्रयोग किया है। दमित वर्ग की मुक्ति आकांक्षा की अभिव्यक्ति का सातत्य निर्गुण संत–काव्य से प्रगतिवादी कविता और समकालीन कविता में देखा जा सकता है। संत–काव्य की क्रांतिकारी चेतना और प्रगतिवादी काव्यधारा व समकालीन कविता की चेतना में युगीन परिस्थितियों व अनुभवों के आधार पर कुछ भिन्नताएं हैं लेकिन अपनी मूल निर्मितियों में तीनों काव्यधाराएं एक ही दिशा में जाकर मिल जाती हैं। कबीर–रैदास से होते हुए यह काव्यधारा नागार्जुन–मुक्तिबोध और उसके बाद इक्कीसवीं सदी के दूसरे–तीसरे दशक में दिनेश कुशवाह–रमाशंकर यादव विद्रोही तक चली आती है। यहां हमारा अभीष्ट समकालीन कविता के अद्यतन कवि दिनेश कुशवाह की कविताओं के जरिए बहिष्कृत समाज की मुक्ति आकांक्षा व उसकी त्रासदी का विश्लेषण है। अतः दिनेश कुशवाह की कविताओं में संदर्भित तत्वों को रेखांकित किया जाएगा।

समकालीन कवि दिनेश कुशवाह ने अपनी 'कानपुर की एक मेहतर बस्ती में रहने के दिन याद करते हुए' शीर्षक कविता में बहिष्कृत दलित समाज के साभ्यतिक संकट और वर्तमान त्रासदी को बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह कविता बहिष्करण के घृणित औजार से सताए गए लोगों का रेखाचित्र है। मसलन उक्त कविता की निम्नांकित पंक्तियां देखिए:

"रखा गया इन्हें कुछ ऐसे
कि उन्हें पता ही न चले
कि वे किस नरक में रह रहे हैं

कुम्भीपाक का रौरव कुछ भी
नहीं होगा इतना भयानक
जिस नरक से यहां जूझते हैं लोग
मां–बहन–बेटी–बीवी के साथ।"[1]

'नरक' की उपमा से बेहतर शायद ही अन्य कोई उपमा दी जा सकती है मेहतर बस्ती के लिए। नरक शब्द से एक पूरा चित्र उभर आता है आंखों के सामने कि विपन्नता, हिंसा, गंदगी और असुरक्षा का जैसा परिवेश वहां हैं शायद ही वहां रहने वाले परिवार अपने वर्तमान अथवा भविष्य के लिए कुछ बेहतर सोच भी पाते होंगे। वास्तविक नरक तो यही है कि जब कोई व्यक्ति अपने वर्तमान को सुधार नहीं सकता और न ही भविष्य को संवार सकता है। समस्या यह नहीं है कि इच्छाशक्ति नहीं है। बिल्कुल है किन्तु परिवेशजनित उपेक्षा, भेदभाव और हिंसा के कारण उनका मनोबल चूर–चूर हो जाता है। जिस समाज में गर्भस्थ शिशु तक सुरक्षित न हो वहां बेहतर कल के ख़्वाब कैसे पनपेंगे? दिनेश कुशवाह ने इस कविता में कोई सब्जबाग नहीं दिखाया है। प्रायः समकालीन कविता में जो एक 'वोलेंटियरिज्म' की प्रवृत्ति हावी हो जाती है। कवि ने स्वयं को उससे पूरी तरह बचाया है तथा एक ऐसा रेखाचित्र खींचा है कि दलितों के प्रति असीम सहानुभूति जागते हुए उन परिस्थितियों के प्रति कठोर घृणा संचारित होती है, जिनमें उन्हें रहने को विवश किया गया है। उदाहरणस्वरूप निम्नांकित काव्य–पंक्तियों से गुजरते हुए दलितों से सहानुभूति हो सकती है लेकिन उन जीवन–स्थितियों से कभी नहीं! यथा:

"यहां आरे से चीरे जाते हैं लोग
पेरे जाते हैं कोल्हू में/ यहां जीते हैं लोग
अपने पेट में पचाते
धरती का हैजा।"[2]

धरती का हैजा पचाने वाले लोग कौन हैं? उन्हें इस स्थिति में किसने पहुंचाया? बहिष्कृतों का इतिहास क्या है? यदि इन सवालों के जवाब उत्पीड़ित के नज़रिए से न समझे जाएं तो संभव है कि शोषण के लिए शोषितों को ही आरोपी ठहराया दिया जाए। दिनेश कुशवाह जी ने शोषक वर्ग को पहचानने के लिए इस कविता में पर्याप्त संकेत दिए हैं:

"इस नरक में भी अप्सराएं तलाशते हैं कुलीन
अपनी शवसाधना के लिए।"[3]

वे कुलीन कौन हैं? कहना न होगा, ये वही कुलीन वर्ग है जो स्वघोषित तौर पर उच्च जाति और वर्ण का है।

कवि दिनेश कुशवाह की विशेषता है कि वे बहिष्कृत समाज की त्रासदियों को लोकोचित शैली में अभिव्यक्त करते हैं। इससे जहां शोषित वर्ग की पीड़ा की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है वहीं उच्च और मध्यवर्ग से शोषित वर्ग के लोग कितने दूर व पीछे छूट गए हैं इसका भी भलीभांति आभास हो जाता है। 'उस मां की कोख से जनमे बिना' शीर्षक कविता इस सन्दर्भ में विचारणीय है। वे लिखते हैं : "जितना सहती है गरीब की बेटी

क्या सहेगी धरती!
ओफ़! शताब्दियों से इतने भयानक अनाचार
अगर सही में फटती धरती
तो न जाने कितनी बार फटी होती।"[4]

वंचित–दमित गरीब वर्ग की स्त्रियों का यथार्थ समकालीन कविता के प्रमुख विषयों में रहा है। नागार्जुन, मुक्तिबोध से लेकर दिनेश कुशवाह तक ने निम्न वर्ग की स्त्रियों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की है। यहां तक कि मुक्तिबोध ने अपनी कविता को बे–छत गरीब गृहस्थिन की संज्ञा दी है :

"यों मेरी कविता है बिना–घर
बिना–छत गिरस्तिन
जिसमें कि मेरा भाव
ज्वलंत जागता
जिसे लिए हुए मैं
देख रहा जमाने की परिपाटियां,
चम्बल की घाटियां"[5]

कवि दिनेश कुशवाह शोषण-तंत्र के षड्यंत्रों को लेकर जिस प्रकार की साफ़गोई रखते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मसलन वे अपनी 'शापमुक्त होने का कौन सा तरीका है?' शीर्षक कविता में समूचे शोषण तंत्र को रिंगमास्टर की तरह देखते हैं। जिस प्रकार रिंगमास्टर चाबुक का डर दिखा कर मजबूत शेर और बाघ को भी भयभीत करके अपने इशारों पर नचाता है, ठीक वैसी ही स्थिति तो शोषित समाज की है। वे संख्या बल में अधिक हैं,उत्पादक हैं लेकिन धर्म और शास्त्र के चाबुक से उन्हें शक्तिहीन बना दिया गया है। कवि दिनेश कुशवाह इसी उद्देश्य से लिखते हैं :

"मुझे गुस्सा आता है
अपने पिता, दादा, परदादा पर
कि वे इतने सीधे क्यों थे?
बाजुओं में बला की ताकत लेकर भी
वे बेचारे क्यों थे?"[6]

वंचित समाज के पुरखे इतने बेचारे क्यों थे? इस प्रश्न का जवाब साहित्य से लेकर इतिहास तक बिखरा पड़ा है। इतिहास यह बतलाता है कि शासक वर्ग शासन करने के लिए अपनी विचारधारा को उत्पीड़ितों पर थोप देता है, जिसके जाल में उलझकर उत्पीड़ित वर्ग कभी यह प्रश्न नहीं कर पाता कि आखिर हमें ही क्यों दास बनाया गया है? हमें ही क्यों मानवीय गरिमा से वंचित किया गया है? जब ऐसे प्रश्न अमेरिका के अश्वेत दासों में उठे तो वहां गुलामी प्रथा के खिलाफ

आंदोलन हुए। जब भारत में कबीर, रैदास और नानक जैसे क्रांतिकारी संत हुए तो उन्होंने शोषित वर्ग के समक्ष सत्ता के सभी शोषणकारी षड्यंत्रों का पर्दाफाश कर दिया। इसका दूरगामी प्रभाव रहा। लेकिन फिर भी यह सवाल शेष रह जाता है कि आखिर बहिष्कृत समाज मुक्त क्यों न हो सका? कारण यह है कि शासक वर्ग ने परिवर्तनकामी विचारों को उत्पीड़ितों के बीच इतना संदेहास्पद बना दिया है कि वे इसपर विश्वास ही नहीं कर पाते हैं। यदि विश्वास किया होता तो सबसे पहले शासक वर्ग के तमाम धर्म, आडम्बर और शास्त्रों से स्वयं को असंबद्ध करते! यह आज भी बमुश्किल हो पा रहा है। इसलिए वर्तमान समय में भी शोषक वर्ग रिंगमास्टर की तरह वंचित समाज को अपने इशारों पर नचाता है। उनका दुरुपयोग करता है। इसका सबसे हालिया उदाहरण मंडल कमीशन आंदोलन को माना जा सकता है। जब पूरे देश में पिछड़ों के वैधानिक आरक्षण या प्रतिनिधित्व की बात चल रही थी तो उसके विरोध में दक्षिणपंथी शक्तियों ने कमंडल आंदोलन शुरू कर दिया, जिसमें वंचित समाज के ही बहुतायत लोग मंडल के विरुद्ध साम्प्रदायिक अभियान का हिस्सा बन गए। यह जो मिथ्या चेतना शासक वर्ग द्वारा गढ़ी जाती है, उसको ठीक से अनसीखा करने की समझ यदि वंचित समाज में हो भी तो वह उनके आचरण में गायब है। अन्यथा क्यों संवैधानिक अधिकारों को छोड़ कर उस धर्म के प्रति वे समर्पित नजर आते हैं जिसने उन्हें अछूत, दास और घृणित बनाया इतिहास में? संभवतः इस कठोर वास्तविकता को जानते–समझते हुए ही कवि उक्त कविता के नायक से किसी प्रकार की क्रांति की अपेक्षा नहीं रखता। बल्कि उसे यथास्थितिवाद के भंवर में फंसते दिखाया है। यथा:

"फंसाने के लिए पंडित–मुल्ला–महाजन
नेता–अफसर सभी हैं
उजाड़ने के लिए हैं सुप्रीम कोर्ट से लेकर सरकार तक
बचाने के लिए कोई नहीं है।
और मैं?
क्यों हो गया है मेरा पौरुष अभिशापित?
शाप मुक्त होने का कौन सा तरीका है?
सोचते–सोचते सर्कस का रिंगमास्टर
मेरे भीतर आतंक की तरह छा जाता है।"[7]

विचारणीय है कि कवि ने सत्ता और शासन के द्वंद को बहुत बारीकी से उपरोक्त पंक्तियों में रेखांकित किया है। यहां 'सुप्रीम कोर्ट' तथा 'सरकार' का प्रतीक अनायास नहीं है। भारतीय लोकतंत्र जातिमुक्त–वर्णमुक्त, गैरसांप्रदायिक व स्त्रीवादी नहीं हो गया है। अपनी तमाम सदिच्छाओं के बावजूद संविधान की सीमा यह है कि इसे लागू कराने वाले इच्छानुकुल इस्तेमाल कर लेते हैं। शासक वर्ग ने लोकतांत्रिक संस्थाओं का किस कदर दुरुपयोग किया है, यह बताने का यहां अवकाश नहीं है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि जिस तरह से न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका में शोषक वर्ग की मध्ययुगीन विचारधारा का गहरा प्रभाव है, उसने लोकतंत्र की मूल भावना को ही कुचल दिया है। देश और समाज को शोषणमुक्त बनाने का लोकतांत्रिक संकल्प अपनी अंतिम सांसें गिन रहा है। अतः कवि ने उचित ही लोकतांत्रिक संस्थाओं को 'उजाड़ने वाला' कहा है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यह उत्पीड़ित वर्ग की निगाह से कहा गया सबसे साहसी सत्य है।

ऐसे कई साहसी सत्यों का साक्षात्कार इनकी कविताओं में होता है। हिन्दू समाज के दैनंदिन का एक चित्र यहां द्रष्टव्य है :

"कन्या भ्रूण हत्याओं के महारथी
इस देश में इन दिनों

कुमारी कन्याओं के प्रति
श्रद्धा उफान मार रही है
और लगातार आ रही हैं
खबरें मासूमों से बलात्कार की।"[8]

यदि कन्या भ्रूण हत्याएं सामाजिक विकृति मान ली गई होती हो संभवतः इसे समाज गलत मान लेता। लेकिन जब पितृसत्ता को पूजने वाला धर्म इस वैधता प्रदान करता है तब क्योंकर कन्या भ्रूण को गलत समझा जाएगा? धर्म पितृसत्ता का बगलगीर है। इस नाते वह आपराधिक स्त्री–हिंसा को भी स्वीकार्य बना देता है। एक देवी को पूजते हुए अश्लील स्त्री–विरोधी गीत बजाए जा सकते हैं! यह पितृसत्ता में रचे–बसे धर्म की स्वाभाविक विडंबना है। इसे निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है :

"कानफाडू आवाज में
पांडालों में बज रहे हैं
मातारानी के भजन
रोमेंटिक फिल्मी गीतों
और फूहड़ लोकगीतों की तर्ज पर।"[9]

यदि आप इस फूहड़ता पर प्रश्न उठाते हैं तो धर्म–विरोधी करार दिए जाएंगे। सच्चाई यह है कि धर्म, अर्थ और समूचे तंत्र पर बड़बोले शोषक वर्ग का कब्जा है। शासक वर्ग यह सब्जबाग दिखाता है कि देश ने कितनी तरक्की की है लेकिन वे यह नहीं बताते कि यहां देश से उनका तात्पर्य पूंजीपतियों और धन्नासेठों से है। दमित वर्ग की मुक्ति–आकांक्षा को शासक वर्ग ने किस रसातल में पहुंचा दिया है उसकी एक झलक निम्नांकित काव्य–पंक्तियों में देखी जा सकती है :

"बड़बोले यह नहीं बोलते कि
विदर्भ के किसान कर रहे हैं आत्महत्या
काला हांडी के किसान कह रहे हैं
ले जाओ हमारे बेटे–बेटियों को
और इनका चाहे जैसा करो इस्तेमाल
हमारे पास न जीने के साधन हैं
न जीने की इच्छा।"[10]

ऐसे में शोषित वर्ग के समक्ष एक ही प्रश्न उठता है कि जाएं तो जाएं कहां? जिस देश को उन्होंने मातृभूमि माना वहीं उन्हें दासों से बदतर स्थिति में सदियों तक रखा गया। लोकतंत्र से उम्मीद थी तो उसके लिए जी–जान से लड़े लेकिन जब वह हासिल हो गया तो वह भी शोषक वर्ग के हाथों का खिलौना बन चुका है। ऐसे में व्याकुल शोषित–मन ठीक ही कहता है:

"हम कहां जाएं? क्या करें?
जल सत्याग्रह! या नमक सत्याग्रह!
गांधीवाद या माओवाद!
एक बूंद गंगा जल पीकर

बोलो जनता की औलाद?"[11]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दिनेश कुशवाह के यहां शोषित–बहिष्कृत समाज की मुक्ति आकांक्षा का बहुत ही संलिष्ट रूप उभर कर सामने आता है। उन्होंने अपनी कविताओं में समाज की दमित आवाजों को स्थान दिया है। जो बात दिनेश कुशवाह को अन्य समकालीन कवियों से अलग व विशिष्ट बनाती है वह यह है कि वे किसी यूटोपिया का महिमामंडन नहीं करते। यथार्थ का मजबूती से थामे रखना उनकी विशेषता है। यह ठीक है कि कविता जैसे माध्यम में यूटोपिया और कागजी क्रांति की बातें ज्यादा रोचक लगती हैं लेकिन इससे यथार्थ की क्षति होती है, जिससे कवि दिनेश कुशवाह सख़्त परहेज करते हैं!

संदर्भ सूची:-

1. कुशवाह दिनेश, इसी काया में मोक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2013, पृष्ठ– 36
2. कुशवाह दिनेश, इसी काया में मोक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2013, पृष्ठ– 36
3. कुशवाह दिनेश, इसी काया में मोक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2013, पृष्ठ– 36
4. कुशवाह, दिनेश, इसी काया में मोक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2013, पृष्ठ– 66
5. कृष्ण, प्रणय, मुक्तिबोध साहित्य का गति–पथ, साहित्य भंडार, प्रयागराज, संस्करण– 2024, पृष्ठ –69
6. कुशवाह, दिनेश, इतिहास में अभागे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृष्ठ– 75
7. कुशवाह, दिनेश, इतिहास में अभागे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृष्ठ– 77
8. कुशवाह, दिनेश, इतिहास में अभागे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृष्ठ– 83
9. कुशवाह, दिनेश, इतिहास में अभागे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृष्ठ– 84
10. कुशवाह, दिनेश, इतिहास में अभागे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृष्ठ– 121
11. कुशवाह, दिनेश, इतिहास में अभागे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृष्ठ– 126

उदारीकरण के बाद आदिवासी समाज और विस्थापन

डॉ. सरफ़राज़ अहमद
सहायक प्रोफेसर
एस.के.महिला कॉलेज, बेगुसराय
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

शोध- सार: –

आधुनिक विकास की धारा ने उद्योग, ऊर्जा और बुनियादी ढाँचे को तो विस्तार दिया, लेकिन इसके साथ ही आदिवासी समाज के जीवन में गहरे संकट भी पैदा किए। जिन क्षेत्रों में विकास परियोजनाएँ लागू हुईं, वे प्रायः वही इलाके थे जहाँ आदिवासी समुदाय पीढ़ियों से बसते आए थे। परिणामस्वरूप वे अपने जल, जंगल और जमीन से ही नहीं, बल्कि अपने सांस्कृतिक और सामाजिक आधार से भी कटते चले गए। इस तरह विस्थापन केवल स्थान बदलने की प्रक्रिया नहीं रह जाता, बल्कि पूरी जीवन-व्यवस्था के टूटने का रूप ले लेता है। हिन्दी उपन्यास इस यथार्थ को विभिन्न दृष्टियों से सामने लाते हैं। संजीव के यहाँ यह बदलाव रोज़मर्रा के अनुभवों में घुला हुआ दिखता है। वीरेन्द्र जैन इस विडंबना को उभारते हैं कि मुख्यधारा से जुड़ने की कोशिश ही अंततः बेदखली का कारण बनती है। वहीं रणेन्द्र इस पूरी प्रक्रिया को व्यापक सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में रखते हैं। इन रचनाओं में आदिवासी समाज को निष्क्रिय नहीं, बल्कि संघर्षशील रूप में देखा गया है। वे अपने अधिकारों के लिए खड़े होते हैं और विकास की असमान संरचना पर सवाल उठाते हैं। इस प्रकार विकास का प्रश्न केवल प्रगति का नहीं, बल्कि न्याय, बराबरी और हिस्सेदारी का भी प्रश्न बन जाता है।

बीज शब्द :- विकास, विस्थापन, आदिवासी समाज, अस्मिता, जल–जंगल–जमीन, सांस्कृतिक विघटन, औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, सामाजिक न्याय, हाशियाकरण, पुनर्वास संकट, प्रतिरोध और संघर्ष

शोध आलेख:-

मानवता के उत्थान और प्रगति के नाम पर आरंभ हुई आधुनिक विकास प्रक्रिया अपने साथ अनेक उपलब्धियाँ लेकर आई है, किंतु इसके समानांतर एक अत्यंत त्रासद यथार्थ भी उभरकर सामने आया है, जिसे हम 'विस्थापन' के रूप में पहचानते हैं। सभ्यता के विकास, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के लिए उद्योग-धंधों का विस्तार तथा विभिन्न सरकारी परियोजनाओं- जैसे बांध, खनन और औद्योगिक इकाइयों का निर्माण अनिवार्य माना जाता है। इन परियोजनाओं के लिए व्यापक भूमि की आवश्यकता होती है, जिसे सरकार प्रायः अधिग्रहण के माध्यम से प्राप्त करती है। परिणामस्वरूप, उस भूमि पर पीढ़ियों से निवास कर रहे लोगों को अपने मूल स्थान से हटने के लिए बाध्य होना पड़ता है। स्पष्ट है कि यह पलायन स्वेच्छा का नहीं, बल्कि विकास की अनिवार्यता का परिणाम होता है।

विस्थापन का अर्थ केवल निवास स्थान में परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह उस संपूर्ण सांस्कृतिक ताने-बाने को भी प्रभावित करता है, जो किसी समुदाय ने अपने प्राकृतिक परिवेश के साथ मिलकर विकसित किया होता है। किसी भी समाज

की संस्कृति का उसके भौगोलिक और प्राकृतिक परिवेश से गहरा संबंध होता है; अतः जब कोई समुदाय अपने मूल स्थान से विस्थापित होता है तो वह केवल अपनी भूमि ही नहीं, बल्कि अपनी परंपराओं, सांस्कृतिक पहचान और जीवन-पद्धति से भी कट जाता है। इस संदर्भ में महाश्वेता देवी का यह कथन अत्यंत मार्मिक है कि, "जब एक आदिवासी अपनी जमीन से बेदखल होता है, तो वह केवल अपनी जीविका ही नहीं खोता, बल्कि अपनी संस्कृति, अपनी पहचान और अपने पूरे जीवन संसार से भी वंचित हो जाता है।"[1] अतः स्पष्ट है कि विस्थापन केवल स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय संकट का प्रतीक है, जिसके प्रभाव दूरगामी और गहरे होते हैं।

आज़ादी के बाद देश के विकास की स्पष्ट रूपरेखा तैयार करने के लिए योजना आयोग का गठन किया गया और पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया गया। इस दौर में औद्योगीकरण को विकास का मुख्य आधार माना गया। फैक्टरियों और कारखानों के संचालन के लिए बिजली की आवश्यकता को देखते हुए बड़े-बड़े बाँधों तथा ताप विद्युत परियोजनाओं की स्थापना की गई। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इन परियोजनाओं को 'आधुनिक भारत के मंदिर' कहा और इनके माध्यम से एक वैज्ञानिक, तकनीकी और आत्मनिर्भर भारत की कल्पना की। लेकिन इस विकास मॉडल के साथ ही एक गंभीर समस्या भी सामने आई- 'विस्थापन'। जिन क्षेत्रों में ये परियोजनाएँ स्थापित की गईं, वे प्रायः आदिवासी और ग्रामीण बहुल क्षेत्र थे। परिणामस्वरूप वहाँ के लोगों को अपनी जमीन, घर और जीवन-आधार से हटना पड़ा। इस संदर्भ में विपिन चंद्र लिखते हैं कि, "स्वतंत्रता के बाद भारत ने तीव्र औद्योगिक विकास का रास्ता अपनाया, लेकिन इस प्रक्रिया में सामाजिक न्याय के प्रश्न, विशेषकर विस्थापन और असमानता के मुद्दे, पीछे छूटते चले गए।"[2] यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है कि विकास की प्रक्रिया को जिस रूप में अपनाया गया, उसमें आर्थिक प्रगति को प्राथमिकता दी गई, जबकि उसके सामाजिक प्रभावों को उतनी गंभीरता से नहीं समझा गया। इसी तरह विकास की संरचना और उसमें निहित शक्ति-संबंधों को समझाते हुए अभय कुमार दुबे लिखते हैं कि, "भारतीय लोकतंत्र में विकास की परियोजनाएँ अक्सर राज्य और बाज़ार की साझेदारी में संचालित होती हैं, जिनमें आम लोगों, खासकर हाशिए के समुदायों की भागीदारी सीमित रह जाती है।"[3] यह दृष्टिकोण यह समझने में मदद करता है कि विकास केवल आर्थिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह सत्ता, नीति और संसाधनों के नियंत्रण से भी जुड़ा हुआ है, जिसमें आदिवासी जैसे समुदाय अक्सर कमजोर स्थिति में रहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि आज़ादी के बाद अपनाया गया विकास मॉडल एक ओर देश को औद्योगिक और तकनीकी रूप से आगे बढ़ाता है, तो दूसरी ओर यह विस्थापन, असमानता और सामाजिक अन्याय जैसी समस्याओं को भी जन्म देता है। विकास की इस प्रक्रिया में आदिवासी समाज सबसे अधिक प्रभावित होता है, क्योंकि उसकी पहचान, संस्कृति और आजीविका सीधे तौर पर उसकी भूमि और प्राकृतिक परिवेश से जुड़ी होती है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि विकास को केवल आर्थिक वृद्धि के रूप में न देखा जाए, बल्कि उसे सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के साथ जोड़ा जाए, ताकि विकास वास्तव में समावेशी और संतुलित बन सके।

विकास के इस मॉडल ने एक ओर जहाँ शहरों और उद्योगों को संसाधन उपलब्ध कराए, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण और आदिवासी इलाकों में रहने वाले लोगों के जीवन में अस्थिरता पैदा कर दी। विस्थापन ने केवल लोगों को उनके घरों से नहीं हटाया, बल्कि उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता को भी तोड़ दिया। जिन समुदायों की जीविका खेती, जंगल और स्थानीय संसाधनों पर आधारित थी, वे अचानक ऐसी परिस्थितियों में पहुँच गए जहाँ उनके पास न तो स्थायी रोजगार था और न ही जीवनयापन के पारंपरिक साधन। इस असमानता को रेखांकित करते हुए अरुंधति रॉय लिखती हैं कि, "विकास के नाम पर खड़ी की गई बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ दरअसल ऐसे सपनों का निर्माण करती हैं, जिनकी कीमत वे लोग चुकाते हैं जो उन सपनों के हिस्सेदार ही नहीं होते; वे अपनी जमीन, अपने घर और अपने भविष्य से वंचित कर दिए जाते हैं।"[4]

यह कथन इस गहरी सच्चाई को सामने लाता है कि विकास का लाभ और उसका बोझ समाज में बराबर बाँटा नहीं जाता।

इसके साथ ही विस्थापन का एक और गंभीर पहलू सामने आता है- पहचान और अस्तित्व का संकट। जब कोई समुदाय अपने पारंपरिक परिवेश से अलग होता है, तो वह केवल आर्थिक रूप से नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी अस्थिर हो जाता है। नए स्थान पर वे न तो अपनी पुरानी जीवन-शैली को बनाए रख पाते हैं और न ही नए सामाजिक ढाँचे में आसानी से ढल पाते हैं। इस संदर्भ में नंदिनी सुंदर लिखती हैं कि "आदिवासी समुदायों के लिए जमीन केवल एक भौतिक संपत्ति नहीं होती, बल्कि वही उनके सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक परंपराओं और ऐतिहासिक स्मृतियों का आधार होती है; इसलिए जब वे अपनी जमीन से बेदखल होते हैं, तो उनका पूरा जीवन-संसार बिखर जाता है।"[5] यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि विस्थापन को केवल आर्थिक नुकसान के रूप में नहीं देखा जा सकता, बल्कि यह एक गहरे सामाजिक और सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया है।

इसके अतिरिक्त, पुनर्वास की समस्या भी इस पूरे मुद्दे को और जटिल बना देती है। कागज़ों पर बनाई गई योजनाएँ अक्सर ज़मीन पर प्रभावी रूप से लागू नहीं हो पातीं। विस्थापित लोगों को न तो पर्याप्त मुआवजा मिलता है और न ही उन्हें इस काबिल बनाया जाता है कि वे नए जीवन की शुरुआत कर सकें। परिणामस्वरूप वे लंबे समय तक असुरक्षा, बेरोज़गारी और सामाजिक अलगाव की स्थिति में फँसे रहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि विकास की प्रक्रिया को केवल आर्थिक उपलब्धियों के आधार पर नहीं आँका जा सकता। जब तक उसमें सामाजिक न्याय, स्थानीय समुदायों की भागीदारी और मानवीय गरिमा को शामिल नहीं किया जाएगा, तब तक विकास अधूरा और असंतुलित ही बना रहेगा।

संजीव के उपन्यास 'पाँव तले की दूब' में विकास और विस्थापन का रिश्ता किसी बाहरी टिप्पणी की तरह नहीं, बल्कि भीतर से उभरते हुए अनुभव की तरह सामने आता है। खनिज संपदा से भरे जिन इलाकों में आदिवासी पीढ़ियों से रहते आए हैं, वहीं सबसे पहले उद्योगों और परियोजनाओं की नजर पड़ती है। लेकिन विडंबना यह है कि जिनकी जमीन सबसे कीमती है, वही लोग सबसे ज्यादा बदहाल दिखते हैं। इसी स्थिति को उपन्यास में फिलिप के शब्दों में यूँ कहा गया है कि, "यह धरती, हमारी धरती सोना उगलती है और उस सोने की धरती की हम कंगाल संतान..।"[6] यह कथन केवल गरीबी का बयान नहीं है, बल्कि उस व्यवस्था पर सवाल है जहाँ संसाधनों का मालिक होने के बावजूद आदिवासी उसके लाभ से बाहर हैं। उपन्यास यह भी दिखाता है कि विकास की प्रक्रिया अचानक नहीं आती, बल्कि धीरे-धीरे पूरे जीवन-संसार को बदल देती है। जिन गाँवों में लोग बसते थे, वे मानो हवा में उड़ गए- "वर्षों पहले यहाँ 'डोकरी' और 'मकरा' नाम के दो गाँव हुआ करते थे… किसी ने फूँक मारकर उड़ा दिया… कहाँ गए वे लोग?"[7] यह सवाल केवल उन दो गाँवों का नहीं है, बल्कि उन तमाम बस्तियों का है जो विकास के नाम पर नक्शे से मिटा दी गईं। विकास के साथ जो वादे किए जाते हैं रोज़गार के, खुशहाली के, बेहतर जीवन के वे सभी वादे भी उपन्यास में टूटते हुए दिखते हैं। जमीन चली जाती है, लेकिन उसके बदले न तो सही मुआवज़ा मिलता है और न ही काम। सुदीप्त कहता है कि, "आदिवासियों को… टोटली डिप्राइव किया जा रहा है- इस संपत्ति में उनकी भागीदारी खत्म की जा रही है… मुआवज़ा भी अफसरों के पेट में…।"[8] इससे साफ होता है कि विकास की प्रक्रिया में असली लाभ किसके पास जा रहा है और किसके हिस्से में सिर्फ नुकसान आ रहा है।

संजीव का उपन्यास 'धार' आदिवासी जीवन की उस विडंबना को सामने लाता है जहाँ विकास और प्रगति के दावे के बीच उनका अस्तित्व लगातार संकट में घिरता जाता है। यहाँ विस्थापन किसी एक घटना का परिणाम नहीं, बल्कि ऐसी लंबी प्रक्रिया है जो जीवन के हर पक्ष- रोज़गार, पर्यावरण, संबंध और आत्मसम्मान को प्रभावित करती है। कोयला क्षेत्र में फैले औद्योगिक ढाँचे ने आदिवासियों को उनकी जमीन से ही नहीं, बल्कि उनके पारंपरिक जीवन-तंत्र से भी अलग कर

दिया है, जिससे वे अपने ही क्षेत्र में पराए हो जाते हैं। उपन्यास में यह स्थिति बेहद तीखे यथार्थ के साथ उभरती है- "न दिन है, न रात... संथाल परगना का पूरा इलाका जैसे घायल जानवर की तरह कराह रहा है... ठेकेदार इंसानों को मवेशियों की तरह हाँककर ले जा रहे हैं...।"[9] यह चित्र केवल आर्थिक शोषण का नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा के ह्रास का भी संकेत देता है, जहाँ आदमी श्रम-शक्ति में बदल दिया जाता है।

संजीव का उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' आदिवासी जीवन के उस यथार्थ को सामने लाता है, जहाँ विकास, सत्ता और संसाधनों के असमान बँटवारे के बीच विस्थापन एक गहरी और निरंतर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में मौजूद है। पहले जिन संदर्भों में विस्थापन को जमीन, आजीविका और सांस्कृतिक जड़ों से कटने की त्रासदी के रूप में समझा गया है, यह उपन्यास उसे एक व्यापक सामाजिक-सांस्थानिक संकट के रूप में विस्तार देता है। यहाँ विस्थापन केवल गाँव छोड़ने की मजबूरी नहीं, बल्कि अपने ही परिवेश में बेगाना हो जाने की स्थिति है। उपन्यास की पृष्ठभूमि पश्चिमी चंपारण का वह क्षेत्र है, जहाँ अपराध, राजनीति और प्रशासन मिलकर एक ऐसा तंत्र बनाते हैं जो आम आदमी, खासकर आदिवासी समुदाय को लगातार हाशिए पर धकेलता है। इस संदर्भ में 'जंगल' एक प्रतीक बन जाता है। ऐसा जंगल जो केवल पेड़ों का नहीं, बल्कि अन्याय, भय और असमानता से बना है। इसी स्थिति को उपन्यास में इस तरह व्यक्त किया गया है कि, "यह लोकतंत्र के नाम पर जंगलराज है... जहाँ जन कमजोर है और तंत्र ताकतवर।"[10] यह कथन बताता है कि विस्थापन की जड़ें केवल आर्थिक कारणों में नहीं, बल्कि उस व्यवस्था में भी हैं जो कमजोर वर्गों को संरक्षण देने के बजाय उन्हें और असुरक्षित बनाती है। थोड़े से प्रभावशाली वर्ग के हाथों में भूमि और साधनों का केंद्रीकरण, जबकि बहुसंख्यक आदिवासी श्रम पर निर्भर है। यह असमानता उन्हें धीरे-धीरे उनके अपने ही परिवेश से बाहर कर देती है। इस स्थिति को एक मार्मिक टिप्पणी में व्यक्त किया गया है कि "हक की कमाई माँगने पर पैसे नहीं... और लूटनेवालों के लिए सब कुछ मौजूद।"[11] यहाँ स्पष्ट होता है कि जब श्रम का मूल्य नहीं बचता और न्याय का तंत्र विफल हो जाता है, तब विस्थापन केवल भौतिक नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक भी हो जाता है।

इस तरह, यदि धार जैसे उपन्यास विस्थापन को आर्थिक और सामाजिक विघटन के रूप में सामने लाते हैं, तो 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उस विघटन के पीछे काम कर रही व्यवस्था और मानसिकता को उजागर करता है। यह दिखाता है कि आदिवासी समाज केवल अपनी जमीन से ही नहीं, बल्कि न्याय, सुरक्षा और सम्मान के अधिकार से भी वंचित होता जा रहा है। अंततः यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में विस्थापन एक गहरे संरचनात्मक संकट के रूप में उभरता है। जहाँ व्यक्ति अपने स्थान से नहीं, बल्कि अपने अधिकार, पहचान और भविष्य से भी धीरे-धीरे अलग कर दिया जाता है।

विकास और विस्थापन की बहस को समझने के लिए वीरेन्द्र जैन के उपन्यास 'पार' और 'डूब' को साथ पढ़ना जरूरी हो जाता है, क्योंकि दोनों मिलकर उस पूरी प्रक्रिया की अलग-अलग परतें खोलते हैं जिसमें आदिवासी समाज धीरे-धीरे अपनी जमीन, पहचान और सहारे खोता चला जाता है। 'पार' में जीरोन खेरे के आदिवासी एक ऐसे मोड़ पर खड़े हैं, जहाँ वे अपने जीवन को बदलते समय के हिसाब से ढालना चाहते हैं। घुमंतू जीवन से निकलकर वे बसने, जुड़ने और 'आदमी' की तरह जीने की कोशिश कर रहे हैं, "अब हम आदमियों की नाई जीने का ढंग सीख रहे हैं...।"[12] यह आकांक्षा उन्हें मुख्यधारा के करीब तो ले जाती है, लेकिन इसी दौरान विकास की परियोजनाएँ उनके पैरों तले की जमीन खिसका देती हैं। बाँध के कारण उनका 'डाँग' उजड़ जाता है और जंगल, जो कभी उनका सहारा था, धीरे-धीरे खत्म हो जाता है- "दूर-दूर तक रुख नहीं दिखते... जाने सब कहाँ बिला गए...।"[13] यानी जिस समय वे स्थिर होने की कोशिश करते हैं, उसी समय उनका आधार छिन जाता है।

इसी क्रम में 'डूब' उस प्रक्रिया का दूसरा, ज्यादा तीखा रूप सामने लाता है। जहाँ 'पार' में बदलाव धीरे-धीरे आता है, वहीं 'डूब' में सब कुछ अचानक घटित होता है। पानी का फैलाव गाँव को एक ही झटके में उजाड़ देता है- "एक रोज बिना मेघ बरसे ही… खेरा का खेरा बाल-बच्चों को बगल में चाँपे भाग गया।"[15] यह दृश्य बताता है कि विस्थापन कई बार चेतावनी भी नहीं देता, लोगों को संभलने का मौका तक नहीं मिलता। दोनों उपन्यासों को साथ रखकर देखें तो एक बात साफ होती है कि विस्थापन केवल जमीन छिनने की कहानी नहीं है। यह उस पूरी दुनिया के टूटने की कहानी है जिसमें आदमी अपने तरीके से जीता है। 'पार' में यह टूटन धीरे-धीरे जीवन को कमजोर करती है, जबकि 'डूब' में वही टूटन एकदम से सब कुछ बहा ले जाती है। इस तरह दोनों उपन्यास मिलकर यह दिखाते हैं कि असली समस्या सिर्फ विकास नहीं, बल्कि वह ढांचा है जिसमें कुछ लोग आगे बढ़ते हैं और कुछ लोग लगातार पीछे धकेल दिए जाते हैं।

हिन्दी कथा-साहित्य में अस्मितावादी लेखन के भीतर रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'गायब होता देश' आदिवासी जीवन को करुणा के फ्रेम में नहीं, बल्कि प्रतिरोध और टकराव की जमीन पर रखकर पढ़ने के लिए मजबूर करते हैं। यहाँ आदिवासी समाज 'पीड़ित' भर नहीं है, बल्कि वह उस ताकतवर गठजोड़ कंपनियों, प्रशासन और स्थानीय दलालों से सीधी मुठभेड़ करता हुआ दिखाई देता है। 'ग्लोबल गाँव के देवता में' असुर समुदाय अपनी जमीन के सवाल को अस्तित्व के सवाल में बदल देता है। वे पीछे हटते जरूर रहे हैं, लेकिन अब इस पीछे हटने को नियति मान लेने से इंकार करते हैं, "कब तक पीछे हटते रहेंगे हम? हर बार जमीन छोड़ते-छोड़ते आखिर क्या बच जाएगा हमारे पास… अब तो लगता है कि लड़ना ही होगा, नहीं तो नामोनिशान भी नहीं बचेगा।"[16] यह स्वर करुणा का नहीं, बल्कि साफ़ चेतावनी का है। यहाँ संघर्ष किसी भावुक आग्रह से नहीं, बल्कि अपने हक की सीधी लड़ाई के रूप में सामने आता है। खदानों के खिलाफ बंद, जुलूस और संगठित प्रतिरोध यह दिखाते हैं कि आदिवासी समुदाय केवल शोषण सहने वाला समूह नहीं, बल्कि उसे चुनौती देने वाली ताकत भी है।

इसी तरह 'गायब होता देश' में भी आदिवासी जीवन का 'गायब होना' एक निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं है। वहाँ यह स्पष्ट दिखता है कि यह गायब होना दरअसल लगातार छीने जाने की प्रक्रिया है, जिसके खिलाफ आवाज उठती रहती है। जंगल और जमीन के खत्म होते जाने के साथ-साथ यह सवाल और तीखा होता जाता है कि, "जंगल हमारे बिना नहीं, हम जंगल के बिना नहीं… लेकिन जो हमारे बीच आकर सब कुछ हड़प लेना चाहते हैं, उनसे हिसाब तो करना ही पड़ेगा।"[17] यहाँ संघर्ष केवल संसाधनों का नहीं, बल्कि उस नजरिये का भी है जो आदिवासियों को विकास में बाधा मानता है। रणेन्द्र की दृष्टि आदिवासी जीवन को एक राजनीतिक और सामाजिक शक्ति के रूप में स्थापित करती है। एक ऐसी शक्ति, जो अपने अस्तित्व, अपने इतिहास और अपने भविष्य के लिए लड़ना जानती है और हार को अंतिम सच मानने से इनकार करती है।

निष्कर्ष:-

आधुनिक विकास की प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर देश को आर्थिक और तकनीकी रूप से आगे बढ़ाया है, वहीं दूसरी ओर इसने आदिवासी समाज के सामने गहरे संकट भी खड़े किए हैं। जल, जंगल और जमीन से जुड़े इस समुदाय का जीवन केवल संसाधनों पर निर्भर नहीं, बल्कि उसी के साथ उसकी पहचान, संस्कृति और सामाजिक संरचना भी जुड़ी होती है। इसलिए जब विकास की परियोजनाएँ उन्हें उनके मूल परिवेश से अलग करती हैं, तो यह केवल विस्थापन नहीं, बल्कि पूरे जीवन-संसार के टूटने की प्रक्रिया बन जाती है। समकालीन हिन्दी उपन्यास इस सच्चाई को संवेदनशील और विश्लेषणात्मक रूप में सामने लाते हैं। संजीव, वीरेन्द्र जैन और रणेन्द्र जैसे रचनाकार दिखाते हैं कि विकास का मौजूदा मॉडल किस तरह असमानता को जन्म देता है और आदिवासी समाज को हाशिए पर धकेलता है। अंततः यह आवश्यक हो जाता है कि

विकास को केवल आर्थिक वृद्धि तक सीमित न रखा जाए, बल्कि उसे सामाजिक न्याय, समान भागीदारी और मानवीय गरिमा के साथ जोड़ा जाए। जब तक विकास की दिशा में स्थानीय समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं होगी और उनके अधिकारों का सम्मान नहीं किया जाएगा, तब तक यह प्रक्रिया संतुलित और न्यायपूर्ण नहीं बन सकती।

संदर्भ ग्रंथ

1. देवी, महाश्वेता. (1977). अरण्येर अधिकार. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
2. चंद्र, विपिन. (2008). आधुनिक भारत (हिंदी संस्करण). नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय।
3. दुबे, अभय कुमार. (2000). विकास का लोकतंत्र. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
4. रॉय, अरुंधती. (1999). द ग्रेटर कॉमन गुड (हिंदी संस्करण). नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
5. सुंदर, नंदिनी. (1997). सबऑल्टर्न्स एंड सॉवरेन्स: बस्तर का एक मानवशास्त्रीय इतिहास (हिंदी संस्करण). नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. संजीव. (2000). पाँव तले की दूब. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
7. वही
8. वही
9. संजीव. (2003). धार. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
10. संजीव. (2001). जंगल जहाँ शुरू होता है. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
11. वही
12. जैन, वीरेन्द्र. (2000). पार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
13. वही
14. जैन, वीरेन्द्र. (2001). डूब. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
15. रणेन्द्र. (2009). ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
16. रणेन्द्र. (2013). गायब होता देश. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध बिहार में अगस्त क्रांति का ऐतिहासिक विश्लेषण

श्याम किशोर ठाकुर
शोध छात्र, इतिहास विभाग
रामचन्द्र चन्द्रवंशी विश्वविद्यालय, विश्रामपुर, पलामू, झारखण्ड

सारांश

भारतवर्ष के समृद्ध इतिहास पर अलग-अलग कालखण्ड में कई विदेशी शक्तियों ने आक्रमण किये, जिनमें किसी से सीधे प्रहार किया तो किसी ने धीरे-धीरे हमारी संस्कृतियों को खोखला किया। उन आक्रमणकारियों में यूनानी, शक, कुषाण, हुण, अरब, तुर्क, मुग़ल और यूरोपीय मुख्य रूप से शामिल थे, जिन्होंने हमारी संस्कृति, अर्थव्यवस्था और राजनीति को ना केवल गहराई से प्रभावित किया बल्कि हमारी एकता और अखंडता पर प्रश्न चिन्ह् भी लगाया। लेकिन उन सारी विदेशी शक्तियों के आक्रमणों को हमारे पूर्वजों ने ना केवल चुनौती दिया बल्कि उनसे डट कर लड़ें भी और उन्हें यह सोचने पर मजबूर किया कि उन्हें दबाने के लिए कौन-कौन से कठोर कदम उठाया जाए। ठीक यही स्थिति औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध भी बिहार में हुआ, जो अपने इतिहास से सीखते हुए अंग्रेजों के खिलाफ हमेशा संघर्ष किये और उन्हें जल्द ही भारत छोड़ने पर मजबूर किये। प्रस्तुत शोध आलेख बिहार के आम लोगों के द्वारा औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध हुए एक ऐसी क्रांति की ऐतिहासिक विश्लेषण है, जो 1942 ई. के अगस्त महीने में उस समय हुआ जब सारे बड़े नेता अंग्रेजों के गिरफ़्त में थे।
मुख्य शब्द – अगस्त क्रांति, बिहार, औपनिवेशिक सत्ता, संघर्ष, स्वतंत्रता संग्राम, आजाद भारत

विषय प्रवेश एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतवर्ष की सभ्यता एवं संस्कृति में बिहार एक ऐसे भौगोलिक खण्ड पर विराजमान है, जिसके सीमाओं से नेपाल की तराई भू-खण्ड मिलती है, साथ ही हिमालय की सुन्दरता उसे गोद में लिए हुए प्रतीत होती है। यह वह धरती है, जहाँ से बुद्ध, महावीर, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक आदि ने अपने सांस्कृतिक आन्दोलनों के मार्ग प्रशस्त किये। यह वह धरती हैं जहाँ अनेक वीरों के नाम राष्ट्रीय आंदोलन के समय सामने आये, यही से महात्मा गांधी ने अपना आंदोलन चलाया और यहीं से जय प्रकाश नारायण ने अपना नाम कमाया। कुल मिलाकर बिहार वीरों की धरती है, आंदोलन की धरती है जिसके मिट्टी में कई संघर्षों का इतिहास छिपा है। सन् 1857 ई. में जब भारत में पहला स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल फुका गया, तो उस समय भी अंग्रेजों के खिलाफ व्यापक स्तर पर सशस्त्र संघर्ष हुआ, जिसमें सीमित क्षेत्रों में यह संघर्ष दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार आदि तक ही प्रसारित रहा। हालांकि उस संग्राम ने भी अंग्रेजों का काफी नुकसान हुआ और वे यह बात जल्द समझ गये कि भारतीयों पर नए तरीकों से अंकुश लगाना होगा। हालांकि उनके अंकुश के बाद भी ऐसे कई राष्ट्रवादी नेताओं ने अपने संगठनों और संघर्षों से अंग्रेजों के नाक में दम किये और अपने देश के आजाद कराने में लगे रहे। ऐसे ही बंगाल विभाजन के विरुद्ध आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलनों तथा महात्मा गांधी के

आन्दोलनों ने भी भारत के पुरुषों और महिलाओं को बार-बार नए आंदोलनों से जुड़ना सिखाया और यह अभ्यास कराया कि कभी कोई आंदोलन कराना पड़े तो वे क्या-क्या कर सकेंगे। 9 अगस्त 1942 का आंदोलन भी इसी प्रकार ही एक आंदोलन था, जिसमें बड़े नेताओं ने नहीं बल्कि आम लोगों ने अपनी भागीदारी थी, जिसमें बिहार और बिहार के लोग भी एक थे। इस प्रकार, बिहार के वीरों के अनेकों संघर्षों की कहानी का इतिहास हम जब समय समय पर याद करते है, जिनमें उनके बलिदानों की दास्तान आज भी बिहार के अनेक स्तम्भ, अनेक स्मारक गवाही दे रहे होते हैं, जिनमें एक था 1942 ई. में हुए अगस्त क्रांति का भारत छोड़ों आंदोलन। जो 1942 ई. में महात्मा गांधी के द्वारा उस समय के आन्दोलनों में से वह सबसे बड़ा आंदोलन था, जो शहरी क्षेत्रों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी हुआ था तथा जिसका प्रभाव पूरे भारत में महसूस किया गया था तथा जो अंग्रेजों को यह सोचने पर मजबूर किया था कि इस आंदोलन को दबाया कैसे जाए। पूरे भारत में से बिहार उस समय स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण केन्द्रों में से एक था, जिसके मुख्य केन्द्रों में पटना, भागलपुर, चंपारण, गया, मुजफ्फरपुर, हाजीपुर आदि प्रमुख स्थान था, जहाँ पर लोगों ने वे सारे हथकंडे अपनाए, जिससे अंग्रेजों को नुकसान पहुंचे और वे भारत छोड़ के चले जाएं। इतना ही नहीं बिहार के लोगों के साथ-साथ यहाँ के महिलाओं ने भी पुरुषों के साथ मिलकर अंग्रेजी नीतियों का विरोध किया और ऐसी साहस, त्याग, नेतृत्व और ताकत की मिसाल पेश की जिससे भारत के अन्य क्षेत्रों की महिलाओं में नया जोश आया, जिसके कारण भारत छोड़ो आंदोलन सफल आंदोलन पुकारा गया।

अगस्त क्रांति हेतु गोलबंदी

भारत में अगस्त क्रांति का आशय 9 अगस्त को प्रारंभ हुए 'भारत छोड़ो आंदोलन' से है, जिसे महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्रारंभ तो किया गया लेकिन खत्म आम जन ने किया। इस क्रांति की गोलबंदी समूचे देश में व्यापक, बहुस्तरीय और जन-आधारित थी। इसकी सुगबुगाहट द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभिक दौर में ही हो चुकी थी जब ब्रिटिश सरकार ने बिना योजना, बिना घोषणा के ही भारतीय फौजों को द्वितीय विश्वयुद्ध में झोंक दिया, जिससे इस अंग्रेजी नीति का पूरे भारत में विरोध हुआ। कुल मिलाकर इस नीति ने भारतीय नेताओं को झकझोर के रख दिया जिससे उन्होंने राजनीतिक गोलबंदी की और महात्मा गांधी ने कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करने पर जोर दिया। इस विशेष अधिवेशन के लिए 8 अगस्त को कांग्रेस ने मुंबई के ग्वालिया टैंक मैदान में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया, जिसमें तीन मुख्य बातें उभरकर सामने आई, जिसमें पहले, 'करो या मरो'; दूसरी, 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' और तीसरी, 'आज से हर भारतवासी अपने को स्वतंत्र समझे'। इसमें यह भी कहा गया कि भारत को आजाद कराने के लिए अब वह अपना नेता स्वयं है, उसे अन्य किसी नेतृत्व की आवश्यकता नहीं है। इस प्रस्ताव में कांग्रेस का साथ समाजवादी, किसान संगठनों और छात्रों का व्यापक समर्थन मिला। जिससे आम लोगों ने भी अपनी गोलबंदी की, जिसका प्रभाव ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में पड़ा, जिसके चलते रैलियां हुईं, हड़ताले हुईं, जुलुस निकाले गए। इतना ही नहीं बलिया (उ.प्र.), सतारा (महाराष्ट्र) और तामलुक (बंगाल) जैसे स्थानों पर सामानांतर सरकारे (अस्थाई सरकार) बनीं। यह सरकारें 1942 के अगस्त क्रांति के दौरान अंग्रेजी शासन के विरोध में स्थानीय स्तर पर स्थापित की गई, जिसका उद्देश्य था, ब्रिटिश प्रशासन को चुनौती देना और स्वशासन का प्रयोग करना। यह सरकारें ब्रिटिश गाल पर एक जोरदार तमाचा जैसा साबित हुआ था, जिससे ब्रिटिश शासन की कमजोरी उजागर हुई, आम जनता में स्वशासन की क्षमता एवं आत्मविश्वास बढ़ा और स्वतंत्रता आंदोलन को नई ऊर्जा एवं दिशा मिला।

अगस्त क्रांति और बिहारी जनमानस

8 अगस्त को कांग्रेस ने मुंबई के ग्वालिया टैंक मैदान में जिस 'भारत छोड़ो आंदोलन' का प्रस्ताव पारित किया,

जिसका लक्ष्य ही था 'भारत से ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करना।' ऐसा माना जाता है कि यह आंदोलन उस समय व परिस्थिति का सबसे बड़ा और आखिरी आंदोलन था। तभी तो 9 अगस्त को इस आंदोलन की चिंगारी भारत के गली-गली तक पहुँच गया। दूसरे शब्दों में महात्मा गांधी से जिस होश और जोश में 'करो और मरो' का नारा दिया वह सफल हुआ प्रतीत सा लगा, क्योंकि इस महामन्त्र को देते हुए उन्होंने कहा कि ' हम या तो भारत को स्वतंत्र करेंगे या उसके लिए संघर्ष में अपने प्राणों की बली देंगे।' हालांकि आंदोलन के आरंभ होते ही महात्मा गांधी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, सरोजनी नायडू, बिनोवा भावे सहित कांग्रेस के सभी बड़े और मंझिले नेताओं को गिरफ्तार करके अलग-अलग जेलों में भर दिया गया और उनकी योजनाओं पर पानी फेर दिया गया। लेकिन इस आंदोलन में बिहार के नेताएं सौभाग्यशाली रहे थे, क्योंकि वे अपनी योजनाएं और ठोस कार्यक्रम पहले ही तैयार कर चुके थे। जिसमें डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, श्री मथुरा बाबू, अनुग्रह नारायण सिंह, जयप्रकाश नारायण आदि वरीय नेताओं प्रमुख थे। 9 अगस्त को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, श्री मथुरा बाबू, अनुग्रह नारायण सिंह आदि के गिरफ्तार होने के बाद भी आंदोलन का जोर थमा नहीं, क्योंकि नेतृत्व के अभाव में भी वे इतने ज्यादा कार्यक्रम की योजनाएं तैयार कर चुके जिससे उनके आंदोलन पर कोई फर्क नहीं पड़ा, उन्हें बार-बार महात्मा गांधी का वह संबोधन याद रहा था, जिसमें वे यह अपील किये थे कि 'लोग अपने को आजाद समझे, पूर्ण हड़ताल तथा अन्य अहिंसात्मक तरीकों से सरकारी प्रशासन को ठप्प कर दें तथा मरकर भी राष्ट्र को जिन्दा रखें।'

बिहार में अगस्त क्रांति के समय जो भी हिंसात्मक घटनाएँ घटी उसमें डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, श्री मथुरा बाबू, अनुग्रह नारायण सिंह आदि का ही मुख्य भूमिका रहा था। उन्हें अखबारों और अन्य सूत्रों से यह मालूम हो चुका था कि सरकार आंदोलन प्रारंभ होने से पहले ही बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर सकती है, जैसे कि पूर्व के आंदोलनों में हुआ करती थी। इसीलिए श्री मथुरा बाबू, अनुग्रह नारायण सिंह, कृष्ण बल्लभ सहाय, दीप नारायण आदि ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का भरपूर साथ दिया। ऐसे अनेक राष्ट्रीय अख़बार यह सुचना देते हैं कि 31 जुलाई की ही शाम को पटना के अंजुमन इस्लामिया हॉल में एक आम सभा हुई थी, जिसमें सत्याग्रह का अनेक कार्यक्रम बनाए गये थे और उस सभा में छात्रों से भी यह अपील की गई थी कि वे कांग्रेस के क्रांतिकारी कार्यक्रमों का अनुसरण करें। इसी सभी में अनुग्रह नारायण सिंह ने छात्रों को संघर्ष के लिए कई तरीकों से तैयार रहने को भी कहा था। इस बैठक के बारे में अनुग्रह नारायण सिंह यह लिखते हैं कि '8 अगस्त को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक होने वाली थी हमें लगा कि फिर से जेल की यात्रा करनी पड़ेगी, फिर मैंने रायबरेली जा कर अपने परिवार के लोगों से मिलने का निश्चय किया... 8 अगस्त मैं रायबरेली में ही था जब महात्मा गांधी गिरफ्तार किये गये थे, फिर मैंने पटना के लिए प्रस्थान किया। पटना पहुँचते ही राजेन्द्र बाबु गिरफ्तार हुए और बिहार में आंदोलन उग्र हो उठा...। सारे प्रान्त में 'अंग्रेजों भारत छोड़ों' और क्रांग्रेस जिंदाबाद के नारे लगने लगे...11 अगस्त को मैं भी गिरफ्तार कर लिया गया।'

9 और 10 अगस्त को बिहार में जगह-जगह आंदोलन हुए लेकिन वह आंदोलन सिर्फ झंडे और समूह में ही था। इन दो दिनों का आंदोलन अहिंसक सा ही था, लेकिन जैसे ही अंग्रेजी सरकार ने बिहार कांग्रेस कमिटी तथा उसकी सहयोगी संस्थाओं को गैर-क़ानूनी घोषित किया, आंदोलन अपनी उग्र रूप धारण करने लगा। 10 अगस्त को ही सदाकत आश्रम, किसान सभा कार्यालय, जिला कांग्रेस कार्यालय, कांग्रेस समाजवादी दल कार्यालय आदि को जब्त कर लिया गया, जिससे आंदोलन हड़तालों का रूप लेने लगी। छात्र भी इस आंदोलन में कूद गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि पटना के विभिन्न शिक्षण संस्थाओं पर राष्ट्रीय झंडों को फहराया गया। इस दिन महिलाओं ने भी एक जुलुस निकला, जिसमें भगवती देवी, सुंदरी देवी, रामप्यारी देवी आदि प्रमुख रही थी। इसी दिन वकीलों ने भी अपनी वकालत जाने से इन्कार किया और आंदोलन का हिस्सा बन गये। अगले दिन 11 अगस्त को भी पटना में छात्रों ने अपनी सामूहिक जुलुस को जारी रखा, जो

बढ़ता हुआ पटना सचिवालय की ओर बढ़ रहा था। इन छात्रों का मुख्य उद्देश्य मात्र सचिवालय भवन के सामने विधायिका की इमारत पर राष्ट्रीय झंडा को फहराना था। ये छात्र मात्र हाथ में तख्तियां लिये आजादी के गाने गाते हुए आगे बढ़ रहे थे कि आचानक उनकी ताबड़तोड़ गोलियां की बौछार आने लगी, जब तक छात्र यह समझ पाते तब तक काफी देर हो चुकी थी। जिलाधिकारी डब्ल्यू. जी आर्थर ने अपने पुलिस कर्मियों से 13-14 राउंड गोलियां बरसाने का आदेश देकर छात्रों को मरने के लिए छोड़ दिया। चारों तरफ छात्रों की चीख-पुकार और खून की रंग से सचिवालय का इलाका कांप उठा, तब तक 25 से ज्यादा छात्र घायल थे और 7 छात्र (उमाकान्त सिन्हा, रामानंद सिंह, संतोष प्रसाद झा, देवीधर चौधरी, राजेन्द्र सिंह, रामगोविंद सिंह और जगपति कुमार) शहीद हो चुके थे।

इस घटना का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि सभी स्कूल और कॉलेज बंद हो गए, सभी जगह अनिश्चितकालीन हड़तालें होने लगी, युवाएँ उग्र हो गये, वकील, दूकानदार, हिन्दू हो चाहे मुस्लिम सभी के द्वारा सरकारी भवनों, कार्यालयों को नुकसान पहुंचाया जाना जाने लगा, समूचे बिहार के लोग एक हो गये, रेल की पटरियां उखाड़ी गई, डाक-तार की लाइने काटी गई, इमारते जलाई गई, पुलिस और आन्दोलनकारियों के मध्य खुनी झड़पें होने लगी, कुछ जगहों पर गुप्त गतिविधियाँ चलाया जाने लगा, जिसमें दरभंगा, सारण, सोनपुर, मुजफ्फरपुर, चम्पारण, भागलपुर, पटना, देवघर आदि। इनमें से चंपारण, हाजीपुर, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, दरभंगा आदि में क्रांतिकारी सरकारें तक गठित कर ली गई। सीवान थाने पर राष्ट्रीय झंडा फहराने के क्रम में फुलेना प्रसाद श्रीवास्तव को गोली खानी पड़ी, जगलाल चौधरी द्वारा सारण थाना जला दिया गया आदि। इसी क्रम में 9 नवम्बर को जयप्रकाश नारायण, रामानंद मिश्र, योगेन्द्र शुक्ल, सुरजनारायण सिंह आदि ने हजारीबाग जेल से भाग निकले और आजाद दस्ते की पृष्ठभूमि तैयार कर बिहारी में अगस्त क्रांति को एक नई दिशा प्रदान की। कुल मिलाकर 30 नवम्बर तक समूचे बिहार से 14478 लोग गिरफ्तार हुए और 134 व्यक्ति शहीद हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय बिहार के लोगों में स्वतंत्रता की भूख इतनी लग चुकी थी वे तुरंत ही अंग्रेजों को भगा देंगे, चाहे उसके लिये वह कुछ भी हथकंडे अपनाए। शायद वे ऐसा इसलिए भी कर रहे थे कि अंग्रेजी सरकार इतना परेशान हो जाए कि वह युद्ध सामग्री भारत से बाहर ना भेजे और द्वितीय विश्व युद्ध में अंग्रेज बुरी तरह परास्त हो जाएं।

उपसंहार

औपनिवेशिक सत्ता के विरूद्ध भारत में अगस्त माह 1942 ई. में जो स्वत: स्फूर्त आंदोलन प्रारंभ हुआ, उसमें बिहार के जनमानस ने अपनी सक्रिय भूमिका निभाई थी। यह आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक निर्णायक और गहन चरण था, जिसने पूरे देश के जनमानस के बीच जागरूकता और प्रतिरोध की लहर पैदा की थी। यह आंदोलन केवल राजनीतिक संघर्ष तक ही सीमित नहीं था बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में भी व्यापक प्रभाव डाला था, जिसमें बिहार के जनमानस ने अपनी मुख्य भूमिका निभाते हुए साहस, नेतृत्व और त्याग की ऐसी मिसाल प्रस्तुत की, जो युगों-युगों तक याद रखा जाएगा। बिहार के इस सक्रियता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 1917 ई. में चम्पारण में जिस अलख को महात्मा गांधी ने जगाई थी उसकी लौ 1942 ई. में और भी तेज हो उठी थी, जिसमें बिहार के छोटे-बड़े शहरों के साथ-साथ ग्रामीण इलाके के पुरुष और महिलाओं ने अपनी भूमिका को उजागर किया और यह दिखा दिया कि बड़े नेताओं के ना होने के बावजूद भी अंग्रेजों को खदेड़ा जा सकता है, उनकी सरकार को चुनौती दिया जा सकता है और उन्हें अपनी एकता से परिचय कराया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. कांग्रेस प्रोसीडिंग, 1942-43, दिसम्बर
2. जैन, सुनीता, स्वतंत्रता संग्राम में बिहार की महिलाएं, नई दिल्ली : राधा प्रकाशन, 2005
3. त्रिपाठी, रवीन्द्र, बिहार के स्वतंत्रता सेनानी और महिला आन्दोलनकारी, पटना: राजकमल पब्लिकेशन, 1999
4. द इण्डियन नेशन, पटना, 31 मार्च 1942
5. द सर्चलाइट (1942), पटना
6. दत्त, के.के., बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (खण्ड दो), बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1998
7. बिहार लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट (1942-46), बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना
8. बिहार सरकार की रिपोर्ट, 1943, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना
9. बिहार सरकार, पाक्षिक रिपोर्ट, अप्रैल, 1940
10. बिहार सरकार, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना, फ़ाइल संख्या ई.सी.-08/1937
11. मिश्रा, रामकृष्ण, बिहार और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, पटना: ज्ञानवाणी प्रकाशन, 1998
12. श्रीवास्तव, आर.के., बिहार और भारत छोड़ो आंदोलन, पटना, 1980
13. सिंह, जगदीश, बिहार में भारत छोड़ो आंदोलन, पटना: बिहार पब्लिकेशन, 1995
14. सिंह, रामप्रसाद, भारत छोड़ो आंदोलन में बिहार, पटना, 1989
15. होम पोलिटिकल फ़ाइल, 1942, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना

'पुन्यपथी' महाकाव्य में धर्म की अवधारणा और श्रवण कुमार का चरित्र

- डॉ. आशा कुमारी,
हिंदी विभाग, मगध महिला महाविद्यालय, पटना।

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख डॉ. गोरख प्रसाद 'मस्ताना' द्वारा रचित महाकाव्य 'पुन्यपथी' (2022) के केन्द्रीय चरित्र श्रवण कुमार के व्यक्तित्व में निहित धर्म की अवधारणा का विश्लेषण करता है। महाकाव्य की पारंपरिक परिभाषाओं - भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों से - इस कृति का मूल्यांकन करते हुए यह आलेख स्पष्ट करता है कि किस प्रकार श्रवण कुमार का चरित्र धर्म के उस व्यापक अर्थ को प्रतिष्ठित करता है जो वैदिक काल से लेकर आधुनिक समाजशास्त्रीय चिंतन तक विस्तृत है। मातृ-पितृ भक्ति, सेवा, त्याग और कर्तव्यपरायणता के माध्यम से श्रवण का जीवन धर्म के आचरणीय पक्ष का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह आलेख इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'पुन्यपथी' न केवल महाकाव्य की शास्त्रीय कसौटियों पर खरा उतरता है, अपितु धर्म को एक सामाजिक-नैतिक मूल्य के रूप में पुनर्स्थापित करने का सार्थक प्रयास भी है।

बीजशब्द: पुन्यपथी, श्रवण कुमार, धर्म, महाकाव्य, मातृ-पितृ भक्ति, सेवा, कर्तव्य, युगबोध

1. परिचय

मानव सभ्यता के विकास क्रम में धर्म और साहित्य का अटूट संबंध रहा है। धर्म ने सदैव मानव जीवन को दिशा प्रदान करने का कार्य किया है, वहीं साहित्य ने धर्म की उन अवधारणाओं को जन-जन तक पहुँचाने का माध्यम। भारतीय महाकाव्य परंपरा में वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं अन्य अनेक काव्य धर्म के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करते हैं। डॉ. गोरख प्रसाद 'मस्ताना' कृत 'पुन्यपथी' (2022) उसी परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जो त्रेतायुगीन चरित्र श्रवण कुमार को केन्द्र में रखकर धर्म की एक विशिष्ट अवधारणा - मातृ-पितृ भक्ति और सेवा धर्म - को प्रतिष्ठित करता है।

यह शोध आलेख महाकाव्य की पारंपरिक परिभाषाओं के आलोक में 'पुन्यपथी' का मूल्यांकन करते हुए यह विश्लेषण करेगा कि श्रवण कुमार का चरित्र धर्म की किस अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है और वह आज के युग में किस प्रकार प्रासंगिक है।

2. महाकाव्य की परिभाषा: भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण

2.1 भारतीय महाकाव्य परंपरा

भारतीय काव्यशास्त्र में महाकाव्य की स्पष्ट परिभाषा उपलब्ध है। आचार्य भामह, दंडी, विश्वनाथ एवं अन्य आलोचकों ने महाकाव्य के स्वरूप को रेखांकित किया है। संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार:

"सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।"

अर्थात् सर्गबद्ध रचना महाकाव्य कहलाती है। दंडी ने 'काव्यादर्श' में महाकाव्य के लिए निम्नलिखित लक्षण बताए हैं:

1. सर्गबद्धता: इसमें अनेक सर्ग होते हैं।

2. सूत्रधार: किसी धीरोदात्त नायक की कथा होती है।

3. फलप्रद: चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से किसी एक की प्राप्ति फल होता है।

4. रसाश्रय: इसमें शृंगार, वीर, शांत आदि रसों में से कोई एक प्रधान रस होता है।

5. सन्ध्या-प्रभात वर्णन: सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, संध्या, ऋतु, पर्वत, उद्यान आदि का वर्णन।

6. मंगलाचरण: प्रारंभ में मंगलाचरण एवं नमस्क्रिया।

2.2 पाश्चात्य महाकाव्य परंपरा

पाश्चात्य साहित्य में अरस्तू (Aristotle) ने 'पोएटिक्स' (Poetics) में महाकाव्य (Epic) के लक्षण बताए हैं। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार महाकाव्य के प्रमुख तत्व हैं:

1. उदात्त नायक (Heroic Protagonist): महाकाव्य का नायक असाधारण गुणों से युक्त, उदात्त चरित्र वाला होता है।

2. व्यापक परिप्रेक्ष्य (Vast Setting): इसका क्षेत्र व्यापक होता है - राष्ट्र, विश्व या ब्रह्मांड।

3. अलौकिक शक्तियाँ (Supernatural Elements): देवता, अलौकिक शक्तियाँ कथा में हस्तक्षेप करती हैं।

4. शैली की उदात्तता (Elevated Style): भाषा एवं शैली गंभीर एवं प्रभावशाली होती है।

5. सार्वभौमिक मूल्य (Universal Values): यह मानव जीवन के मौलिक प्रश्नों एवं मूल्यों से जुड़ा होता है।

2.3 'पुन्यपथी' का महाकाव्य के रूप में मूल्यांकन

'पुन्यपथी' उपरोक्त दोनों परंपराओं के अधिकांश मानदंडों पर खरा उतरता है:

· सर्गबद्धता: यह काव्य नौ सर्गों में विभाजित है - सर्ग-एक (उद्देश्य एवं युगबोध), सर्ग-दो (श्रवण का अवतरण), सर्ग-तीन (श्रवण-विद्या मिलन), सर्ग-चार (तीर्थाटन की तैयारी), सर्ग-पाँच (आकांक्षा), सर्ग-छः (तीर्थाटन), सर्ग-सात (विद्या), सर्ग-आठ (श्रवण का अन्त), सर्ग-नौ (चिंतन)।

· धीरोदात्त नायक: श्रवण कुमार धीर, उदार, त्यागी एवं सेवापरायण नायक हैं।

· फल: यहाँ धर्म (मातृ-पितृ भक्ति) की प्राप्ति ही परम फल है।

· प्राकृतिक वर्णन: काशी, केदारनाथ, बद्रीनाथ, हिमालय, गंगा, त्रिवेणी आदि का विस्तृत वर्णन।

· अलौकिक तत्व: ब्रह्मा, नारद, वशिष्ठ, शिव, अग्निदेव आदि का आविर्भाव। श्रवण को वरदान और विद्या का अग्निदेव

द्वारा स्वर्गारोहण।

· सार्वभौमिक मूल्य: सेवा, कर्तव्य, त्याग, मातृ-पितृ भक्ति जैसे मूल्य।

'पुन्यपथी' में दोनों परंपराओं का समन्वय देखने को मिलता है। भारतीय महाकाव्यों की तरह इसमें धर्म की प्रतिष्ठा है, और पाश्चात्य महाकाव्यों की तरह इसमें नायक की त्रासदी (श्रवण की मृत्यु) के माध्यम से करुण रस की प्रधानता है। कवि ने स्वयं इसकी भूमिका में लिखा है कि इस कृति का उद्देश्य श्रवण के चरित्र को आदर्श रूप में प्रस्तुत करना है:

"श्रवण को जो अपना आदर्श बनायेगा / वह छात्र जगत में यश, धन, वैभव पायेगा" (पृष्ठ 9)।

3. 'पुन्यपथी' में धर्म की अवधारणा

धर्म संस्कृत भाषा का एक व्यापक शब्द है, जिसका अर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है। 'धृ' धातु से बना यह शब्द 'धारण करने' का भाव रखता है - जो समाज, संसार और जीवन को धारण करता है, वही धर्म है।

3.1 धर्म की पारंपरिक अवधारणा

वैदिक साहित्य में धर्म को ऋत (cosmic order) के रूप में देखा गया। महाभारत में कहा गया है:

"धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥"

(जो धारण करता है, उसे धर्म कहते हैं। धर्म ही प्रजा को धारण करता है। अतः जो धारण करने की क्षमता रखता है, वही धर्म है।)

मनुस्मृति में धर्म के चार स्रोत बताए गए हैं - वेद, स्मृति, सदाचार और अपना अंतरात्मा।

3.2 'पुन्यपथी' में धर्म का स्वरूप

'पुन्यपथी' में धर्म की अवधारणा मुख्यतः आचरण और व्यवहार से जुड़ी है। यहाँ धर्म अनुष्ठानों का न होकर जीवन-मूल्यों का धर्म है। कवि ने प्रस्तावना में स्पष्ट किया है:

"नमित्त फलिनों वृक्षाः, नमित्त गुणिनों जनाः" (पृष्ठ 6)

अर्थात् वृक्ष फल के लिए नहीं होते, गुणी जन भी किसी अपेक्षा से गुणी नहीं होते। श्रवण का जीवन इसी गुण-प्रधान धर्म का उदाहरण है।

3.2.1 मातृ-पितृ भक्ति ही परम धर्म

श्रवण के जीवन में माता-पिता की सेवा ही सर्वोच्च धर्म है। जब वे ब्रह्मा जी से वरदान माँगते हैं तो नेत्रहीन होने की शर्त स्वीकार कर लेते हैं, किंतु संतान सुख से वंचित नहीं रहना चाहते। श्रवण के जन्म के पश्चात उसका सम्पूर्ण जीवन इसी धर्म के प्रति समर्पित रहता है:

"चरन दबाकर उन्हें सुलाना सत सुकर्म था उनका / मात पिता को मिले सहज सुख यही धर्म था उनका" (पृष्ठ 31)।

3.2.2 सेवा धर्म

'पुन्यपथी' में सेवा को धर्म का मूल आधार माना गया है। श्रवण का सम्पूर्ण तीर्थाटन इसी सेवा-धर्म का प्रतीक है। वह अपने माता-पिता को काँवर में बिठाकर चारों धामों की यात्रा कराता है। यह केवल शारीरिक सेवा नहीं, अपितु आत्मिक समर्पण है। कवि ने स्पष्ट किया है:

"सचमुच माता पिता की सेवा है सुखकारी / उनके स्नेहाशीष में होती दुनिया सारी" (पृष्ठ 55)।

3.2.3 कर्तव्यपरायणता

श्रवण का जीवन कर्तव्य के प्रति अटल निष्ठा का प्रतीक है। राजा दशरथ द्वारा कठिनाइयाँ बताए जाने पर भी वह अपने निर्णय पर अडिग रहता है:

"सुनकर वचन अयोध्यापति के श्रवण बोले / महाराज! रक्षक मेरे शिव शंकर भोले / सदा आपका बल प्रताप, मेरा बल होगा / गुरूवर का आशीर्वाद ही संबल होगा" (पृष्ठ 54)।

3.2.4 त्याग और समर्पण

श्रवण के चरित्र का केन्द्रीय भाव त्याग है। उसका सम्पूर्ण जीवन माता-पिता के लिए समर्पित है। वह विद्या को घर पर छोड़कर अकेले ही इस यात्रा पर निकलता है। यह त्याग ही उसके धर्म का आधार है। काशी के पंडों द्वारा आरती देने से मना करने पर वह स्पष्ट करता है:

"मेरे लिए पिता ही शिव हैं, माता पार्वती हैं / शांत स्वरूप जनक है मेरे माता ज्ञानवती है" (पृष्ठ 80)।

4. श्रवण कुमार: धर्म के आदर्श प्रतिमान

4.1 पौराणिक संदर्भ

रामायण में श्रवण कुमार का उल्लेख एक प्रसंग के रूप में है, जहाँ राजा दशरथ की अनजाने में हुई हत्या से उन्हें श्राप मिलता है। किंतु 'पुन्यपथी' में श्रवण के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र का विस्तार है। कवि ने इस लोकप्रिय चरित्र को महाकाव्य का नायक बनाकर उसे व्यापक आयाम दिए हैं।

4.2 श्रवण का चरित्र-चित्रण

'पुन्यपथी' में श्रवण को एक आदर्श पुत्र, आज्ञाकारी शिष्य, कर्तव्यनिष्ठ पति और सेवाभावी मानव के रूप में चित्रित किया गया है। उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं:

1. बाल्यकाल से संस्कारित: "बाल्यकाल से अति उत्तम थे संस्कार श्रवण के / दया धर्म सेवा ही आभूषण थे उनके तन के" (पृष्ठ 30)।
2. गुरु भक्त: "गुरू सेवा भी धर्म समझता, था वह आज्ञाकारी" (पृष्ठ 31)।
3. पत्नी के प्रति सम्मान: विद्या के प्रति उसका व्यवहार सम्मान और सहयोग का है।
4. साहसी एवं दृढ़ संकल्प: विषम परिस्थितियों में भी वह अपने संकल्प से विचलित नहीं होता।

4.3 श्रवण और धर्म का समकालीन संदर्भ

कवि ने श्रवण के चरित्र के माध्यम से समकालीन समाज की विसंगतियों पर प्रहार किया है। प्रस्तावना में वे लिखते हैं:

"आज जब मानव जीवन में अनेकानेक विसंगतियां व्याप्त हो चुकी हैं... माता पिता अपना सर्वस्व अपनी संतानों पर न्यौछावर कर भी वृद्धाश्रम में जीने को अभिशप्त हैं... वहाँ पर जो शब्द आशा और विश्वास की ज्योति बन, सहारा देने और संभालने हेतु उपस्थित होता है, वह है 'श्रवण कुमार'" (पृष्ठ 6-7)।

इस प्रकार श्रवण का चरित्र आज के उस युग में धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा का माध्यम बनता है, जहाँ भौतिकता और स्वार्थ ने मानवीय संबंधों को तार-तार कर दिया है।

5. निष्कर्ष

'पुन्यपथी' महाकाव्य श्रवण कुमार के चरित्र के माध्यम से धर्म की उस अवधारणा को प्रतिष्ठित करता है जो मानवीय मूल्यों, कर्तव्य, सेवा और त्याग पर आधारित है। भारतीय एवं पाश्चात्य महाकाव्य परंपरा के मानदंडों पर खरा उतरने वाली यह कृति न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भी प्रासंगिक है।

धर्म को यहाँ कर्मकांडों के स्थान पर आचरण की श्रेष्ठता के रूप में देखा गया है। श्रवण का जीवन दर्शाता है कि सच्चा धर्म मंदिरों-मस्जिदों में नहीं, अपितु माता-पिता के चरणों में, सेवा के भाव में, और कर्तव्य के निर्वहन में निहित है। कवि ने सही ही कहा है:

"श्रवण का नाम लेत जग में सुसंस्कार / सेवा, समर्पण का दीप जल जाता है / वह तो युग-नायक है दुनिया के पुत्रों का / आज भी समय उनके, गुणों को ही गाता है" (पृष्ठ 110)।

इस प्रकार 'पुन्यपथी' धर्म की उस सनातन अवधारणा को नवीन संदर्भों में प्रस्तुत करता है, जो युगों-युगों से भारतीय जीवन-दृष्टि का आधार रही है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. गोरख प्रसाद 'मस्ताना'. (2022). पुन्यपथी (महाकाव्य). नई दिल्ली: नवजागरण प्रकाशन.
2. दंडी. काव्यादर्श.

3. अरस्तू. (2013). पोएटिक्स (एस.एच. बुचर अनूदित). लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

4. डॉ. नगेंद्र. (2010). भारतीय काव्यशास्त्र. दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस.

5. कणे, पी.वी. (2014). हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र. पुणे: भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट.

6. राधाकृष्णन, एस. (2018). भारतीय दर्शन की रूपरेखा. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

7. वाल्मीकि. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (गीताप्रेस गोरखपुर संस्करण).

यशपाल की आत्मकथा *'सिंहावलोकन'* में चित्रित समाज पर आर्य समाज के प्रभाव का विश्लेषण

रवींद्र[1],
डॉ. अमित कुमार सिंह कुशवाहा[2]
[1]शोधार्थी,
[2]सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र *'सिंहावलोकन'* को माध्यम बनाकर चित्रित समाज पर आर्य समाज के प्रभाव का विश्लेषण करता है। प्रस्तुत शोध में आर्य समाज के प्रभाव के धार्मिक, शैक्षिक और राजनीतिक पक्षों के साथ-साथ इसके पतन के कारणों का भी विश्लेषण किया गया है। इसमें आर्य समाज ने पंजाब के सामाजिक परिवेश में अंधविश्वास, कुरीतियाँ, आडंबर, भेदभाव को दूर करने में जो भूमिका निभाई उसका विश्लेषण किया गया है। यह शोध पत्र आर्य समाज ने कॉलेज व गुरुकुल की स्थापना करके पंजाब के शैक्षणिक परिवेश में कैसा बदलाव किया उसका विश्लेषण करता है। यह आर्य समाज ने स्वतंत्रता आंदोलन और राजनीति को कैसे प्रभावित किया उसका विश्लेषण करता है और साथ ही इसका पतन कैसे हुआ उसका भी विश्लेषण करता है।

बीज शब्द: पंजाब, स्वतंत्रता संग्राम, शिक्षा, राजनीति, रूढ़िवाद, धर्म, पतन, सिख संप्रदाय

प्रस्तावना

वैदिक धर्म भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे पुराना धर्म माना जाता है। जिसका अभिप्राय उस धार्मिक व्यवस्था से है जो आर्यों द्वारा अपनाई जाती थी और जिसका प्रमुख स्रोत वेद थे। यह अधिकतर यज्ञ-केंद्रित, सामूहिक अनुष्ठान और प्रकृति-देवताओं पर आधारित था। इस धर्म में पशु बलि, विशेष वर्ग एकाधिकार और जन्म-आधारित श्रेष्ठता का प्राचुर्य था। वैदिक धर्म की इन कुरीतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्ध और जैन धर्म का उदय हुआ। बौद्ध धर्म ने वेदों के अनिवार्य अधिकार, यज्ञ और पशु-बलि का खंडन और जाति-आधारित भेदभाव का विरोध किया और अहिंसा और नैतिक कर्म पर जोर दिया। इसमें किसी भी जाति का व्यक्ति सन्यासी हो सकता था। इसकी इसी प्रकृति के कारण वैदिक धर्म के अनुयायी भारी मात्रा में बौद्ध धर्म अनुयायी हो गए। कालांतर में भारत में मुसलमान शासकों के साथ इस्लाम और अंग्रेजों के साथ ईसाई धर्म का भी आगमन हुआ। तथा इन दोनों धर्मों में भी प्रचुर मात्रा में धर्मांतरण हुए। सन् 1839 में पंजाब के लुधियाना में ईसाई मिशनरी (जोंस) का पहला मुख्यालय स्थापित हुआ था। मगर इससे पहले भी इसने धर्मांतरण शुरू कर दिया था। सन् 1880 तक इसने पंजाब में अपना जाल बिछा दिया और धर्मांतरण तीव्र गति से करना शुरू कर किया, सन् 1881 में धर्मांतरण की जो संख्या 3912 थी वो सन् 1901 तक 38000 तक पहुँच गई। ईसाई मिशनरी ने नीचे तबके के साथ-साथ

स्कूल में पढ़ने वाले उच्च वर्ग को भी निशाना बनाया। ईसाई मिशनरी व ब्रिटिश सरकार की मिलीभगत से चल रहे 'ईसाई मिशन' हिन्दू समाज को एक खतरे की तरह महसूस होने लगा। 1875 में राजकोट में स्थापित आर्य समाज को पंजाब में अपार सफलता मिलने का यह सबसे मुख्य कारण था।

विषय विश्लेषण

धार्मिक प्रभाव:

सिख धर्म प्रारंभ में हिन्दू धर्म का एक संप्रदाय मात्र ही था जो आगे चलकर एक पृथक धर्म के रूप में विकसित हुआ। इसलिए दोनों धर्मों की सांस्कृतिक परंपरा एक-दूसरे से जुड़ी हुई है। कालांतर में कई आंदोलन हुए जिनमें हिन्दू और सिखों की साँझी भागीदारी रही। ऐसा ही एक आंदोलन 'नामधारी' आंदोलन रहा है। इस आंदोलन के द्वारा चलाए गए 'गौ रक्षा' आंदोलन में दोनों समुदाय एक साथ खड़े थे। सांस्कृतिक समानताओं के साथ-साथ भाई जवाहर सिंह कपूर, ज्ञानी दित सिंह जैसे रसूखदार व्यक्तियों और भगत सिंह के मध्यवर्गीय परिवार की सक्रिय सहभागिता ने आर्य समाज के विस्तार में अहम योगदान दिया। सिंहावलोकन में यशपाल क्रांतिकारी भगत सिंह के परिवार के आर्य समाज की ओर झुकाव का ज़िक्र करते हैं, "भगत सिंह का परिवार सम्प्रदाय से सिख था, परन्तु सिख सांप्रदायिकता के प्रति इस परिवार में कोई रूढ़िवादी कट्टर आस्था नहीं थी। भगत सिंह के पिता से मेरा घनिष्ठ परिचय रहा है। उसके दादा को भी जानता था। सिर पर केश होने के बावजूद यह लोग सिख की अपेक्षा आर्यसमाजी ही अधिक थे। भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह तो सामाजिक प्रश्नों पर सांप्रदायिकता की उपेक्षा कर उन्हें केवल राजनैतिक दृष्टि से ही देखते थे।"(यशपाल 12) आर्य समाज के प्रभाव से भगत सिंह का परिवार; रूढ़िवाद से ऊपर उठकर सामाजिक सवालों को सांप्रदायिकता की दृष्टि से न देखकर राजनीतिक दृष्टि से देखने लगे।

भगत सिंह के परिवार के इतर भी सिख समाज में ऐसे अनेकों बुद्धिजीवी थे जिन्होंने पंजाब में आर्य समाज के विकास में अहम भूमिका निभाई। भाई जवाहर सिंह कपूर सिंह सभा आंदोलन, (Jawahir Singh Kapur) विशेष रूप से लाहौर सिंह सभा के एक अग्रणी नेता थे। वे एक समाज सुधारक, समाज-सेवी, कवि, लेखक और खालसा दीवान के समर्थक थे। इन्होंने लाहौर में आर्य समाज व दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज फंड कमेटी (जॉनसन) के सचिव का पद संभाला। इस वजह से काफी संख्या में युवा सिख आर्य समाज की और आकर्षित हुए। ज्ञानी दित सिंह जो कि सिंह सभा के अग्रणी नेता थे एवं आर्य समाज के अनुयायी थे। इनके स्वामी दयानंद के साथ हुए तीन ऐतिहासिक वाद-विवाद प्रसिद्ध है जो की इनकी पुस्तक '*साधु दयानंद ते तेरा संवाद*' में लिखे गए है।

आर्य समाज ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़िवाद को मिटाने में विशेष भूमिका निभाई। अर्जुन सिंह आर्य समाज के कारण धार्मिक रूढ़िवाद से ऊपर उठकर तार्किकता से सोचने लगे और आर्थिक स्थिरता के लिए सिख धर्म में वर्जित तंबाकू की खेती करने लगे। यशपाल भगत सिंह के परिवार का हवाला देते हुए लिखते है, "दादा अर्जुन सिंह जी के गाँव की भूमि तम्बाकू की उपज के लिये बहुत अनुकूल थी, परन्तु गाँव में पूरी आबादी सिक्खों की होने के कारण वहाँ तम्बाकू की खेती नहीं होती थी। सरदार अर्जुन सिंह इस रूढ़िवाद या कुसंस्कार को कब तक सहते जाते ! उन्होंने अपने खेतों में तम्बाकू बो दिया। गाँव भर में पंचायतें हुईं पर वे डटे रहे। फसल तैयार हो जाने पर तम्बाकू घर में जमा भी कर लिया। तम्बाकू का खेतों तक रहना एक बात थी पर उसका एक सिख के घर में रख लिया जाना सिख बिरादरी किसी तरह न सह

सकती थी। सरदार जी को बिरादरी से अलग कर दिया गया। सरदार जी अपनी बिरादरी को तर्क द्वारा समझाने की विफल चेष्टा करते रहे।" (यशपाल 14) अर्जुन सिंह आर्य समाज के प्रभाव से खुले-विचारों वाले व्यक्ति हो गए इसलिए तार्किक होकर तंबाकू की खेती भी की और बाद में बिरादरी के रूठे हुए लोगों को मना भी लिया। सन् 1888 में कपूर ने आर्य समाज (जॉनसन) ने इस्तीफा दे दिया जिसका कारण हिन्दू नेताओं का सिख धर्म के खिलाफ प्रचार करना था।

शिक्षा पर प्रभाव:

आर्य समाज ने धार्मिक, राजनीतिक स्थिति में सुधार के साथ ही पंजाब क्षेत्र में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़े सुधार किए। एक 01 जून, 1886 को लाहौर में पहला डी०ए०वी० स्कूल खोला गया जिसके संस्थापक लाला हंसराज थे। आर्य समाज ने महिलाओं के लिए भी शिक्षा के द्वार खोले। सन् 1890 में जालंधर में पहला कन्या विद्यालय (कौर) भी स्थापित किया गया जिसमें अविवाहित के साथ विधवा को भी शिक्षित किया जाता था। आर्य समाज में शिक्षा दो पद्धतियों से दी जाती थी। सन् 1893 में आर्य समाज के दो दल बन गए थे। इन दलों द्वारा संचालित संस्थानों में दी जाने वाली शिक्षा में काफी अंतर था। लाल हंसराज व लाला लाजपत राय के पास डी०ए०वी०कॉलेज का नियंत्रण रहा तथा दूसरे दल के पास आर्य प्रतिनिधि सभा का जिसके अंतर्गत गुरुकुल चलाया जाता था।

कॉलेज तथा गुरुकुल दल के नियंत्रण और शिक्षा में काफी अंतर दिखाई देता है। इसका एक कारण कॉलेज पार्टी का अनुदान के लिए सरकार पर आश्रित थे जबकि गुरुकुल इस मामले में स्वायत्त थे। यशपाल जिक्र करते हैं , "आर्य समाज में संगठनात्मक रूप से दो पार्टियाँ रही हैं: एक कॉलेज पार्टी और दूसरी गुरुकुल पार्टी। कॉलेज पार्टी में सरकारी नौकरों, वकीलों और सरकारी विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित शिक्षण संस्थाओं के लोगों की अधिकता रही है। यह पार्टी राजभक्ति की दृष्टि से विदेशी सरकार के अधिक समीप थी। गुरुकुल पार्टी का मुख्य आधार प्राचीन शिक्षा प्रणाली और प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान रहा है।"(यशपाल 17) सरकार के अनुदान पर आश्रित करने के कारण कॉलेज पार्टी का झुकाव राजभक्ति की तरफ था क्योंकि यहाँ से नौकरशाह निकलते थे। गुरुकुल पार्टी भी पूरी तरह से राजभक्ति से मुक्त नहीं थी, इन्हें भी सरकार के प्रति वफादारी दिखानी पड़ती थी। यशपाल लिखते हैं, "विदेशी शासन के प्रति इनके मन में घृणा और विरोध तो था, परन्तु उसे सार्वजनिक रूप से प्रकट करने का साहस न था। बचपन में मैं स्वयं लगभग सात वर्ष गुरुकुल में रहा हूँ। मुझे याद है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक महात्मा मुंशीराम जी, जो बाद में संन्यास ग्रहण करके स्वामी श्रद्धानन्द कहलाने लगे थे, प्रान्तीय गवर्नरों और वाइसराय को गुरुकुल में आमंत्रित करके उनका प्रेमपूर्वक सत्कार करने का पाखण्ड करते रहते थे। जब दिल्ली में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया और वाइसराय बाल-बाल बच गये तो गुरुकुल में ईश्वर की इस कृपा पर धन्यवाद देने के लिये एक सभा की गई थी।"(यशपाल 17) इन संस्थाओं को राजभक्ति का दिखावा करना पड़ता था ताकि सरकार की नज़रों से बची रह सके।

असहयोग आंदोलन में जिन विद्यार्थियों ने पढ़ाई छोड़ दी थी उनके लिए लाला लाजपत राय ने पंजाब नेशनल कॉलेज खोला था जिसका यशपाल जिक्र करते हैं, "इन्हीं असहयोगी विद्यार्थियों को योग्य राष्ट्रीय कार्यकर्ता बनाने के लिये लाला जी और पंजाब के कांग्रेस नेताओं ने लाहौर में पंजाब नेशनल कॉलेज की स्थापना की थी"(यशपाल 21) काँगड़ी विश्वविद्यालय के श्रद्धानन्द ने जलियाँवाला भाग हत्याकांड के विरोध में प्रदर्शन भी किया इसका भी यशपाल जिक्र करते हैं , "१४१९ में जब जालियांवाला बाग की घटना के कारण विदेशी शासन के विरुद्ध देश की जनता के आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया तो स्वामी श्रद्धानन्द राजभक्ति के अपने पुरानें प्रदर्शनों के बावजूद राष्ट्रीय आन्दोलन के अगले मोर्चे

पर आये बिना न रह सके और उनकी गणना कांग्रेस के उग्र राजनैतिक नेताओं में होने लगी।" (यशपाल 17) इससे स्पष्ट होता है कि दोनों दलों के कारण स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति लोगों का रुझान बढ़ा। सरकारी निगरानी में होने के बावजूद भी ब्रिटिश शासन की नीतियों के खिलाफ हुए आंदोलनो में इन शिक्षण संस्थाओं का विशेष योगदान रहा। गुरुकुल के लिए पाठ्यक्रम अलग से तैयार किया जाता था जिसकी वजह से यहाँ पढ़ने वाले छात्रों का झुकाव देशभक्ति की और अधिक था। इस पाठ्यक्रम का जिक्र करते हुए यशपाल लिखते है, "गुरुकुल में सरकारी यूनिवर्सिटियों और स्कूलों के लिये तैयार की गई पाठ्य-पुस्तकें नहीं पढ़ाई जाती थीं। तब गुरुकुल विश्वविद्यालय अपनी पाठ्य-पुस्तकें प्रायः स्वयं तैयार करता था।" (यशपाल 29) इतिहास की पाठ्यक्रम पर तो अंग्रेजों को खुश करने के लिए बहुत से बदलाव किए जाते थे। अध्यापक फिर भी मौखिक रूप से सच्ची बात बताने की हिम्मत रखते थे पर सरकार के जासूसों का डर भी बना रहता था, "गुरुकुल विदेशी सरकार से स्वतंत्र शिक्षा देता है और अंग्रेज गुरुकुल को सदा शंका और सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। कभी-कभी ऐसी सनसनी भी फैल जाती कि कोई जासूस भेद लेने के लिये वेश बदलकर आया था और अमुक जिम्मेदार व्यक्ति ने उसे मार- मार कर भगा दिया"(यशपाल 30)

राजभक्ति और पाठ्यक्रम के अलावा गुरुकुल एक और पक्ष में कॉलेज से अलग था, वह गुरुकुल की शिक्षा पद्धति में ब्रह्मचर्य का शामिल होना। हालाँकि ब्रह्मचर्य को लागू करने के तरीकों पर यशपाल सवाल उठाते हैं, " छात्रावास और विद्यालय की सीमाओं में किसी भी स्त्री का दिखाई दे जाना उतना ही अप्रत्याशित था जितना कि दिल्ली के कनाट सरकस या बम्बई के फोर्ट के इलाके में जंगली हिरनों अथवा नील-गायों के झुण्ड का कुलाचें मारते हुए दिखाई दे जाना। पूरे वर्ष में एक दिन भी ब्रह्मचारी स्त्री को नहीं देख सकते थे। गुरुकुल के वार्षिक उत्सव पर एक दिन स्त्रियाँ ब्रह्मचारियों के रहने की जगह देख सकती थीं।...समाज और व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और विकास के लिये संयम और ब्रह्मचर्य के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता, परन्तु गुरुकुल में इसके लिये जो उपाय व्यवहार में लाये जा रहे थे मनोवैज्ञानिक या प्राकृतिक नहीं थे। उन्हें केवल दमन मात्र कहा जा सकता है। इसका परिणाम शायद इन प्रवृत्तियों को अस्वाभाविक रूप से उग्र बना देना ही होता था।" (यशपाल 31) गुरुकुल की शिक्षा पद्धति में ब्रह्मचर्य का महत्व था इसलिए लड़के-लड़कियों के स्कूलों में दो कोश की दूरी अनिवार्य होती थी। स्कूली शिक्षा पूर्ण (कौर) करने की न्यूनतम आयु लड़कियों के लिए सोलह और लड़कों के लिए पच्चीस थी। महिलाओं की शिक्षा के मामले में आर्य समाज ज्यादा खुल पाया और महिलाओं को आदर्श गृहिणी बनाने के लिए शिक्षित किया जाता। इसके अतिरिक्त शूद्र महिला को वेद पढ़ने की अनुमति नहीं थी। इन शिक्षण संस्थानों के अतिरिक्त अछूत बालकों की शिक्षा के लिए भी आर्यसमाज पाठशालाएं चलवाता था जिसका यशपाल जिक्र करते हैं, "इन दिनों छावनी में अछूत बालकों को पढ़ाने के लिये एक रात्रि पाठशाला आर्यसमाज की ओर से खोली गई थी।"(यशपाल 36)

निष्कर्ष के रूप में कहा जाए तो आर्य समाज के पुरुषों और महिलाओं की शिक्षा का उत्थान किया और अछूतों के लिए शिक्षा के दरवाजे खोला । ब्रह्मचर्य के बहाने सह-शिक्षा न देना और स्त्री शिक्षा को सीमित रखना आर्य समाज की एक कमी रही है। आर्य समाज का यह मानना कि 'वेदों में सब कुछ पहले से लिखा है' जिससे छात्रों में बाहरी ज्ञान के प्रति आँखें मूँद लेने की प्रवृति विकसित होने लगी भी एक कमी थी।

राजनीतिक प्रभाव:

आर्य समाज की स्थापना हिंदुओं के सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान के लिए हुई थी। आर्य समाज अंधविश्वास, आडंबर,

मूर्ति पूजा, छुआछूत और अशिक्षा को दूर कर तार्किकता, शिक्षा, स्त्री स्थिति में सुधार के जरिए हिंदुओं का पुनरुत्थान करना चाहते था। इसके प्रभाव से सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान के परिणामस्वरूप राजनीतिक सुधार और विदेशी शासन से स्वतंत्रता की भावना भी पैदा हुई। यशपाल जिक्र करते हैं, "यही कारण था कि पंजाब में आर्यसमाज द्वारा सामाजिक सुधार की चेतना फैलने के साथ-साथ ही विदेशी दासता के विरोध की चेतना भी फैलने लगी थी। उस समय पंजाब के प्रायः सभी राजनैतिक कार्यकर्त्ता-लाला हरदयाल, अम्बाप्रसाद सूफी, लाला लाजपतराय और अजीतसिंह आदि आर्यसमाजी विचार स्वतंत्रता द्वारा प्रभावित थे। १९१४-१५ के लाहौर षड्यंत्र के मामले में गिरफ्तार भाई परमानन्द जी आदि भी आर्यसमाज की प्रगतिशील चेतना की ही उपज थे"। (यशपाल 15)

आर्य समाज में राजभक्ति कम और देशभक्ति ज्यादा थी। लाला लाजपत राय सरीखे आर्य समाजी नेताओं ने देश के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। एक समय में आर्य समाजी होना सरकार की नजर में संदेह भरा होता था। यशपाल लिखते है, "यह सामाजिक चेतना का अनिवार्य परिणाम था। एक समय ऐसा था कि कोई भी व्यक्ति आर्यसमाजी बन जाने से ही सरकार की दृष्टि में राजनैतिक रूप से संदिग्ध हो जाता था। उस समय किसी नवयुवक के आर्यसमाजी बन जाने पर परिवार के लोग ऐसे ही चेहरा लटका लेते थे जैसे कि आजकल (१९५०-५१) में घर के लड़के के कम्युनिस्ट बन जाने पर आशंका अनुभव की जाती है।"(यशपाल 15) ऐसे वातावरण ने भगत सिंह को तार्किक बनाया जो भविष्य में नास्तिकता में बदल गया। इस तार्किकता का परिणाम ही था की लाला लाजपत राय की विचारधारा से सहमत न होते भी भगत सिंह की पार्टी ने उनका साथ दिया। यशपाल लिखते है, "नवयुवक लाला जी के उस समय के राजनैतिक मार्ग और कार्यक्रम के प्रति अनुगत नहीं थे। सन् १९२६ में जब लाला जी ने-चाहे जो भी कारण रहे हों - केन्द्रीय असेम्बली के चुनावों के समय नेशनल स्वराज्य पार्टी बनाकर अपनी शक्ति कांग्रेस की अपेक्षा हिन्दू संगठन की ओर लगानी शुरू कर दी नेशनल कालिज के अधिकांश विद्यार्थी राजनैतिक रूप से लाला जी से खिन्न हो गये थे। लाला लाजपतराय और पंडित मोतीलाल नेहरू के राजनैतिक विवाद में पंजाब नेशनल कालिज के विद्यार्थियों की सहानुभूति पं० मोतीलाल नेहरू के प्रति अधिक थी। पंजाब 'केसरी लाला लाजपतराय की राजनीति साम्प्रदायिकता के पक्ष में ढल जाने पर क्रांतिकारी दल के युवकों के हृदय में उनके प्रति कुछ विरक्ति हो गयी थी।"(यशपाल 6)

आर्य समाज के शिक्षण संस्थानों में दी गई शिक्षा के कारण भी छात्रों में विदेशी शासन के प्रति घृणा उत्पन्न हुई थी। आर्य समाज का मानना था, "अपने धर्मग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में उन्होंने सिद्धान्ततः राजभक्ति का भी उपदेश जरूर दिया है। परन्तु वे यह लिखे बिना भी नहीं रह सके कि 'विदेशी शासन चाहे जितना भी सुखदायक और उन्नतिशील क्यों न हो, अपनी जाति के स्वतंत्र शासन से अच्छा नहीं हो सकता।' आर्यसमाज के आन्दोलन से प्रभावित होने वाले लोगों की भावना पर स्वामी जी के इस वाक्य का प्रभाव न पड़ा हो, यह नहीं हो सकता।" (यशपाल 15)

आर्य समाज के इन्हीं प्रभावों को देखते हुए (दुआ) ब्रिटिश सिविल सेवक ई ए एच ब्लन्ट लिखते है, "The type of man to whom the Arya doc- trine appeals is also the type of man to whom politics appeals, viz, the edu- cated man who desires his country's progress."अर्थात् आर्य समाजी मत उस शिक्षित व्यक्ति को ही आकर्षित करता है जिसको राजनीति और देश की उन्नति प्रिय है।

यशपाल ने स्वयं के उग्र विचारधारा के ग्रहण करने के बीज आर्य समाज में शिक्षित होने में खोजे हैं, तात्कालिक कारण बेशक गांधी जी के आंदोलनों से असंतोष रहा हो। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सामाजिक प्रगति के पथ पर चलकर व्यक्ति राजनैतिक दृष्टि से भी सचेत हो जाता है और इस राजनैतिक दृष्टि के उदाहरण यशपाल की

सिंहावलोकन के अलावा तत्कालीन पंजाब के राजनीतिक इतिहास में मिलते हैं। राजनैतिक दृष्टि से सचेत होना यशपाल के इस उद्धरण से समझा जा सकता है, "लाला जी की हत्या का बदला स्वतः उद्देश्य नहीं, बल्कि एक व्यापक उद्देश्य की ओर बढ़ने का साधन मात्र था" (यशपाल 7)

यह तथ्य सर्वविदित है कि भगत सिंह वामपंथी विचारधारा के अधिक करीब थे, फिर भी उन्होंने लाला जी की मृत्यु का बदला लिया। ऐसा इसलिए, क्योंकि उनके लिए विचारधारा में असहमति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण आजादी की लड़ाई साथ मिलकर लड़ना था। यशपाल के मतानुसार, भगत सिंह की यह तार्किकता और जोखिम लेने की प्रवृत्ति कहीं न कहीं आर्य समाज के खुलेपन की ही देन थी।

आर्य समाज का पतन:

बंबई में आर्य समाज की स्थापना के समय 28 नियम बनाए गए थे। 28वाँ नियम आर्य समाज के लोकतान्त्रिक विचारों का प्रतीक था, "इन नियमों में कोई नियम नया लिखा जाएगा या कोई निकाला जाएगा या न्यूनाधिक किया जाएगा; सो सब श्रेष्ठ सभासदों की विचार रीति से सब श्रेष्ठ सभासदों को विदित करने ही यथायोग्य करना होगा।" (विद्यार्थी 34) इन नियमों में बदलाव हो सकना लचीलेपन का प्रतीक है। सन् 1877 में लाहौर में आर्य समाज की स्थापना के समय इन नियमों को 10 नियमों में समेट दिया गया जो आज तक मान्य है। इन दस नियमों में तीसरा नियम, " वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" (विद्यार्थी 36) यह नियम ही आर्य समाज के नारे 'वेदों की ओर लौटो' को चरितार्थ करता है। किसी भी पुस्तक को सब कुछ मान लेना अतार्किक है 'वेदों में सब कुछ पहले से लिखा है' पर अटक जाना आर्य समाज के पतन के अनेक कारणों में से एक कारण बना। यशपाल इस प्रवृति का जिक्र करते हैं, "भारत की प्राचीन समृद्धि और शक्ति का अत्युक्तिपूर्ण प्रचार। इसका अभिप्राय था अपने देश और समाज को हीन न समझकर आत्मविश्वास का भाव पैदा करना। अपने समाज की श्रेष्ठता के विश्वास का अर्थ था अपने समाज में गिरी हुई अवस्था से उन्नति करने का साहस उत्पन्न करना, परन्तु जब अपनी श्रेष्ठता के विश्वास के कारण हमने संसार के दूसरे देशों में हुई प्रगति से आँखें मूँद लीं तो यह मिथ्याविश्वास हमें उन्नति से रोकने लगा।"(यशपाल 16) आर्य समाज की अपनी सनातन मान्यताओं खासकर 'वेदों की श्रेष्ठता' पर अंध-विश्वास की प्रवृति ने इनको अन्य समाजों की प्रगति यथा 'पश्चिम की वैज्ञानिक प्रगति' से उपेक्षित कर दिया जो आर्य-समाज के ह्रास का एक कारण बनी।

आर्य समाज के पतन का एक अन्य कारण सिख धर्म के खिलाफ हो जाना भी था। सन् 1889 में राधा किशन नामक (जोंस) आर्य समाजी ने *ग्रन्थि-फोबिआ* नाम से सिखों के खिलाफ एक पुस्तक लिखी तथा लेखराम और गुरुदत ने अपने नियंत्रित अखबारों के माध्यम से लगातार सिखों के गुरुओं पर प्रहार किए। इन कामों की वजह से सिंह सभा के आर्य समाजी नेताओं ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया। आर्य समाज रूढ़िवादी हिंदू मान्यताओं और ईसाइयों के धर्मांतरण का विरोधी था। सन् 1888-89 में सैयदपुर में जन्मे लेखराम एक नए नेता के रूप में उभरे। इन्होंने *सत धर्म प्रचारक* उर्दू पत्रिका निकाली और दोआब उपदेशक मण्डल भी स्थापित किया। अपनी उर्दू पत्रिका के जरिए इन्होंने 'अहमदिया संप्रदाय' के खिलाफ मुहिम चलाई। इनके द्वारा लिखे गए 'जिहाद' लेख की वजह से रूढ़िवादी और अहमदिया सब तरह के मुसलमान इनके खिलाफ हो गए और इन पर कोर्ट में मुकदमा भी किया गया। जब मुकदमे से कुछ न बना तो सन् 1896 में लाहौर में इनकी हत्या कर दी गई। इस घटना के बाद आर्य समाजियों और मुस्लिम समुदाय के बीच पूरी तरह से फूट पड़ गई। आर्य समाज के शुरुआती (विद्यार्थी 34-35) दिनों में दयानंद दिल्ली दरबार में सैयद अहमद से मिले थे और पंजाब में आर्य समाज के

प्रचार के लिए मुसलमानों ने मदद भी की थी।

20वीं सदी के दूसरे दशक तक आते-आते आर्य समाज दो दलों में बँट कर प्रतिक्रियावादी हो गया जो इसके पतन का एक और कारण बना। यशपाल लिखते हैं, "वर्तमान में स्वयं भगतसिंह या हम लोगों की नजर में आर्यसमाजी १९१४-१५ में ही प्रतिक्रियावादी हो गये थे। आर्यसमाज के आन्दोलन और संगठन ने मठ और रूढ़िवाद का जैसा रूप धारण कर लिया है।" (यशपाल 15) इससे स्पष्ट होता है कि धीरे-धीरे आर्य समाज एक नई रूढ़िवादिता की और कदम बढ़ाने लगा जो इसे पतन की और अग्रसर करने लगा।

संगठन में संपत्ति और राजनीतिक महत्वाकांक्षा का आना भी इनके पतन के कारण रहे हैं, "इन संस्थाओं की संख्या, आकार और सम्पत्ति बढ़ने लगी। सम्पत्ति की स्वामी श्रेणी के गुण या दोष आर्य समाज में आने लगे। आर्य समाज यह देख रहा था कि विदेशी सरकार सामाजिक और राजनैतिक चेतना से आशंकित होती है। अंग्रेज सरकार भारत की जनता को केवल साम्प्रदायिकता के क्षेत्र में ही स्वतंत्रता देने के लिये तैयार थी। आर्य समाज विदेशी शासन के प्रति राजभक्ति का प्रचार करने लगा। उन्होंने विदेशी शासन के कोप से बचना आवश्यक समझा। आर्यसमाजी नेताओं की दृष्टि में देश और समाज की प्रगति की अपेक्षा अपनी बनी-बनाई फलती-फूलती संस्थाओं और उनके कोषों की रक्षा का महत्व अधिक हो गया। विदेशी शासन के प्रकोप से अपनी संस्थाओं और संगठन की रक्षा करने के लिये आर्यसमाज अपने कार्य को साम्प्रदायिकता का गहरा रंग देने लगा। आर्यसमाज का संगठन अपने आपको राजनैतिक भावनाओं और संघर्ष से अछूता घोषित करने में गर्व अनुभव करने लगा।"(यशपाल 16) इस तरह कहा जा सकता है कि आर्यसमाज अपने उद्देश्यों के बजाय संगठन को बचाने की ओर ध्यान देने लगा और सरकार का विरोध कम कर दिया। लाला लाजपत राय जैसे अग्रणी आर्य समाजी नेता का हिन्दू सांप्रदायिक राजनीति की ओर झुकाव राजनीतिक महत्वाकांक्षा की तरफ इशारा करता है। राजनीतिक महत्वाकांक्षा के अलावा शुद्धि आंदोलन, स्त्री शिक्षा में भेदभाव, हिंदी भाषा का अत्यधिक प्रचार भी पंजाब क्षेत्र में आर्य समाज के पतन के कारण बने।

शोध निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्य समाज के प्रभाव ने हिंदू धर्म के अलावा सिख धर्म के अनुयायियों में भी रूढ़िवादिता कम करने में सहायता की। इसने स्त्री-पुरुष शिक्षा के अतिरिक्त अछूतों की शिक्षा का द्वार भी खोला। इस संस्था ने समाज में राजनीतिक चेतना जागृत की जिसके फलस्वरूप लाला लाजपत राय जैसे आर्य समाजी नेताओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी प्राणों की आहुति दी और अनेक युवाओं को स्वतंत्रता आंदोलन के लिए प्रेरित किया। इन सुधारों के बावजूद संपत्ति, राजनीतिक महत्वाकांक्षा जैसे कारणों ने आर्य समाज के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि यह शोध सिर्फ़ एक लेखक आत्मकथा तक सीमित था, परंतु भविष्य में अन्य आत्मकथाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा आर्य समाज के प्रभाव को समझने की व्यापक संभावनाएँ मौजूद है।

संदर्भ सूची

Johnson, K. Paul. *The Masters Revealed: Madame Blavatsky and the Myth of the Great White Lodge*. State University of New York Press, 1994.

विद्यार्थी, धर्मदेव. *आर्य समाज का इतिहास: विशेष संदर्भ हरियाणा*. आधार प्रकाशन, 2011.

यशपाल. *सिंहावलोकन*. लोकभारती प्रकाशन, 2017.

Jones, Kenneth W. *"Communalism in the Punjab: The Arya Samaj Contribution."* The Journal of Asian Studies, vol. 28, no. 1, 1968, pp. 39–54. JSTOR, https:/doi.org/10.2307/2942838 Accessed 26 Mar. 2026.

Kaur, Amarpreet. "*GENDER AND EDUCATION IN ARYA SAMAJ*." Proceedings of the Indian History Congress, vol. 72, 2011, pp. 836–40. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/44146775 Accessed 26 Mar. 2026.

Veena Dua. "*Arya Samaj and Punjab Politics*." Economic and Political Weekly, vol. 5, no. 43/44, 1970, pp. 1787–91. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/4360647. Accessed 28 Mar. 2026.

Jawahir Singh Kapur." *Wikipedia, The Free Encyclopedia,* Wikimedia Foundation, n.d., https://en.wikipedia.org/wiki/Jawahir_Singh_Kapur. Accessed 13 Apr. 2026. [_{{{CITATION{{{_1{](https://en.wikipedia.org/wiki/Jawahir_Singh_Kapur#:~:text=Bhai Jawahir Singh Kapur (1858,the Khalsa Diwan (Lahore).

रजत रानी मीनू की कविताएं: दलित 'स्व' की खोज

समीर कुमार
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

दलित–स्त्री कवियों की इस कड़ी में रजत रानी मीनू एक ख्यातिलब्ध कवयित्री और लेखिका हैं। मीनू को दलित स्त्रीवाद का मुखर प्रवक्ता माना जा सकता है। इन्होंने दलित स्त्रीवाद की सैद्धांतिकी को व्यवस्थित करने में बहुत सकारात्मक योगदान दिया है, बतौर आलोचक और बतौर कवि–कहानीकार भी। रजत रानी मीनू का अबतक एकमात्र कविता संग्रह 'पिता भी तो होते हैं मां' (2015) शीर्षक से प्रकाशित है। इस संकलन की कविताएं दलित स्त्रीवाद के तमाम सरोकारों के साथ–साथ ही दलित स्त्री के 'स्व' की खोज करती हैं। इनके कवि–सजगता का एक छोटा–सा उदाहरण है कि दलित स्त्री–पुरुष के संघर्षमय जीवन का चित्रण करते हुए रजत रानी मीनू कहीं भी उसे रोमांटिसाईज नहीं करती। वह यथास्थिति से हर सूरत में मोहभंग पैदा करना चाहती हैं। इस वजह से उनकी कविताओं में निरन्तर प्रतिरोध, प्रश्नाकुलता, इतिहासबोध तथा समतावादी फूलेवादी–आंबेडकरवादी दृष्टि नजर आता है।

उनके कवि की प्रश्नाकुलता की एक बानगी कविता के शीर्षकों में भी देखी जा सकती है। कविता की अंतर्वस्तु में सामाजिकार्थिक, राजनीतिक–सांस्कृतिक असमानता पर सवाल उठाए गए हैं, जिसको शीर्षक प्रतीकित करते हैं। मसलन उक्त काव्य संग्रह में संकलित कविताओं के शीर्षक देखे जा सकते हैं : 'और तुम..?, 'क्या वे जानती हैं?', 'क्या यही बराबरी है?', 'और हम..?', 'क्या करूं?', 'कैसे विश्वास करूं?', 'मैं कौन हूं?' आदि। कवयित्री के प्रश्न व्यवस्था को चुनौती देते हैं। यथास्थितिवादी सोच का व्यक्ति यदि इन प्रश्नों का ईमानदारी से सामना करे, तो वह स्वयं को डिकास्ट कर सकता है।

फिलहाल कवयित्री के कुछ प्रश्नों पर विचार करना समीचीन होगा। वे 'क्या यही बराबरी है?' शीर्षक कविता में पूछती हैं कि :

"तुम को सर्वसम्पन
और हम को विपन्न
कैसे बना रही डेमोक्रेसी?"[1]

भारतीय लोकतंत्र का जिस तरह से फासीवादीकरण, ब्राह्मणीकरण हुआ है, उस दिशा में मंथन करने के लिए उपरोक्त काव्य पंक्तियां विवश करती हैं। प्रायः यह धारणा बना दी जाती है कि दलित साहित्य केवल दलितों के लिए है। या इससे भी आगे बढ़ कर यह कहा जाता है कि जाति–प्रश्न दलितों का मुद्दा है। जाहिर है यह पूर्वाग्रह जातीय विशेषाधिकारों से पनपता है। लेकिन यहां महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जाति–प्रश्न सबका मुद्दा है और दलित साहित्य सबका साहित्य है। दलित साहित्य लेखन की पूर्वशर्तें हैं और वो इसलिए हैं ताकि अब तक सभ्यता के श्रोता छोर पर रहे लोग बोल सकें। दलित साहित्य को सबका साहित्य इसलिए भी कहा जाना चाहिए क्योंकि यह समाज के सभी वर्गों से संवाद करता है। यह सदियों

की संवादहीनता को समाप्त करता है। जैसा कि संदर्भित कविता में भी देखा जा सकता है कि 'हम' और 'तुम' का द्वैत है। कहना न होगा, यहां 'हम' समाज का हाशियाकृत वर्ग है तो 'तुम' शोषक वर्ग है, जिनके बीच संवाद करने की कोशिश की जा रही है। इन दोनों वर्गों के बीच असमानता की जो खाई है, उसका वर्णन करते हुए कवयित्री उक्त कविता में लिखती हैं:

"हम मीडिया में
उत्पीड़न की खबरें बने
तो तुम मीडियाकर्मी।
प्रकाशित हुई
तुम्हारी उपलब्धियां
हमारे तुम्हारे विकास के प्रतिमान
सदा एक खास दूरी बनाए रखते हुए
क्या आप उसे की बराबरी कहते हैं?"[2]

इन पंक्तियों से गुजरते हुए या कहें कि दलित कविता से गुजरते हुए यह विचार बार–बार मन में उठता है कि असमानता को रेखांकित करने पर दलित स्त्री–पुरुष कवियों का इतना जोर क्यों रहता है? वे जगजाहिर यथार्थ को इतना बलपूर्वक क्यों प्रस्तुत करते हैं? इन प्रश्नों का एक यह भी जवाब हो सकता है कि वर्चस्ववादी सामाजिक–राजनीतिक सत्ता सदैव असमानता को ढकना चाहती है या समानता का भ्रम पैदा करती है ताकि जनसामान्य तमाम दमन–शोषण की घटनाओं को महज आकस्मिक या दुर्लभ हादसा के रूप में देखे न कि सांस्थानिक शोषण की तरह। संरचनागत शोषण के ढके रहने से उच्च वर्ण–वर्ग का आर्थिक–सामाजिक वर्चस्व अक्षुण्ण बना रहता है। इसलिए दलित– स्त्री कविता असमानता की हरसंभव व्याख्या करने का यत्न करती आ रही है। कवयित्री ने संग्रह की 'दलित कविता' शीर्षक कविता में ठीक ही लिखा है कि " दलित कविता न्याय की पुकार है

स्वाभिमान की हुंकार है
तर्क है, दलील है
प्रमाणिक अनुभव की कील है
×××
लोकतन्त्र की भोर के मुर्गे की बांग है
दलित कविता
आईना है समाज का
चेहरा है आज का
अल्ट्रासाउंड है 'राज' का"[3]

बहरहाल, यह समाज की कितनी त्रासद सच्चाई है कि जिस दलित समाज की उत्पीड़न की खबरों को बेच–बेच कर सवर्ण पत्रकार रमन मैग्सेसे जैसे पुरस्कार अर्जित करते हैं और 'वॉयस ऑफ द वॉयसलेस' कहलाते हैं, उन्हीं मीडिया संस्थानों में दलितों का मीडियाकर्मी के रूप में अघोषित बहिष्कार होता है। मीडिया के क्षेत्र में प्रतिनिधित्व का अध्ययन करें तो निश्चय ही भयावह आंकड़े सामने आएंगे। जिन क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व की सुनिश्चितता के लिए आरक्षण का प्रावधान नहीं है, वहां दलितों का घोषित–अघोषित बहिष्कार देखने को मिलता है। आज इस बहिष्कार को विस्तार देने के लिए तमाम

सरकारी क्षेत्रों का निजीकरण करने की परियोजना चल रही है। कवयित्री रजत रानी मीनू ने उक्त कविता संग्रह की भूमिका में इस नए तरह के बहिष्करण को रेखांकित करते हुए बहुत महत्वपूर्ण बात कही है : "हमारे देश में लोकतांत्रिक संविधान समता, स्वतन्त्रता और समाजवाद का सपना लेकर चल रहा था। अब जब से दलितों, आदिवासियों के हकों को निजी क्षेत्रों के हवाले कर दिया है और उन पर स्वामित्व अघोषित राजा और रंक का भेद पुनः पैदा कर रहा है तो ऐसे हालात में दलित स्त्री के लिए एक नई तरह की गुलामी पैदा हो रही है जो शारीरिक अस्पृश्यता से बढ़कर मानसिक अस्पृश्यता का आभास दे रही है। यह नई गुलामी अपेक्षाकृत कहीं अधिक विनाशक होती जा रही है।"[4]

आज की मानसिक अस्पृश्यता इतनी भयावह और संक्रामक है कि निजीकरण की प्रतीक्षा भी नहीं करेगी। कवयित्री ने ऐसी ही मानसिक अस्पृश्यता का बहुत ही प्रामाणिक चित्रण किया है अपनी 'अन्तिम संस्कार' शीर्षक कविता में। वे लिखती हैं :

"जब–जब मुझ पर
होता है जातीय जुर्म
मेरी संवेदना को रौंदा जाता है उड़ाया जाता है मेरा मजाक।
कभी मेरे लेखन का
कभी मेरे विचारों का
तो कभी सम्पादन के नाम पर
कर दिया जाता है
मेरी मौलिक अभिव्यक्ति का अंतिम संस्कार।"[5]

यह मानसिक अस्पृश्यता ही तो है कि दलित रचनाकारों की रचनाओं को संपादक–प्रकाशक स्वीकार नहीं करते, नवोदित प्रतिभाओं को अवसर नहीं देते। यदि कोई स्थापित रचनाकार हो भी जाए तो उन्हें मुख्यधारा के साहित्यिक की जगह महज एक खाने में रख कर किनारे कर दिया जाता है। यह मानसिक अस्पृश्यता शिक्षण संस्थानों में और अधिक देखने को मिलती है। जहां शिक्षक छात्र–छात्राओं की आयु, वर्ग देखकर उनके साथ शारीरिक और मानसिक अस्पृश्यता बरतते हैं।

रजत रानी मीनू ने जहां संग्रह की कई कविताओं में विद्रूप सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण किया है वहीं संग्रह में ऐसी भी कविताएं हैं जिनमें प्रतिरोध की अग्नि है। इस सन्दर्भ में संग्रह की 'रैदास की संतानो' शीर्षक कविता विचारणीय है। कवयित्री शोषक व्यवस्था की इतनी खुली पहचान कराना चाहती है कि वह इसके लिए पास बैठे व्यवस्था के प्रतिनिधि ब्राह्मण के सीने में कील ठोंकने का प्रस्ताव देती हैं। मसलन वे लिखती हैं :

"ओ! रैदास की संतानो
चप्पलों में कील कील ठोंकने के बजाए क्यों ठोंक देते कील
पास बैठे पंडित जी
के हृदयहीन सीने में?
जो वर्ण व्यवस्था के अंगरक्षक हैं
भेदभाव के संरक्षक हैं
बुराईयों के पोषक हैं"[6]

किसी भी जनपक्षधर कवि के लिए यह बहुत जरूरी है कि वह शोषित वर्ग को वर्ग शत्रु की पहचान कराए। ऐसे तमाम प्रगतिशील रचनाकारों के साहित्य में वर्ग शत्रु की स्पष्ट पहचान देखने को मिल जाती है। रजत रानी मीनू ने प्रगतिशील परंपरा को विकसित करते हुए दलित साहित्य की अपनी शब्दावली में वर्ग शत्रु को चिह्नित किया है। उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि वह व्यक्ति ब्राह्मण नहीं बल्कि बुराइयों के संरक्षक, वर्ण व्यवस्था के पोषक प्रतिनिधि को समाप्त करने का आह्वान करती हैं। दलित समाज के सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण को देखते हुए सशस्त्र क्रांति का विचार बहुत जायज लगता है लेकिन सवाल यह है कि आज तक दलितों ने सशस्त्र क्रांति क्यों नहीं की? अंबेडकर अपने सुप्रसिद्ध भाषण 'अन्हिलेशन ऑफ कास्ट' में बताते हैं कि सशस्त्र क्रांति की संभावना को देखते हुए ही दलितों के लिए सैन्य कार्य, उनके हथियार रखने आदि पर कठोर प्रतिबंध लगा कर रखा गया था और प्रतिरोध की भावना को जड़ से नष्ट करने के लिए उनकी गरिमा, आत्मसम्मान और स्वाभिमान को नष्ट करते रहने की अनेक अमानवीय प्रथाएं लाद दी गई। आज संविधान और विधि व्यवस्था (भले ही यह सवर्णानुकूलित ही क्यों न हो, फिर भी न्याय की थोड़ी–सी भी सही उम्मीद तो है) के दौर में जब दलितों को सीधे–सीधे हिंसा से सामंती व्यवस्था रोक पाने में जोखिम देखती है तो मृदु वाणी और कपटतापूर्ण सदव्यवहार कर उन्हें दिग्भ्रमित करती है। इसकी ओर कवयित्री ने निम्नांकित काव्य पंक्तियों से संकेत किया है :

"अरे! तुम तो गर्व करते हो
अपने आप पर
अब हमारे पास पंडित जी बैठते हैं
तुम दौड़ पड़ते हो
अपना काम छोड़ उनकी सेवा में..

×××

हां यह सत्य है
तुम उन्हीं की कृपा से ठोंक रहे हो कील
वे कहते हैं–
सब पढ़ गए तो
कौन गांठेगा जूता?"[7]

मेलजोल और ऐसे दिखावटी भाईचारा से उसी क्षण पर्दा उठ जाएगा जब कोई दलित अपने अधिकारों की बात करेगा। सवर्ण मित्रता या सवर्णों के करीबी होने की शर्त ही यही है कि दलितों को अपने अधिकारों के विषय में, शोषण और दमन के विषय में चुप्पी साध कर रखनी होगी। हजारों सालों से गूंगा समाज यदि अब भी छुप ही रहा तो इससे लाभकारी और क्या होगा ब्राह्मणवादी व्यवस्था के लिए? इस चुप्पी की कीमत को व्याख्यायित करते हुए कवयित्री लिखती हैं :

"वे पढ़ते हैं देश–विदेश में
वे नेता, अभिनेता
शिक्षक, वाइसचांसलर हैं
साइंटिस्ट हैं, अर्थशास्त्री
पुजारी हैं, मठाधीश हैं

×××

तुमने कभी सोचा?
तुम कहां हो?
तुम कौन हो?
तुम्हें क्या मिला
इस काम को करके?
अपमान, जलालत, बहिष्कार, तिरस्कार, गरीबी
गुलामों सा जीवन
पीढ़ी दर पीढ़ी।"[8]

सामाजिक–आर्थिक उन्नति उनके हिस्से और सभी तरह की अवनति दलितों के हिस्से क्यों है? जबतक समाज में ऐसा कोई विभाजनकारी, शोषक मैकेनिज्म नहीं रहा होगा तब तक असमानता की गहरी खाई में समाज कैसे पहुंचा होगा? यदि अमेरिका जैसे देशों में वह मैकेनिज्म नस्लवाद है तो कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय समाज में वह मैकेनिज्म क्या है? उस मैकेनिज्म को कवयित्री बहुत संक्षेप में बताती है कि: "इसे पुनर्जन्मों का खेल मत समझो

धर्म–कर्म के जाल में
तुम मत फंसो
तुम कबीर
रैदास की संतानो
स्वामी अछूतानंद, बाबा साहब और आजीवकों की परंपरा के हो।"[9]

हिन्दू धर्म में कर्मफल सिद्धांत गढ़ा ही वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था को स्थायित्व देने के लिए है। जबतक दलित–बहुजन समाज अपनी दुर्दशा के लिए पूर्व जन्म के कर्मों को कोसता रहेगा यह व्यवस्था फलती–फूलती रहेगी। इसलिए मीनू व्यवस्था की चालबाजियों को बताने के साथ उसका एंटीटोड भी बताती हैं। कबीर, रैदास, स्वामी अछूतानंद और अम्बेडकर की परम्परा एंटीडोट है। यह लम्बी कविता हिंदुत्ववादी शक्तियों के दिखावटी भाईचारा और समरसता को समझने में बहुत ही सहायक है। यह उस भेड़िए की पहचान करती है जो भाई–बंधु की शक्ल में दलितों–पिछड़ों को सदियों से चबाता आया है।

रजत रानी मीनू ने लैंगिक अनुभवों को भी बहुत बेबाकी से अभिव्यक्त किया है। समाज में एक कृष्णवर्णी स्त्री को कैसी नस्लीय सोच का सामना करना पड़ता है, इसे समझने में संग्रह की 'रंग' शीर्षक कविता बेहद अर्थपूर्ण है। कविता की निम्नांकित पंक्तियां विचारणीय हैं:

"गोरे रंग के आधार पर
घायल कर देते हैं मुझे
देसी गोरे रंग वाले

घूमते हैं जगह–जगह
गोरे रंग का पैमाना लिए
उसी से मापते हैं
मुझे और मुझ जैसों को
करते हैं अछूतों सा बर्ताव
अरे! मैं तो अछूत भी हूं
और स्त्री भी।
एक नहीं, दो नहीं
चार–चार परतों के नीचे दबी हूं मैं
जीना चाहती हूं
सम–मुक्त होकर"[10]

भारतीय समाज में गौर वर्ण के प्रति जो आकर्षण है उसके दो प्रमुख कारण मुझे नजर आते हैं। पहला तो यह कि हिन्दू धर्म शास्त्रों में श्याम वर्ण को हेय बतलाया गया है। क्योंकि श्रमिक वर्ग के लोग ही अधिकांश श्याम वर्णी होते हैं तो यह रंग और वर्ण का साझा तिरस्कार है। दूसरा कारण है, दो सौ वर्षों तक श्वेतों की गुलामी करने के कारण यहां के देशी शासक वर्ग का सौंदर्यबोध भी अपने पूर्व शासकों के अनुकूल हो गया है जिस वजह से वे कृष्ण वर्ण को तिरस्कार से देखते हैं। यहां सुंदर स्त्री का पर्याय गोरी स्त्री को बना दिया गया है। काले रंग पर कई गंदे मुहावरे समाज में प्रचलित हैं जिनसे मुहावरों की भाषा में अन्तर्भुक्त ब्राह्मणवादी अंतर्चेतना को देखा जा सकता है। विशेषकर जितने भी रंगाधारित भद्दे मुहावरे हैं वह स्त्रियों को लक्षित करते हैं। ब्राह्मणी पितृसत्ता में श्यामवर्णी स्त्री क्यों निम्न ठहराई जाती है, इसके पीछे के कारणों की ऊपर हमने चर्चा की है। इसी प्रकार 'मैं कौन हूं' शीर्षक कविता परिवार संस्था में स्त्री के दोयम दर्जे को अभिव्यक्त करती है :

"सभी चाहते हैं मुझसे
त्याग, समर्पण
नहीं पसंद
किसी को मेरी
आजाद अभिव्यक्ति
लगा देते हैं मुझ पर
आरोप सदियों पुराना
मेरे सिर पर–
बांध दिया जाता है
होश संभालते ही
इज्जत का सेहरा
जो मेरे बोलने, हंसने, चलने, खाने–पीने से गिर जाता है
मिट्टी के लोथ की तरह।
सब की उंगलियां उठ जाती हैं मेरी ओर।"[11]

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि पितृसत्तात्मक नियंत्रण में स्त्रियां अपनी स्वायतता तलाश ही नहीं सकती। न वह अपनी स्वतंत्र आवाज खोज पाती है और न ही यांत्रिक जीवन से छुटकारा। यह हजारों–लाखों स्त्रियों की दर्दनाक दैनंदिनी है, जिसके दरम्यान कोई वक्फ़ा नहीं होता। जेंडर और जाति के अंतरानुभगीय सचाईयों पर प्रकाश डालते हुए 'क्यों नहीं हिलता पत्ता एक भी' शीर्षक कविता में मीनू लिखती हैं :

"हमारे साथ जब होता है बलात्कार
सामूहिक बलात्कार
तब क्यों हिलता नहीं पत्ता एक भी?
और जब तुम्हारे साथ हुआ बलात्कार
तब क्यों हिल गई संसद भी?

×××

क्योंकि तुम हो अभिजात्य सवर्ण
और मैं ठहरी दलित
यदि हजारों बालाओं के साथ किए जा रहे बलात्कारों पर
तुम खामोश नहीं रही होती
तो तुम्हारे बोलने से मिल जाता मेरी आवाज को थोड़ा संबल
और आज तुम्हारी बच्ची के साथ भी नहीं होता बलात्कार"[12]

समाज में सवर्ण स्त्रियों के प्रति जातीय उच्चता के कारण थोड़ी संवेदनशील दिखती है लेकिन दलित स्त्रियों के लिए तो वह भी नदारद है। देशभर में दलित स्त्रियों के खिलाफ हिंसा और बलात्कार की घटनाएं होती हैं लेकिन तमाम आयोग से लेकर प्रशासन और राजनीतिक महकमा तक चुप्पी साधे रहता है। जब आप समाज में पितृसत्तात्मक बर्बरता को मौन रहकर बढ़ावा देंगे तो वह दैत्य आपके घर तक नहीं आएगा इसका क्या प्रमाण है? कवयित्री ने ठीक ही रेखांकित किया है कि यदि पितृसत्तात्मक–जातिवादी बर्बरता के खिलाफ सवर्ण स्त्रियां भी दलित महिलाओं के साथ मिलकर लड़ती तो इसका लाभ उन्हें भी मिलता। उनकी बेटियां भी इस आंदोलन के कारण सुरक्षित रह पातीं।

जैसा कि मैंने कहा रजत रानी मीनू प्रश्नाकुल कवयित्री हैं। इनके पास प्रश्न हैं तो मुक्ति की सुचिंतित वैचारिकी भी है। इसलिए अपनी काव्य यात्रा में वे कहीं अटकती और उलझती नहीं हैं।

संग्रह में पिता और पुत्री के संबंध पर दो बहुत ही मार्मिक कविताएं हैं : 'पिता भी होते हैं मां', 'मम्मी बनते पापा'। इन कविताओं से कवयित्री का करुण पक्ष सामने आता है। ये इतनी निजी कविताएं हैं कि पाठक इन कविताओं में अपने पिता की छवि ढूंढे तो कोई आश्चर्य नहीं। दलित आलोचक प्रो.कालीचरण स्नेही ने रजत रानी मीनू के कविताओं के सन्दर्भ में लिखा है कि "मेरी दृष्टि में रजत रानी मीनू की सभी कविताएं स्त्री–विमर्श के साथ–साथ मानवीय गरिमा और मनुष्य के निर्माण का संदेश देती है।"[13]

वस्तुतः ब्राह्मणवादी–पूंजीवादी समाज में मनुष्यता को पुनर्परिभाषित करने का अदम्य साहस और अथक परिश्रम ही मीनू की कविताओं की वास्तविक काव्य–विवेक है!

सन्दर्भ–सूची :

1. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 85
2. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 86
3. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – भूमिका से
4. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – भूमिका से
5. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 78
6. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 159
7. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 160
8. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 160
9. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 160–61
10. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 144–45
11. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 141
12. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – 39
13. मीनू, रजत रानी, पिता भी होते हैं मां, वाणी प्रकाशन, संस्करण – 2015, पृष्ठ – भूमिका से

स्वास्थ्य, योग व शिक्षा का एकीकरण : स्वामी रामदेव के विचारों का विश्लेषण

राज कुमार
शोधार्थी, शिक्षक-शिक्षा विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय अलीगढ़
प्रो. सुधा राजपूत
शोध पर्यवेक्षक, प्रोफेसर, शिक्षक- शिक्षा विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय अलीगढ़

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र स्वामी रामदेव के उस त्रिकोणीय दर्शन का विश्लेषण करता है जहाँ स्वास्थ्य, योग और शिक्षा एक-दूसरे के पूरक व सहायक के रूप में कार्य करते हैं। 21वीं सदी की जीवनशैलीजन्य बीमारियों और मानसिक तनाव के युग में स्वामी रामदेव ने 'योग' को न केवल शारीरिक व्यायाम से ऊपर उठाकर 'जीवन पद्धति' और 'चिकित्सा पद्धति' के रूप में स्थापित किया है अपितु भारतीय पारंपरिक शिक्षा पद्धति (गुरुकुल परंपरा) को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। आज मिलावटी भोजन, गलत संगत और संस्कारविहीन शिक्षा के कारण अनेक कठिनाइयां मनुष्य के सामने आ खड़ी हुई हैं। उन समस्याओं के समाधान के मार्ग में स्वामी रामदेव के एकीकृत विचार मील के पत्थर हैं। यह शोध पत्र स्पष्ट करता है कि हम कैसे 'आत्मनिर्भर भारत' और 'स्वस्थ विश्व' की परिकल्पना को साकार करने में सक्षम हो सकते हैं और योग आधारित शिक्षा कैसे स्वस्थ, समृद्ध एवं संस्कारित समाज की आधारशिला बन सकती है।

मुख्य शब्द (Keywords): एकीकरण, भारतीय शिक्षा बोर्ड, पतंजलि अनुसंधान फाउंडेशन, जीवनशैली, योग, स्वास्थ्य, आयुर्वेद, शिक्षा, स्वामी रामदेव, स्वदेशी।

1. प्रस्तावना

1.1 पृष्ठभूमि

21वीं सदी में मानव जीवन दो प्रमुख संकटों से जूझ रहा है एक स्वास्थ्य संकट और दूसरा शिक्षा की गुणवत्ता का संकट। आधुनिक जीवनशैली ने मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, तनाव और अवसाद जैसी समस्याओं को बढ़ावा दिया है तो दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण एवं कुसंगति ने शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर दिया है। आज पढ़े लिखे लोग भी बड़े बड़े अपराध कारित करते हुए पाए जा रहे हैं, बेईमानी भ्रष्टाचार हिंसा जैसे अपराधों में भी पढ़े लिखे लोग संलिप्त हैं। आज की शिक्षा संस्कारविहीन हो गयी है जो केवल धनोपार्जन और इन्द्रिय सुख का साधन मात्र बनकर रह गयी है। वैज्ञानिक शोध बताते हैं कि 'योग' इन समस्याओं के समाधान में प्रभावी भूमिका निभा सकता है। मानव सभ्यता के इतिहास में स्वास्थ्य और शिक्षा को हमेशा दो अलग-अलग स्तंभों के रूप में देखा गया है। जहाँ शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन व बौद्धिक विकास था, वहीं स्वास्थ्य का संबंध शारीरिक कुशलता से था। हालाँकि, महाकवि कालिदास जैसे

प्राचीन भारतीय लेखकों ने 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' कहकर स्पष्ट किया था कि सभी कर्तव्यों की सिद्धि का माध्यम शरीर ही है इसलिए शरीर का स्वस्थ होना अति आवश्यक है। आधुनिक युग में स्वामी रामदेव ने इस प्राचीन विचार को पुनर्जीवित करते हुए स्वास्थ्य के लिए योग को एक वैश्विक आंदोलन का रूप दिया है। उनका विचार इस मूल तत्व पर आधारित है कि एक स्वस्थ शरीर में ही एक जागृत मस्तिष्क का वास हो सकता है, और यह जागृति केवल सही शिक्षा और योग के माध्यम से ही संभव है।

1.1 शोध का उद्देश्य

इस शोध का उद्देश्य स्वास्थ्य, योग व शिक्षा पर स्वामी रामदेव के विचारों का विश्लेषण करने के उपरांत यह जानना है कि क्या योग, स्वास्थ्य व शिक्षा के मध्य ऐसे सेतु का कार्य कर सकता है जिससे योगमय जीवन पद्धत्ति एक तरफ आरोग्यता प्रदान करे तो दूसरी तरफ उत्तम शिक्षा का आधार बन सके।

1.2 शोध की आवश्यकता एवं महत्व

वर्तमान वैश्विक समाज में स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ और शिक्षा की गुणवत्ता दोनों गंभीर चिंता का विषय हैं। जीवनशैली में परिवर्तन, अनियमित खान-पान, और मानसिक तनाव के कारण अनेक रोग तेजी से बढ़ रहे हैं। दूसरी ओर, शिक्षा प्रणाली भी अधिकतर सूचना-आधारित होकर रह गई है, जिसमें जीवन मूल्यों और व्यवहारिक कौशलों का अभाव देखा जा रहा है, लोग पढ़ लिखकर डिग्रियां और नोकरियाँ तो प्राप्त कर रहे हैं लेकिन शिक्षा का मूल कार्य चरित्र निर्माण, नैतिकता, अनुशासन, सेवाभाव, कर्तव्यनिष्ठा आदि पीछे छूटता जा रहा है। ऐसे में एक ऐसे विचार व व्यवस्था की आवश्यकता प्रतीत होती है जो वास्तव में मनुष्य का समन्वित रूप में निर्माण कर सके। इन परिस्थितियों में स्वामी रामदेव का यह दृष्टिकोण अत्यंत महत्व का हो जाता है, जो योग, आयुर्वेद और शिक्षा को एक समन्वित प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करता है।

2. स्वास्थ्य एवं योग का संबन्ध

कुछ समय पहले तक योग को ऋषि महात्माओं की साधना का विषय समझा जाता था और यह माना जाता था कि योग तो हिमालय की कन्दराओं में तपस्या कर रहे साधकों के लिये है, लेकिन स्वामी रामदेव ने योग को सीधे स्वास्थ्य से जोड़कर आरोग्यता की जमीन पर उतार दिया और योग से स्वास्थ्य में हुई बृद्धि के परिणामों के बाद यह सिद्ध कर दिया कि योग समग्र स्वास्थ्य का आधार तत्व है। उन्होंने योग को सम्पूर्ण स्वास्थ्य का विज्ञान कहकर स्वास्थ्य व योग का एकीकृत स्वरूप दुनिया के समक्ष रखा है। स्वामी रामदेव ने महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग को 'चिकित्सीय अनुप्रयोग' (Clinical Application) का रूप दे दिया है। स्वामी रामदेव के योग के इसी चिकित्सकीय अनुप्रयोग से प्रभावित होकर योग पूरी दुनिया में इतनी तीव्र गति से पहुँच सका और भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के सफल वैश्विक प्रयास से 11 दिसम्बर 2014 को UNO की जनरल असेंबली में विश्व योग दिवस मनाने का प्रस्ताव पारित हुआ जिसका 177 देशों ने समर्थन किया। (UNO, 2014) परिणामस्वरूप वर्ष 2015 में 21जून को दुनिया भर ने प्रथम विश्व योग दिवस मनाया और योग की सार्वभौमिक महत्ता को स्वीकार किया।

2.1 योग आधारित स्वास्थ्य मॉडल

स्वामी रामदेव का मानना है कि योग सभी समस्याओं का मूल समाधान है। शारीरिक, मानसिक, कफ, वात पित्त, किसी भी प्रकृति के रोग हों उन्हें योग चिकित्सा से ठीक किया जा सकता है और स्वामी रामदेव ने लाखों लोगों पर प्रयोग

करके इसे सिद्ध भी किया है। स्वामी रामदेव इसे "समग्र चिकित्सा प्रणाली" के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे योग को "Preventive and Curative System" मानते हैं।

स्वामी जी कहते हैं कि योग के द्वारा गंभीर रोगों पर भी नियंत्रण संभव है उनके अनुसार-

- प्राणायाम : श्वसन प्रणाली को मजबूत करता है
- आसन : शरीर की संरचना को संतुलित करता है
- ध्यान : मानसिक शांति प्रदान करता है ।

WHO 2021 के अनुसार योग द्वारा तनाव में 25% तक की कमी देखी गयी। योग से 30% तक मोटापा घटाया गया तथा योग से हृदय रोगों के जोखिम में औसतन 28% तक की कमी पाई गई।

2.2 प्राणायाम: आंतरिक शोधन का विज्ञान

स्वामी जी का स्पष्ट मत है:

"प्राणायाम वह अग्नि है, जिसमें शरीर के सभी दोष और विजातीय तत्व भस्म हो जाते हैं। जब हम गहरा श्वास लेते हैं, तो हम केवल ऑक्सीजन नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय चेतना को अपने भीतर उतारते हैं।" (रामदेव, 2021)

योग के माध्यम से लोगों के आंतरिक जीवन में वृहद परिवर्तन हुए हैं, जिसके विभिन्न उदाहरण हम सबको देखने को मिल जाते हैं, प्राणायाम शुद्ध एवं पर्याप्त प्राण वायु का संचार शरीर में करते हुए शरीर का आंतरिक शोधन करता है और मन व इंद्रियों पर नियंत्रण करने की क्षमता विकसित करता है।(शर्मा, के. 2021). पतंजलि रिसर्च फाउंडेशन का डेटा भी बताता है कि योग, आसन प्राणायाम से विभिन्न प्रकार की बीमारियां दूर होती हैं और व्यक्ति शारीरिक मानसिक रूप से स्वस्थ बनता है।

योगमय जीवन का प्रभाव (पतंजलि रिसर्च फाउंडेशन के अनुसार)

रोग श्रेणी	**यौगिक क्रिया**	**सुधार की दर (6 माह अभ्यास)**	**वैज्ञानिक मानक (Biomarker)**
मधुमेह (Type-2)	कपालभाति + मंडूकासन	42%	HbA1c स्तर में गिरावट
उच्च रक्तचाप	अनुलोम-विलोम	38%	सिस्टोलिक/डायस्टोलिक संतुलन
मानसिक तनाव	भ्रामरी + ध्यान	55%	कोर्टिसोल हार्मोन में कमी

2.3 योग और राष्ट्रीय चेतना

स्वामी रामदेव योग को स्वास्थ्य का आधार मानते हैं और स्वास्थ्य को "राष्ट्रीय कर्तव्य" के रूप में देखते हैं। उन्होंने योग और आयुर्वेद को "स्वदेशी पहचान" से जोड़ा है। वे कहते हैं जो व्यक्ति स्वस्थ नहीं है वह राष्ट्र की क्या सेवा करेगा? वह तो खुद की भी सेवा नहीं कर सकता। उनके अनुसार एक स्वस्थ और समृद्ध राष्ट्र के लिए स्वस्थ व्यक्ति व स्वस्थ समाज का होना आवश्यक है।

- योग : स्वस्थ नागरिक
- स्वस्थ नागरिक : समृद्ध राष्ट्र

2.4 आयुर्वेद और योग का समन्वय

जिस प्रकार कृषि एवं पशुपालन एक दूसरे के पूरक हैं उसी प्रकार स्वामी रामदेव आयुर्वेद को योग का पूरक मानते हैं। उनका दृष्टिकोण "नैसर्गिक चिकित्सा + योग + अनुशासित जीवनशैली" पर आधारित है। आयुर्वेद रोगों को जड़ से समाप्त करता है, आयुर्वेद प्राकृतिक चिकित्सा है। (बालकृष्ण, 2012). आयुर्वेद केवल चिकित्सा पद्धति नहीं, बल्कि **जीवन जीने की समग्र शैली है।** (टाइम्स ऑफ इंडिया. 2026)

स्वामी रामदेव के अनुसार, योग केवल आध्यात्मिक शांति का साधन नहीं है, बल्कि यह एक पूर्ण विज्ञान है। उन्होंने प्राणायाम की सात क्रियाओं (भस्त्रिका, कपालभाति, बाह्य, अनुलोम-विलोम, भ्रामरी, उद्गीथ और प्रणव) को रोग-विशिष्ट उपचार के रूप में प्रस्तुत किया है। (रामदेव, 2021)

उनके अनुसार:

- **कपालभाति:** केवल श्वसन क्रिया नहीं है, बल्कि यह अंतःस्रावी ग्रंथियों (Endocrine Glands) को विनियमित करने का माध्यम है।
- **अनुलोम-विलोम:** स्नायु तंत्र (Nervous System) के संतुलन और रक्तचाप के नियंत्रण हेतु एक वैज्ञानिक पद्धति है।

इसी प्रकार अन्य प्राणायाम भी विभिन्न प्रकार के रोगों में प्रत्यक्ष लाभ देते हैं। पतंजलि अनुसंधान फाउंडेशन के डेटा से यह सिद्ध हुआ है कि योग और आयुर्वेद के मेल से कैंसर, मधुमेह और अस्थमा जैसी लाइलाज बीमारियों का उपचार संभव है।

2.5 समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा

स्वामी रामदेव के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ केवल रोगों की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि शरीर, मन और आत्मा का संतुलन है। वे योग और आयुर्वेद को इस संतुलन का आधार मानते हैं। उनका कहना है कि आधुनिक चिकित्सा केवल लक्षणों का उपचार करती है, जबकि योग और आयुर्वेद जीवनशैली को सुधारते हैं और रोगों को आने ही नहीं देते। (रामदेव 2002)

आधुनिक शोधों से यह प्रमाणित हुआ है कि योग और प्राणायाम तनाव, रक्तचाप और श्वसन संबंधी समस्याओं को नियंत्रित करने में सहायक होता हैं (Smith et al., 2024)

स्वामी रामदेव के अथक प्रयासों से योग आज वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया जा चुका है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर योग को स्वास्थ्य सुधार के एक प्रभावी साधन के रूप में अपनाया जा रहा है। (Nagaratti 2019)

इससे यह स्पष्ट होता है कि योग केवल सांस्कृतिक परंपरा नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक स्वास्थ्य विज्ञान है। योग न केवल आरोग्यता देता है बल्कि इन्द्रिय निग्रह की शक्ति देता है। चित्त की वृत्तियों का निरोध योग द्वारा सम्भव है। योगश्चित्तवृत्तिनिरोध: (योगसूत्र 1.1)

स्वामी रामदेव के अनुसार स्वास्थ्य तीन स्तरों पर आधारित है:

1. शारीरिक स्वास्थ्य
2. मानसिक स्वास्थ्य
3. आध्यात्मिक संतुलन

योग उक्त तीनों स्तरों को ठीक रखता है।

यह मॉडल WHO के “complete well-being” सिद्धांत के समान है।

स्वामी रामदेव के अनुसार स्वास्थ्य का मूल आधार है:

- संतुलित आहार
- नियमित योग
- अनुशासित जीवन

यह दृष्टिकोण आधुनिक “Lifestyle Medicine” के अनुरूप है।

स्वामी रामदेव के कार्यों का अधिक महत्वपूर्ण पक्ष योग को 'अंधविश्वास' या 'चमत्कार' की श्रेणी से निकालकर 'प्रयोगशाला' (Lab) तक पहुँचाना है। स्वामी रामदेव द्वारा स्थापित पतंजलि अनुसंधान केंद्र ने योग को 'छद्म विज्ञान' की श्रेणी से निकालकर 'मुख्यधारा के विज्ञान' में स्थापित किया है। उन्होंने स्वास्थ्य को 'स्व' (स्वयं) की स्थिति में स्थित होना माना है, जो बिना योग के अपूर्ण है। उन्होंने योग को साधु-संतों की साधना मात्र से मुक्त कर जन-सामान्य के स्वास्थ्य का आधार बनाया है। स्वामी रामदेव ने सिद्ध कर दिया कि योग केवल पहाड़ों की कन्दराओं व गुफाओं में बैठे ऋषि महात्माओं का ही विषय नहीं है बल्कि सामान्य जनमानस की दैनिकचर्या का आवश्यक अंग है। विभिन्न अध्ययनों में पाया गया कि योग-

- ध्यान और एकाग्रता बढ़ाता है
- प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है
- रक्तचाप नियंत्रित करता है
- मानसिक तनाव कम करता है
- सीखने की क्षमता में सुधार करता है
- योग जीवनशैली से **लिपिड प्रोफाइल में सुधार** पाया गया (Randomized Controlled Trial)
- योग से **नींद और पाचन स्वास्थ्य में सुधार** हुआ
- योग को “non-pharmaceutical intervention” के रूप में उपयोगी माना गया

इन अध्ययनों से स्पष्ट है कि योग केवल व्यायाम नहीं बल्कि एक वैज्ञानिक स्वास्थ्य प्रणाली है। आधुनिक चिकित्सा मुख्यतः रोग के उपचार पर केंद्रित है, जबकि योग "रोग की रोकथाम" पर आधारित है। इसीलिए योग को "holistic way of life" माना गया है, जिसमें शरीर, मन और आत्मा का संतुलन शामिल है।

2.6 स्वदेशी अर्थव्यवस्था एवं राष्ट्रीय स्वास्थ्य

स्वामी रामदेव का स्वास्थ्य दर्शन केवल व्यक्तिगत शरीर तक सीमित नहीं है, वह 'राष्ट्र के स्वास्थ्य' (Economic Health) की भी बात करता है। उनका मानना है कि जब तक देश आर्थिक रूप से समृद्ध नहीं होगा, तब तक समग्र स्वास्थ्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। स्वामी रामदेव का स्वास्थ्य दर्शन व्यक्ति के शरीर से शुरू होकर राष्ट्र की अर्थव्यवस्था तक जाता है।

वे कहते हैं जो व्यक्ति स्वयं रोगी है, वह समाज या राष्ट्र के किस काम आ सकता है, वह तो खुद दूसरों पर निर्भर है। अतः सबसे पहले मनुष्य को खुद स्वस्थ रहना होगा और स्वस्थ रहने का आधार योग है। (स्वामी रामदेव 2021). स्वस्थ शरीर होगा तभी स्वस्थ मस्तिष्क होगा और तभी वह अच्छा ज्ञानार्जन कर सकेगा और शिक्षित हो सकेगा। तदुपरांत शिक्षित मनुष्य जीवन के आर्थिक क्षेत्र सहित चहुँ ओर विकास करेगा। अतः आर्थिक संपन्नता और राष्ट्रीय विकास का रास्ता भी नागरिकों के स्वास्थ्य से होकर गुजरता है।

इसी विचार के आधार पर पतंजलि आयुर्वेद ने भारतीय बाजार में 'स्वदेशी' को एक ब्रांड के रूप में स्थापित किया है और आज कोई भी ऐसा भारतीय परिवार नहीं है जहाँ स्वामी रामदेव के स्वदेशी अभियान के अंतर्गत पतंजलि ब्रांड का कोई न कोई उत्पाद प्रयोग न होता हो। स्वामी जी के अनुसार:

"स्वदेशी अपनाना देश की आर्थिक आजादी का दूसरा आंदोलन है। जब आप स्वदेशी उत्पाद खरीदते हैं, तो आप सीधे तौर पर अपने देश के किसान और मजदूर का स्वास्थ्य सुधारते हैं।"

3. योग और शिक्षा

स्वामी रामदेव के अनुसार, वर्तमान शिक्षा प्रणाली "मैकाले के मानस-पुत्र" तैयार कर रही है। आज भारत को ऐसी योगमय शिक्षा की आवश्यकता है जो व्यक्ति को स्वार्थी व भोगवादी ने बनाकर उसे सेवा, संस्कार, समर्पण से युक्त मनुष्य बनाये। इसलिए स्वामी रामदेव कहते हैं कि जहां एक तरफ योग स्वास्थ्य का आधार है वहीं दूसरी ओर योग सम्पूर्ण शिक्षा का मूल आधार है। योग ज्ञानेंद्रियों को उन्नत करता है उन्हें योग्य बनाता है जिससे बुद्धि, मेधा, विवेक शक्ति का जागरण होता है और मस्तिष्क प्रखर होता है बच्चा अनुशासित होकर विद्याध्ययन करता है। अर्थात जो विद्यार्थी योग को अपने जीवन का अंग बना लेते हैं वे जीवन के किसी भी क्षेत्र में पिछड़ते नहीं हैं, क्योंकि योग व्यक्ति को योग्य बनाता है।

3.1 वैदिक शिक्षा और आधुनिक शिक्षा का समन्वय

वर्तमान शिक्षा बच्चों का सर्वांगीण विकास करने में असमर्थ हो रही है। गुरुकुलीय शिक्षा और आधुनिक शिक्षा के समन्वय से एक तरफ विद्यार्थियों को विज्ञान, गणित तकनीकी शिक्षा मिलेगी दूसरी और चरित्र निर्माण की शिक्षा मिलेगी, जोकि सबसे आवश्यक है। (Times Of india , 2026). स्वामी रामदेव शिक्षा प्रणाली में "गुरुकुल मॉडल" को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता पर बल देते हैं। उन्होंने इसके विकल्प के रूप में पतंजलि विश्वविद्यालय, वैदिक गुरुकुलम एवं 'भारतीय

शिक्षा बोर्ड' की संकल्पना प्रस्तुत की है। उन्होंने जो आचार्यकुलम शिक्षण संस्थानों की श्रृंखला खड़ी की है वे आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के साथ ही वैदिक संस्कारयुक्त शिक्षा का केंद्र बनकर उभर रहे हैं। ये शिक्षण संस्थान आधुनिक शिक्षा व योगमय वैदिक शिक्षा के मध्य समन्वय का सार्थक प्रयास कर रहे हैं।

उनके अनुसार:

- शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण होना चाहिए
- योग और संस्कार शिक्षा का अभिन्न अंग होना चाहिए

वे "Global Gurukul" की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं, जिसमें भारतीय परंपरा और आधुनिक विज्ञान का समन्वय हो।

3.2 मूल्य आधारित शिक्षा (Value-based Education)

स्वामी रामदेव कहते हैं कि शिक्षा का अर्थ केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं है, बल्कि चरित्र निर्माण है इसलिए शिक्षा में निम्न तत्वों का समावेश होना अनिवार्य है:

1. **संस्कार:** नैतिक मूल्यों का बीजारोपण।
2. **योगयुक्त शिक्षा:** शारीरिक और मानसिक अनुशासन।
3. **विवेक:** सत्य और असत्य के बीच निर्णय लेने की शक्ति।
4. **कौशल:** व्यावसायिक क्षमता अर्थात आर्थिक आत्मनिर्भरता।

जब तक शिक्षा उक्त कार्य नहीं करती है तो वह शिक्षा कहलाने के योग्य नहीं है। डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम का यह कथन भी स्वामी रामदेव के विचारों का समर्थन करता है-

"शिक्षा का अर्थ केवल डिग्री लेना नहीं है। सच्ची शिक्षा वह है जो व्यक्ति को अपनी जड़ों से जोड़े और उसे राष्ट्र के लिए उपयोगी बनाए।"

उन्होंने शिक्षा में 'योग' को एक अनिवार्य विषय बनाने पर जोर दिया है ताकि छात्र शारीरिक रूप से बलिष्ठ और मानसिक रूप से एकाग्र हो सकें। उनके शिक्षण संस्थानों में वैदिक मंत्रों के साथ-साथ आधुनिक विज्ञान और तकनीक का समावेश इसी एकीकरण का उदाहरण है।

स्वामी रामदेव के विचारों में यह तीनों तत्व परस्पर जुड़े हुए हैं:

- योग : स्वास्थ्य का आधार
- स्वास्थ्य : शिक्षा की प्रभावशीलता का आधार
- शिक्षा : जागरूकता का माध्यम

यह संबंध एक “Holistic Development Cycle” बनाता है।

4. स्वास्थ्य, योग और शिक्षा का एकीकरण (Integration Model)

स्वामी रामदेव के अनुसार समग्र स्वास्थ्य का आधार योग है और यदि शिक्षा का आधार भी योग बन जाये तो शिक्षा का स्वास्थ्य ठीक हो जाएगा अर्थात शिक्षा विभिन्न समस्यायों से मुक्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप में लोगों तक पहुँचेगी जिससे शिक्षा द्वारा मनुष्य निर्माण का कार्य ठीक प्रकार से हो सकेगा। श्रीमद्भागवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण ने योग के चार प्रकार बताए हैं- कर्म योग, ज्ञान योग, भक्ति योग और ध्यान योग। कर्म योग में निःस्वार्थ कर्म, ज्ञान योग में ज्ञान व आत्मसाक्षात्कार, भक्ति योग में ईश्वर के प्रति प्रेमपूर्ण समर्पण और ध्यान योग में मन व इन्द्रिय निग्रह आता है। योग के यह सभी प्रकार मनुष्य को इन्द्रिय संयम, तनाव व मानसिक विकारों से मुक्ति तथा संतुलित जीवन और आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाते हैं। स्वामी रामदेव पतंजलि के अष्टांगिक योग मार्ग के समर्थक हैं जिसमें यम, नियम , आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के आठ चरण हैं। इनके माध्यम से व्यक्ति शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य से लेकर आध्यात्मिकता के शिखर तक पहुँच सकता है। इस प्रकार योग शिक्षा एक तरफ समस्त प्रकार से स्वास्थ्य प्रदाता है दूसरी तरफ अनुशासन से लेकर शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक विकास में अत्यंत उपयोगी है। अतः हम कह सकते हैं कि स्वामी रामदेव ने स्वास्थ्य, योग व शिक्षा के एकीकरण का त्रिकोणीय शिक्षा मॉडल प्रस्तुत किया है और शिक्षा संबन्धी विभिन्न समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया है। अब इस मॉडल को समझकर यथास्थिति लागू करने की आवश्यकता है। हम योग, शिक्षा और स्वास्थ्य की परस्पर अंतर्निर्भरता व एकीकरण को निम्न दृष्टि से भी भी समझ सकते हैं-

1. **शिक्षा (Input):** योग और आयुर्वेद के ज्ञान का प्राथमिक स्तर पर समावेश।
2. **योग (Process):** प्रतिदिन अभ्यास द्वारा शारीरिक और मानसिक संतुलन।
3. **स्वास्थ्य (Output):** एक निरोगी शरीर और कार्यकुशल मस्तिष्क व नैतिक जीवन
4. **राष्ट्र निर्माण (Outcome):** समृद्ध और आत्मनिर्भर भारत।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में स्वास्थ्य संकट, मानसिक तनाव, दिनचर्या संबंधी रोगों और शिक्षा की उपयोगिता पर प्रश्न उठ रहे हैं। ऐसे समय में योगगुरु स्वामी रामदेव ने स्वास्थ्य, योग और शिक्षा के एक समन्वित मॉडल की जो परिकल्पना प्रस्तुत की है वह पूरे विश्व के लिए उपयोगी है। उनका दृष्टिकोण न केवल शारीरिक स्वास्थ्य बल्कि मानसिक स्वास्थ्य, नैतिकता और राष्ट्रीय चेतना को भी सुदृढ़ करने पर आधारित है। उनके द्वारा योग को स्वास्थ्य का आधार, शिक्षा का अंग और समाज परिवर्तन का साधन बताया गया है।

स्वामी रामदेव ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि स्वास्थ्य केवल चिकित्सा का विषय नहीं, बल्कि शिक्षा और जीवनशैली का परिणाम है। वे योग को केवल व्यायाम नहीं बल्कि “जीवन पद्धति” के रूप में देखते हैं। स्वामी रामदेव का यह एकीकरण मॉडल स्वास्थ्य, योग और शिक्षा का एक समन्वित मॉडल प्रस्तुत करता है, जहाँ योग प्रशिक्षण, आयुर्वेदिक चिकित्सा, शिक्षा और अनुसंधान एक साथ संचालित किए जाते हैं ।

घटक	कार्य
योग	स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन
स्वास्थ्य	प्रभावी अधिगम की आधारशिला
शिक्षा	जागरूकता और व्यवहार परिवर्तन

स्वामी रामदेव एक तरफ योग को शारीरिक , मानसिक स्वास्थ्य का आधार मानते हैं तो दूसरी ओर योगमय शिक्षा के माध्यम से मानव से महामानव बनने का मार्ग दिखाते हैं। उन्होंने स्वास्थ्य, योग और शिक्षा को मनुष्य जीवन के लिए त्रिदेव के समान मानकर एक दूसरे का पूरक रूप में प्रदर्शित किया है।

2. चुनौतियाँ-

यद्यपि स्वामी रामदेव ने योग को वैश्विक मंच दिया है, और शिक्षा, स्वास्थ्य व योग का समन्वित स्वरूप विकसित करते हुए स्वास्थ्य व शिक्षा की विभिन्न समस्यायों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है फिर भी उनके समक्ष कुछ चुनौतियां विद्यमान हैं:

- विद्यालयों में योग का क्रियात्मक रूप में लागू होना, योग की प्रैक्टिकल कक्षाएं संचालित होने कठिन प्रतीत होता है।
- योग शिक्षकों व प्रशिक्षकों की कमी
- स्कूली व कॉलेज विद्यार्थियों में योग को लेकर जागरूकता की कमी
- जहाँ योग एक अनिवार्य विषय के रूप में है वहां भी विद्यार्थी केवल अंक लाने के लिए उसे सैद्धान्तिक रूप से पढ़ रहे हैं, योग का व्यवहारिक शिक्षण पक्ष कमजोर है।
- योग व आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति रोग को जड़ से समाप्त करती है किंतु आपातकाल स्थिति में उतनी उपयोगी नहीं हो पाती।
- **मानकीकरण:** वैश्विक स्तर पर आयुर्वेदिक दवाओं के 'डोजेज' का सार्वभौमिक मानकीकरण।
- **व्यावसायीकरण का आरोप:** आलोचक अक्सर योग के बाजारीकरण की बात करते हैं।
- **आधुनिक चिकित्सा (Allopathy) से द्वंद्व:** योग और एलोपैथी के बीच संतुलन बनाने की चुनौती।
- **वैज्ञानिक स्वीकार्यता:** कई शोधों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कठोर मानकीकरण की आवश्यकता है।

आयुर्वेद और ऐलोपैथी के विषय में स्वामी जी कहते हैं :

"हमें एलोपैथी से बैर नहीं है, हमें उसकी सीमाओं का ज्ञान है। जहाँ सर्जरी आवश्यक है, वहाँ एलोपैथी श्रेष्ठ है, पर जहाँ जीवनशैली रोगों का प्रश्न है, वहाँ योग और आयुर्वेद ही एकमात्र स्थायी समाधान हैं।"

6. निष्कर्ष

स्वामी रामदेव के विचारों का विश्लेषण करने पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उन्होंने स्वास्थ्य, योग और शिक्षा को एक 'समग्र पारिस्थितिकी तंत्र' (Holistic Ecosystem) के रूप में देखा है और योग को स्वास्थ्य तथा शिक्षा के मध्य आवश्यक सेतु माना है और स्पष्ट किया है कि योग स्वास्थ्य तथा शिक्षा दोनों के लिये आधार स्तम्भ है। आज स्नातक कक्षाओं, शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में योग को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान मिला है उसके पीछे स्वामी रामदेव

का पुरुषार्थ एवं उनके द्वारा योग की महत्ता को जन जन तक पहुंचना है। स्वामी रामदेव का योग आधारित दर्शन मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है। शिक्षा के क्षेत्र में योग का समावेश आने वाली पीढ़ियों को अधिक अनुशासित और स्वस्थ बनाएगा, जबकि स्वदेशी का विचार अपने राष्ट्र को आर्थिक स्थिरता प्रदान करेगा जिससे विकसित भारत 2047 का मार्ग सुगम होगा। यह सिद्ध हो चुका है कि योग को शिक्षा में शामिल करने से विद्यार्थियों की एकाग्रता बढ़ने में, नैतिक मूल्यों के विकास में तथा तनाव प्रबंधन में यह अत्यंत सहायक सिद्ध होगा। स्वामी रामदेव के विचारों का समग्र विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि **स्वास्थ्य, योग और शिक्षा** अंतर्संबंधित तीन आयाम हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि योग केवल परलोक सुधारने का साधन नहीं, बल्कि इसी लोक में सुखद, स्वस्थ और समृद्ध जीवन जीने का माध्यम है। उनके द्वारा प्रस्तावित आचार्यकुलम, पतंजलि विश्वविद्यालय, भारतीय शिक्षा बोर्ड और 'आयुर्वेदिक योग चिकित्सा पद्धति' वैश्विक समुदाय के लिए एक आदर्श मॉडल हो सकती है। उनका यह मॉडल "Holistic Health Education System" के रूप में उभर रहा है जो पूरे विश्व समुदाय के लिए आशा का दीप है।

संदर्भ (References)

1. **स्वामी रामदेव (2002).** *योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य*, दिव्य प्रकाशन।
2. **बालकृष्ण, आचार्य (2012).** *आयुर्वेद सिद्धांत रहस्य*, दिव्य प्रकाशन।
3. **योगसूत्र**
4. Oxford Academic (2013). Swami Ramdev and Modern Yoga.
5. **Viggiano, A. et al. (2014).** "Effects of an 8-week Yoga Program on Mental and Physical Health", *Journal of Alternative and Complementary Medicine*.
6. Khalikova, V. (2017). *The Ayurveda of Baba Ramdev*. South Asia Journal.
7. **पतंजलि रिसर्च फाउंडेशन (2019).** *Scientific Analysis of Yoga and its effects on Human Physiology*, International Journal of Yoga.
8. **NARAGATTI SIDDAPPA (2019).** "YOGA FOR HEALTH AND WELLNESS", IJRAR-International Journal of Research and Analytical Reviews (IJRAR), E-ISSN 2348-1269, P-ISSN 2349-5138, Volume. 6, Issue 2, Page No. pp/915-917, June2019,
9. **Ministry of AYUSH (2020).** *Guidelines for Yoga Practitioners for Immunity and Tertiary Health*.
10. **National Education Policy (2020).** *Integration of Traditional Knowledge Systems in Modern Education*.
11. **Balkrishna, A., (2021).** "A review on the role of Yoga and Ayurveda in managing lifestyle disorders", *Frontiers in Public Health*.
12. **Dr. Kapil Sharma (2021)**. THE IMPORTANCE OF YOGA AND EXERCISE FOR HEALTH. *International Education and Research Journal (IERJ)*, *7*(2).
13. **स्वामी रामदेव (2021).पुनर्मुद्रण.** *प्राणायाम रहस्य*, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।

14. WHO (2021). *International Day of Yoga 2021*.

15. **Patanjali Research Foundation (2022).** *Statistical Analysis of NCDs and Yogic Intervention*

16. The Statesman (2024). Yoga-based integrated treatment system.

17. Smith, J., Brown, L., & Kumar, R. (2024). Effects of yoga on lifestyle diseases. Journal of Health and Wellness, 12(3), 45–60.

18. Times of India (2026). Lifestyle and Ayurveda views of Ramdev.

19. Times of India (2026). Global Gurukul concept.

मानस में पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण

डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
किरोड़ीमल महाविद्यालय,दिल्ली विश्वविद्यालय

श्रेया शर्मा
शोधार्थी, चतुर्थ वर्ष, हिंदी विभाग
किरोड़ीमल महाविद्यालय,दिल्ली विश्वविद्यालय

भूमिका

साहित्य में विमर्शों एवं विश्लेषणात्मक अध्ययनों के माध्यम से समाज के उन तबकों की दबी हुई आवाज को ध्वनि प्रदान की जाती है, जो मुख्य रूप से समाज में रहकर भी दबा हुआ एवं शोषित महसूस करते है। समाज के इसी दोहरे रूप तथा इसी डरावने रूप को पूर्णत: सच्चाई के साथ उजागर कर साहित्य समाज के उन तबकों की आवाज बन जाता है, और समाज में क्रांति का बीजारोपण होता है।

साहित्य में इन्हीं विश्लेषणात्मक अध्ययनों में एक विषय जो अधिकांश रूप से अछूता रह गया वह विषय पर्यावरण है। पर्यावरण मनुष्यों द्वारा दमित किए जाने वाला एक ऐसा मूक प्राणी जिसका दमन मानव समाज सदियों से करता आ रहा है।

भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य जगत में प्रकृति का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।प्राचीन काल से ही मनुष्य और प्रकृति के बीच अटूट एवं गहरा संबंध रहा या यूं कहें कि मानव जीवन पर्यावरण के बिना असंभव है

यदि हम हिंदी साहित्य जगत की प्राचीन रचनाओं पर प्रकाश डालें तो हमें यह मालूम होता है की हिंदी साहित्य में रचित अनेक धार्मिक ग्रंथों एवं महाकाव्यों में प्रकृति को केवल एक अमूर्त उपकरण के रूप में नहीं बल्कि एक जीवंत एवं पूजनीय तत्व के रूप देखा गया है।

उदाहरणस्वरूप : यदि हम कालिदास की प्रमुख रचनाएं अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मेघदूतम् तथा ऋतुसंहारम् का अध्ययन करें तो हमें यह मालूम पड़ता है की इन सभी रचनाओं में पर्यावरण केवल एक मूक प्राणी नहीं बल्कि रचनाओं में वर्णित पात्रों की भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सहायक रूप में निखर कर सामने आता है। इसी संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरितमानस एक ऐसा महान ग्रंथ है जिसमें मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं, भावनाओं, मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप पर्यावरण का चित्रण अत्यंत जीवंत रूप में किया है।

रामचरितमानस में प्रकृति का वर्णन केवल सजावटी तत्व के रूप में नहीं किया गया है, बल्कि यह कथा के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। वन, नदियाँ, पर्वत, पशु-पक्षी और ऋतुएँ कथा के अभिन्न अंग हैं और इनके माध्यम से जीवन के नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को प्रस्तुत किया गया है। विशेष रूप से भगवान राम का वनवास इस बात को स्पष्ट करता है कि मनुष्य को प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके ही जीवन व्यतीत करना चाहिए (प्रभु आदि, 2024)

तुलसीदास ने प्रकृति के विभिन्न रूपों जैसे वनस्पतियाँ, जल स्रोत, जीव-जंतु और भौगोलिक संरचनाएँ का अत्यंत जीवंत और भावपूर्ण चित्रण किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में पर्यावरण के प्रति गहरी संवेदनशीलता और जागरूकता मौजूद थी। नदियों को पवित्र माना गया, वृक्षों को जीवनदायी समझा गया और पशु-पक्षियों को भी जीवन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में देखा गया (सुमन लता, 2018)।

वर्तमान समय में हम अनेक पर्यावरणीय समस्याओं से जूझ रहे हैं जैसे प्रदूषण, जल संकट और जलवायु परिवर्तन तेजी से बढ़ रही हैं, तब रामचरितमानस में निहित यह पर्यावरणीय दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह ग्रंथ हमें यह सिखाता है कि प्रकृति के साथ संतुलित और संवेदनशील व्यवहार ही मानव जीवन के स्थायी विकास का आधार है। अतः यह अध्ययन इस बात को समझने का प्रयास करता है कि रामचरितमानस में प्रकृति और पर्यावरण को किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है तथा उसमें निहित मानवीय दृष्टिकोण आज के समय में किस प्रकार उपयोगी और प्रासंगिक है।

रामचरितमानस में प्रकृति का स्वरूप

रामचरितमानस मुख्य रूप से भगवान श्रीराम के जीवनकाल पर रचित ग्रंथ है जो जीवन का मर्म सिखाती है, मनुष्य का कर्म सिखाती है। राम जी का संपूर्ण जीवन आदर्शों पर आधारित तथा वे मर्यादा पुरुषोत्तम के नाम से प्रख्यात है। रामचरितमानस में जीवन के पहलुओं को तो उजागर किया गया ही है साथ ही पर्यावरण के विभिन्न रूप को भी विकसित किया है

रामचरितमानस में प्रकृति का स्वरूप केवल दृश्य सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन, भावनाओं और व्यवहार से गहराई से जुड़ा हुआ है। तुलसीदास ने प्रकृति को एक जीवंत और संवेदनशील तत्व के रूप में प्रस्तुत किया है, जो मनुष्य के सुख-दुःख में सहभागी बनती है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि रामचरितमानस में प्रकृति का प्रयोग केवल वातावरण बनाने के लिए नहीं, बल्कि मानव भावनाओं को व्यक्त करने के लिए भी किया गया है। जब रावण द्वारा माता सीता का हरण होता है, तब श्रीराम अत्यंत व्याकुल और बेचैन होकर वन में भटकते हैं और वृक्षों, लताओं, पक्षियों और पशुओं से पूछते हैं कि क्या उन्होंने सीता को देखा है। वे कहते हैं "हे खग, मृग, हे मधुकर श्रेणी..." इस प्रकार वे प्रकृति के प्रत्येक रूप से संवाद करते हैं। यह प्रसंग यह दर्शाता है कि प्रकृति को एक जीवंत और संवेदनशील रूप में देखा गया है, जो मानव भावनाओं को समझ सकती है (सुमन लता, 2018)। यहाँ तुलसीदास ने प्रकृति का मानवीकरण (Personification) किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वृक्ष, लताएँ और पक्षी केवल निर्जीव या साधारण तत्व नहीं हैं, बल्कि वे मानव के भावों के सहचर हैं। यह दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि प्रकृति के साथ हमारा संबंध केवल उपयोग का नहीं, बल्कि भावनात्मक और आत्मीय भी होना चाहिए। रामचरितमानस में प्रकृति का उपयोग जीवन के विभिन्न कार्यों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वनवास के दौरान श्रीराम, लक्ष्मण और सीता प्रकृति के बीच रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे कंद-मूल-फल का सेवन करते हैं, वन में आश्रय बनाते हैं और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय मनुष्य

प्रकृति पर निर्भर होते हुए भी उसका शोषण नहीं करता था, बल्कि उसके साथ संतुलन बनाकर जीवन जीता था (प्रभु आदि, 2024)1 नदियों और पर्वतों का भी महत्वपूर्ण उपयोग और सम्मान किया गया है। गंगा, यमुना, सरयू जैसी नदियाँ केवल जल स्रोत नहीं थीं, बल्कि उन्हें पवित्र और जीवनदायिनी माना जाता था। राम द्वारा नदियों को प्रणाम करना यह दर्शाता है कि प्रकृति के प्रति सम्मान की भावना कितनी गहरी थी (सुमन लता, 2018)1 वनों का प्रयोग केवल निवास स्थान के रूप में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक केंद्र के रूप में भी किया गया है। ऋषि-मुनि वनों में आश्रम बनाकर साधना करते थे, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति को शांति, ज्ञान और संतुलन का स्रोत माना जाता था। रामचरितमानस में

अतः यह कहा जा सकता है कि रामचरितमानस में प्रकृति का स्वरूप बहुआयामी है यह जीवन का आधार है, भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है और मानव के साथ सह-अस्तित्व का प्रतीक भी है। तुलसीदास ने प्रकृति को एक ऐसे जीवंत तत्व के रूप में प्रस्तुत किया है, जो मानव जीवन के हर पहलू से जुड़ा हुआ है।

रामचरितमानस में पर्यावरणीय चेतना

रामचरितमानस में पर्यावरणीय चेतना अत्यंत स्पष्ट और गहराई से व्यक्त होती है। यह चेतना केवल प्रकृति के सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके संरक्षण, सम्मान और संतुलित उपयोग की भावना को भी दर्शाती है। तुलसीदास ने अपने ग्रंथ में यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, और यही सच्चा पर्यावरण संरक्षण है। रामचरितमानस में यह देखा जा सकता है कि प्रकृति के प्रत्येक तत्व जैसे जल, वायु, वन, पर्वत, पशु-पक्षी को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। इन सभी के प्रति सम्मान और संवेदनशीलता का भाव उस समय के समाज में विद्यमान था। उदाहरण के रूप में, जब भरत ऋषि भारद्वाज के आश्रम में जाते हैं, तो वे अपनी सेना को आश्रम से दूर ही रोक देते हैं, ताकि वृक्षों, जल स्रोतों और वातावरण को कोई हानि न पहुँचे। यह प्रसंग यह दर्शाता है कि उस समय पर्यावरण संरक्षण के प्रति गहरी जागरूकता थी (प्रभु आदि, 2024)

इसी प्रकार, जल के महत्व को भी रामचरितमानस में विशेष रूप से दर्शाया गया है। जल को जीवन का आधार माना गया है और उसके प्रदूषण को पाप के रूप में देखा गया है। यह दृष्टिकोण इस बात को स्पष्ट करता है कि उस समय स्वच्छ जल और उसके संरक्षण को अत्यंत आवश्यक माना जाता था (प्रभु आदि, 2024)1 वनों और वृक्षों के प्रति भी अत्यंत सम्मान का भाव मिलता है। रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर वृक्षों और वनों को जीवनदायी और पवित्र माना गया है। वनवास के दौरान राम, लक्ष्मण और सीता प्रकृति के बीच संतुलित जीवन जीते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य को प्रकृति का उपयोग करते समय उसका संरक्षण भी करना चाहिए।

पशु-पक्षियों के प्रति भी सह-अस्तित्व की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। रामचरितमानस में विभिन्न जीव-जंतुओं का उल्लेख इस बात को दर्शाता है कि वे भी पर्यावरण के महत्वपूर्ण अंग हैं और उनके साथ संतुलन बनाकर रहना आवश्यक है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरणीय विचारों जैसे जैव विविधता (biodiversity) के समान ही है (सुमन लता, 2018)।

यदि आधुनिक समय से तुलना की जाए, तो आज पर्यावरणीय समस्याएँ जैसे प्रदूषण, वनों की कटाई और जल संकट तेजी से बढ़ रहे हैं। इसके विपरीत, रामचरितमानस हमें यह सिखाता है कि यदि मनुष्य प्रकृति के प्रति संवेदनशील और जिम्मेदार व्यवहार करे, तो इन समस्याओं को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

अतः यह स्पष्ट होता है कि रामचरितमानस में पर्यावरणीय चेतना केवल एक विचार नहीं है, बल्कि यह जीवन का

एक महत्वपूर्ण मूल्य है, जो आज के समय में भी उतना ही प्रासंगिक है।

मानवीय दृष्टि और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व

रामचरितमानस में मानवीय दृष्टि का अर्थ केवल मनुष्य के व्यवहार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उसके प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण और जिम्मेदारी को भी दर्शाता है। तुलसीदास ने अपने ग्रंथ में यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य को प्रकृति के साथ संतुलित, संवेदनशील और नैतिक व्यवहार करना चाहिए।

रामचरितमानस में भगवान राम का चरित्र इस मानवीय दृष्टि का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। राम वनवास के दौरान प्रकृति के बीच रहते हुए भी उसका दुरुपयोग नहीं करते, बल्कि उसके साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं। वे कंद-मूल-फल का सेवन करते हैं, सरल जीवन जीते हैं और प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति का उपयोग तो करना चाहिए, परंतु उसका शोषण नहीं करना चाहिए। मानवीय दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि मनुष्य को प्रकृति के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। जब राम सीता के वियोग में दुःखी होते हैं, तब वे वृक्षों, लताओं और पशु-पक्षियों से संवाद करते हैं। यह दर्शाता है कि वे प्रकृति को एक जीवंत और संवेदनशील इकाई के रूप में देखते हैं, जो उनके दुख को समझ सकती है। यह दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि प्रकृति के साथ हमारा संबंध केवल भौतिक नहीं, बल्कि भावनात्मक भी होना चाहिए (सुमन लता, 2018)

इसके अतिरिक्त, रामचरितमानस में यह भी संकेत मिलता है कि मनुष्य को पर्यावरण के संरक्षण की जिम्मेदारी निभानी चाहिए। भरत द्वारा आश्रम के वातावरण को सुरक्षित रखने के लिए सेना को दूर रोकना इस बात का उदाहरण है कि मनुष्य को अपने कार्यों के प्रभाव को समझना चाहिए और प्रकृति को हानि पहुँचाने से बचना चाहिए (प्रभु आदि, 2024)। वर्तमान समय में जब पर्यावरणीय संकट बढ़ते जा रहे हैं, तब यह मानवीय दृष्टि और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। आज मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति का अत्यधिक दोहन कर रहा है, जिसके कारण संतुलन बिगड़ रहा है। ऐसे समय में रामचरितमानस हमें यह सिखाता है कि यदि हम प्रकृति के प्रति जिम्मेदार और संवेदनशील बनें, तो हम इस संकट को कम कर सकते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि रामचरितमानस में प्रस्तुत मानवीय दृष्टि हमें यह प्रेरणा देती है कि हम प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखें, उसका संरक्षण करें और उसके प्रति अपने कर्तव्यों को समझें।

प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व का अर्थ केवल पर्यावरण संरक्षण के सरल विचार तक सीमित नहीं है। यह जीवन के हर स्तर पर प्रकृति के साथ संतुलित, नैतिक और संवेदनशील संबंध बनाने से जुड़ा है। रामचरितमानस में यह विचार स्पष्ट रूप से दिखता है कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं है, बल्कि उसका एक हिस्सा है। इसलिए उसका कर्तव्य है कि वह प्रकृति के संसाधनों का संयम से उपयोग करे और उनके संरक्षण को प्राथमिकता दे।

भगवान राम का जीवन इस उत्तरदायित्व की बेहतरीन मिसाल पेश करता है। वनवास के दौरान वे न तो प्रकृति का असीमित उपयोग करते हैं और न ही उसके संतुलन को बिगाड़ते हैं। वे वन जीवन को अपनाते हुए प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखते हैं। यह जीवनशैली आज के उपभोक्तावाद से पूरी तरह विपरीत है, जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन आम बात है। राम का आदर्श हमें सिखाता है कि मानव जीवन की सच्ची उन्नति प्रकृति के साथ संतुलन में है (प्रभु आदि, 2024)।

मनुष्य को प्रकृति से भावनात्मक जुड़ाव बनाए रखना भी बेहद आवश्यक है। जब मनुष्य प्रकृति को केवल उपयोग की चीज मानता है, तब उसका शोषण बढ़ता है। लेकिन जब वह इसे संवेदनशील इकाई समझता है, तब संरक्षण की भावना स्वाभाविक रूप से आती है। रामचरितमानस में वृक्षों, नदियों, पहाड़ों और जीवों के प्रति सम्मान इसी भावनात्मक जुड़ाव को दर्शाता है (सुमन लता, 2018)।

उदाहरण के लिए, श्रीराम का वृक्षों और पक्षियों से संवाद करना बताता है कि प्रकृति मानव जीवन का सहायक है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरण नैतिकता की धारणा से मेल खाता है, जिसमें प्रकृति के हर तत्व के अस्तित्व और महत्व को मान्यता मिलती है।

आज के समय में पर्यावरणीय संकट का मुख्य कारण यही है कि मनुष्य ने अपने उत्तरदायित्वों को भुला दिया और प्रकृति के साथ उपभोगकारी संबंध बना लिए हैं। औद्योगीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावाद ने प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव डाला है। UNEP (2024) की रिपोर्ट के अनुसार, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और जैव विविधता का ह्रास आधुनिक मानव गतिविधियों का स्पष्ट नतीजा हैं। यह दिखाता है कि यदि मनुष्य ने अपनी आदतें नहीं बदली, तो भविष्य और अधिक संकट में आ सकता है।

रामचरितमानस हमें सिखाता है कि प्रकृति का संरक्षण केवल सामाजिक जिम्मेदारी नहीं है; यह नैतिक कर्तव्य भी है। जल, वायु, वन और जीव-जंतु सभी जीवन के आधार हैं। इसलिए इनकी रक्षा करना हर व्यक्ति का दायित्व है। यह दृष्टिकोण आधुनिक "सतत विकास" की धारणा से भी मेल खाता है, जिसमें वर्तमान की जरूरतों को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए संसाधनों को सुरक्षित रखना आवश्यक है (UNEP, 2024)।

मानव समाज के लिए यह जरूरी है कि वह अपनी जीवनशैली में संतुलन, संयम और संरक्षण की भावना विकसित करे। अत्यधिक उपभोग, प्लास्टिक प्रदूषण, जल का दुर्व्यवहार और वनों की कटाई जैसी गतिविधियाँ न केवल प्रकृति को नुकसान देती हैं, बल्कि मानव अस्तित्व के लिए भी खतरा उत्पन्न करती हैं। इस संदर्भ में रामचरितमानस का संदेश बेहद प्रासंगिक है।

प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व का एक सामाजिक पहलू भी है। जब समाज सामूहिक रूप से पर्यावरण संरक्षण को अपनाता है, तब स्थायी परिवर्तन संभव होता है। रामराज्य की कल्पना भी एक संतुलित समाज की ओर इशारा करती है, जहाँ मानव, समाज और प्रकृति के बीच सामंजस्य हो। यह आदर्श आधुनिक पर्यावरणीय नीतियों के लिए भी प्रेरणा बन सकता है।

इसके अलावा, शिक्षा के जरिए पर्यावरणीय मूल्यों का विकास करना भी बेहद जरूरी है। यदि नई पीढ़ी को प्रकृति के महत्व, संरक्षण की आवश्यकता और सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़ा जाए, तो पर्यावरणीय संकट को काफी हद तक नियंत्रण में लाया जा सकता है। रामचरितमानस जैसे ग्रंथ इस दिशा में सांस्कृतिक और नैतिक आधार देते हैं।

इस तरह, यह स्पष्ट होता है कि मानवीय दृष्टि और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व केवल व्यक्तिगत व्यवहार का विषय नहीं है। यह सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक चेतना का आधार भी है। रामचरितमानस हमें बताता है कि मनुष्य को प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व में रहते हुए उसका संरक्षण करना चाहिए और इसके प्रति अपने कर्तव्यों को समझना चाहिए। यही दृष्टिकोण वर्तमान पर्यावरणीय संकट के समाधान की दिशा में एक प्रभावी मार्गदर्शक बन सकता है (प्रभु आदि, 2024; सुमन लता, 2018; UNEP, 2024)।

वर्तमान समय में पर्यावरण

वर्तमान समय में पर्यावरण की स्थिति अत्यंत ध्यान देने योग्य है, मानव जाति पर्यावरणीय उपकरणों का उपयोग अपने स्वार्थ हेतु जरूरत से ज्यादा कर रहा हैं। मानव जाति के इन्हीं कार्यों के कारण पर्यावरण प्रदूषित होता चला जा रहा हैं। पेड़ों की कटाई, फैक्ट्रियों द्वारा छोड़े जाने वाली जहरीली रासायनिक गैसेस, घरेलू कचरा नदियों में फेंकना तथा गाड़ियों से निकलने वाली गैस वातावरण में जल प्रदूषण एवं वायु प्रदूषण को बढ़ा रही हैं, प्रदूषण के कारण बुजुर्गों, बच्चों एवं कामकाजी वर्ग को अत्यंत शारीरिक रोगों का सामान करना पड़ रहा है। वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर पर्यावरण की स्थिति अत्यंत चिंताजनक होती जा रही है। जलवायु परिवर्तन, वायु प्रदूषण, जल संकट, जैव विविधता की हानि तथा वनों की कटाई जैसी समस्याएँ मानव जीवन और पृथ्वी के संतुलन दोनों के लिए गंभीर खतरा बन चुकी हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) की रिपोर्टों के अनुसार, विश्व "ट्रिपल प्लैनेटरी क्राइसिस" अर्थात् जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और जैव विविधता ह्रास जैसी तीन बड़ी पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है (UNEP, 2024)।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, विश्व की लगभग 99 प्रतिशत जनसंख्या प्रदूषित वायु में साँस लेने को विवश है, जिससे प्रतिवर्ष लगभग 70 लाख लोगों की समयपूर्व मृत्यु होती है (WHO, 2024)। भारत सहित अनेक विकासशील देशों में वायु प्रदूषण विशेष रूप से गंभीर समस्या बन चुका है। महानगरों में बढ़ते औद्योगीकरण, वाहन उत्सर्जन और ऊर्जा उपभोग के कारण वायु गुणवत्ता लगातार गिर रही है।

जल संकट भी वर्तमान समय की एक गंभीर समस्या है। विभिन्न अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टों के अनुसार, आने वाले वर्षों में स्वच्छ जल की उपलब्धता में भारी कमी आने की संभावना है। जलवायु परिवर्तन के कारण ग्लेशियर पिघल रहे हैं, वर्षा चक्र असंतुलित हो रहा है तथा सूखा और बाढ़ जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। इससे कृषि, खाद्य सुरक्षा और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

वनों की कटाई और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण जैव विविधता तेजी से नष्ट हो रही है। अनेक प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर हैं। UNEP और अन्य वैश्विक रिपोर्टें यह संकेत देती हैं कि यदि वर्तमान स्थिति में सुधार नहीं किया गया, तो आने वाले दशकों में पर्यावरणीय संकट और अधिक गंभीर हो सकता है।

यदि रामचरितमानस की दृष्टि से वर्तमान स्थिति को देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि आधुनिक समाज ने प्रकृति के साथ संतुलित संबंध को काफी हद तक खो दिया है। जहाँ रामचरितमानस सह-अस्तित्व, संरक्षण और संवेदनशीलता का संदेश देता है, वहीं आज की जीवनशैली अत्यधिक उपभोग और संसाधनों के शोषण पर आधारित होती जा रही है।

अतः वर्तमान पर्यावरणीय संकट यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय मूल्यों को पुनः समझना और अपनाना आज के समय की आवश्यकता है। रामचरितमानस में प्रस्तुत प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरण संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि रामचरितमानस में प्रकृति और पर्यावरण के अनेक पहलुओं का विस्तृत वर्णन मिलता है, परंतु अधिकांश अध्ययनों में इन तत्वों को केवल सौंदर्यात्मक या धार्मिक दृष्टि से देखा गया है। पर्यावरणीय

चेतना, मानवीय दृष्टिकोण और प्रकृति के मानवीकरण जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है। विशेष रूप से यह पक्ष कि किस प्रकार प्रकृति को मानव भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है, और यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरणीय संकट से कैसे जुड़ता है, इस पर और अधिक गहन अध्ययन की आवश्यकता है। इसी अनुसंधान अंतर को ध्यान में रखते हुए, इस शोध में रामचरितमानस को पर्यावरणीय दृष्टि से समझने का प्रयास किया गया है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि तुलसीदास ने प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत और संवेदनशील इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है, जो मानव जीवन के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रामचरितमानस में निहित पर्यावरणीय चेतना और मानवीय दृष्टिकोण आज के समय में अत्यंत प्रासंगिक हैं। यह ग्रंथ हमें यह सिखाता है कि मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है और प्रकृति के प्रति संवेदनशील एवं जिम्मेदार व्यवहार ही सतत जीवन का आधार है।

अतः रामचरितमानस केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह पर्यावरण संरक्षण और मानव-प्रकृति संबंध को समझने का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी है, जो वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ

1. प्रभु, डी. आर., भांगी, एस., लोहार, एल., मैत्री, एस., भट्टाचार्य, ए., छत्रे, व., एवं मेनेजेस, एम. (2024). *रामायण और आधुनिक विश्व में वर्णित पर्यावरण संरक्षण मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन.*
2. सुमन लता. (2018). *रामचरितमानस में प्राकृतिक पर्यावरण चेतना.* Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education, 15(1).
3. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP). (2024). Annual Report 2024.
4. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO). (2024). Air Pollution Report.
5. संयुक्त राष्ट्र जलवायु रिपोर्ट (UN Climate Reports). (2024). State of Global Climate.

स्त्री-जीवन और मूल्यबोध: रूपम मिश्र की कविता के विशेष संदर्भ में

दुर्गानन्द ठाकुर
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

शोध–सार: यह आलेख समकालीन हिन्दी कविता की नई पीढ़ी की प्रतिनिधि कवयित्री रूपम मिश्र के काव्य–संसार की स्त्रियों का विश्लेषण करते हुए उनके जीवन द्रव्य की तलाश करता है। कहना न होगा, स्त्री कविता में आधी आबादी के उन जीवन–सत्यों को आलोकित किया है, जिन्हें अबतक पितृसत्ता ने सभ्यता–संस्कृति और धर्म की ओट में छिपा रखा था। आखिर एक 'अच्छी स्त्री' होने की कितनी बड़ी कीमत है? यह स्त्री कविता ने उजागर कर दिया। इन्हीं संदर्भों में रूपम मिश्र की कविताएं स्त्री–जीवन के स्वप्न और संघर्ष से निर्मित मूल्यबोध को विभिन्न स्तरों रुपायित करती हैं, जिसका वस्तुपरक विश्लेषण करने का प्रयास इस आलेख में किया गया है।

बीज शब्द: पितृसत्ता, स्टीरियोटाइप, शोषक व्यवस्था, लोकतंत्र, नागरिक अधिकार, दमन, स्त्री–मुक्ति, पारिवारिक संस्था, विवाह संस्था।

मार्क्स ने कविता को मनुष्य की मातृभाषा यूं ही नहीं कहा होगा। कविता में वह सामर्थ्य है कि सभ्यता की तमाम दहकती पीड़ाओं का वहन कर सके, वह मनुष्यता के सपने संजो कर चल सके! कविता की इस ऐतिहासिक भूमिका को स्वीकार करते हुए यह कहना ठीक जान पड़ता है कि मध्ययुगीन सन्त काव्य ने जिस प्रकार मनुष्यता की पुनर्कल्पना प्रस्तुत की और शोषणरहित समतापरक समाज का स्वप्न रचा, उसी तरह आधुनिक कविता ने मनुष्य की मुक्ति के संबंध में प्रबलता से गवाही दी। विशेषकर स्त्री कविता ने समाज में विद्यमान शोषक व्यवस्था के सभी स्वरूपों को उघाड़ते हुए मानव मुक्ति के समकालीन परिप्रेक्ष्यों को प्रस्तुत किया। स्त्री कविता ने न केवल आधी आबादी के दमित सत्यों, स्वप्नों और आकांक्षाओं को प्रकट किया बल्कि समूची मानवता को कलंकित करने वाली रूढ़ियों, जड़ परम्पराओं और सामाजिक विकास में बाधक अनेकानेक अवरोधों को प्रश्नांकित किया है। स्त्री कविता की भूमिका केवल भाषा के संवर्धन तक नहीं है। हां यह ठीक है कि भाषा के पौरूषेय प्रतिमानों को इसने प्रश्न चिन्हों के घेरे ला खड़ा किया लेकिन इसके साथ ही भाषा के अलावा समाज में वर्चस्वों का निर्माण करने वाली अन्तःक्रियाओं पर प्रकाश भी डाला, जिससे असमानताओं की निर्मितियां जगजाहिर हुईं यही कारण है कि पूर्व में जिन सामाजिक व्याधियों को ज़बान पर लाना गुनाह माना जाता था, बीते तीन–चार दशकों में उन शोषणकारी दमनात्मक व्यवहारों पर खुली चर्चाएं होने लगीं, उनपर सवाल उठाए गए। समाज के हाशियाकृत वर्गों में प्रतिरोध की आवश्यकता पर पुनर्विचार किया जाने लगा।

एक तरह से यह स्टीरियोटाइप बना दिया गया है कि स्त्री कविता केवल स्त्री जीवन को संबोधित होती हैं। ध्यातव्य है कि स्त्री कविता जब स्त्री जीवन को संबोधित करती है तो वह अनिवार्यतः स्त्री जीवन को प्रभावित करने वाले सभी कारकों का संज्ञान लेती है। क्या स्त्री जीवन किसी निर्वात में संभव होता है? स्त्रियों का संसार भी ठीक वही है जो पुरुषों का है मगर

लैंगिक वर्चस्व के कारण मुख्यधारा के समाज से बेदखल कर उन्हें आंगनों और ड्योढ़ियों तक सीमित कर दिया जाता है। पृथकता और सीमांकन की यह दुर्भीसंधि सदियों से जारी है, जिसे इतिहास ने कई मोड़ों पर निर्णायक धक्के दिए हैं यद्यपि उत्पादन संबंधों में व्याप्त सामंती मूल्यों के कारण पितृसत्ता की जंजीरें पूरी तरह टूट नहीं सकी हैं।

स्त्री कविता में शोषण की बहुआयामिता को दर्ज करने वाले प्रमुख युवा स्वरों में कवियित्री रूपम मिश्र का अन्यतम स्थान है। इन्होंने अपनी कविताओं में गांवों, अंचलों और शहरों की लड़कियों, गृहणियों के जीवन को बहुत बारीकी से अंकित किया है। आज जबकि बाजार ने पितृसत्ता से मुक्ति के बहुसंख्य छद्मों को समाज में खड़ा कर दिया है, वैसे में रूपम मिश्र जैसे कवियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है, जो पूंजी, धर्मसत्ता एवं पितृसत्ता के गठजोड़ की शिनाख्त कर सके। स्त्री मुक्ति के लिए अपरिहार्य संघर्ष, जिजीविषा, और भविष्य दृष्टि का परिचय रूपम मिश्र ने अपने पहले कविता संग्रह 'एक जीवन अलग से' में दिया है। प्रश्नाकुलता और शोषण के बुनियाद की शिनाख्त संग्रह का मूल स्वर है। उन्होंने पितृसत्ता के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े चिह्नों, प्रतीकों को जगह–जगह उंगली रख कर दिखलाया है। इस क्रम में उनका लहजा शिकायती नहीं बल्कि बगावती है क्योंकि उनके कवि के सामने स्पष्ट है कि जिस चीज की मांग वो समाज और परिवार से कर रहा है, वह किसी की कृपा या अनुग्रह नहीं बल्कि स्त्रियों का अधिकार है। मसलन उनकी कविताओं में प्रायः ननद, बेटी, भाभी, पड़ोसी लड़की की कहानी विन्यस्त होती है, जिसमें घर–आंगन छूटने की पीड़ा तो है मगर इसके साथ ही पितृसत्ता के विद्रूप चेहरे की उपस्थिति भी दर्ज हुई है:

"इन्हें कैसे समझाऊं हमारी आत्मा जिस जड़ से लसरियाई गई है
उसने हमेशा हमें दोयम दर्जे का नागरिक माना"[1]

ध्यातव्य है कि कवयित्री ने 'हमें' को स्पष्ट करते हुए बेटी, बहु, बुआ आदि ने कहकर 'नागरिक' कहा है, जिसके लोकतंत्र में विशिष्ट मायने हैं। इस देश का संविधान और तमाम संवैधानिक संस्थाओं का कार्यभार था कि वे देश की आधी आबादी के लिए नागरिक स्वतंत्रता, अधिकार और समानता सुनिश्चित करे। परन्तु क्या स्वाधीनता के इतने लम्बे अरसे के बाद भी इस दिशा में आमूलगामी परिवर्तन हो सके हैं? इस प्रश्न का कोई ठोस उत्तर भारतीय समाज देने में यदि असमर्थ है तो निश्चय ही इसके पीछे समाज के समस्याग्रस्त मूल्यबोध हैं। इसलिए रूपम मिश्र की कविताएं सामाजिक मूल्यों की गहरी छीनबीन के दायित्व का निर्वहन करती हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में मूल्य–परीक्षण के विलक्षण टूल्स ईजाद किए हैं, इसकी एक बानगी निम्नांकित काव्य पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

"पिता क्या मैं तुम्हें याद हूं!
मुझे तो तुम याद रहते हो
क्योंकि ये हमेशा मुझे याद कराया गया
फासीवाद मुझे कभी किताब से नहीं समझना पड़ा"[2]

भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि फासीवाद की जड़ों को तलाशना होगा तो वह यहां सदियों से जड़े जमाए पितृसत्ता और वर्णाश्रम–जाति व्यवस्था में मिलेंगी। उपरोक्त काव्य पंक्तियां जीवन और इतिहास से स्त्री की बेदखली का संकेत भी है। इतिहास में स्त्रियों की भूमिका उसी तरह भुला दी जाती हैं जैसे घर में उनके कामकाज को अनदेखा कर दिया जाता है। सामाजिक–पारिवारिक स्मृति के निर्माण से स्त्रियों को कैसे मिटाया जाता है, इसे समझने की जरूरत हमारे सामने अब भी बनी हुई है। अकारण नहीं है कि स्त्री कविता ने इस पीड़ादायक प्रक्रिया को 'विस्थापन' जैसे संबोधन से अभिहित किया है।

स्पष्टतः यह 'विस्थापन' पितृसत्ता द्वारा स्त्रियों का निष्कासन ही है। उक्त कविता संग्रह की 'विस्थापन कई किसिम के होते हैं बन्धु' शीर्षक कविता इस सामाजिक प्रक्रिया को बेहद तरल अभिव्यक्ति प्रदान करती है:

"कुछ विस्थापनों के दर्द से मानवाधिकार भी रोता है
तो कुछ विस्थापन ऐसे भी हुए कि मां जायों ने राहत की सांस ली
पिता के सिर से बोझ उतर गया
मां ने सगर्व कहा अपने राजे–सुहाग गईं
खैर बिन ताज और राज के कैसा राज्याधिकार ये ठीक–ठीक मां को भी नहीं पता।"[3]

पितृसत्ता के त्रासद विनाशकारी प्रभावों पर विचार करते हुए यह समझने की आवश्यकता है कि यह मनुष्य की कितनी बड़ी संवेदनात्मक क्षति करता है:

"कायदे से तो मुंह फेर लेना चाहिए था उस बाग–खेत और रहन को देखकर
जहां पकने से पहले हमारे कच्चे तन–मन को उखाड़ दिया गया
पर होता ये कि वहां से गुजरते हुए भभर कर रो पड़ता मन
आंसुओं को चीर कर नजर उस जर्रे को भर निगाह निहारती"[4]

यह सच है कि स्त्री प्रश्नों से गुजरते हुए परिवार, विवाह, प्रेम संबंध एक संस्था के बतौर सामने आते हैं, जिनकी अपनी यांत्रिकी और कार्य पद्धतियां हैं। रूपम मिश्र ने बेटी को पराए धन की तरह बरतने वाली धारणाओं को बेहद सूक्ष्मता से विश्लेषित किया है। उसके आंतरिक स्वार्थों को समझने का प्रयास किया है। तभी वे अधिकारविहीन कर दी गई बेटी को पराए घर में मिलने वाले संभावित राज्याधिकार को विडंबना के रूप में चित्रित करती हैं। यह विरोधाभास ही है कि जिस व्यक्ति को अपने घर में सगे माता–पिता से कुछ भी अधिकार नहीं मिल सका, उसे पराए घर में रानी बनने की फर्जी शुभकामनाएं दी जाती रही हैं। समाज की बहुसंख्य स्त्रियां नहीं जानती कि हिन्दू कोड बिल क्या है? 1956 ई. में पास हुआ हिन्दू उत्तराधिकार कानून, हिन्दू विवाह विषयक कानून विधि, हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण पोषण कानून अथवा संविधान के अनुच्छेद 15(2), 16(2) और 19(1) में उनके लिए क्या प्रावधान बनाए गए हैं! यह महज जागरूकता के अभाव का मामला बिल्कुल नहीं है। इसके बजाए यह व्यवस्था के पुरुषसत्तात्मक व्यवहार का द्योतक है। कितने अवसरों पर इन कानूनों के पक्ष में सामाजिक परिवेश के निर्माण का प्रयास किया गया है? इसके बरक्स कदम–कदम पर स्त्रियों के परंपरागत सामाजिक अनुकूलन के लिए पहरे बिठा गए हैं। स्मरण रहे संविधान में महज कानून बन जाने से सामाजिक परिवर्तन का कार्यभार कभी पूरा नहीं हो सकता। रूपम मिश्र की कविता इस विरोधाभास को पर्याप्त संवेदनशीलता से दर्ज करती है :

"मायके से कोई इतना जोर देकर बुलाए तो
स्त्रियां आगत–विगत सब भूल जाती हैं
वे नहीं जानतीं किसी बड़की अदालत को
जिसने सदियों बाद इन्हें पिता की जायज सन्तान करार दिया
वे नहीं जानतीं बुलाने वाला इनपर एहसान नहीं कर रहा है
इनके हिस्से की सम्पत्ति दबा कर बैठा है
गैरत के नाम पर यहां सम्बन्धों की दुहाई है

वे हुड़क कर कहती हैं हां भाभी आऊंगी, सबकी बड़ी याद आती है।"[5]

ऐसा नहीं है कि स्त्रियों ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं किया है। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से लेकर सत्तर का दशक स्त्री आंदोलन के दो चरणों का साक्षी बना तदोपरांत नब्बे के दशक में स्त्री आंदोलन के तीसरे चरण का आगाज होता है, जो तमाम रुकावटों, गतिरोधों के बावजूद संघर्षशील महिलाओं के नेतृत्व में जारी है। वहीं दूसरी तरफ इन आंदोलनों के प्रभाव को सीमित करने में वर्चस्वशाली शक्तियां हमेशा तैनात मिलती हैं। कितने ही शराबबंदी आंदोलनों, दहेज मुक्ति आंदोलनों के बावजूद यदि समाज में दहेज के लिए स्त्रियां प्रताड़ित की जाती हैं, पतियों की नशाखोरी के कारण घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं तो यह समझना कठिन नहीं कि समूची व्यवस्था ही पुरुषवादी है। यहां यह स्पष्ट करना समीचीन होगा कि पितृसत्तात्मक मूल्यों के संवाहक पुरुष भी होते हैं और स्त्रियां भी। रूपम मिश्र ने उन दोनों ही तरह की स्त्रियों को अपनी कविता में स्थान देते हुए पितृसत्ता की द्वंदात्मकता को भलीभांति पकड़ा है। पहली वे जो परम्परागत मूल्यों का संरक्षण करने वाली, पीढ़ी–दर–पीढ़ी उसे आगे बढ़ाने वाली बुआऐं, मांएं, भाभियां, ननदें हैं तो दूसरी वे नई पीढ़ी की सचेत स्त्रियां हैं जो उन मूल्यों की सच्चाइयों को जानती–बुझती हैं, इसलिए नकारती हैं। 'पिता के घर में' शीर्षक कविता में इस द्वंद को आसानी से समझा जा सकता है। द्रष्टव्य है:

"बूढ़ी बुआ कहती थीं
दैय्या! इत्ती बिटिया!
गाय का चरा वन और बेटी का चरा घर फिर पनपै तब जाना!
बुआ तुम कहां हो! देख लो!
हमने नहीं चरा तुम्हारे भाई–भतीजों का घर
सब खूब जगमग है
इतना उजाला कि ध्यान से देखने पर आंखों में पानी आ जाए।"[6]

इसलिए पितृसत्ता से लड़ने का दायित्व स्त्री–पुरुष दोनों पर है। क्योंकि यह केवल किसी एक लिंग को क्षति नहीं पहुंचा रहा बल्कि इससे वृहत् समाज और देश को भी व्यापक क्षति पहुंचती है। जगजाहिर है कि समाज के आधे हिस्से को पिछड़ी हुई मध्ययुगीन दासता की स्थिति में रखकर आधुनिक प्रगतिशील समाज नहीं बन सकता। यह देश के संविधान और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के महान स्वप्नों के धूल धूसरित होने की एक प्रमुख वजह है।

'एक जीवन अलग से' संग्रह पितृसत्ता से संघर्ष को व्यापक सामाजिक दायित्व के तौर पर निरूपित करता है। स्त्री मुक्ति को मानवीय गरिमा की रक्षा के रूप में देखने के आग्रह और सामाजिक परिवर्तन में आपसी साझेदारी, पारस्परिकता की जरूरतों को रेखांकित करती हुई संग्रह की कई महत्वपूर्ण कविताएं इस बात पर बल देती हैं कि नेक पिता पितृसत्ता के विरुद्ध बिगुल फूंक सकते हैं। यह उम्मीद पुरुषों का मानवीकरण तो करती ही है, इसके साथ ही मुक्ति के तमाम प्रयत्नों में संकीर्णता, एकांगिता के निवारण की दिशा भी देती है। इस सन्दर्भ में 'पिता और बच्चियां' कविता पिताओं को सचेत करती हैं:

"कम से कम अपनी प्रजाति को ठीक से पहचानना
हर पिता को सिखा देना चाहिए अपनी बच्चियों को।"[7]

इसी कविता में वे प्रश्नवाचक मुद्रा में उम्मीद भी करती हैं :

"जिन पिताओं को पूर्वाभास था कि अंधेरों से डरती हैं उनकी बच्चियां
उन्होंने क्यों नहीं सिखाया अंधेरों से लड़ना!
कुछ दूर साथ चलकर राह के गढ्डों और खाइयों का सही अंदाज लगाना ही सिखा देते!
वे उलझे रहे स्वयं में नहीं देखा कि उनसे निकली एक कोमल छाया अकेली रह गई है!"[8]

पिता की निर्णायक भूमिका को स्वीकार करते हुए भी सम्बन्धों के प्रति रूपम मिश्र की कविताएं आलोचनात्मक रुख अपनाती हैं। उनके यहां 'प्रेम' की एक संस्था के रूप में गहरी पड़ताल मिलती है। उन्होंने प्रेम के आवरण में थोपी जाने वाली दासता, शोषण और अंतहीन दमन का प्रतिविमर्श खड़ा किया है। कहना न होगा कि सम्बन्धों को लोकतांत्रिक बनाने के लिए वर्चस्व को पहचानना जरूरी है। वर्चस्व को चिन्हनने के लिए कवि समाजिक मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर कसती है:

"मैं आज तक न समझ पाई भाषा का ये व्याकरण कि
एक ही संवेदना में वो कैसे प्रेम में था और मैं कैसे फंसी थी।"[9]

यहां लक्षित करने योग्य बात है कि सम्बन्धों में असमानता के साथ ही पुरुषवादी समाज के भाषा व्यवहार पर भी पर्याप्त रोशनी मिलती है। स्मरण रहे, स्त्री कविता ने काव्य बोध में अनुस्यूत पितृसत्तात्मक वर्चस्व एवं स्त्रियों के प्रति सामंती दृष्टि को कई स्तरों पर अनावृत किया है। इस आलोक में रूपम मिश्र ने समस्याग्रस्त काव्यबोध को उसकी ऐतिहासिकता में दर्शाया है। स्त्रियों पर रोजमर्रा के जीवन में की जाने वाली भाषा की हिंसा को समझने में भी निम्नांकित पंक्तियां सहायता करती हैं :

"मुझे गुस्सा आया उन कवियों पर जिन्होंने नारी को नदी
और पुरुष को सागर कहा
कितनी असमान उपमा थी ये
मैं अचरज से तुम्हें देखती रह गई तुम वही सदियों के पुरुष थे
मैं वही सदियों की स्त्री
मैं ठीक मां, चाची और भाभी के बगल में खड़ी थी
और जान गई थी कि
क्षणिक प्रणय आवेग जीवन नहीं होता।"[10]

ये जिरह करती हुई कविताएं हैं। 'एक जीवन अलग से' की कविताएं परंपरागत मूल्यों के तीक्ष्ण विश्लेषण और विवेचन के जरिए प्रेम, परिवार और मानवीय सम्बन्धों को पुनर्परिभाषित करने की दिशा में प्रेरित करती हैं। सम्बन्धों के जनतंत्रीकरण की मुखर मांग उनकी कविताओं की सामाजिक पक्षधरता का निर्धारण करती है। संग्रह में कवि ने स्त्री जीवन के मूल्यबोध से मुक्ति का ज्योतिशास्त्र गढ़ा है। इस क्रम में जब वे कामना करती हैं कि: "तुम किसी दूर देश चली जाओ जहां परियां और तितलियां रहती हैं

जहां प्रेम के लिए भाग कर जान न गंवानी पड़ती हो
जहां प्रेमिका से मिलने उसके घर गया प्रेमी जिन्दा लाश बनकर न लौटता हो
जहां नदियां न पाटी जाती हों
हरे पेड़ काटे न जाते हों.."[11]

तो उसी समतामूलक समाज की परिकल्पना को सामने लाती हैं, जो ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, पंडिता रमाबाई, डॉ. बी.आर. आंबेडकर जैसे स्त्री अधिकारों के महान पैरोकारों का स्वप्न था। बालिकाओं के लिए भारत का पहला विद्यालय खोलने वाली सावित्रीबाई फुले के जीवन संघर्ष से यह साफ संदेश मिलता है कि शोषण मुक्त समाज का हर सपना अनिवार्यतः स्त्री मुक्ति के मार्ग से होकर ही गुजरता है। इस पथ से गुजरे बगैर मुक्ति की हर संकल्पना अपूर्ण और अपर्याप्त होगी। संग्रह की कविताएं इस बात की पुष्टि करती हैं। रूपम मिश्र ने कविता में सामान्य स्त्री जीवन के मार्फत व्यापक प्रश्नों को बहुत ही सरल ढंग से आमफहम भाषा में अभिव्यक्त किया है। उनकी भाषा सामान्य स्त्री के जीवन की भाषा है। उदाहरणस्वरूप निम्नांकित काव्य–पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:

"यहां बुलबुलें दुख की लोरी से सोती हैं और
डर, तिरस्कार की प्रभाती से जागती हैं
उनके रोने से धरती भींज रही है..!"[12]

यह पूरा दृश्य गांवों, अंचलों अथवा महानगरों की स्त्रियों के जीवन से निकला हुआ प्रतीत होता है। भाषा के स्तर पर भी और संवेदना के स्तर पर भी। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'एक जीवन अलग से' में संग्रहित रूपम मिश्र की कविताएं स्त्री–जीवन के मूल्यबोध को बहुत ही सचेतन ढंग से सामने लाती हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता–वे जब आई) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 41
2. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता–पिता के घर में) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 21
3. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता– विस्थापन कई किसिम के होते हैं बन्धु) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 25
4. वही
5. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता–वे जब आई) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 40
6. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता–पिता के घर में) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 22
7. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता–पिता और बच्चियां) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 34
8. वही
9. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता–प्रेम करना या फंसना) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 29
10. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता–मेरा जन्म वहां हुआ) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 20
11. मिश्र, रूपम, एक जीवन अलग से– कविता संग्रह (कविता–उनके रोने से धरती भीज रही है) लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2023, पृष्ठ– 46
12. वही

सिन्धु-सरस्वती सभ्यता : ऐतिहासिक नदी विमर्श एवं समकालीन भारत में नदी संरक्षण की वास्तविक चुनौतियाँ

डॉ० चरणदास,
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी),
राजकीय महिला महाविद्यालय, शहजादपुर (अम्बाला)

सारांश : नदियाँ किसी भी सभ्यता की जीवन-रेखा रही हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में सिन्धु-सरस्वती सभ्यता के प्रादुर्भाव से लेकर आज के आधुनिक युग तक नदियों का सांस्कृतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय महत्व अपरंपार रहा है। हालाँकि पिछले कुछ दशकों में 'सरस्वती नदी' के ऐतिहासिक और भौगोलिक अस्तित्व को लेकर सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक विमर्शों में गहरा मतभेद उत्पन्न हुआ है। ऐतिहासिक साक्ष्यों, उपग्रह चित्रण और वैदिक परंपराओं के आधार पर चलने वाले इन विमर्शों का प्रभाव न केवल इतिहासकारों पर बल्कि भारत की सार्वजनिक नीति और राष्ट्रीय जल-संरक्षण प्राथमिकताओं पर भी परोक्ष रूप से पड़ा है।

इसी संदर्भ में यह शोध-पत्र सरस्वती नदी के अस्तित्व से जुड़े प्रमाणों का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है और यह ठोस तर्क प्रस्तुत करता है कि वर्तमान समय में हमारी नीतिगत ऊर्जा और संसाधन गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी आदि जीवित नदियों के संरक्षण पर अधिक केंद्रित होने चाहिए। भारत में सदानिरा और बरसाती नदियों की प्रचुरता के बावजूद नीति-निर्माण और जल-प्रबंधन की घोर विफलता ने पूरे नदी तंत्र को गंभीर जोखिम में डाल दिया है। यह शोध-पत्र कोविड-काल के पश्चात गंगा-यमुना के प्रदूषण स्तरों में बेतहाशा वृद्धि, अपशिष्ट जल प्रबंधन की कमी, और नगरीय क्षेत्रों में दूषित पानी की त्रासदी का विस्तृत तथा तुलनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। अंततः यह अध्ययन पारदर्शी, विज्ञान-आधारित और समाज-केंद्रित जल नीतियों की तत्काल आवश्यकता की वकालत करता है।

मुख्य शब्दावली : सिन्धु-सरस्वती सभ्यता, नदी संरक्षण, घग्गर-हकरा प्रणाली, गंगा-यमुना प्रदूषण, जल संकट, नगरीय जल-प्रबंधन ।

प्रस्तावना : नदियाँ मात्र जल के प्रवाह का नाम नहीं हैं बल्कि ये सभ्यताओं के उद्गम, विकास और उनके पतन की मूक गवाह रही हैं। भारतीय उपमहाद्वीप का इतिहास और इसका भूगोल, दोनों ही इसके नदी तंत्रों द्वारा गहराई से गढ़े गए हैं। वर्तमान परिदृश्य में जहाँ एक ओर हम अपने गौरवशाली अतीत में सरस्वती जैसी विलुप्त नदियों की खोज में वैज्ञानिक और ऐतिहासिक विमर्शों में उलझे हुए हैं वहीं दूसरी ओर गंगा, यमुना, नर्मदा आदि हमारी जीवित नदियाँ अपने अस्तित्व के सबसे गहरे संकट से गुजर रही हैं। यह शोध-पत्र इस विरोधाभास को रेखांकित करने का एक अकादमिक प्रयास है। यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे अपनी नदियों को 'माता' का दर्जा देने वाला समाज अपने अनियोजित शहरीकरण, औद्योगिक लालच और प्रशासनिक विफलताओं के कारण उन्हें विषैले नालों में तब्दील कर रहा है। वर्ष 2025-26 में इंदौर में घटी जल-त्रासदी जैसे समकालीन उदाहरणों को शामिल करते हुए यह पत्र ऐतिहासिक विमर्शों से

ध्यान हटाकर वर्तमान की वास्तविक जल-नीतियों, प्रदूषण के वैज्ञानिक आँकड़ों और सार्वजनिक स्वास्थ्य की तत्काल आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित करने का आग्रह करता है।

मानव इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व की महानतम सभ्यताओं का विकास नदी-घाटी क्षेत्रों में ही हुआ। मेसोपोटामिया दजला-फरात के किनारे फली-फूली, मिस्र की सभ्यता नील नदी का वरदान थी और भारतीय उपमहाद्वीप की पहचान सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों के तंत्र से स्थापित हुई। भारत में नदियाँ न केवल कृषि, परिवहन और व्यापार के लिये आवश्यक जल संसाधन रही हैं बल्कि वे यहाँ की सामूहिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना का मूल केन्द्र भी रही हैं। ऋग्वेद का 'नदीसूक्त' नदियों की इसी महत्ता का प्राचीनतम प्रलेख है। सिन्धु-सरस्वती सभ्यता का उल्लेख वैदिक ग्रंथों और पुरातात्त्विक साक्ष्यों में समानांतर रूप से मिलता है। पुरातात्त्विक उत्खननों से यह सर्वविदित है कि सिंधु तथा उसके सहायक जलमार्गों के किनारे एक अत्यंत परिष्कृत, वैज्ञानिक और विस्तृत नगरीय व्यवस्था विकसित हुई थी। परंतु वर्तमान समय में एक विचित्र वैचारिक द्वंद्व उत्पन्न हो गया है। एक ओर सरस्वती नदी के भौतिक अस्तित्व, उसके मार्ग और उसके सूखने के कारणों को लेकर भू-वैज्ञानिकों, इतिहासकारों और सांस्कृतिक विचारकों के बीच भारी मतभेद और शोध जारी हैं; तो दूसरी ओर भारत की आज की वास्तविक जल-दशा अत्यंत दयनीय स्तर पर पहुँच चुकी है। गंगा और यमुना जैसी जीवनदायिनी नदियाँ जिनका जल कभी अमृत समान माना जाता था, आज बढ़ते शहरीकरण, अनुपचारित औद्योगिक कचरे और लचर जल-प्रबंधन के कारण दुनिया की सबसे प्रदूषित नदियों की सूची में आ गई हैं। यह शोध-पत्र इस ज्वलंत विरोधाभास को गहन रूप से व्याख्यायित करता है। इसका मूल उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि ऐतिहासिक नदी विमर्श अपनी जगह महत्वपूर्ण हो सकता है लेकिन इसके समानांतर वर्तमान जल संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसी तात्कालिक प्राथमिकताओं की अनदेखी एक आत्मघाती कदम है।

आलेख : सिन्धु घाटी सभ्यता विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक सुव्यवस्थित सभ्यताओं में से एक है। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, कालीबंगा, लोथल, और धोलावीरा जैसे स्थल इस सभ्यता के अत्यंत विकसित नगर नियोजन के प्रमाण हैं। इन नगरों की सबसे बड़ी विशेषता उनका जल प्रबंधन और जल निकासी प्रणाली थी। धोलावीरा में मिले विशाल जलकुंड और मोहनजोदड़ो का 'विशाल स्नानागार' इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारतीय समाज जल की शुद्धता और उसके संरक्षण के प्रति कितना जागरूक था। पुरातात्त्विक सर्वेक्षण यह सिद्ध करते हैं कि सिन्धु नदी एवं उसके सहायक जलमार्गों पर बसी इस सभ्यता का विस्तार बृहद एवं पूर्णतः वैज्ञानिक था।

सरस्वती नदी: मिथक, प्रतीक या भौतिक यथार्थ?

सरस्वती नदी को लेकर वैदिक ग्रंथों में अत्यंत महिमामंडित संकेत मिलते हैं। इसे "नदीतमे, अम्बितमे, देवितमे" (सर्वश्रेष्ठ नदी, सर्वश्रेष्ठ माता, सर्वश्रेष्ठ देवी) कहा गया है। परंतु, वैश्विक मानकों के वैज्ञानिक और भू-वैज्ञानिक शोधों में इस बात पर स्पष्ट मतभेद हैं कि क्या सरस्वती केवल एक सांस्कृतिक/आध्यात्मिक प्रतीक मात्र थी या यह एक विशाल भौतिक नदी थी जो कालांतर में विवर्तनिक हलचलों और जलवायु परिवर्तन के कारण सूख गई। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) और अन्य भू-वैज्ञानिक एजेंसियों द्वारा किए गए उपग्रह चित्रण और पेलियोचैनल (Paleochannel) विश्लेषण से यह संकेत अवश्य मिलता है कि उत्तर-पश्चिम भारत (वर्तमान राजस्थान और हरियाणा) के थार मरुस्थल के नीचे घग्गर-हकरा (Ghaggar-Hakra) प्रणाली के रूप में एक विशाल जलमार्ग कभी मौजूद था। रेडियोकार्बन डेटिंग और आइसोटोप विश्लेषण से यह भी पता चला है कि इस क्षेत्र में कभी मीठे पानी का प्रवाह था। परन्तु पूर्ण ऐतिहासिक

सर्वसम्मति तक पहुँचना आज भी शोध का विषय है। यह भू-विज्ञान और पौराणिक साहित्य के बीच के भेद को समझना आवश्यक बनाता है। इतिहास से परे केवल प्रतीकात्मक व्याख्या निकालना शोध की स्वतंत्रता नहीं है। नीतिकारों के लिए यह समझना आवश्यक है कि प्राचीन नदियों की खोज पर करोड़ों रुपये का बजट खर्च करने से अधिक महत्वपूर्ण है उन नदियों को बचाना जो आज हमारे सामने दम तोड़ रही हैं।

भारत में सदानिरा और बरसाती नदियों की व्यापकता एवं उनका पारिस्थितिक महत्व

भारत को एक 'जल-समृद्ध' भौगोलिक क्षेत्र माना जाता है। यहाँ का नदी तंत्र मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित है: हिमालयीन (सदानिरा) और प्रायद्वीपीय (बरसाती)। इन नदियों का जाल देश के कृषि-अर्थतंत्र और खाद्य सुरक्षा का मूल आधार है।

उत्तर भारत का सदानिरा तंत्र

हिमालय के ग्लेशियरों से निकलने वाली नदियाँ सदानिरा होती हैं अर्थात् इनमें वर्ष भर जल प्रवाह रहता है। गंगा, यमुना, घाघरा, गंडक एवं कोसी नदियाँ न केवल मानसून के समय तीव्र प्रवाह से बहती हैं बल्कि गर्मियों में बर्फ पिघलने से भी इनमें जलस्तर बना रहता है। यह संपूर्ण गंगा-बेसिन उत्तर भारत में कृषि-आधारित जीवन (विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार, और पश्चिम बंगाल) के लिये जीवनदायिनी है।

मध्य और पश्चिम भारत का प्रवाह

नर्मदा तथा ताप्ती भ्रंश घाटियों से होकर पश्चिम-दिशा में बहने वाली नदियाँ हैं। विंध्य और सतपुड़ा पर्वतमालाओं के जल-ग्रहण क्षेत्रों से इन्हें वर्ष भर पानी मिलता है। सोन, चंबल, केन, और बेतवा आदि नदियाँ पूर्णतः मानसून पर निर्भर हैं। गर्मी के मौसम में इनका जलस्तर अत्यंत कम हो जाता है जिससे इन क्षेत्रों (जैसे बुंदेलखंड) में जल संकट गहरा जाता है।

दक्षिण भारत का प्रायद्वीपीय तंत्र

कावेरी, गोदावरी और कृष्णा नदी प्रणालियों को "दक्षिण की गंगा" भी कहा जाता है। तटबंधों और विशाल बाँधों (जैसे नागार्जुन सागर, कृष्णराज सागर) के निर्माण के बावजूद, जलवायु परिवर्तन के कारण इनमें सालभर जल की निरंतरता प्रभावित हुई है। पेरियार एवं तुंगभद्रा पत्थरीले और कठोर पठारी क्षेत्रों से बहने वाली नदियाँ हैं जो मानसून काल में प्रबल रूप से बहती हैं। इन सभी नदियों में वैश्विक-मानक जल स्रोत उपलब्धता है। प्रकृति ने भारत को पर्याप्त जल दिया है परन्तु उनका संरक्षण और वैज्ञानिक प्रबंधन भारत की प्रशासनिक प्राथमिकता सूची में अभी भी सबसे नीचे है। सरकारी प्रयासों के सतही होने के कारण आज इन सभी नदियों की गुणवत्ता खस्ताहाल है।

नदी संरक्षण में सरकारी प्रयास: नाकाफी नीतियाँ और धीमा कार्यान्वयन

भारत में नदियों और जल स्रोतों को प्रदूषण मुक्त करने के लिए पिछले चार दशकों में कई महत्वाकांक्षी सरकारी योजनाएँ लागू की गई हैं। गंगा एक्शन प्लान (GAP), यमुना एक्शन प्लान (YAP), राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना (NRCP), और

हाल ही में "नमामि गंगे" (Namami Gange) जैसी वृहद परियोजनाएँ इसका उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त राज्यस्तरीय नहर एवं बाँध निर्माण (जैसे अमृत सतलुज-यमुना लिंक) परियोजनाएँ भी हैं। परंतु धरातल पर इन योजनाओं के परिणाम अत्यंत निराशाजनक रहे हैं।

धीमी कार्यान्वयन प्रक्रिया और भ्रष्टाचार

इन वृहद योजनाओं में हज़ारों करोड़ रुपये का धन तो आवंटित होता है लेकिन व्यावहारिक स्तर पर कार्यान्वयन अत्यंत धीमा है। निविदाओं के आवंटन में भ्रष्टाचार, नौकरशाही की लालफीताशाही और राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट (STP) का निर्माण वर्षों तक अटका रहता है।

सीवेज तथा अपशिष्ट प्रबंधन की विफलता

भारत के शहरीकरण का सबसे बदसूरत चेहरा नदियों के किनारे दिखता है। शहरों का अनुपचारित सीवेज सीधे नदियों में मिलना आज भी जारी है। एक रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय शहरों में उत्पन्न होने वाले कुल सीवेज का केवल 30% से 40% हिस्सा ही उपचारित हो पाता है। बाकी का 60% सीधे नदियों, झीलों और भूजल में मिल रहा है। इससे नदी पारिस्थितिकी का पूर्ण क्षरण हो रहा है और जलीय जीवों का जीवन समाप्त हो रहा है।

तकनीकी नियंत्रण और ई-फ्लो का अभाव

नदियों को स्वयं को साफ करने के लिए एक न्यूनतम जल प्रवाह की आवश्यकता होती है जिसे 'ई-फ्लो' कहा जाता है। बाँधों और बैराजों (जैसे हथिनी कुंड बैराज) द्वारा पानी रोक लिए जाने के कारण यमुना जैसी नदियाँ दिल्ली जैसे शहरों में प्रवेश करते ही एक ठहरे हुए गंदे नाले में बदल जाती हैं। अपर्याप्त निगरानी तंत्र के कारण औद्योगिक इकाइयाँ चोरी-छिपे अपना जहरीला रासायनिक कचरा रात के अंधेरे में नदियों में प्रवाहित कर देती हैं।

वैज्ञानिक मापदंड और नदी प्रदूषण पर अद्यतन डेटा: कोविड-काल के बाद की स्थिति

वर्ष 2020 के कोविड-19 लॉकडाउन के दौरान औद्योगिक गतिविधियों के बंद होने से नदियों के जल में एक अभूतपूर्व प्राकृतिक सुधार देखा गया था। परंतु 2021 से लेकर 2026 तक के वर्तमान कालखंड में यह स्थिति पहले से भी अधिक भयानक हो चुकी है।

यमुना नदी का दमघोंटू प्रदूषण (BOD और DO का संकट)

सार्वजनिक और वैज्ञानिक डेटा से स्पष्ट है कि यमुना नदी की प्रदूषण स्थिति अत्यंत गंभीर बनी हुई है। दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण समिति (DPCC) और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) के अद्यतन मापदंडों के अनुसार बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड (BOD) वह मापदंड है जो बताता है कि पानी में जैविक कचरे को तोड़ने के लिए बैक्टीरिया को कितनी ऑक्सीजन की आवश्यकता है। सुरक्षित और स्वच्छ जल की सीमा 3 mg/L से कम होनी चाहिए। लेकिन डीपीसीसी की हालिया रिपोर्टों के अनुसार, यमुना के कई हिस्सों में BOD का स्तर 50+ mg/L से 70 mg/L तक पहुँच चुका है।

जलीय जीवन के लिए पानी में घुली हुई ऑक्सीजन (DO) का स्तर न्यूनतम 5 mg/L होना चाहिए। दिल्ली के अधिकांश हिस्सों में यमुना में DO का स्तर शून्य (0 mg/L) रिकॉर्ड किया जा रहा है। इसका सीधा अर्थ है कि यमुना का पानी अब मछलियों जैसे जलीय जीवों के योग्य नहीं बचा है। इसे वैज्ञानिक भाषा में 'मृत नदी' कहा जाता है।

फिकल कोलीफॉर्म (Fecal Coliform) का खतरनाक स्तर

फिकल कोलीफॉर्म मानव और पशुओं के मल में पाया जाने वाला बैक्टीरिया है। नदी के जल में इसकी उपस्थिति सीधे तौर पर सीवेज के मिलने का प्रमाण है। CPCB के मानक के अनुसार नहाने योग्य पानी में यह स्तर अधिकतम 2500 MPN प्रति 100 मि.ली. होना चाहिए। लेकिन यमुना और गंगा के कई घाटों पर यह स्तर लाखों और कई बार करोड़ों MPN प्रति 100 मि.ली. तक पहुँच चुका है। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में यमुना नदी का प्रदूषण सिर्फ़ शहरी नियोजन या नालियों की समस्या नहीं रह गया है बल्कि यह नदी पारिस्थितिकी तंत्र का एक पूर्ण संकट बन चुका है। रसायनों के कारण नदी की सतह पर तैरता हुआ जहरीला सफेद झाग अब हर सर्दियों की आम पहचान बन गया है।

नगरीय संकट के ज्वलंत उदाहरण: इंदौर दूषित जल त्रासदी (2025-26)

नदियों के प्रदूषण का सीधा प्रभाव भूजल और अंततः शहरों की पेयजल आपूर्ति पर पड़ता है। जब सतह का जल अत्यधिक प्रदूषित हो जाता है तो भूजल के स्रोत भी जहरीले हो जाते हैं। इसका सबसे भयावह और हालिया उदाहरण मध्य प्रदेश के इंदौर शहर में देखने को मिला है।

'स्वच्छता की राजधानी' में स्वास्थ्य संकट

इंदौर को लगातार कई वर्षों तक स्वच्छ सर्वेक्षण में "भारत का सबसे स्वच्छ शहर" घोषित किया जाता रहा है। लेकिन दिसंबर 2025 - जनवरी 2026 के मध्य यहाँ एक अभूतपूर्व दूषित पानी का संकट सामने आया। शहर के कई इलाकों में सीवेज का पानी पीने के पानी की पाइपलाइनों में मिल गया। इस दूषित जल की आपूर्ति ने रातों-रात एक गंभीर महामारी का रूप ले लिया। हैजा, टाइफाइड, और गंभीर गैस्ट्रोएंटेराइटिस के हजारों मामले अस्पतालों में दर्ज किए गए। प्रशासनिक और सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस जल जनित बीमारी से कम से कम 7 लोगों की मृत्यु की आधिकारिक पुष्टि हुई। हालाँकि स्थानीय नागरिक मंचों, मीडिया रिपोर्टों और प्रभावित परिवारों के दावों के अनुसार मौतों का वास्तविक आंकड़ा 23 से अधिक था।

राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) का हस्तक्षेप

इस त्रासदी पर स्वतः संज्ञान लेते हुए राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) ने बेहद कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की और इसे "गंभीर शासन विफलता" का संकेत बताया। ट्रिब्यूनल ने स्पष्ट किया कि जल आपूर्ति नेटवर्क का रखरखाव न होना और सीवेज लाइनों का पेयजल लाइनों के साथ ओवरलैप होना आपराधिक लापरवाही है। NGT ने राज्य सरकार, नगर निगम तथा स्थानिक निकायों को कठोर जिम्मेदारियों का पालन करने और पीड़ितों को मुआवजा देने का निर्देश दिया। इंदौर की यह घटना इस कड़वे सच की पुष्टि करती है कि शहरी स्वच्छता को सिर्फ़ केवल बाहरी सफाई से नहीं मापा जा सकता।

यदि सतह के नीचे का इंफ्रास्ट्रक्चर जर्जर है और नागरिकों को स्वच्छ एवं सुरक्षित पेयजल आपूर्ति सुनिश्चित नहीं की जा रही है तो स्वच्छता के सारे पुरस्कार निरर्थक हैं।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव और भावी चुनौतियाँ

नदी संरक्षण की बात करते समय हम आज जलवायु परिवर्तन के वैश्विक संकट को अनदेखा नहीं कर सकते। ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालय के ग्लेशियर तेजी से सिकुड़ रहे हैं। इससे निकट भविष्य में गंगा और यमुना जैसी सदानिरा नदियों के जलस्तर में अप्रत्याशित कमी आने की प्रबल संभावना है। जलवायु परिवर्तन के कारण मानसून का पैटर्न पूरी तरह बदल गया है। अब कम समय में अत्यधिक बारिश होती है और उसके बाद लंबा सूखा पड़ता है। इससे बरसाती नदियाँ अपने प्राकृतिक स्वरूप को खो रही हैं। ऐसी स्थिति में यदि हमने नदियों के कैचमेंट एरिया और वेटलैंड्स को कंक्रीट के जंगलों से मुक्त नहीं किया तो भविष्य का जल संकट भारत की अर्थव्यवस्था और जनसांख्यिकी को तबाह कर देगा।

समाधान और भविष्य की राह

ऐतिहासिक विमर्शों से बाहर निकलकर यदि हमें अपनी नदियों और भावी पीढ़ियों को बचाना है, तो निम्नलिखित कदम युद्ध-स्तर पर उठाने होंगे:

* केंद्रीकृत से विकेंद्रीकृत जल प्रबंधन: बड़े सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट्स (STP) पर निर्भरता कम करके कॉलोनी और मोहल्ले के स्तर पर छोटे और प्रभावी उपचार संयंत्र लगाने होंगे।

* जीरो लिक्विड डिस्चार्ज (ZLD) नीति का सख्ती से पालन: उद्योगों के लिए यह अनिवार्य किया जाना चाहिए कि वे अपने अपशिष्ट जल को 100% उपचारित करें और उसे वापस उपयोग में लें न कि नदियों में बहाएं।

* पारिस्थितिक प्रवाह (E-Flow) सुनिश्चित करना: नदियों में साल भर प्राकृतिक जल की एक न्यूनतम मात्रा बहनी ही चाहिए ताकि वे स्वयं को पुनर्जीवित कर सकें।

* जन-भागीदारी: नदी संरक्षण केवल सरकारी योजनाओं से संभव नहीं है। इसमें स्थानीय समुदायों, किसानों और युवाओं को जोड़ना होगा। नदियों के किनारे जैविक खेती को बढ़ावा देना होगा।

* डेटा पारदर्शिता और रियल-टाइम मॉनिटरिंग: केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य प्रदूषण बोर्डों के डेटा को आम जनता के लिए अधिक पारदर्शी बनाना होगा और जल गुणवत्ता की निगरानी रियल-टाइम सेंसर आधारित होनी चाहिए।

* धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजनों हेतु हरित मानक: भारत में नदियों का धार्मिक महत्व सर्वोपरि है। अतः कुंभ, छठ पूजा और अन्य नदी-तट अनुष्ठानों के लिये 'जीरो वेस्ट' और 'इको-फ्रेंडली' मानक निर्धारित किये जाने चाहिये। मूर्तियों के विसर्जन हेतु कृत्रिम कुंडों का निर्माण और पूजन सामग्री के सीधे नदी में प्रवाहित करने पर कड़े कानूनी मानक और प्रतिबंध होने चाहिये ताकि 'आस्था' और 'पर्यावरण' के बीच संतुलन बना रहे।

निष्कर्ष :यह सही है कि प्राचीन सरस्वती नदी के ऐतिहासिक और भौगोलिक अस्तित्व को लेकर चल रहे अकादमिक एवं वैज्ञानिक विमर्शों का अध्ययन सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। एक राष्ट्र के रूप में अपनी जड़ों को

जानना आवश्यक है। लेकिन यह विमर्श किसी भी परिस्थिति में हमारी समकालीन राष्ट्रीय जल नीति, पारिस्थितिक सुरक्षा और नदी संरक्षण की वर्तमान प्राथमिकताओं को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता। प्रकृति ने भारत को हिमालय से निकलने वाली सदानिरा नदियों तथा प्रायद्वीपीय पठार की बरसाती नदियों के रूप में एक विशाल और समृद्ध जल-धरोहर सौंपी है। यह प्रचुरता सामान्यतः हमारी जल सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त है परंतु प्रशासनिक लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, लचर गुणवत्ता नियमन और सार्वजनिक स्वास्थ्य सुरक्षा के प्रति संवेदनहीनता ने भारत को एक गंभीर जल-संकट के मुहाने पर खड़ा कर दिया है। राजधानी दिल्ली में यमुना नदी का दमघोंटू प्रदूषण स्तर और नदियों में गिरते अनगिनत खुले सीवेज इस बात के ज्वलंत प्रमाण हैं कि सिर्फ "नमामि गंगे" जैसी योजनाओं की भव्य घोषणा और करोड़ों का बजट आवंटन ही पर्याप्त नहीं है। इन योजनाओं का पारदर्शी, जवाबदेह तथा विज्ञान-सम्मत कार्यान्वयन समय की मांग है। हाल ही में (2025-26) इंदौर शहर की दूषित पेयजल त्रासदी ने यह निर्दयतापूर्वक प्रमाणित कर दिया है कि सतही 'शहरी स्वच्छता' के दावों के पीछे का ढांचा कितना खोखला है। यदि जल आपूर्ति अव्यवस्थित, अप्रबंधित और दूषित है तो यह केवल एक प्रशासनिक भूल नहीं बल्कि नागरिकों के जीवन के अधिकार का सीधा हनन है। अंततः यह अत्यंत आवश्यक है कि आधुनिक भारत की नीति-निर्माण प्रक्रिया में ऐतिहासिक और मिथकीय अध्ययनों को अकादमिक दायरों तक ही सीमित रखा जाए और सार्वजनिक नीति के केंद्र में जीवित नदियों का संरक्षण, जल गुणवत्ता की कठोर निगरानी, शहरी एवं ग्रामीण अपशिष्ट का शत-प्रतिशत प्रबंधन और जवाबदेह प्रशासनिक व्यवस्था को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए। यदि आज हमने अपनी बहती हुई नदियों को नहीं बचाया तो भविष्य के इतिहासकार हमारी नदियों को भी केवल 'पुरातात्विक साक्ष्यों' के रूप में ही पढ़ेंगे।

संदर्भ सूची :

(1) Central Pollution Control Board (CPCB) Reports (2021-2026): National Water Quality Monitoring Programme (NWMP) Data on Yamuna and Ganga River Basins.

(2) Delhi Pollution Control Committee (DPCC): Monthly Yamuna Water Quality Monitoring Reports - Assessment of BOD, DO, and Fecal Coliform.

(3) National Green Tribunal (NGT) Principal Bench Orders (Jan 2026): Suo Motu Cognizance on Indore Drinking Water Contamination and Public Health Crisis.

(4) Radhakrishna, B. P., & Merh, S. S. (1999): Vedic Sarasvati: Evolutionary History of a Lost River of Northwestern India. Geological Society of India.

(5) Agrawal, D.P. (2007): The Indus Civilization: An Interdisciplinary Perspective. Aryan Books International.

(6) The Times of India / Outlook Business (Jan 2026): Investigative Reports on Indore Water Tragedy: Death Tolls, Civic Apathy, and Healthcare Burden. (समाचार रिपोर्ट: Punjab Kesari MP).

(7) Bhargava, A. (2023): Urban Water Management and River Ecology in India. Journal of Environmental Science and Public Policy.

(8) Yamuna Action Plan and River Rejuvenation: Ministry of Jal Shakti, Government of India - Official Documentation and Audit Reports.

(9) Valdiya, K. S. (2002): Saraswati, The River That Disappeared. Universities Press.

हिंदी भाषा के बदलते सामाजिक संदर्भ : पहचान और सांस्कृतिक स्वरूप

डॉ. ईशाकपूर
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
पंडित नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

शोध सार :

यह लेख हिंदी भाषा के बदलते सामाजिक संदर्भ, सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान और सांस्कृतिक स्वरूप पर विशद विचार प्रस्तुत करता है। लेख में हिंदी भाषा के ऐतिहासिक विकास, समाज के साथ उसके पारस्परिक सम्बन्ध, सांस्कृतिक वाहक रूप, डिजिटल युग में नई प्रवृत्तियाँ, वैश्विक विस्तार और समकालीन चुनौतियाँ विश्लेषित की गई हैं। विश्लेषण समसामयिक शोध एवं विश्वसनीय स्रोतों पर आधारित है, ताकि पाठकों को उच्च स्तरीय अकादमिक दृष्टि प्राप्त हो।

भूमिका

भाषा मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व का आधार है। मानव द्वारा संचालित सृष्टि के सभी कार्यों में भाषा सर्वोत्तम **माध्यम** मानी जाती है। यह केवल विचारों का आदान–प्रदान नहीं, बल्कि संस्कृति, परम्परा और इतिहास की निरन्तरता को सम्भालने वाली **धारा** है। हिंदी भाषा एक **जातीय भाषा** के रूप में अनेक बोलियों, विविधताओं और सांस्कृतिक तत्वों से विकसित हुई है। आज यह भारत की **राजभाषा** और विश्व की महत्त्वपूर्ण भाषाओं में से एक है।

1. ऐतिहासिक विकास और सामाजिक संदर्भ

1.1 हिन्दी की उत्पत्ति और विकास

हिंदी भाषा वैदिक संस्कृत से पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और शौरसेनी अपभ्रंश के क्रमिक विकास से निकली है। संस्कृत भाषा का व्याकरण एवं ध्वनि–प्रणाली इसके बीज में रहे, परंतु*खड़ी बोली* तथा **गंगा–जमुनी सभ्यता** के तत्वों ने इसे आधुनिक स्वरूप दिया। विद्वानों का मत है कि*खड़ी बोली* का विकास जन–जीवन के सरोकारों से जुड़ कर हुआ और आगे चलकर यह आधुनिक हिंदी के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

मुग़ल काल में फ़ारसी एवं अरबी का प्रभाव बढ़ा; प्रशासनिक तथा साहित्यिक सम्पर्क के माध्यम से अनेक शब्द हिंदी में आए।*भक्तिकाल* के कवियों ने अवधी, ब्रज, भोजपुरी जैसी बोलियों में रचनाएँ कीं, जिनसे हिंदी के साहित्यिक रूप को समृद्धि मिली। **भारतेन्दु युग** में पुनर्जागरण और राष्ट्रवादी चेतना से खड़ी बोली हिंदी ने आधुनिक साहित्य की भाषा का रूप ग्रहण किया।

1.2 हिंदी और समाज के बीच अंत:संबंध

समाज भाषा को जन्म देता है तथा भाषा समाज की संस्कृति, सोच और भावनाओं का दर्पण होती है। **भाषा और समाज** के संबंध पर अध्ययन करने वाली शाखा*समाज भाषा विज्ञान* बताती है कि भाषा समाज के साथ बदलती है। भाषा समाज के बिना अस्तित्व में नहीं हो सकती और समाज के बिना भाषा का संगठन अधूरा है।

भाषा सामाजिक वर्गों, जातियों और व्यवसायों को प्रतिबिंबित करती है; शिक्षित और अशिक्षित वर्गों की भाषा-शैली में अन्तर देखा जाता है। भाषा सामाजिक परिवर्तन का साधन भी है; नई तकनीकों, विचारधाराओं और संस्कृतियों के आगमन से भाषा में नए शब्द और प्रयोग जुड़ते हैं। भाषा सामाजिक पहचान का प्रतीक है- हर व्यक्ति या समुदाय अपनी भाषा के माध्यम से अपनी पहचान स्थापित करता है।

1.3 भाषा, संस्कृति और पहचान

भाषा संस्कृति की संवाहिका है; यह लोकगीत, कहावतें, मुहावरे, लोककथाओं आदि के माध्यम से संस्कृति को आगे बढ़ाती है। संस्कृति में निहित विश्वास, रीति–रिवाज, प्रतीक और मूल्य भाषा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होते हैं।

अनहद कृति में प्रेमलता चसवाल लिखती हैं कि **भाषा युगों के सांस्कृतिक एवं सभ्याचारिक संदर्भों से निर्मित होती है** और समाज के विकास के साथ-साथ विकसित होती जाती है। संस्कृति भाषा के विकास का मूलाधार होती है और यही भाषा संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन करती है।

1.4 स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी

स्वाधीनता आंदोलन ने हिंदी भाषा को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके मंडल के लेखकों ने हिंदी को “नई चाल में ढली” भाषा कहा; यह परिवर्तन समाज सुधार आंदोलनों की पृष्ठभूमि में हुआ। हिंदी के निर्माण में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावादी युग के समाज और परिवेश का योगदान रहा।

1949 में संविधान सभा ने हिंदी को **राजभाषा** घोषित किया, जिसके कारण इसका संस्थागत विस्तार हुआ। यह निर्णय भाषा एवं राष्ट्रीय पहचान के बीच गहरा सम्बन्ध दर्शाता है।

1.5 बोलियाँ, उपभाषाएँ और मानक हिंदी

हिंदी भाषा कई **बोलियों** और **उपभाषाओं** का समुच्चय है। प्रख्यात भाषाविद् नरेश मिश्र के अनुसार, एक भाषा के अंदर कई बोलियाँ होती हैं। ये बोलियाँ किसी खास इलाके में बोली जाती हैं और उनकी आवाज़, शब्द, बोलने का तरीका और मुहावरे मुख्य भाषा से थोड़े अलग होते हैं। जैसे — अवधी, ब्रज और मैथिली।

मानक हिंदी का विकास **खड़ी बोली** के आधार पर हुआ; किंतु इसमें अनेक बोलियों और विदेशी भाषाओं के तत्व समाहित हैं। यह विविधता हिंदी की जीवंतता और व्यापकता को दर्शाती है।

2. सामाजिक–सांस्कृतिक बदलाव और भाषिक परिवर्तन

2.1 सामाजिक परिवर्तन और भाषा

समाज विज्ञान के अनुसार सामाजिक परिवर्तन नए विचारों, प्रौद्योगिकी, आर्थिक संरचनाओं और राजनैतिक आंदोलनों

से प्रेरित होता है। डॉ. **अमरेन्द्र श्रीवास्तव** लिखते हैं कि इक्कीसवीं सदी में संचार के साधनों का तेजी से प्रचार–प्रसार हो रहा है; इस समय में एक नए सामाजभाषिकी की परम्परा विकसित हो रही है।

भाषा समाज और संस्कृति से अनिवार्य रूप से जुड़ी है। समाज में परिवर्तन के साथ साहित्य, चिन्तन, विज्ञान, विधि और चिकित्सा की भाषा भी बदलती रही है। भारतेन्दु युग से स्वतंत्रता आंदोलन तक विभिन्न सामाजिक आंदोलनों ने हिंदी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वाधीनता के बाद हिंदी के राष्ट्रभाषा बनने से इसकी व्यापक स्वीकृति मिली, परन्तु क्षेत्रीय आकांक्षाओं और राजनैतिक उपेक्षा के कारण हिंदी को वह महत्व नहीं मिला जिसे अपेक्षित था। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में उदारीकरण और **भूमंडलीकरण** का प्रभाव हिंदी पर पड़ा; इस बदलाव ने भाषा में उदारता, बाजारवाद और प्रवाहमानता को बढ़ाया।

2.2 सामाजिक वर्ग, जाति और लैंगिक संदर्भ

भाषा सामाजिक संरचना का प्रतिबिंब है। भाषा सामाजिक वर्गों, जातियों और व्यवसायों के अनुसार बदलती है; शिक्षित वर्ग, ग्रामीण समाज, शहरी समाज आदि की भाषा-शैली में विभिन्नता होती है। शहरी समाज में भाषा पर शिक्षा और तकनीक का प्रभाव है, जबकि ग्रामीण समाज की भाषा में स्थानीयता का प्रभाव अधिक है।

जाति और वर्ग भेद के कारण भी भाषा में अंतर आता है- कुछ शब्दों, सम्मान सूचक संबोधनों या गाली–गलौज के रूप में यह दिखता है। उदाहरणतः ऊंची जातियों की भाषा शैली में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली अधिक दिखती है, जबकि निम्न जातियों या दलित समुदायों की बोली में देसी और उर्दू शब्द अधिक मिलते हैं।

लैंगिक अंतर भी भाषा में झलकते हैं; हिंदी समाज में पुरुषों की बोली में सामुदायिक शक्ति और वर्चस्व दर्शाते शब्द अधिक हैं, जबकि महिलाओं की भाषा में विनम्रता, रिश्तों और भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है। वर्तमान में लिंग–समानता के आंदोलनों और शिक्षा के प्रभाव से लैंगिक विभाजन घट रहा है, परंतु इसका प्रभाव भाषा के उपयोग पर अभी भी देखा जा सकता है।

2.3 शहरीकरण, औद्योगीकरण और प्रवासन का प्रभाव

उदारीकरण, शहरीकरण और प्रवासन ने हिंदी भाषा की संरचना में कई परिवर्तन किए। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी महानगरों में आए लोग **हिंग्लिश** (Hindi + English) जैसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करने लगे हैं। बड़े शहरों में रहने वाले उत्तर भारतीय, मराठी, पंजाबी, बंगाली तथा द्रविड़ भाषी लोग एक मिश्रित “मेट्रो हिंदी” बना रहे हैं जिसमें अंग्रेज़ी और अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द शामिल हैं।

प्रवासन के कारण हिंदी की अनेक क्षेत्रीय बोलियाँ शहरों में एक-दूसरे के साथ समायोजित हो रही हैं। दिल्ली में पंजाबी, हरियाणवी और ब्रज का प्रभाव, मुंबई में बंबईया हिंदी, कोलकाता में बंगला मिश्रित हिंदी और हैदराबाद में दक्खिनी हिंदी के रूप मिलते हैं। इन विविधताओं का असर साहित्य, फिल्म, विज्ञापन और सोशल मीडिया में दिखाई देता है।

3. हिंदी, संस्कृति और सांस्कृतिक स्वरूप

3.1 संस्कृति का भाषा से संबंध

'सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भाषा एवं संस्कृति अध्ययन' में बताया गया है कि संस्कृति शब्द स्वयं विभिन्न सामाजिक संस्कारों, परम्पराओं, प्रतिमानों तथा धार्मिक-आध्यात्मिक मान्यताओं को सँजोए हुए है। भारतीय संस्कृति का अनमोल भंडार भाषा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता है।

भाषा संस्कृति का वाहक होने के साथ साथ उसमें परिवर्तन भी लाती है। भारतीय संस्कृति में विभिन्न विदेशी शक्तियों के शासन, बाहरी सम्पर्क और सांस्कृतिक आदान–प्रदान के कारण नए शब्द, प्रतीक और वाक्य संरचनाएँ हिंदी में आईं।

3.2 हिंदी साहित्य और सांस्कृतिक पहचान

भक्ति काल, रीति काल और आधुनिक काल का हिंदी साहित्य समाज के विभिन्न वर्गों की सांस्कृतिक चेतना का अभिव्यक्ति माध्यम रहा है। भक्ति काल में कबीर, सूर, तुलसी आदि ने अवधी, ब्रज, भोजपुरी जैसी बोलियों में रचना करके हिंदी को लोक–संस्कृति से जोड़ा। रीति काल में राज दरबारों की काव्य–परम्परा ने शिष्ट भाषा और श्रृंगारिक विषयों को आगे बढ़ाया। आधुनिक काल में साहित्यकारों ने राष्ट्रीय चेतना, समाज सुधार, दलित विमर्श, नारीवाद और यथार्थवाद जैसे मुद्दों को हिंदी साहित्य में शामिल किया, जिससे हिंदी की सांस्कृतिक पहचान व्यापक हुई।

गीत, लोकगीत, किस्से, नाटक, फ़िल्में, धारावाहिक और वेब–श्रृंखलाएँ सांस्कृतिक परम्पराएँ और आधुनिक संस्कार दोनों को एक साथ प्रस्तुत करती हैं। हिंदी सिनेमा में उत्तर भारतीय लोक–गीतों, सूफ़ी संगीत, उर्दू शायरी तथा अंग्रेज़ी पॉप कल्चर का मिश्रण देखा जा सकता है। विज्ञापन जगत में बाजार संस्कृति के प्रभाव से हिंदी में नए नारे, स्लोगन और हिंग्लिश के प्रयोग उभरे हैं।

3.3 संस्कृति और भाषा की द्वैधता

जब कोई एक इलाके की भाषा धीरे-धीरे बड़े समाज की भाषा बनती है, तो उसमें दूसरी भाषाओं और बोलियों के शब्द और तरीके भी जुड़ जाते हैं। इससे उस भाषा का रूप बदलने लगता है और वह ज्यादा लोगों द्वारा समझी जाने लगती है। हिंदी भी इसी तरह बनी है। इसमें अलग-अलग क्षेत्रों की बोलियों और भाषाओं के शब्द मिल गए हैं। इसलिए हिंदी कोई कृत्रिम भाषा नहीं है, बल्कि हर बड़ी भाषा की तरह समय के साथ विकसित हुई भाषा है।

हिंदी विविध संस्कृतियों की गंध अपने भीतर समाहित करती है—ब्रज, अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली, पंजाबी, उर्दू, फ़ारसी, अरबी, अंग्रेज़ी आदि सभी ने हिंदी की शब्दावली और अभिव्यक्ति को समृद्ध किया। इस मिश्रण ने हिंदी को **गंगा–जमुनी सभ्यता** का प्रतीक बनाया।

3.4 सांस्कृतिक विविधता और इकाई

भारतीय समाज बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक और बहुभाषिक है। हिंदी इन विविधताओं को एक **एकीकृत संस्कृति** में पिरोने का काम करती है। राजस्थान, हरियाणा, बिहार, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली आदि की स्थानीय बोलियाँ जब हिंदी साहित्य, संगीत, मीडिया और धार्मिक अनुष्ठानों में समाहित होती हैं तो सांस्कृतिक एकता बनती है।

भाषा संस्कृति में लय, रंग, प्रतीक, हास्य और करुणा का समावेश करती है। लोकोक्तियों, मुहावरों, कहावतों, दोहों, चौपाइयों, फिल्मी संवादों, विज्ञापन जिंगल्स, स्लोगन और सोशल मीडिया ट्रेंड्स के माध्यम से संस्कृति निरंतर समृद्ध हो रही है।

4. डिजिटल युग में हिंदी

4.1 डिजिटल युग की चुनौतियाँ

डिजिटल युग ने ज्ञान को हमारी उँगलियों तक पहुँचा दिया है, परंतु भाषा से हमारा आत्मीय रिश्ता पहले जैसा सशक्त नहीं रहा।*जनसत्ता* में प्रकाशित स्निग्धा के लेख के अनुसार मोबाइल की चमकती स्क्रीन पर सिमटती दुनिया में शब्दों की गहराई धुंधली हो रही है। डिजिटल माध्यमों ने संवाद को त्वरित और संक्षिप्त बना दिया है; चैट भाषा, इमोजी और मिश्रित भाषायी प्रयोग (हिंग्लिश) बच्चों की हिंदी शब्दावली को सीमित कर रहे हैं। लंबे वाक्य लिखने की प्रवृत्ति कम हो रही है, और शुद्ध वर्तनी तथा व्याकरणिक सावधानी पर ध्यान घट रहा है।

अभिभावकों और स्कूलों में अंग्रेज़ी माध्यम की प्राथमिकता के कारण विद्यार्थी अन्य विषयों का अध्ययन अंग्रेज़ी में करते हैं, जिससे हिंदी उनके लिए अभिव्यक्ति का माध्यम कम और केवल एक विषय अधिक बनकर रह जाती है। अभिभावक बच्चों को वैश्विक अवसर दिलाने के लिए अंग्रेज़ी पर जोर देते हैं, जिससे घर और विद्यालय दोनों स्थानों पर हिंदी के प्रयोग के अवसर कम हो जाते हैं।

4.2 डिजिटल मीडिया और हिंदी के अवसर

साहित्य कुंज के लेखक*विजय नगरकर* बताते हैं कि डिजिटल मीडिया में हिंदी भाषा की यात्रा निरंतर आगे बढ़ रही है। इंटरनेट के आरम्भिक दिनों में हिंदी सामग्री कम थी, पर जैसे–जैसे इंटरनेट भारतीय जनता के लिए सुलभ हुआ, हिंदी सामग्री की माँग तेजी से बढ़ी। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों की लोकप्रियता ने हिंदी बोलने वालों को अपनी भाषा में जुड़ने और सामग्री साझा करने की सुविधा दी। किफ़ायती स्मार्टफोन और डेटा प्लानों ने करोड़ों हिंदी भाषियों को पहली बार ऑनलाइनला दिया।

गूगल, यूट्यूब, विकिपीडिया, फेसबुक, ट्विटर आदि कंपनियों ने हिंदी संस्करण लॉन्च किए और नए हिंदी–भाषा मीडिया संगठन उभरे जैसे क्विंट हिंदी, बीबीसी हिंदी, आज तक हिंदी। 2022 की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 600 मिलियन हिंदी बोलने वाले ऑनलाइन हैं, जिससे हिंदी दुनिया की दूसरी सबसे लोकप्रिय ऑनलाइन भाषा बन रही है।

डिजिटल मीडिया में हिंदी की लोकप्रियता से हिंदी बोलने वालों के लिए सूचना और मनोरंजन उपलब्ध हुए और हिंदी संस्कृति को बढ़ावा मिला। गूगल, यूट्यूब और फेसबुक कृत्रिम मेधा (AI) और मशीन लर्निंग (ML) का उपयोग करके हिंदी सामग्री को अधिक वैयक्तिकृत और आकर्षक बना रहे हैं। ग्रामीण भारत में इंटरनेट के विस्तार, वॉइस सर्च और वॉइस असिस्टेंट की वृद्धि, क्षेत्रीय हिंदी बोलियों में डिजिटल सामग्री और मेटावर्स के लिए हिंदी का प्रयोग – ये सभी रुझान भविष्य में हिंदी को नई ऊँचाइयों पर ले जाएंगे।

4.3 डिजिटल मीडिया और भाषा–विन्यास

डिजिटल मीडिया ने भाषा–विन्यास को भी बदला है। ट्विटर, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और टिक–टॉक जैसी सोशल मीडिया साइटों पर चरित्र–सीमा, तुरन्ती और दृश्य–शैली ने भाषा को **संक्षिप्त**, **चंचल** और **हाइब्रिड** बना दिया। हिंग्लिश,

रोमन हिंदी, इमोजी, मीम भाषा और इंटरनेट स्लैंग हिंदी में आम हो गए। युवाओं में *"क्युकी"* (क्योंकि), *"वहा"* (वहाँ) जैसी वर्तनी का चलन बढ़ा है। इसका असर साहित्यिक और शैक्षिक भाषा पर भी पड़ रहा है।

हालाँकि डिजिटल माध्यम में हिंदी ब्लॉग, ई–पत्रिका, ऑडियो–पुस्तक और रचनात्मक मंचों का प्रयोग करके बच्चों और युवाओं को हिंदी से जोड़ने के प्रयास किए जा रहे हैं। तकनीक को विरोधी नहीं, सहयोगी मानकर डिजिटल साधनों का निर्माण करने की आवश्यकता है।

5. मीडिया और हिंदी

5.1 परम्परागत मीडिया

मीडिया भाषा के प्रसार का प्रभावशाली माध्यम है। शोध समागम पत्रिका के एक अध्ययन में बताया गया है कि मीडिया क्रांति के दौर में जहां दुनिया भर की सूचना एक पल में पहुंचती है, वहां हिंदी की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। भाषा का जन्म संचार साधनों से पहले हुआ लेकिन संचार माध्यमों की गति से भाषा उपयोगिता भी बढ़ी है।

अध्ययन के अनुसार भारत में सबसे अधिक **समाचार पत्र** हिंदी भाषा में प्रकाशित होते हैं; सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की रिपोर्ट बताती है कि हिंदी में पंजीकृत समाचार पत्रों की संख्या 46,827 है, जो किसी भी अन्य भारतीय भाषा से अधिक है।

दूरदर्शन, रेडियो, टेलीविजन, फ़िल्म, कंप्यूटर और सोशल मीडिया सभी प्रणालियों के बीच हिंदी की भूमिका रही है। रेडियो पर हिंदी गाने, धार्मिक कार्यक्रम और समाचार ने हिंदी को जन–जन तक पहुँचाया। हिंदी फ़िल्म उद्योग, जिसे बॉलीवुड कहा जाता है, विश्व में सबसे अधिक फ़िल्में बनाने वाला उद्योग है, जिसकी पहुँच भारत से लेकर पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, अफ़गानिस्तान, मध्य पूर्व और अफ्रीका तक है।

5.2 विज्ञापन और बाजार

भूमंडलीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति ने हिंदी को **बाजार की भाषा** भी बना दिया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जानती हैं कि भारत उनके उत्पाद का बड़ा बाजार है और अधिकांश उपभोक्ता हिंदीभाषी हैं; इसलिए उन्हें उत्पाद का प्रचार हिंदी में करना पड़ता है। विज्ञापन जगत में रोचक नारे, लोक–गीतों की धुन, हिंग्लिश और विश्वसनीय कहावतों का प्रयोग किया जाता है, जिससे भाषा एक नए सांस्कृतिक रूप में सामने आती है।

5.3 सोशल मीडिया और हिन्दी आंदोलन

सोशल मीडिया ने हिंदी प्रेमियों और भाषा कार्यकर्ताओं को एक मंच दिया है। वे*#हिंदी_दिवस*, *#हिंदी_विकास*, *#NoHateSpeech* जैसे हैशटैग के माध्यम से हिंदी के प्रचार–प्रसार और भाषा–नीति परिवर्तन के लिए अभियान चलाते हैं। इंटरनेट पर हिंदी शब्दकोश, व्याकरण–सुधार पाठ्यक्रम, बोध कथाएँ और ऑनलाइन कक्षाएँ उपलब्ध हैं।

ऑनलाइन मंचों में भाषा–मानकता को लेकर बहसें चल रही हैं: क्या रोमन हिंदी स्वीकार्य है? क्या हिंग्लिश हिंदी को कमजोर कर रही है या इसे वैश्विक बना रही है? ऐसे प्रश्नों पर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं।

6. वैश्वीकरण और हिंदी

6.1 वैश्विक विस्तार

भूमंडलीकरण ने हिंदी को विश्व–स्तर पर नई पहचान दी है। जनसत्ता के "हिंदी की वैश्विक उपस्थिति" लेख में कहा गया है कि आज दुनिया में लगभग 60 हजार भाषाएँ बोली जाती हैं, परंतु आने वाले समय में 90 प्रतिशत से अधिक भाषाओं का अस्तित्व खतरे में है; हिंदी इस दौर में स्वयं को न सिर्फ़ बचाने में सफल हो रही है, बल्कि इसका उपयोग लगातार बढ़ रहा है। हिंदी लगभग डेढ़ हजार वर्ष पुरानी भाषा है और इसमें डेढ़ लाख शब्दावली समाहित है। इसे अंतरराष्ट्रीय दर्जा प्राप्त है क्योंकि यह अनेक विदेशी भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता रखती है।

दुनिया में हिंदी अब **संपर्क भाषा**, **प्रचार भाषा** और **वैश्विक भाषा** के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही है। चीन की मंदारिन भाषा के बाद हिंदी का दूसरा स्थान है; कुछ सर्वेक्षणों में इसे प्रथम स्थान पर पहुँचने का दावा भी किया जाता है। लगभग 140 देशों के 500 से अधिक केंद्रों में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन हो रहा है। कंप्यूटर, मोबाइल और आई–पैड पर हिंदी की पहुँच ने यह साबित कर दिया है कि आने वाले समय में इंटरनेट की भाषा अंग्रेज़ी नहीं बल्कि हिंदी होगी।

6.2 प्रवासी समुदाय और हिंदी

प्रवासी भारतीय समुदाय ने हिंदी को विश्व भर में फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गिरमिटिया मजदूर अपने साथ अपनी भाषा और संस्कृति लेकर गए, जिससे मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, ट्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में हिंदी की उपस्थिति बनी। मॉरीशस में हिंदी साहित्य अकादमी की स्थापना और विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन इस भाषा की वैश्विक प्रतिष्ठा को बढ़ाता है।

जापान, अमेरिका, यूरोप और ऑस्ट्रेलिया में विश्वविद्यालयों, रेडियो स्टेशनों और सांस्कृतिक संस्थानों के माध्यम से हिंदी पढ़ाई जाती है। अमेरिका में हिंदी फिल्मी गीतों के माध्यम से भाषा का शिक्षण किया जाता है, और प्रवासी भारतवंशी अपनी भाषा और संस्कृति को ज़िन्दा रखने के लिए प्रयासरत हैं।

6.3 अनुवाद, साहित्य और वैश्विक पहचान

हिंदी के विकास में अनुवाद की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। विश्व की 3500 से अधिक विदेशी कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया जा चुका है। हिंदी साहित्य को अंग्रेज़ी, रूसी, फ्रेंच, चीनी, जापानी, स्पैनिश आदि में अनुवादित करके वैश्विक पाठक–समुदाय तक पहुँचाया जा रहा है।

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस हिंदी संगठन, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, हिंदी संगठन (सिंगापुर), हिंदी परिषद (नीदरलैंड) आदि संस्थाएँ हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने के लिए काम कर रही हैं।

7. समकालीन मुद्दे और चुनौतियाँ

7.1 अंग्रेज़ी का प्रभाव और हिंग्लिश

भारत में अंग्रेज़ी भाषा का प्रभाव महत्त्वपूर्ण है। अंग्रेज़ी नौकरी, शिक्षा, वैश्विक संपर्क और तकनीकी विकास का माध्यम है। इसके वर्चस्व के कारण हिंदी भाषियों में आत्मविश्वास की कमी और अभिव्यक्ति–बाधा महसूस की जाती है।

अंग्रेज़ी प्राथमिकता के कारण माता–पिता बच्चों को अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़ाना चाहते हैं, जिससे हिंदी के अध्ययन का समय घटता है।

हिंग्लिश का प्रयोग हिंदी को नया रूप देता है—यह युवाओं के लिए सरल, मनोरंजक और वैश्विक बनने का माध्यम है, परंतु शुद्धता और संरचनात्मक सामंजस्य का सवाल खड़ा करता है। हिंग्लिश को एक **आंतरिक कोड–स्विचिंग** समझा जा सकता है जिसमें वक्ता दोनों भाषाओं के लाभ उठाते हैं। यह बहुभाषिकता की शक्ति को दर्शाता है, पर कुछ विद्वान इसे हिंदी के कमजोर होने का संकेत मानते हैं।

7.2 मानकीकरण और क्षेत्रीय अस्मिता

मानक हिंदी के विकास ने साहित्य, प्रशासन और शिक्षा में एकरूपता लाई; किंतु क्षेत्रीय बोलियाँ भी अपनी अस्मिता बनाए रखना चाहती हैं। कई बोलियाँ (भोजपुरी, मैथिली, हरियाणवी, राजस्थानी) अलग–अलग भाषा का दर्जा चाहती हैं। कुछ राज्यों ने अपनी बोलियों को **राजभाषा** मान्यता दिलाने के लिए आंदोलन चलाए।

राजभाषा और राष्ट्रभाषा की बहस में हिंदी के पक्ष–विपक्ष खड़े होते हैं। कुछ राज्यों (तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल) में हिंदी विरोधी आंदोलन हुए। भारत की भाषा नीति "त्रिभाषा–सूत्र" पर आधारित है जिसमें हिंदी, अंग्रेज़ी और क्षेत्रीय भाषा की शिक्षा अनिवार्य है।

7.3 शिक्षा नीतियाँ और मातृभाषा

2020 की **राष्ट्रीय शिक्षा नीति** मातृभाषा/भारतीय भाषाओं में प्रारंभिक शिक्षा पर जोर देती है। यह मान्यता है कि बच्चा जिस भाषा में परिवेश को समझता है, उसी में वह बेहतर सीखता है। शिक्षकों, विद्यालयों और अभिभावकों की साझा जिम्मेदारी है कि वे हिंदी को केवल पाठ्यपुस्तक तक सीमित न रखें, बल्कि जीवन से जोड़ें—कहानी कथन, समूह चर्चा, भूमिका–अभिनय, रचनात्मक लेखन और पुस्तकालय संस्कृति को प्रोत्साहित करें।

7.4 तकनीकी अनुवाद और संसाधन विकास

तकनीकी विकास, कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद के क्षेत्र में हिंदी के लिए अवसर हैं। गूगल अनुवाद, वॉइस असिस्टेंट, हिंदी OCR, सर्च इंजन ऑप्टिमाइजेशन, सोशल मीडिया मॉडरेशन आदि क्षेत्रों में हिंदी समर्थ ऐप्स और एपीआई विकसित हो रहे हैं। लेकिन हिंदी के प्रासंगिक शब्द–कोश, शब्द–भंडार, डिजिटल टूल्स और ओपन–सोर्स परियोजनाओं की कमी अभी भी एक चुनौती है।

उदाहरणतः भारतीय भाषाओं के लिए यूनिकोड मानकीकरण, फ़ॉन्ट सुधार, भाषिक संसाधन (corpuses) और डेटा सेट की आवश्यकता है।

7.5 भाषिक अधिकार और सामाजिक न्याय

भाषा सामाजिक न्याय और समानता का प्रश्न भी है। दलित, आदिवासी और अन्य वंचित समूहों की भाषाएँ एवं बोलियाँ शिक्षा, न्याय और रोजगार में वांछित स्थान नहीं प्राप्त कर पातीं। हिंदी समाज में भी **जातिगत सम्मान सूचक संबोधन**, **संस्कृत–निष्ठ शब्दावली**, **ऊंच–नीच** आदि के माध्यम से भाषिक असमानता दिखती है।

भाषा अधिकार आंदोलनों ने मांग की है कि शिक्षा में बहुभाषिक दृष्टिकोण अपनाया जाए और समाज के सभी वर्गों को अपनी भाषा में न्याय और सेवाएँ मिलें।

8. भविष्य के लिए मार्ग

8.1 भाषा–शिक्षण में नवाचारी प्रयोग

हिंदी भाषा–शिक्षण को रोचक, संवादी और प्रासंगिक बनाने के लिए कई नवाचारी प्रयोग किए जा सकते हैं:

- **समग्र भाषा कौशल**: पढ़ना, लिखना, बोलना और सुनना – चारों कौशल को एक साथ विकसित करने वाली पद्धतियाँ अपनाई जाएं।
- **परियोजना–आधारित शिक्षण**: विद्यार्थियों को स्थानीय बोलियों, लोक–साहित्य, पारिवारिक इतिहास और समुदाय की भाषाओं पर शोध करने के लिए प्रेरित किया जाए।
- **डिजिटल सामग्री**: हिंदी पॉडकास्ट, ऑडियो–बुक, वेब–कॉमिक, शैक्षणिक गेम्स और इंटरैक्टिव वीडियो बनाकर भाषा–शिक्षण को आकर्षक बनाया जाए।
- **समुदाय–अधारित कार्यक्रम**: बाल साहित्य मेला, कथाकथन समारोह, भाषा उत्सव, पुस्तक क्लब और सामुदायिक रेडियो जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से भाषा–प्रेम को बढ़ावा दिया जाए।

8.2 भाषा–नीति और बहुभाषिकता

भारत जैसे बहुभाषिक देश में भाषा–नीति समावेशी और लचीली होनी चाहिए। हिंदी को राष्ट्र–निर्माण का माध्यम मानते हुए भी अन्य भारतीय भाषाओं के सम्मान, संरक्षण और विकास पर ध्यान देना आवश्यक है।

त्रिभाषा–सूत्र में यह सिद्धान्त है कि विद्यार्थियों को तीन भाषाएँ सीखनी चाहिए—एक मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा, दूसरी राष्ट्रभाषा/संपर्क भाषा (हिंदी), और तीसरी अंतरराष्ट्रीय भाषा (अंग्रेज़ी या अन्य)। इससे बहुभाषिकता, बहु–सांस्कृतिकता और वैश्विक दृष्टि विकसित होती है।

सरकारें, विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थान और निजी क्षेत्र को मिलकर हिंदी के लिए आवश्यक संसाधन विकसित करने चाहिए—भाषाई डेटाबेस, तकनीकी शब्द–कोश, न्यायिक अनुवाद, भाषाई AI मॉडल तथा स्थानीय भाषा केंद्र।

8.3 सामाजिक संवेदनशीलता और समावेश

भाषा को समानता, समावेश और संवेदनशीलता के साथ प्रयोग करना आवश्यक है। जाती–भेद, लैंगिक असमानता और सांप्रदायिक पूर्वाग्रह वाले शब्दों और मुहावरों की पहचान करके उन्हें बदलना होगा।

समावेशी भाषाका उपयोग साहित्य, मीडिया और शिक्षा में करना चाहिए—जैसे लिंग–तटस्थ पदावली, जाति–निरपेक्ष संबोधन, और समावेशी कथानक।

8.4 संस्कृति और नवोन्मेष

हिंदी की सांस्कृतिक शक्ति को लोक–कला, नाट्य, चित्रकला, संगीत, लोक–गाथा, तथा डिजिटल आर्ट के माध्यम से विस्तार दिया जाए। युवा कलाकारों और लेखकों को विविध माध्यमों में हिंदी में सृजन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए—जैसे ग्राफिक नॉवेल, वेब–कॉमिक, क्रिएटिव नॉन–फिक्शन, पॉडकास्ट, फिल्म, संगीत आदि।

8.5 वैश्विक मंच पर हिंदी

विश्व हिंदी सम्मेलन, अंतरराष्ट्रीय हिंदी दिवस, हिंदी शिक्षण केंद्र और अनुवाद परियोजनाएँ हिंदी को वैश्विक मंच पर स्थापित करती हैं। प्रवासी समुदाय की भूमिका को पहचानते हुए उनके साथ साझेदारी विकसित की जाए और डिजिटल माध्यमों के माध्यम से दुनिया भर के हिंदी–प्रेमियों को जोड़ा जाए।

निष्कर्ष

हिंदी भाषा भारत की सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान का मूलाधार है। इतिहास से लेकर आधुनिकता तक, इस भाषा ने विभिन्न बोलियों, संस्कृतियों, धर्मों, आंदोलनों, और तकनीकी नवाचारों को समाहित करते हुए अपने स्वरूप को विकसित किया है। समाज की तरह हिंदी भी **स्थिर नहीं**—यह निरन्तर परिवर्तित होती भाषा है। भाषा और समाज के इस द्वंद्वात्मक रिश्ते को समझे बिना हिंदी को समझना संभव नहीं।

आज हिंदी डिजिटल युग, बाजार संस्कृति, वैश्विक संपर्क और सामाजिक न्याय जैसे क्षेत्रों में नयी चुनौतियों का सामना कर रही है। अंग्रेज़ी का बढ़ता वर्चस्व, हिंग्लिश, मानकीकरण एवं क्षेत्रीय अस्मिता, तकनीकी संसाधनों की कमी, और भाषिक अधिकारों के प्रश्न—ये सब हिंदी के लिए **मौजूदा चुनौतियाँ** हैं। फिर भी हिंदी की शक्ति उसकी **लचीली, समन्वित और समावेशी प्रकृति** में है।

भविष्य में यदि शिक्षा, मीडिया, तकनीक, समाज और सरकार मिलकर हिंदी के विकास के लिए नवाचारी कदम उठाएँ, तो हिंदी न केवल भारत की बल्कि विश्व की प्रमुख भाषा बनेगी। यह भाषा केवल शब्दों का समूह नहीं; यह संस्कृति, पहचान और विचारों की जीवंत धुरी है, और इसे संभालकर रखना हम सबकी जिम्मेदारी है।

संदर्भ सूची

1. देवी, सुमन. "सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भाषा एवं संस्कृति."*Shodh Sari-An International Multidisciplinary Journal*, Vol. 04, Issue 04, Oct–Dec 2025. पृ. 50–65..
2. स्निग्धा. "डिजिटल युग में हिंदी: चुनौतियाँ और संभावनाएँ."*जनसत्ता*, 13 अप्रैल 2026. पृ. 90–144.
3. नगरकर, विजय. "डिजिटल मीडिया में हिंदी भाषा."*साहित्य कुंज*, अंक 247, फरवरी द्वितीय, 2024. पृ. 124–160.
4. इवाने, डॉ. ईश्वर. "मीडिया के क्षेत्र में हिंदी भाषा की भूमिका."*शोध समागम*, Vol. 4, Issue 3, Jul–Sep 2021, पृ. 14–80.
5. चसवाल, प्रेमलता 'प्रेमपुष्प'. "हिन्दी भाषा की मानकता पर सांस्कृतिक प्रभाव."*अनहद कृति*, अंक 2, जून 2013. पृ. 46–70.
6. श्रीवास्तव, डॉ. अमरेन्द्र. "सामाजिक परिवर्तन और हिन्दी भाषा."*बातें और बातें*ब्लॉग, 31 मार्च 2022. पृ. 22–70.
7. सिंह, धर्मेंद्र. "हिंदी की वैश्विक उपस्थिति."*जनसत्ता रविवार स्तंभ*, 15 सितंबर 2019. पृ. 96–122.

8. "हिंदी की वैश्विक उपस्थिति."*जनसत्ता रविवार स्तंभ*, 2019. पृ. 124–160..

9. Government of India. *सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय रिपोर्ट* (विशेषांक), 2021. उद्धृत श्रोत: हिंदी में पंजीकृत समाचार पत्रों की संख्या 46,827.

10. संविधान सभा. "राजभाषा हिंदी संबंधी अनुच्छेद."*भारतीय संविधान*, 1949.

11. Ministry of Education, Government of India. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (2020). Hindi translation.

Vol. XXIII Issue No.I, Jan.-April. 2026, (Part-I) ISSN: 0970-1745 IIFS Impact Factor 6.75

विश्वविद्यालय एवं शासकीय महाविद्यालयों में पुस्तकालय की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ.जूही चौहान
सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष
पंडित नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

परिचय

भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली में विश्वविद्यालय और महाविद्यालय केवल शैक्षणिक इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक विकास के केन्द्र भी हैं। इन संस्थानों में पुस्तकालय को ''हृदय'' माना जाता है, क्योंकि वही ज्ञान संसाधनों का संग्रह, संगठन और प्रसारण करता है। शोध और शिक्षण पर केन्द्रित एक अध्ययन के अनुसार विश्वविद्यालय पुस्तकालय शिक्षण, अनुसंधान और विस्तार कार्यक्रमों को सुविधाजनक बनाने वाली सबसे महत्वपूर्ण इकाई है; यह परिसर की सभी व्यवस्थाओं के साथ समन्वय करते हुए छात्रों, शिक्षकों, शोधार्थियों और कर्मचारियों को सेवा प्रदान करता है। शासकीय महाविद्यालय में पुस्तकालय न केवल पाठ्यक्रम की जानकारी का प्रसार करता है, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को भी मजबूत करता है।

आधुनिक समाज में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के विस्तार के कारण पुस्तकालयों की भूमिका बदल रही है। अब पुस्तकालयों को केवल पुस्तकों के भंडार की तरह नहीं देखा जाता; वे डिजिटल संसाधनों, ई-शिक्षण सामग्री, डेटाबेस और शोध प्रबंधन में सहयोगी बन चुके हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (एनईपी 2020) के अनुसार, शैक्षणिक संस्थानों के पुस्तकालयों को सूचना प्रौद्योगिकी से लैस करके छात्रों को 24×7 डिजिटल सामग्री उपलब्ध कराई जानी चाहिए। इस आलेख का उद्देश्य विश्वविद्यालय एवं शासकीय महाविद्यालय के पुस्तकालयों की भूमिका का तुलनात्मक एवं बहुआयामी विश्लेषण करना, समकालीन सकारात्मक वृद्धि को समझना और भविष्य की दिशा निर्धारित करना है।

1. विश्वविद्यालय एवं शासकीय महाविद्यालय पुस्तकालय : अवधारणा और महत्व

1.1 पुस्तकालयों की परिभाषा और सामाजिक दायित्व

पुस्तकालयों को समाज का बौद्धिक केन्द्र माना जाता है। एक अध्ययन में पुस्तकालयों को "सेवा संस्थान" बताया गया है जिसकी मूलभूत भूमिका ज्ञान का संग्रह, संरक्षण और प्रसार है। चाहे शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक कार्य या पर्यावरण संरक्षण-समाज की सभी गतिविधियाँ संस्थागत रूप से संचालित होती हैं और पुस्तकालय तथा अन्य सूचना केन्द्र इन गतिविधियों के लिए आवश्यक ज्ञान संसाधन उपलब्ध कराते हैं। इस अध्ययन में यह भी बताया गया है कि आधुनिक समाज के विकसित होने के साथ-साथ सूचना संस्थाएँ (पुस्तकालय, अभिलेखागार, सूचना केन्द्र) मानव विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई हैं।

** First Author, **Corresponding Author, ***Co-Author*

1.2 शिक्षा में पुस्तकालय की केंद्रीय भूमिका

विश्वविद्यालय और शासकीय महाविद्यालयों में पुस्तकालय का उद्देश्य केवल पाठ्यपुस्तकों का भंडार प्रदान करना नहीं है, बल्कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को समृद्ध करना है। पुस्तकालय संस्थानों के छात्रों और शिक्षकों को नवीनतम शोध पत्र, संदर्भ सामग्री, शोध प्रबंध, सरकारी रिपोर्टें, डेटाबेस आदि उपलब्ध कराते हैं ताकि वे कक्षाओं से इतर ज्ञान प्राप्त कर सकें। एक अध्ययन के अनुसार, विश्वविद्यालय पुस्तकालय शिक्षा के साथ-साथ अनुसंधान और विस्तार कार्यक्रमों को भी संचालित करते हैं। वहीं एक अन्य रिपोर्ट बताती है कि महाविद्यालय पुस्तकालयों का उद्देश्य छात्रों के कौशल विकास में भी योगदान देना है; वे विद्यार्थियों को स्वतंत्र शोध, जानकारी संग्रहण और अध्ययन में आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित करते हैं।

1.3 महाविद्यालय पुस्तकालयों का सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान

पुस्तकालय न केवल शैक्षणिक संसाधन प्रदान करते हैं, बल्कि समाज के सांस्कृतिक विकास में भी योगदान देते हैं। 'इन्फॉर्मेशन सोसाइटी' पर आधारित हिंदी पाठ्यसामग्री में कहा गया है कि पुस्तकालय और अन्य सूचना संस्थाएँ लिखित ज्ञान के संग्रह, संरचना, प्रसंस्करण और प्रसारण का कार्य करती हैं, जिससे वे मानव विकास के लिए आवश्यक सूचना एवं ज्ञान को सबके लिए उपलब्ध कराती हैं। पुस्तकालय लोगों में अध्ययन, विचार एवं रचनात्मकता की आदत विकसित करते हैं और सामाजिक गुण-सहयोग, मित्रता, सामूहिक कार्य-को प्रोत्साहित करते हैं। विशेष रूप से ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में शासकीय महाविद्यालयों के पुस्तकालय सामाजिक न्याय और समावेशन का माध्यम बन सकते हैं क्योंकि वे सभी वर्गों को समान जानकारी उपलब्ध कराते हैं।

1.4 भारतीय संदर्भ में कानूनी और नीतिगत आधार

भारत में सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम ज्ञान के लोकतंत्रीकरण और सामाजिक समावेशन को मजबूत करने के लिए बनाए गए हैं। हालांकि इन अधिनियमों को वर्तमान डिजिटल युग की चुनौतियों के अनुरूप अद्यतन करने की आवश्यकता है; शोध में सुझाव दिया गया है कि अधिनियमों में डिजिटल संसाधन, ई-लाइब्रेरी और ऑनलाइन सेवाओं को शामिल किया जाना चाहिए। एनईपी 2020 पुस्तकालयों की उन्नति को उच्च शिक्षा सुधार का हिस्सा मानती है और डिजिटल संसाधनों के उपयोग, बहुभाषी सामग्री निर्माण और पुस्तकालय स्वचालन की अनुशंसा करती है।

2. परंपरागत पुस्तकालयों की भूमिका

2.1 ज्ञान का संग्रहण, संगठन और संरक्षण

पारंपरिक रूप से महाविद्यालय पुस्तकालयों का मुख्य कार्य पुस्तकों, पत्रिकाओं, शोध प्रबंधों, समाचारपत्रों, मानचित्रों, पांडुलिपियों आदि का संग्रह करना, उनका वर्गीकरण एवं सूचीकरण करना तथा उपयोगकर्ताओं को आसानी से उपलब्ध कराना रहा है। विद्वानों ने इसे "ज्ञानेन्द्रियों का संग्रह" कहा है जहां ज्ञान के विविध रूप सुरक्षित रहते हैं। शासकीय महाविद्यालयों में यह संग्रह स्थानीय और राष्ट्रीय दोनों स्तरों की आवश्यकताओं को पूरा करता है-एक ओर क्षेत्रीय भाषा और संस्कृति से जुड़े ग्रंथ, दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय शोध पत्र और डेटाबेस।

2.2 पाठक सेवा और संदर्भ सहायता

पुस्तकालय कर्मचारियों का महत्वपूर्ण कार्य उपयोगकर्ताओं को पुस्तक चयन, संदर्भ खोज, सूचना पुनर्प्राप्ति और

अध्ययन विधियों में सहायता करना है। पारंपरिक पुस्तकालयों में "रीडर्स एडवाइजरी" सेवाएँ छात्रों को उनकी रुचि और पाठ्यक्रम के अनुरूप सामग्री खोजने में मदद करती हैं। शिक्षाविदों ने पाया है कि पुस्तकालय कर्मचारियों द्वारा दी गई व्यक्तिगत मार्गदर्शना शोध की गुणवत्ता को बढ़ाती है।

2.3 पठन संस्कृति और सामाजिक सहभागिता

पुस्तकालय पठन संस्कृति विकसित करने के लिए पढ़ने के कार्यक्रम, पुस्तक चर्चा, लेखक वार्ता और प्रदर्शनी आयोजित करते हैं। यह गतिविधियाँ छात्रों को साहित्यिक संसार से जोड़ने, भाषाई कौशल विकसित करने और सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने में मदद करती हैं। कई अध्ययनों में देखा गया है कि नियमित रूप से पुस्तकालय आने वाले विद्यार्थियों में शैक्षणिक प्रदर्शन और सोचने-समझने की क्षमता में सकारात्मक परिवर्तन होता है।

2.4 समुदाय सेवा और सतत शिक्षा

शासकीय महाविद्यालय पुस्तकालय स्थानीय समुदाय के लिए भी खुलते हैं, विशेष रूप से ग्रामीण इलाकों में जहां सार्वजनिक पुस्तकालयों की संख्या कम है। वे निरक्षरों के लिए साक्षरता कार्यक्रम, करियर मार्गदर्शन, प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी और कृषि-स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान करते हैं। यह समुदाय सेवा पुस्तकालयों को सामाजिक समावेशन, समान अवसर और आजीवन शिक्षा का मंच बनाती है।

3. नीतिगत परिप्रेक्ष्य और समकालीन शिक्षा नीति

3.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का प्रभाव

एनईपी 2020 भारतीय शिक्षा तंत्र में व्यापक बदलाव लाने वाली नीति है। नीति दस्तावेज़ में शैक्षणिक पुस्तकालयों को डिजिटल परिवर्तन के केंद्र में रखने की बात कही गई है। शोधपत्रों में यह उल्लेखित है कि नीति के अनुसार महाविद्यालय और विश्वविद्यालय पुस्तकालयों में ई-संसाधन, डेटाबेस, डिजिटल संग्रह, ई-पत्रिकाएँ, ई-पुस्तकें, ओपन एक्सेस रिपॉजिटरी और सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित सेवा मॉडल अपनाए जाने चाहिए। नीति में यह भी कहा गया है कि पाठ्यक्रम में हुए परिवर्तनों और शिक्षण पद्धतियों की विविधता के कारण पुस्तकालयों को अत्याधुनिक तकनीक से लैस करना आवश्यक है, ताकि वे 24×7 छात्रों को डिजिटल संसाधनों तक पहुँच प्रदान कर सकें।

नीति का एक प्रमुख लक्ष्य बहुभाषी सामग्री विकसित करना है। इसलिए पुस्तकालयों को अंग्रेज़ी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में भी डिजिटलीकृत पुस्तकें, ऑडियोबुक्स, और डिजिटल पाठ्यक्रम सामग्री विकसित करनी चाहिए। एनईपी 2020 शिक्षा में समावेशन, गुणवत्ता और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए पुस्तकालयों के बुनियादी ढांचे को मजबूत करने पर ज़ोर देती है।

3.2 सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम और शासकीय महाविद्यालय

1950 के दशक से ही भारत के कई राज्यों ने सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम लागू किए हैं। इन अधिनियमों का उद्देश्य गांव से शहर तक सभी नागरिकों को मुफ्त और समान पुस्तकालय सेवा उपलब्ध कराना है। शोध में पाया गया है कि सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम ज्ञान के लोकतंत्रीकरण, आजीवन शिक्षा और सामाजिक समरसता को मजबूत करते हैं। हालांकि, डिजिटल युग की आवश्यकताओं के अनुरूप इन अधिनियमों को संशोधित करने की आवश्यकता बताई गई

है, ताकि डिजिटल पुस्तकालय, ऑनलाइन सदस्यता, ई-संसाधन और मोबाइल लाइब्रेरी सेवाओं को कानूनी आधार मिले।

3.3 राज्य स्तर की पहल: ई-ग्रंथालय और अन्य योजनाएँ

मध्य प्रदेश सहित कई राज्यों ने कॉलेज लाइब्रेरी स्वचालन के लिए ई-ग्रंथालय (e-Granthalaya) सॉफ्टवेयर अपनाया है। राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (एनआईसी) द्वारा विकसित यह प्लेटफ़ॉर्म केंद्र एवं राज्य सरकारों के पुस्तकालयों के लिए एकीकृत लाइब्रेरी प्रबंधन सॉफ्टवेयर, डिजिटल पुस्तकालय मॉड्यूल और क्लाउड होस्टिंग सेवा प्रदान करता है। ई-ग्रंथालय 4.0 संस्करण एक वेब-आधारित समाधान है जो अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप है और पोट्रेग्रेसक्यूएल डेटाबेस पर चलता है। मध्य प्रदेश सरकार ने 528 सरकारी महाविद्यालयों और 16 विश्वविद्यालयों को ई-ग्रंथालय से जोड़ने के लिए समझौता किया है; इससे लगभग 16 लाख छात्रों को डिजिटल संसाधनों का लाभ मिलने की उम्मीद है।

4. सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का एकीकरण

4.1 पुस्तकालय स्वचालन और सॉफ्टवेयर उपयोग

एक अध्ययन में मध्य प्रदेश के शहडोल संभाग के दस सरकारी कॉलेज लाइब्रेरी का सर्वेक्षण किया गया और पाया गया कि 100% लाइब्रेरी स्वचालित प्रणाली का उपयोग कर रही हैं। अधिकांश (70%) लाइब्रेरी e-Granthalaya सॉफ्टवेयर का उपयोग करती हैं, जबकि 20% SOUL और 10% KOHA का प्रयोग कर रही हैं। 80% लाइब्रेरी में OPAC (Online Public Access Catalogue) उपलब्ध है और 50% में अधिग्रहण मॉड्यूल का उपयोग हो रहा है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि लाइब्रेरी स्वचालन से पुस्तकों की सूची, निर्गमन-वापसी, आगमन, क्रमबद्धता और रिपोर्टिंग में पारदर्शिता व दक्षता बढ़ जाती है।

अन्य शोधों में यह भी देखा गया है कि सूचना प्रौद्योगिकी आधारित उपकरण-डिजिटल संसाधनों तक ऑनलाइन पहुंच, इंटरैक्टिव शैक्षणिक सामग्री, ऑनलाइन शोध प्रबंधन-महाविद्यालय के छात्रों की पढ़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन उपकरणों के उपयोग से समय की बचत होती है, संसाधनों तक पहुँच आसान होती है और सीखने का अनुभव समृद्ध होता है।

4.2 डिजिटल सामग्री और ई-संसाधन

एनईपी 2020 ने ई-संसाधनों को महाविद्यालय शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बनाने पर जोर दिया है। एक विशेष अध्ययन के अनुसार, महाविद्यालय लाइब्रेरी में डिजिटल संसाधनों में पुस्तकों के अलावा पत्रिकाएँ, शोध पत्र, एमवीडी, ई-पत्रिकाएँ, ई-थीसिस, ऑडियो-वीडियो सामग्री, वेब संसाधन और ऑनलाइन पाठ्यक्रम शामिल हैं।

इंटरनेट, सूचना और संचार तकनीक तथा सोशल मीडिया के बढ़ते उपयोग ने पुस्तकालयों की सेवाओं को नई परिपाटी दी है; शैक्षणिक पुस्तकालयों में अब ऑनलाइन सदस्यता, मोबाइल एप, ई-डेटाबेस, रिमोट लॉग-इन और वर्चुअल बुक डिस्कशन जैसी सेवाएँ प्रचलित हो रही हैं।

4.3 ई-ग्रंथालय का क्रियान्वयन

ई-ग्रंथालय सॉफ्टवेयर के उपयोग से सरकारी कॉलेज लाइब्रेरी अपने परिसंचारी (circulation), सूचीकरण, सीरियल नियंत्रण, अधिग्रहण, सदस्य प्रबंधन और रिपोर्टिंग कार्यों को स्वचालित कर सकती हैं। ई-ग्रंथालय 4.0 में डिजिटल पुस्तकालय

मॉड्यूल भी शामिल है, जिसमें पुस्तकालय अपनी डिजिटल सामग्री-पुस्तकों के पीडीएफ, शोध पत्र, ऑडियो-वीडियो लेक्चर-को अपलोड करके सदस्यों को वेब-पोर्टल के माध्यम से उपलब्ध करा सकते हैं।

4.4 स्वचालन के लाभ

स्वचालित और डिजिटल लाइब्रेरी का सबसे बड़ा लाभ समय और स्थान की सीमा से मुक्ति है। छात्र किसी भी समय ऑनलाइन लॉग-इन करके अपनी पाठ्य-सामग्री, प्रश्न पत्र, ई-पुस्तकें, ऑडियो-वीडियो व्याख्यान और डेटाबेस तक पहुँच सकते हैं। स्वचालन से संग्रह प्रबंधन पारदर्शी होता है, पुस्तकों की चोरी या दुहराव की संभावना कम होती है, और आँकड़ों पर आधारित निर्णय लेना आसान हो जाता है। डिजिटल संसाधनों के माध्यम से महाविद्यालय सीमित भौतिक संग्रह के बावजूद असीमित ई-संसाधन उपलब्ध करा सकते हैं।

5. डिजिटल पुस्तकालय और ई-संसाधन: वर्तमान परिदृश्य

5.1 डिजिटल पुस्तकालय की आवश्यकता

वर्तमान सूचना समाज में डिजिटल पुस्तकालयों की आवश्यकता के पीछे तीन प्रमुख कारण हैं:

सूचना का विस्फोट: ज्ञान तेजी से बढ़ रहा है, और मुद्रित रूप में सब कुछ संग्रहित करना संभव नहीं है। डिजिटल रूप से बड़ी मात्रा में सामग्री संग्रहीत एवं प्रसारित की जा सकती है।

सुलभता और लचीलापन: डिजिटल सामग्री को किसी भी समय, किसी भी स्थान से पहुँचाया जा सकता है, जिससे दूरदराज़ और दिव्यांग छात्रों को समान अवसर मिलते हैं।

सहयोग और नेटवर्किंग: डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से अनेक लाइब्रेरी संसाधन साझा कर सकती हैं; इससे महंगे डेटाबेस और ई-जर्नल खरीदने का सामूहिक लाभ मिलता है।

एक अध्ययन में बताया गया है कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने सूचना एवं ज्ञान के प्रसार के माध्यम से समाज के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह अध्ययन मध्य प्रदेश में ई-लाइब्रेरी की अधोसंरचना और उपयोगिता का विश्लेषण करता है और दर्शाता है कि उच्च शिक्षा के केंद्रों में डिजिटल पुस्तकालय स्थापित हो रहे हैं जिनमें से अधिकांश सरकारी वित्तीय सहायता से संचालित हैं।

5.2 ई-संसाधनों का उपयोग और चुनौतियाँ

इन्हीं शोधों में यह भी पाया गया कि डिजिटल पुस्तकालयों के विकास में भारत कुछ देशों की अपेक्षा पीछे है; इसका एक कारण बजट, पुस्तक क्रय नीतियाँ, अपर्याप्त मेटाडेटा, दोहराव, डेटा प्रबंधन प्रक्रियाओं और कार्यप्रवाह से जुड़ी समस्याएँ है।

महाविद्यालय पुस्तकालयों को ई-संसाधन खरीदने और लाइसेंस लेने के लिए अलग बजट आवंटित करना पड़ता है। कुछ संस्थानों ने ई-संसाधनों के लिए विशेष कोष भी बनाना शुरू किया है। हालांकि छोटे महाविद्यालयों के लिए महंगे अंतरराष्ट्रीय डेटाबेस और ई-जर्नल खरीदना आर्थिक रूप से चुनौतीपूर्ण है।

5.3 डिजिटल सामग्री के स्वरूप और डिज़ाइन

डिजिटल पुस्तकालय केवल पीडीएफ संग्रह नहीं हैं। शोधकर्ताओं ने सुझाव दिया है कि डिजिटल पुस्तकालयों का

डिज़ाइन ऐसा होना चाहिए जो विभिन्न मीडिया-ऑडियो, वीडियो, इंटरेक्टिव पाठ्यक्रम, ई-बुक रीडर फ़ॉर्मेट-को समाहित करे, ताकि छात्रों को समग्र शिक्षण अनुभव मिले। एक अन्य अध्ययन में कहा गया है कि डिजिटल पुस्तकालय का इंटरफेस उपयोगकर्ता को स्वतंत्र रूप से सामग्री खोजने की सुविधा देना चाहिए, और इसे इस तरह बनाया जाना चाहिए कि दुनिया के किसी भी हिस्से से पहुँच संभव हो।

5.4 सूचना साक्षरता और डिजिटल साक्षरता

डिजिटल पुस्तकालयों के युग में छात्रों और शिक्षकों के लिए "सूचना साक्षरता" (Information Literacy) आवश्यक है। उन्हें यह समझने की आवश्यकता है कि सूचना स्रोतों का मूल्यांकन कैसे करें, प्रामाणिक सामग्री कैसे चुनें और अनुसंधान नैतिकता का पालन कैसे करें। कई शासकीय महाविद्यालयों ने सूचना साक्षरता कार्यशालाएँ, लाइब्रेरी ओरिएंटेशन कार्यक्रम और ई-संसाधन प्रशिक्षण सत्र शुरू किए हैं। यह कदम डिजिटल संसाधनों के प्रभावी उपयोग को बढ़ाते हैं और प्लैज़ियरिज्म जैसी समस्याओं को कम करते हैं।

5.5 ई-संसाधनों का मूल्यांकन

ई-संसाधन का चयन करते समय लाइब्रेरी को विषय की प्रासंगिकता, पाठ्यक्रम समायोजन, प्रकाशन की विश्वसनीयता, लाइसेंस शर्तें, उपयोगकर्ता आंकड़े और लागत-प्रभावशीलता जैसे मानदंडों पर विचार करना चाहिए।

6. महाविद्यालय पुस्तकालयों में चुनौतियाँ

6.1 आर्थिक व संसाधन संबंधी चुनौतियाँ

अधिकांश सरकारी महाविद्यालयों का बजट सीमित होता है। प्रिंट और ई-संसाधनों का संतुलित विकास बनाए रखना कठिन है। डिजिटल लाइसेंस, डेटाबेस और सॉफ्टवेयर के वार्षिक शुल्क महंगे हैं। कुछ कॉलेजों में भवन, फर्नीचर, वातानुकूलन, पर्याप्त बैठने के स्थान तथा सस्ती इंटरनेट सेवाओं की कमी है।

6.2 मानव संसाधन और प्रशिक्षण

पुस्तकालयों में प्रशिक्षित पुस्तकालय विज्ञान पेशेवरों की कमी है। ई-ग्रंथालय या अन्य सॉफ्टवेयर चलाने के लिए कंप्यूटर दक्षता आवश्यक है। अध्ययन में पाया गया है कि 100% surveyed कॉलेज लाइब्रेरी में कंप्यूटर तो हैं, लेकिन पूर्ण स्वचालन केवल 10% में है। यह दर्शाता है कि तकनीकी क्षमता और प्रशिक्षण की कमी डिजिटल परिवर्तन में बाधा बनती है।

6.3 डिजिटल विभाजन और पहुँच

ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले कई छात्र इंटरनेट या लैपटॉप की सुविधा से वंचित हैं। महाविद्यालय परिसर में तो उन्हें डिजिटल संसाधन उपलब्ध हैं, परंतु घर या हॉस्टल में यह सुविधा नहीं होती। इसके अलावा, विकलांग छात्रों के लिए पहुंच-अनुकूल डिज़ाइन, ब्रेल संसाधन और ऑडियोबुक की उपलब्धता अभी भी सीमित है।

6.4 भाषाई विविधता

भारत की विविध भाषाओं को देखते हुए अंग्रेज़ी आधारित डिजिटल सामग्री सभी छात्रों के लिए उपयोगी नहीं है। एनईपी 2020 बहुभाषी डिजिटल सामग्री पर जोर देती है, लेकिन अधिकांश डेटाबेस अंग्रेज़ी में हैं और हिंदी अथवा अन्य

भारतीय भाषाओं में शोध सामग्री का डिजिटलीकरण सीमित है।

6.5 कानूनी और नैतिक मुद्दे

डिजिटल सामग्री साझा करते समय कॉपीराइट, लाइसेंस, डेटा गोपनीयता और प्लैज़ियरिज्म जैसे मसलों का सामना करना पड़ता है। पुस्तकालयों को अधिकृत उपयोग और निष्पक्ष उपयोग (Fair Use) के बीच संतुलन बनाना पड़ता है। भारतीय पुस्तकालय अधिनियमों में अभी तक इन डिजिटल मुद्दों का स्पष्ट प्रावधान नहीं है।

6.6 विश्वविद्यालय एवं शासकीय महाविद्यालय: तुलनात्मक विश्लेषण

विश्वविद्यालय और शासकीय महाविद्यालय के पुस्तकालयों में कई मूलभूत समानताएँ और अंतर हैं। दोनों संस्थान शिक्षा और अनुसंधान में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, परंतु उनकी संरचना, संसाधन और सेवा क्षेत्र अलग हो सकते हैं। नीचे कुछ प्रमुख तुलनात्मक बिंदुओं का उल्लेख है:

- संसाधन एवं बजट: विश्वविद्यालय सामान्यतः बड़े बजट और विस्तृत संग्रह वाले पुस्तकालय रखते हैं, जिनमें विशेष शोध डेटाबेस, बहु-विषयक पत्रिकाएँ और उच्च स्तर की प्रौद्योगिकी सुविधा होती है। वहीं शासकीय महाविद्यालयों के पुस्तकालय सीमित वित्तीय संसाधनों के कारण अधिकतर स्थानीय आवश्यकताओं पर केंद्रित होते हैं और उनका संग्रह अपेक्षाकृत छोटा होता है।
- डिजिटल अवसंरचना: विश्वविद्यालयों में डिजिटल लाइब्रेरी, ई-रिपॉजिटरी और स्वचालन की व्यवस्था व्यापक स्तर पर लागू होती है, जबकि कई शासकीय महाविद्यालय अभी भी प्रारंभिक चरण में हैं और ई-ग्रंथालय जैसे सॉफ्टवेयर का सीमित उपयोग कर रहे हैं।
- प्रयोगकर्ता समुदाय: विश्वविद्यालय पुस्तकालयों के उपयोगकर्ता शोधार्थी, प्राध्यापक और स्नातकोत्तर छात्र होते हैं जिनकी शोध-आधारित आवश्यकताएँ अधिक होती हैं। शासकीय महाविद्यालय पुस्तकालय मुख्यतः स्नातक स्तर के छात्रों और स्थानीय समुदाय को सेवा प्रदान करते हैं।
- नीतिगत और प्रशासनिक स्वायत्तता: विश्वविद्यालय अपने पुस्तकालयों के लिए नीतिगत स्वायत्तता रखते हैं और नीति निर्माण में स्वतंत्र होते हैं, जबकि शासकीय महाविद्यालयों को राज्य सरकार के दिशा-निर्देशों और बजट आवंटन पर निर्भर रहना पड़ता है।
- भविष्य की दिशा: दोनों प्रकार के संस्थानों को डिजिटल परिवर्तन, बहुभाषी सामग्री और सूचना साक्षरता पर समान रूप से ध्यान देना चाहिए; हालांकि उनके मार्ग और प्राथमिकताएँ अलग हो सकती हैं।

7. समाधान और सुझाव

7.1 बजट और संसाधन प्रबंधन

बहुस्तरीय वित्तीय मॉडल: राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों और स्थानीय निकायों को मिलकर पुस्तकालयों के लिए अलग कोष बनाना चाहिए। CSR (Corporate Social Responsibility) या सार्वजनिक-निजी भागीदारी से संसाधन जुटाए जा सकते हैं।

साझा संसाधन नेटवर्क: महाविद्यालय लाइब्रेरी एक-दूसरे के साथ संसाधन साझा करने हेतु कंसोर्टियम बना सकती हैं ताकि महंगे डेटाबेस और ई-जर्नल की लागत विभाजित हो।

गतिशील संग्रह प्रबंधन: निर्गम-वापसी आंकड़ों, पाठ्यक्रम परिवर्तन और उपयोगकर्ता सुझावों के आधार पर संग्रह अद्यतन किया जाना चाहिए।

7.2 मानव संसाधन विकास

प्रशिक्षण और पुनः प्रशिक्षण: पुस्तकालय कर्मचारियों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यशाला आयोजित की जानी चाहिए जिसमें ई-ग्रंथालय, KOHA, SOUL, डिजिटाइजेशन तकनीक, डेटा एनालिटिक्स और सूचना साक्षरता शामिल हो।

प्रोत्साहन और करियर प्रगति: पुस्तकालय विज्ञान के पेशेवरों के लिए स्पष्ट पदोन्नति मार्ग, प्रदर्शन मूल्यांकन और शोध प्रोत्साहन कार्यक्रम होने चाहिए।

स्वयंसेवक और इंटर्नशिप: पुस्तकालय विज्ञान के छात्रों को महाविद्यालय पुस्तकालयों में इंटर्नशिप करने का अवसर दिया जा सकता है, जिससे उन्हें वास्तविक अनुभव मिलेगा और पुस्तकालय का काम भी सुचारु रहेगा।

7.3 तकनीकी समाधान

ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर: बजट सीमित होने पर KOHA और DSpace जैसे ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जा सकता है।

क्लाउड आधारित सेवाएँ: ई-ग्रंथालय जैसे सॉफ्टवेयर क्लाउड पर होस्ट होने के कारण हार्डवेयर लागत कम होती है और कहीं से भी पहुँच संभव है।

मोबाइल एप: पुस्तकालयों के लिए मोबाइल एप और SMS सूचना सेवा विकसित की जा सकती है ताकि छात्र मोबाइल पर ही बुक रिन्यूअल, नए आगमन की सूचना और प्रश्न पत्र प्राप्त कर सकें।

डिजिटल रिपॉजिटरी: कॉलेज अपना संस्थागत रिपॉजिटरी बना सकते हैं जिसमें फैकल्टी के शोध पत्र, प्रोजेक्ट रिपोर्ट, थीसिस और व्याख्यान रिकॉर्ड उपलब्ध कराए जा सकें।

7.4 सूचना साक्षरता कार्यक्रम

उपयोगकर्ता ओरिएंटेशन: नवागंतुक छात्रों के लिए लाइब्रेरी ओरिएंटेशन आयोजित कर उन्हें कैटलॉग, डेटाबेस, खोज तकनीक, शैक्षणिक लिखाई और संदर्भ शैली के बारे में बताया जाए।

इंटरैक्टिव कार्यशाला: सर्च स्ट्रेटजी, प्लैज़ियरिज्म से बचाव और शोध डेटा प्रबंधन पर कार्यशालाएँ आयोजित कर छात्रों और शोधकर्ताओं को सक्षम बनाया जाए।

सामाजिक जागरूकता: सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से सूचना साक्षरता को आम जनता तक पहुँचाया जाए।

7.5 बहुभाषी और समावेशी सामग्री

हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं का डिजिटलीकरण: भारतीय भाषाओं की किताबों, पत्रिकाओं और शोध पत्रों का

डिजिटलीकरण कर ऑनलाइन उपलब्ध कराया जाए।

समावेशी डिजाइन: विकलांग छात्रों के लिए स्क्रीन रीडर अनुकूल वेबसाइट, ऑडियो किताबें, ब्रेल डिस्प्ले तथा साइन लैंग्वेज वीडियो विकसित किए जाएं।

सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण: स्थानीय इतिहास, लोक साहित्य, लोक कला और वंशावली से संबंधित दस्तावेज़ों का संरक्षण एवं डिजिटलीकरण कर उन्हें खुले प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध कराया जाए।

7.6 कानूनी ढांचा और नीतिगत सुधार

पुस्तकालय अधिनियम में सुधार: सरकारी पुस्तकालय अधिनियम में डिजिटल अधिकार प्रबंधन, लाइसेंसिंग, गोपनीयता, और ओपन एक्सेस से संबंधित प्रावधान जोड़े जाएँ।

कॉपीराइट शिक्षा: पुस्तकालय कार्यशालाओं के माध्यम से छात्रों व शिक्षकों को कॉपीराइट कानून, लाइसेंसिंग और fair use की जानकारी दी जाए।

अनुसंधान डेटा नीति: शोध डेटा के संग्रहण, साझा करने और पुनः उपयोग के लिए स्पष्ट संस्थागत नीति विकसित की जाए।

8. भविष्य की दिशा और निष्कर्ष

विश्वविद्यालय एवं शासकीय महाविद्यालय पुस्तकालय आज दोराहे पर खड़े हैं। एक ओर पारंपरिक पुस्तकालय सेवाएँ—पुस्तक संग्रह, संदर्भ सहायता, अध्ययन कक्ष—अभी भी उनकी पहचान हैं; दूसरी ओर डिजिटल परिवर्तन उन्हें नई भूमिका में ढाल रहा है। यह परिवर्तन केवल तकनीकी बदलाव नहीं है, बल्कि संस्थागत संस्कृति, संसाधन प्रबंधन, मानव संसाधन और नीति के स्तर पर व्यापक बदलाव की मांग करता है।

अध्ययनों से स्पष्ट है कि विश्वविद्यालय और महाविद्यालय पुस्तकालयों का डिजिटल परिवर्तन शिक्षा की गुणवत्ता, शोध की प्रासंगिकता और समाज के समावेशी विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। आईसीटी आधारित उपकरणों का प्रयोग छात्रों के सीखने में सहायक सिद्ध हुआ है। ई-ग्रंथालय जैसी परियोजनाएँ इस परिवर्तन की दिशा में आशाजनक कदम हैं, परंतु इनसे अधिकतम लाभ तभी मिलेगा जब बजट, प्रशिक्षण, बहुभाषी सामग्री और कानूनी ढांचे को भी मजबूत किया जाएगा।

निष्कर्षतः, विश्वविद्यालय एवं शासकीय महाविद्यालय पुस्तकालय ज्ञान समाज के निर्माण में एक महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। वे शिक्षा, अनुसंधान, संस्कृति और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने वाली बहुआयामी संस्थाएँ हैं। आज की आवश्यकता है कि इन्हें आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी, नीति समर्थन और सामुदायिक सहभागिता से सशक्त बनाया जाए ताकि वे 21वीं सदी के सूचना समाज में अपना प्रभावी योगदान जारी रख सकें।

संदर्भ सूची

रंगनाथन, एस. आर. *पुस्तकालय विज्ञान के पाँच नियम*. नई दिल्ली: भारतीय पुस्तकालय संघ, 2006।

शर्मा, वासुदेव. *पुस्तकालय एवं समाज*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2021।

गुप्ता, एस. पी. *शैक्षणिक पुस्तकालय: सिद्धांत और व्यवहार*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, 2018।

अग्रवाल, एस. एस. *पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान का परिचय*. जयपुर: राजस्थान विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2017।

सूद, एस. पी. *आधुनिक पुस्तकालय प्रबंधन*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन, 2019।

नंदा, वी. बी. *विद्यालय एवं महाविद्यालय पुस्तकालय संगठन*. कोटा: वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, 2016।

मिश्रा, प्रीति रानी. *सार्वजनिक पुस्तकालय: भूमिका एवं कार्य*. बिलासपुर: मुक्त विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2020।

चौधरी, भुनेश्वर. *पुस्तकालयों के प्रकार और कार्य*. भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2022।

Ranganathan, S. R. *The Five Laws of Library Science*. Bangalore: Sarada Ranganathan Endowment, 2006.

Gorman, Michael. *Our Enduring Values: Librarianship in the 21st Century*. Chicago: American Library Association, 2000.

“भारत में उच्च शिक्षा में विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों की भूमिका पर अध्ययन.” *Universal Research Reports*, 2022, pp. 52–58. शोध में विश्वविद्यालय पुस्तकालयों को शिक्षा, अनुसंधान और विस्तार कार्यक्रमों का हृदय बताया गया है और सभी छात्रों, शिक्षकों तथा शोधार्थियों को सेवा प्रदान करने वाली सबसे महत्वपूर्ण इकाई माना है।

“शासकीय और निजी महाविद्यालय पुस्तकालय प्रबंधन: बैतूल जिले का अध्ययन.” *IJCRT*, vol. 11, no. 8, 2023, pp. 1–10. इस शोध में महाविद्यालय पुस्तकालयों को सामाजिक संस्था और सूचना केंद्र के रूप में परिभाषित किया गया है; साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी को आधुनिक पुस्तकालयों का अभिन्न अंग बताया गया है।

“भारत में उच्च शिक्षा में पुस्तकालय का डिजिटल संक्रमण.” *URR Cross-Mark Policy* (सामग्री के अंतर्गत). यह लेख डिजिटल पुस्तकालयों के विकास, सूचना साक्षरता और शोध समर्थन के नए दृष्टिकोणों पर केन्द्रित है (उल्लेखित)।

मुंशी प्रेमचंद और उनका साहित्यिक जीवन

डॉ0 विकास कुमार
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
लाजपत राय महाविद्यालय, साहिबाबाद, गाजियाबाद, उ0प्र0

धनपत राय श्रीवास्तव (३१ जुलाई १८८० – ८ अक्टूबर १९३६) जो **प्रेमचंद** नाम से जाने जाते हैं, वो हिन्दी और उर्दू के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार, कहानीकार एवं विचारक थे। उन्होंने सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास तथा कफन, पूस की रात, पंच परमेश्वर, बड़े घर की बेटी, बूढ़ी काकी, दो बैलों की कथा आदि तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं। उनमें से अधिकांश हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुई। उन्होंने अपने दौर की सभी प्रमुख उर्दू और हिन्दी पत्रिकाओं जमाना, सरस्वती, माधुरी, मर्यादा, चाँद, सुधा आदि में लिखा। उन्होंने हिन्दी समाचार पत्र *जागरण* तथा साहित्यिक पत्रिका 'हंस' का संपादन और प्रकाशन भी किया। इसके लिए उन्होंने सरस्वती प्रेस खरीदा जो बाद में घाटे में रहा और बन्द करना पड़ा। प्रेमचंद फिल्मों की पटकथा लिखने मुंबई आए और लगभग तीन वर्ष तक रहे। जीवन के अंतिम दिनों तक वे साहित्य सृजन में लगे रहे। महाजनी सभ्यता उनका अंतिम निबन्ध, साहित्य का उद्देश्य अन्तिम व्याख्यान, कफन अन्तिम कहानी, गोदान अन्तिम पूर्ण उपन्यास तथा मंगलसूत्र अन्तिम अपूर्ण उपन्यास माना जाता है।

१९०६ से १०३६ के बीच लिखा गया प्रेमचंद का साहित्य इन तीस वर्षों का सामाजिक सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसमें उस दौर के समाजसुधार आन्दोलनों, स्वाधीनता संग्राम तथा प्रगतिवादी आन्दोलनों के सामाजिक प्रभावों का स्पष्ट चित्रण है। उनमें दहेज, अनमेल विवाह, पराधीनता, लगान, छूआछूत, जाति भेद, विधवा विवाह, आधुनिकता, स्त्री-पुरुष समानता, आदि उस दौर की सभी प्रमुख समस्याओं का चित्रण मिलता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनके साहित्य की मुख्य विशेषता है। हिन्दी कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में १९१८ से १९३६ तक के कालखण्ड को 'प्रेमचंद युग' या 'प्रेमचन्द युग' कहा जाता है।

जीवन परिचय

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी जिले (उत्तर प्रदेश) के लमही गाँव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी तथा पिता का नाम मुंशी अजायबराय था जो लमही में डाकमुंशी थे। उनका वास्तविक नाम धनपत राय श्रीवास्तव था। बचपन में उनकी माँ उन्हें गुलाब राय नाम से पुकारती थी। प्रेमचंद (प्रेमचन्द) की आरम्भिक शिक्षा फ़ारसी में हुई। प्रेमचंद के माता-पिता के सम्बन्ध में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि- "जब वे सात साल के थे, तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। प्रेमचंद जब पन्द्रह वर्ष के हुए तब उनका विवाह कर दिया गया और सोलह वर्ष के होने पर उनके पिता का भी देहान्त हो गया। परेमचंद शादी के फैसले पर पिता के बारे में लिखते हैं की ‘‘पिताजी ने जीवन के अंतिम वर्षों में एक ठोकर खाई और स्वंय तो गिरे ही, साथ में मुझे भी डुबो दिया और मेरी शादी बिना सोचे समझे करा दिया|

इस बात की पुष्टि रामविलास शर्मा के इस कथन से होती है कि- "सौतेली माँ का व्यवहार, बचपन में शादी, पण्डे-

पुरोहित का कर्मकाण्ड, किसानों और क्लर्कों का दुखी जीवन-यह सब प्रेमचंद ने सोलह साल की उम्र में ही देख लिया था। इसीलिए उनके ये अनुभव एक जबर्दस्त सचाई लिए हुए उनके कथा-साहित्य में झलक उठे थे।"[1] उनकी बचपन से ही पढ़ने में बहुत रुचि थी। 13 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने *तिलिस्म-ए-होशरुबा* पढ़ लिया और उन्होंने उर्दू के मशहूर रचनाकार रतननाथ 'शरसार', मिर्ज़ा हादी रुस्वा और मौलाना शरर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया[2]। उनका पहला विवाह पंद्रह साल की उम्र में हुआ। 1906 में उनका दूसरा विवाह शिवरानी देवी से हुआ जो बाल-विधवा थीं। वे सुशिक्षित महिला थीं जिन्होंने कुछ कहानियाँ और *प्रेमचंद घर में* शीर्षक पुस्तक भी लिखी। उनकी तीन सन्ताने हुई-श्रीपत राय, अमृत राय और कमला देवी श्रीवास्तव। 1898 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। उनकी शिक्षा के सन्दर्भ में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि- "1910 में अंग्रेज़ी, दर्शन, फ़ारसी और इतिहास लेकर इण्टर किया और 1919 में अंग्रेजी, फ़ारसी और इतिहास लेकर बी. ए. किया।"[3] १९१९ में बी.ए.[4] पास करने के बाद वे शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए।

1921 ई. में असहयोग आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी के सरकारी नौकरी छोड़ने के आह्वान पर स्कूल इंस्पेक्टर पद से 23 जून को त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद उन्होंने लेखन को अपना व्यवसाय बना लिया। मर्यादा, माधुरी आदि पत्रिकाओं में वे संपादक पद पर कार्यरत रहे। इसी दौरान उन्होंने प्रवासीलाल के साथ मिलकर सरस्वती प्रेस भी खरीदा तथा हंस और जागरण निकाला। प्रेस उनके लिए व्यावसायिक रूप से लाभप्रद सिद्ध नहीं हुआ। 1933 ई. में अपने ऋण को पटाने के लिए उन्होंने मोहनलाल भवनानी के सिनेटोन कम्पनी में कहानी लेखक के रूप में काम करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिल्म नगरी प्रेमचंद को रास नहीं आई। वे एक वर्ष का अनुबन्ध भी पूरा नहीं कर सके और दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस लौट आए। उनका स्वास्थ्य निरन्तर बिगड़ता गया। लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया।[5]

साहित्यिक जीवन

प्रेमचंद (प्रेमचन्द) के साहित्यिक जीवन का आरंभ (आरम्भ) 1901 से हो चुका था[6] आरंभ (आरम्भ) में वे नवाब राय के नाम से उर्दू में लिखते थे। प्रेमचंद की पहली रचना के संबंध में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि-"प्रेमचंद की पहली रचना, जो अप्रकाशित ही रही, शायद उनका वह नाटक था जो उन्होंने अपने मामा जी के प्रेम और उस प्रेम के फलस्वरूप चमारों द्वारा उनकी पिटाई पर लिखा था। इसका जिक्र उन्होंने 'पहली रचना' नाम के अपने लेख में किया है।"[7] उनका पहला उपलब्ध लेखन उर्दू उपन्यास 'असरारे मआबिद'[8] है जो धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी रूपांतरण *देवस्थान रहस्य* नाम से हुआ। प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' है जिसका हिंदी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से १९०७ में प्रकाशित हुआ। १९०८ ई. में उनका पहला कहानी संग्रह *सोज़े-वतन* प्रकाशित हुआ। देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत इस संग्रह को अंग्रेज़ सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया और इसकी सभी प्रतियाँ जब्त कर लीं और इसके लेखक नवाब राय को भविष्य में लेखन न करने की चेतावनी दी। इसके कारण उन्हें नाम बदलकर प्रेमचंद के नाम से लिखना पड़ा। उनका यह नाम दयानारायन निगम ने रखा था।[9] 'प्रेमचंद' नाम से उनकी पहली कहानी *बड़े घर की बेटी* ज़माना पत्रिका के दिसम्बर १९१० के अंक में प्रकाशित हुई।

१९१५ ई. में उस समय की प्रसिद्ध हिंदी मासिक पत्रिका सरस्वती के दिसम्बर अंक में पहली बार उनकी कहानी *सौत* नाम से प्रकाशित हुई।[10] १९१८ ई. में उनका पहला हिंदी उपन्यास सेवासदन प्रकाशित हुआ। इसकी अत्यधिक

लोकप्रियता ने प्रेमचंद को उर्दू से हिंदी का कथाकार बना दिया। हालाँकि उनकी लगभग सभी रचनाएँ हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती रहीं। उन्होंने लगभग ३०० कहानियाँ तथा डेढ़ दर्जन उपन्यास लिखे।

१९२१ में असहयोग आंदोलन के दौरान सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने के बाद वे पूरी तरह साहित्य सृजन में लग गए। उन्होंने कुछ महीने मर्यादा नामक पत्रिका का संपादन किया। इसके बाद उन्होंने लगभग छह वर्षों तक हिंदी पत्रिका माधुरी का संपादन किया। १९२२ में उन्होंने बेदखली की समस्या पर आधारित *प्रेमाश्रम* उपन्यास प्रकाशित किया। १९२५ ई. में उन्होंने *रंगभूमि* नामक वृहद उपन्यास लिखा, जिसके लिए उन्हें मंगलप्रसाद पारितोषिक भी मिला। १९२६-२७ ई. के दौरान उन्होंने महादेवी वर्मा द्वारा संपादित हिंदी मासिक पत्रिका चाँद के लिए धारावाहिक उपन्यास के रूप में *निर्मला* की रचना की। इसके बाद उन्होंने कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि और गोदान की रचना की। उन्होंने १९३० में बनारस से अपना मासिक पत्रिका हंस का प्रकाशन शुरू किया। १९३२ ई. में उन्होंने हिंदी साप्ताहिक पत्र जागरण का प्रकाशन आरंभ किया। उन्होंने लखनऊ में १९३६ में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंता सिनेटोन कंपनी में कथा-लेखक की नौकरी भी की। १९३४ में प्रदर्शित फिल्म *मजदूर* की कहानी उन्होंने ही लिखी थी। १९२०-३६ तक प्रेमचंद लगभग दस या अधिक कहानी प्रतिवर्ष लिखते रहे। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ "मानसरोवर" नाम से ८ खंडों में प्रकाशित हुई। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त वैचारिक निबंध, संपादकीय, पत्र के रूप में भी उनका विपुल लेखन उपलब्ध है।

रचनाएँ

उपन्यास

1. असरारे मआबिद- उर्दू साप्ताहिक आवाज-ए-खल्क़ में 8 अक्टूबर 1903 से 1 फरवरी 1905 तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। कालान्तर में यह हिन्दी में देवस्थान रहस्य नाम से प्रकाशित हुआ।
2. हमखुर्मा व हमसवाब- इसका प्रकाशन 1907 ई. में हुआ। बाद में इसका हिन्दी रूपान्तरण 'प्रेमा' नाम से प्रकाशित हुआ।
3. किशना- इसके सन्दर्भ में अमृतराय लिखते हैं कि- "उसकी समालोचना अक्तूबर-नवम्बर 1907 के 'ज़माना' में निकली।" इसी आधार पर 'किशना' का प्रकाशन वर्ष 1907 ही कल्पित किया गया।[11]
4. रूठी रानी- इसे सन् 1907 में अप्रैल से अगस्त महीने तक ज़माना में प्रकाशित किया गया।
5. जलवए ईसार- यह सन् 1912 में प्रकाशित हुआ था।
6. सेवासदन- 1918 ई. में प्रकाशित सेवासदन प्रेमचंद का हिन्दी में प्रकाशित होने वाला पहला उपन्यास था। यह मूल रूप से उन्होंने 'बाजारे-हुस्न' नाम से पहले उर्दू में लिखा गया लेकिन इसका हिन्दी रूप 'सेवासदन' पहले प्रकाशित हुआ। यह स्त्री समस्या पर केन्द्रित उपन्यास है जिसमें दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, स्त्री-पराधीनता आदि समस्याओं के कारण और प्रभाव शामिल हैं। डॉ रामविलास शर्मा 'सेवासदन' की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता को मानते हैं।
7. प्रेमाश्रम (1922)- यह किसान जीवन पर उनका पहला उपन्यास है। इसका मसौदा भी पहले उर्दू में 'गोशाए-आफियत' नाम से तैयार हुआ था लेकिन इसे पहले हिंदी में प्रकाशित कराया। यह अवध के किसान आन्दोलनों के दौर में लिखा

गया। इसके सन्दर्भ में वीर भारत तलवार किसान राष्ट्रीय आन्दोलन और प्रेमचन्द:1918-22 पुस्तक में लिखते हैं कि- "1922 में प्रकाशित 'प्रेमाश्रम' हिंदी में किसानों के सवाल पर लिखा गया पहला उपन्यास है। इसमें सामंती व्यवस्था के साथ किसानों के अन्तर्विरोधों को केंद्र में रखकर उसकी परिधि के अन्दर पड़नेवाले हर सामाजिक तबके का-ज़मींदार, ताल्लुकेदार, उनके नौकर, पुलिस, सरकारी मुलाजिम, शहरी मध्यवर्ग-और उनकी सामाजिक भूमिका का सजीव चित्रण किया गया है।"[12]

8. रंगभूमि (1925)- इसमें प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा का नायक बनाकर हिंदी कथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात करते हैं।
9. निर्मला (1925)- यह अनमेल विवाह की समस्याओं को रेखांकित करने वाला उपन्यास है।
10. कायाकल्प (1926)
11. अहंकार - इसका प्रकाशन कायाकल्प के साथ ही सन् 1926 ई. में हुआ था। अमृतराय के अनुसार यह "अनातोल फ्रांस के 'थायस' का भारतीय परिवेश में रूपांतर है।"[13]
12. प्रतिज्ञा (1927)- यह विधवा जीवन तथा उसकी समस्याओं को रेखांकित करने वाला उपन्यास है।
13. गबन (1928)- उपन्यास की कथा रमानाथ तथा उसकी पत्नी जालपा के दाम्पत्य जीवन, रमानाथ द्वारा सरकारी दफ्तर में गबन, जालपा का उभरता व्यक्तित्व इत्यादि घटनाओं के इर्द-गिर्द घूमती है।
14. कर्मभूमि (1932)-यह अछूत समस्या, उनका मन्दिर में प्रवेश तथा लगान इत्यादि की समस्या को उजागर करने वाला उपन्यास है।
15. गोदान (1936)- यह उनका अन्तिम पूर्ण उपन्यास है जो किसान-जीवन पर लिखी अद्वितीय रचना है। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद 'द गिफ्ट ऑफ़ काओ' नाम से प्रकाशित हुआ।
16. मंगलसूत्र (अपूर्ण)- यह प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास है जिसे उनके पुत्र अमृतराय ने पूरा किया। इसके प्रकाशन के संदर्भ में अमृतराय प्रेमचंद की जीवनी में लिखते हैं कि इसका-"प्रकाशन लेखक के देहान्त के अनेक वर्ष बाद 1948 में हुआ।"[14]

कहानी

इनकी अधिकतर कहानियोँ में निम्न व मध्यम वर्ग का चित्रण है। डॉ० कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू कहानी को प्रेमचंद कहानी रचनावली नाम से प्रकाशित कराया है। उनके अनुसार प्रेमचंद्र Archived 2021-05-08 at the वेबैक मशीन ने अपने जीवन में लगभग 300 से अधिक कहानियाँ तथा 18 से अधिक उपन्यास लिखे है| इनकी इन्हीं क्षमताओं के कारण इन्हें कलम का जादूगर कहा जाता है| प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह *सोज़े वतन*(राष्ट्र का विलाप) नाम से जून 1908 में प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह की पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन को आम तौर पर उनकी पहली प्रकाशित कहानी माना जाता रहा है। डॉ० गोयनका के अनुसार कानपुर से निकलने वाली उर्दू मासिक पत्रिका *ज़माना* के अप्रैल अंक में प्रकाशित सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम (इश्के दुनिया और हुब्बे वतन) वास्तव में उनकी पहली प्रकाशित कहानी है।[15]

कहानी संग्रह-

1. सप्तसरोज- 1917 में इसके पहले संस्करण की भूमिका लिखी गई थी। सप्तसरोज में प्रेमचंद की सात कहानियाँ संकलित हैं। उदाहरणतः बड़े घर की बेटी[16], सौत, सज्जनता का दण्ड, पंच परमेश्वर, नमक का दारोगा, उपदेश तथा परीक्षा आदि।
2. नवनिधि- यह प्रेमचंद की नौ कहानियों का संग्रह है। जैसे-राजा हरदौल, रानी सारन्धा, मर्यादा की वेदी, पाप का अग्निकुण्ड, जुगनू की चमक, धोखा, अमावस्या की रात्रि, ममता, पछतावा आदि।
3. 'प्रेमपूर्णिमा',
4. 'प्रेम-पचीसी',
5. 'प्रेम-प्रतिमा',
6. 'प्रेम-द्वादशी',
7. समरयात्रा- इस संग्रह के अंतर्गत प्रेमचंद की 11 राजनीतिक कहानियों का संकलन किया गया है। उदाहरणस्वरूप- जेल, कानूनी कुमार, पत्नी से पति, लांछन, ठाकुर का कुआँ, शराब की दुकान, जुलूस, आहुति, मैकू, होली का उपहार, अनुभव, समर-यात्रा आदि।
8. मानसरोवर' : भाग एक व दो और 'कफन'। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 भागों में प्रकाशित हुई।

नाटक

1. *संग्राम* (1923)- यह किसानों के मध्य व्याप्त कुरीतियाँ तथा किसानों की फिजूलखर्ची के कारण हुआ कर्ज और कर्ज न चुका पाने के कारण अपनी फसल निम्न दाम में बेचने जैसी समस्याओं पर विचार करने वाला नाटक है।

2. *कर्बला* (1924)

3. *प्रेम की वेदी* (1933)

ये नाटक शिल्प और संवेदना के स्तर पर अच्छे हैं लेकिन उनकी कहानियों और उपन्यासों ने इतनी ऊँचाई प्राप्त कर ली थी कि नाटक के क्षेत्र में प्रेमचंद को कोई खास सफलता नहीं मिली। ये नाटक वस्तुतः संवादात्मक उपन्यास ही बन गए हैं।[17]

कथेतर साहित्य

प्रेमचंद : विविध प्रसंग- यह अमृतराय द्वारा संपादित प्रेमचंद की कथेतर रचनाओं का संग्रह है। इसके पहले खण्ड में प्रेमचंद के वैचारिक निबन्ध, संपादकीय आदि प्रकाशित हैं। इसके दूसरे खण्ड में प्रेमचंद के पत्रों का संग्रह है।

प्रेमचंद के विचार- तीन खण्डों में प्रकाशित यह संग्रह भी प्रेमचंद के विभिन्न निबंधों, संपादकीय, टिप्पणियों आदि का संग्रह है।

साहित्य का उद्देश्य- इसी नाम से उनका एक निबन्ध-संकलन भी प्रकाशित हुआ है जिसमें 40 लेख हैं।

चिट्ठी-पत्री- यह प्रेमचंद के पत्रों का संग्रह है। दो खण्डों में प्रकाशित इस पुस्तक के पहले खण्ड के संपादक अमृतराय और मदनगोपाल हैं। इस पुस्तक में प्रेमचंद के दयानारायन निगम, जयशंकर प्रसाद, जैनेंद्र आदि समकालीन लोगों से हुए पत्र-व्यवहार संग्रहित हैं। संकलन का दूसरा भाग अमृतराय ने संपादित किया है।

सन्दर्भ :

4. रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. p. 18. ISBN 978-81-267-0505-4.

5. रामविला स शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 15

6. रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. p. 19. ISBN 978-81-267-0505-4.

7. बाहरी, डॉ० हरदेव (१९८६). साहित्य कोश, भाग-2,. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड. p. ३५६.

8. "Munshi Premchand: गांधी और प्रेमचंद का साथ-साथ चलना हिंदी साहित्य में एक महान उपलब्धि". Dainik Jagran. अभिगमन तिथि: 2020-07-31.

9. बाहरी, डॉ० हरदेव (१९८६). साहित्य कोश, भाग-2,. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड. p. ३५७.

10. रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. p. 20. ISBN 978-81-267-0505-4.

11. यह उपन्यास उर्दू साप्ताहिक 'आवाजे खल्क' में 8 अक्टूबर 1903 से 1 फ़रवरी 1905 तक धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। इसमें लेखक का नाम छपा था- मुंशी धनपतराय उर्फ नवाबराय इलाहाबादी। बाद में स्वयं प्रेमचंद ने इसका हिन्दी तर्जुमा 'देवस्थान रहस्य' नाम से किया, जो उनके पुत्र अमृतराय द्वारा उनके आरंभिक उपन्यासों के संकलन 'मंगलाचारण' में संकलित है।

12. रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. p. 21. ISBN 978-81-267-0505-4.

13. सिंह, डॉ०बच्चन (1972). प्रतिनिधि कहानियाँ. वाराणसी: अनुराग प्रकाशन, विशालाक्षी, चौक. p. 9.

14. अमृतराय (1976). प्रेमचंद क़लम का सिपाही. इलाहाबाद: हंस प्रकाशन. p. 616-17.

15. वीर भारत, तलवार (2008). किसान राष्ट्रीय आन्दोलन और प्रेमचन्द:1918-22. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन. p. 19-20.

16. अमृतराय (1976). प्रेमचंद क़लम का सिपाही. इलाहाबाद: हंस प्रकाशन. p. 618.

17. अमृतराय (1976). प्रेमचंद क़लम का सिपाही. इलाहाबाद: हंस प्रकाशन. p. 619.

18. डॉ कमल किशोर गोयनका (संपादक)- "प्रेमचंद कहानी रचनावली", 6 भागों में, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, भूमिका (भाग-१)

19. प्रेमचंद (१९३८). सप्तसरोज. ज्ञानवापी, काशी: हिन्दी पुस्तक एजेंसी. p. 1.

20. हिन्दी का गद्य साहित्य - डॉ० रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या- 518

विकसित भारत 2047 के लक्ष्य प्राप्ति में कौशल शिक्षा का योगदान

प्रो० (डॉ०) अनु कुमारी
विभागाध्याक्षा, अध्यापक प्रशिक्षण संकाय, एन ए एस डिग्री कॉलिज, मेरठ, उत्तर प्रदेश

सारांश:

विकसित भारत 2047 भारत सरकार का एक व्यापक विजन है, जिसका लक्ष्य भारत को वर्ष 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनाना है अर्थात वर्ष 1947 में जब प्रत्येक भारतवासी आजादी के 100वें वर्ष में प्रवेश करेगा तब भारत एक विकसित राष्ट्र होगा। यह पहल समावेशी विकास, आर्थिक विस्तार, कृषि, शिक्षा, नवाचार, प्रौद्योगिकी में साहसिक सुधार और नागरिक भागीदारी की आवश्यकता है। ये परिवर्तनकारी उपाय, समावेशी व सतत् विकास को बढ़ावा देंगे और भारत की विश्वगुरु के रूप में वैश्विक अर्थव्यवस्था में स्थिति को मजबूत करेंगे। विकसित भारत का उद्देश्य भारत को तकनीकी रूप से उन्नत, आर्थिक रूप से मजबूत और सामाजिक रूप से समावेशी राष्ट्र के रूप में पुनर्गठित करना तथा प्रत्येक भारतीय के जीवन स्तर में सुधार लाना है, जिससे सभी को समान अवसर एवं सुविधाएं मिल सके। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए देश में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लागू की गई है। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य आधुनिक अर्थव्यवस्था की मांगों के लिए कार्यबल को बेहतर ढंग से तैयार करने की दिशा में शिक्षा प्रणाली को नया रूप देना है। इस नीति का लक्ष्य विद्यार्थियों को कौशल या व्यवसायिक शिक्षा देना और अनुसंधान के लिए उचित वातावरण तैयार करना है।

मुख्य बिन्दुः

विकसित भारत 2047, शिक्षा प्रणाली, कौशल या व्यवसायिक शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आदि।

प्रस्तावनाः

किसी भी देश की प्रगति की नींव उसकी शिक्षा प्रणाली होती है। एक मजबूत और प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए एक सुशिक्षित खासकर युवा जनसंख्या का होना नितान्त आवश्यक है। शिक्षा से लोगों व उनके विचारों की उत्पादकता, रचनात्मकता में वृद्धि होती है। इससे देश की उद्यमशीलता व तकनीकी प्रगति को बढ़ावा मिलता है। शिक्षा ही वह शस्त्र है जिससे देश में व्याप्त अशिक्षा, गरीबी तथा बेरोजगारी जैसी अनेक सामाजिक समस्याओं को समाप्त कर विकास की गाति में वृद्धि की जा सकती है। शिक्षा व्यक्ति में कौशल एवं क्षमताओं का विकास कर देश के लिए बेहतर मानव संसाधन को तैयार करने में सहायक होती है। शिक्षा व्यक्ति में संज्ञानात्मक कौशल को बढ़ाती है और समस्या समाधान की क्षमताओं का विकास करती है। कौशल शिक्षा व्यक्ति को वास्तविक जीवन की समस्याओं का सामना करने के लिए

तैयार करती है। कौशल शिक्षा से देश में न केवल सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक प्रगति होती है बल्कि रोजगार के अनेक अवसर भी पैदा होते हैं। कौशल शिक्षा में उचित निवेश कर एक उच्च कुशल कार्यबल तैयार कर वर्तमान व्यवसायों की जरूरतों को बेहतर ढंग से पूरा कर विकसित राष्ट्र के लक्ष्य को शीघ्र हासिल किया जा सकता है भारत को विकसित देश बनने के लिए कौशल शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, आर्थिक नीतियों का सुदृढ़ीकरण, सामाजिक समानता, तकनीकी, सूचना एवं प्रौद्योगिकी, नवाचार को बढ़ावा और पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान केंद्रित करना होगा। यह देश के सन्तुलित व समग्र विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अध्ययन के उद्देश्यः

* विकसित भारत 2047 विजन अवधारणा को स्पष्ट करना।
* विकसित भारत 2047 विजन को प्राप्त करने में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का विश्लेषण करना।
* विकसित भारत 2047 विजन को प्राप्त करने में गुणवत्तापूर्ण कौशल शिक्षा प्रणाली की उपयोगिता का विश्लेषण करना।
* विकसित भारत 2047 विजन को प्राप्त करने में आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण करना।

अध्ययन की प्रविधिः

यह अध्ययन पूर्णतः व्याख्यात्मक एवं वर्णनात्मक तथ्यों पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु द्वितीय स्रोतों के रूप में समाचार पत्र, जर्नल्स, शासकीय व अशासकीय स्तर पर प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं तथा विभिन्न वेससाईटों का प्रयोग किया गया है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली का इतिहासः

भारतवर्ष पुरातन काल से ही शिक्षा व ज्ञान का प्रमुख केंद्र रहा है। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उदांतपुरी, पुष्पगिरी और पाटलिपुत्र आदि अपनी पूरी गरिमा में विश्व के मनीषियों को आकर्षित करते थे। भारतीय सभ्यता तब अपने स्वर्णकालिक दौर से गुजर रहा थी । उपनिषद् के ऋषि लोगों को अचंभित कर देने वाले प्रश्नों का उत्तर सहजता से दे रहे थे। भारतीय गणितज्ञ शून्य की महिमा को आत्मसात कर रहे थे तथा भारतीय खगोलविद सूर्य और उसके ग्रहों के बीच सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे एवं उनके मध्य दूरी को माप रहे थे। भारतीय चिकित्सक आयुर्वेद को जीवन संजीविनी बनाने के लिए निरंतर प्रयासरत थे। भारतीय अर्थव्यवस्था अपने चरम पर थी। विश्व बाजारों में भारतीय वस्तुओं की मांग बहुतायत से थी। उस समय भारत सोने, चांदी, मसाले और रेशम के व्यापार का प्रमुख केंद्र था। भारत को अतीत में "सोने की चिड़िया" कहा जाता था। प्राचीन भारत में इसकी उर्वरा भूमि, प्रचुर प्राकृतिक संसाधन, विश्वभर में फैले व्यापारिक मार्ग भारत को आर्थिक रूप से एक संपन्न राष्ट्र बनाते थे। यहां की संस्कृतियों में कला, साहित्य और विज्ञान की भरपूर समृद्धि थी, जो विश्व भर से विद्वानों और यात्रियों को

अपनी और आकर्षित करती थी।

कौशल आधारित शिक्षा:

कौशल शिक्षा या कौशल आधारित शिक्षा का अर्थ एक ऐसी शिक्षण पद्धति से है, जो केवल किताबी ज्ञान के बजाय व्यवहारिक प्रशिक्षण और विशिष्ट हुनर विकसित करने पर जोर देती है। यह शिक्षा वास्तविक दुनिया की जरूरतों के अनुसार रोजगार योग्य कौशल जैसे- तकनीकी (आई टी कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग). होटल प्रबंधन, व्यापार, प्रबंधन, स्वास्थ्य सेवा, डिजिटल, संचार आदि सिखाती है। कौशल आधारित शिक्षा का उद्देश्य व्यवहारिक अनुभव के माध्यम से योग्यता की मजबूत नींव स्थापित करना है तथा करियर व व्यक्तिगत विकास के तौर पर छात्रों, शिक्षकों, कर्मचारियों और नियोक्ताओं सभी के लिए व्यवहारिक कौशल, ज्ञान प्रदान करने, रोजगार की सम्भावना बढ़ाने, उद्यमिता को प्रोत्साहन देने और छात्रों में आत्म-विश्वास निर्माण के लिए लाभकारी व भविष्य की चुनौतियों और अवसरों के लिए बेहतर तरीके से तैयार की गई शैली है। कौशल आधारित शिक्षा का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों और विषयों में किया जाता है, क्योंकि यह लचीली होती है और कार्यस्थल पर शिक्षार्थी की दक्षता में लाभ प्रदान करती है। कौशल आधारित शिक्षण पद्धति को सफलतापूर्वक अपनाने से व्यक्तिगत और व्यवसायिक विकास होता है, जिससे लम्बे समय से प्रतीक्षित लक्ष्य प्राप्त करना सम्भव हो जाता है। रचनात्मकता, नवाचार, आत्मविश्वास व कार्य संतुष्टि में वृद्धि होती है और अनुकूलन क्षमता में सुधार होता है। किसी भी कौशल में निपुणता प्राप्त करने वाला कर्मचारी अपने उस ज्ञान को अपने सहकर्मियों के साथ साझा कर सकता है, जिससे सहकर्मियों के बीच कौशल अंतर को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान मिलता है।

विकसित भारत 2047 हेतु उठाए गए कदम:

वर्तमान समय भारत का अमृत काल है। भारत कई मोर्चों पर बदल चुका है और आगे बढ़ने के लिए तैयार है। सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढांचे में बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ है पिछले वर्षों में नीतियों और योजनाओं के माध्यम से जैसे सम्रग शिक्षा और विश्वविद्यालयों, आईआईटी, आईआईएम, मेडिकल और नर्सिंग कॉलिजों का विस्तार, स्किलिंग (प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना) और कई अन्य योजनाएँ। पिछले दशक में विविद्यालयों और कॉलिजों की संख्या में कई गुना वृद्धि हुई है और विकसित भारत 2047 के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। इसके अंतर्गत तेज विकास दर, मेक इन इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, बुनियादी ढांचे का विस्तार, डिजिटल इंडिया, स्वच्छ भारत अभियान और आत्मनिर्भर भारत जैसे कार्यक्रमों ने अर्थिक स्थिरता और रोजगार के अवसर बढ़ाए है।

ग्रामीण भारत भी बदल रहा है। हम बिजली, पेयजल, बैंक खातें, सड़कें, मोबाइल कनेक्टिविटी और कई अन्य क्षेत्रों में सार्वभौमिक कवरेज हासिल करने के करीब है या पहले ही हासिल कर चुके हैं। ग्रामीण भारत को अब शहरी भारत के समान लाभ मिलने लगा है। हमने प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना और मनरेगा के माध्यम से भी गरीबों को मजबूत किया है और उन्हें संकट से बचाया है। प्रधानमंत्री

आवास योजना सभी को आवास उपलब्ध करा रही है।

आज शिक्षा की गुणवत्ता और पहुंच बढ़ी है। आईटी, बायोटेक्नोलॉजी और अंतरिक्ष अनुसंधान में भारत ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। बड़े पैमाने पर निवेश से भारत की परिवहन, ऊर्जा और संचार प्रणालियाँ मजबूत हुई है। नवीकरणीय ऊर्जा में निवेश से पर्यावरणीय स्थिरता बढ़ी है। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की सक्रिय भूमिका इसे एक महत्वपूर्ण वैश्विक खिलाड़ी के रूप में स्थापित कर रही है। यह एक बहुत बड़ा अवसर है, जिसके 2047 तक बने रहने की संभावना है। इस लाभांश का अच्छी तरह से उपयोग करके, हम भारत को विकसित भारत के रूप में आगे बढ़ा सकते है।

विकसित भारत 2047 विजन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020:

चूँकि भारत इस महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़ा है, अपने विकास पथ पर आगे बढ़ने के लिए तैयार है, यह महसूस करना महत्वपूर्ण है कि दृढ़ नेतृत्व के साथ भारत की नियति में जबरदस्त समर्पण और विश्वास, इस क्षमता को साकार करने के लिए आवश्यक है। भारत की स्वतंत्रता के 100वें वर्ष यानि 2047 कर मिशन भारत को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाने की संभावना वास्तव में वर्तमान सरकार का मनोरम एवं मजबूत दृढ़ संकल्प है। देश की तीव्र प्रगति को देखते हुए महत्वाकांक्षी लक्ष्य एवं उद्देश्य को साकार करने के लिए, भारत के प्रत्येक नागरिक कटिबद्ध है। एक विकसित भारत के लिए शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है, जो नागरिकों का उनके क्षमताओं का संवर्धन करने में मदद करता है क्योंकि विश्व का जो भी विकसित देश है, वहाँ शिक्षा का औसत काफी ऊँचा है। शिक्षा से ही हम किसी भी समाज और राष्ट्र की सूरत बदल सकते हैं शिक्षा समाज में एक नयी रोशनी फैलाती है और उससे लोग अपने जीवन-दर्शन में अपने कार्य एवं अधिकार के प्रति सचेत रहते है और राष्ट्र निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते है। 2047 तक भारत को एक विकसित भारत बनाने लिए मिशन मोड में बहुत बड़ा काम करने की आवश्यकता है। ऐसा करने के लिए, एक साहसिक, महत्वाकांक्षी और परिवर्तनकारी एजेंडा तैयार करने की आवश्यकता है। हमें एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो सभी भारतीयों को स्वतंत्रता की भावना दे, समावेशी विकास को बढ़ावा दे और देश को 21वीं सदी के अवसरों और चुनौतियों के लिए तैयार करें। अतः शिक्षा का प्रत्येक पहलू 2047 तक एक जीवंत और सशक्त भारत के निर्माण में किस प्रकार अपनी भूमिका निभाता है इसे निम्न तथ्यों से समझा जा सकता है-

- कौशल विकासः शिक्षा को रोजगार बाजार की जरूरतों के साथ जोड़ना और युवाओं को भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार करने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा कौशल विकास पर ध्यान केंद्रित करना आदि।

- व्यावसायिक शिक्षा और कौशल का विकासः विकसित भारत का लक्ष्य औद्योगिक मांगों और नई तकनीकी प्रगति को व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ जोड़ता है। हमें उद्यमिता, हरित ऊर्जा, आईटी, स्वास्थ्य सेवा और कृषि सहित विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम उपलब्ध कराने होगें। लोगों को प्रशिक्षुता और इंटर्नशिप कार्यक्रम प्रदान करने होगी जिससे वह वास्तविक दुनिया का अनुभव प्राप्त कर सकें।

- शिक्षा और अनुसंधान में सुधारः शिक्षा में सुधार और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए नई शिक्षा नीति 2020 लागू की गई है। इसका उद्देश्य गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना और अनुसंधान के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना है। विकसित भारत 2047 के लक्षण को प्राप्त करने के लिए शिक्षा प्रणाली में संरचनात्मक बदलाव और शिक्षकों की गुणवत्ता में सुधार पर ध्यान दिया जा रहा है।
- तकनीकी और वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा: विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने 'मिशन इनोवेशन' और 'स्टार्टअप इंडिया' जैसी पहल की है जिससे तकनीकी नवाचार को प्रोत्साहन मिलेगा और भारत स्टार्टअप को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने में मदद मिलेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य आधुनिक अर्थव्यवस्था की मांगों के लिए कार्यबल को बेहतर ढंग से तैयार करने के लिए भारत की शिक्षा प्रणाली को नया रूप देना है। पिछली नीतियाँ मुख्य रूप से पारम्परिक शिक्षण केंद्रित थी जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कौशल विकास और आलोचनात्मक सोच पर केंद्रित है तथा विभिन्न विषयों में इंटर्नशिप और व्यावसायिक प्रशिक्षण को शामिल कर औद्योगिक विचारधारा पर बल देती है।

विकसित भारत 2047 विजन प्राप्ति में चुनौतियाः

हमारी विशाल जनसंख्या का देश के संसाधनों पर दबाव पड़ता है। संतुलित विकास सुनिश्चित करने के लिए सतत् जनसंख्या प्रबंधन रणनीतियां अपनाना आवश्यक है। दूरस्थ या वंचित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए कौशल विकास कार्यक्रमों तक पहुंच न होना व उसके लाभों के बारें में जागरूकता की कमी होना भी एक चुनौती है। ग्रामीण क्षेत्र आज भी अपर्याप्त बुनियादी ढांचे, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सीमित पहुंच और स्वास्थ्य सेवा की असमानताओं से ग्रस्त है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में संतुलित विकास प्राप्त करना आज किसी चुनौती से कम नहीं है। अधिकांश प्रशिक्षण केन्द्रों में आधुनिक उपकरणों की कमी और प्रशिक्षक की योग्यता व प्रशिक्षण स्तर संतोषजनक नहीं है। कुछ कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम उद्योग मानकों पूरा नहीं करते है, जिसके परिणामस्वरूप स्नातकों के पास नौकरी बाजार के लिए अपर्याप्त कौशल और ज्ञान होता है। विश्व आर्थिक मंच के अनुसार, आधे से अधिक भारतीय कामगारों को भविष्य की नौकरी बाजारों की मांगों को पूरा करने के लिए पुनः कौशल की आवश्यकता होगी। विकसित भारत लक्ष्य के लिए इस कौशल अंतर को समाप्त करना एक चुनौती है। हालांकि भारत ने बुनियादी ढांचे के विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है किन्तु अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकि है। परिवहन नेटवर्क का आधुनिकीकरण, विश्वसनीय बिजली आपूर्ति सुनिश्चित करना जरूरी है। सड़के, रेलवे और हाई स्पीड इंटरनेट में निवेश की आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

अध्ययन के आधार पर हम कह सकते है कि इस अमृत काल में भारत कई मोर्चों पर बदल चुका है और आगे बढ़ने के लिए सतत प्रयास कर रहा है। भारत अपने इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ पर है। 21वीं सदी भारत की सदी होगी क्योंकि देश अपनी क्षमताओं के प्रति आश्वस्त होकर भविष्य की ओर बढ़ रहा है और विकसति राष्ट्र बनने के लिए कई पैमाने पर कार्य कर रहा है। सामाजिक व आर्थिक विकास, पर्यावरण संरक्षण और दूरदर्शी नेतृत्वके बीच संतुलन की आवश्यकता है। दृढ़ संकल्प, रणनीतिक योजना और सामूहिक प्रयासों से हम अपने देश को प्रगति के एक प्रकाश स्तम्भ में परिवर्तित कर सकते है। वैसे देश ने पिछले वर्षों में नीतियों और योजनाओं के माध्यम से समग्र शिक्षा और विश्वविद्यालायों, आईआईटी, आईआईएम एवं मेडिकल नर्सिंग कॉलिजों का विस्तार, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना आदि के माध्यम से भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली ने दुनिया के नक्से पर अपनी पहचान बनाई है।

भारत में शिक्षा का तात्पर्य सिर्फ ज्ञान देना ही नहीं है। यह लाखों लोगों के मस्तिष्क और आकांक्षाओं को आकार देता है, देश को आगे बढ़ाता है। आर्थिक विकास, सामाजिक सामंजस्य और लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देकर, शिक्षा भारत के राष्ट्र निर्माण के प्रयासों में एक शक्तिशानी उपकरण बना हुआ है। विकसित भारत 2047 का सपना साकार करने के लिए भारत को उपरोक्त चुनौतियों का समाधान खोजना होगा, समावेशी ओर टिकाऊ विकास के लिए दीर्घकालिक योजनाएँ और नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण और तकनीकि विकास के क्षेत्रों में व्यापक सुधार की आवश्यकता है। यह वह आधार है जिसके द्वारा अशिक्षा, गरीबी, अकुशलता, क्षेत्रीय असमानताएँ और लैंगिक अंतर जैसी चुनौतियों को समाप्त कर देश का उज्ज्वल विकसित भविष्य निर्मित किया जा सकता है।

संदर्भ:

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार।
- भारत की जनसंख्या और विकास संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम |
- शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार की आवश्यकता विश्व बैंक रिपोर्ट।
- सिंह, बलवान, इन्टरनेषनल एज्रूकेषनल जरनल सितम्बर 2018, आई0एस0एस0एन0 2455-8729 https://www.techtarget.com/searchhrsoftware/definition/skill-based-learning Ideas for The Vision Viksit Bharat/2047, 11 Dec 2023 http://innovativeindia-mygov-in
- Viksit Bharat / 2047 meaning, vision, objective & registration, 03 Feb 2025 http://cleartax.in/s/viksit-bharat-2047
- Viksit Bharat / 2027, 11 Dec 2023 http://iipe-ac-in
- Viksit Bharat: A Deep Drive into India's Economic Transformation 15 August 2024, http://www.jagranjosh.com

- https://no1hindon.kvs.ac.in/%E0%A4%95%E0%A5%8C%E0%A4%B6%E0%A4%B2-%E0%A4%B6%E0% A4%BF%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B7%E0%A4%BE/